गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

वर्षः 40, अंकः 3-4, मई-अगस्त, 2017 (संयुक्तांक)

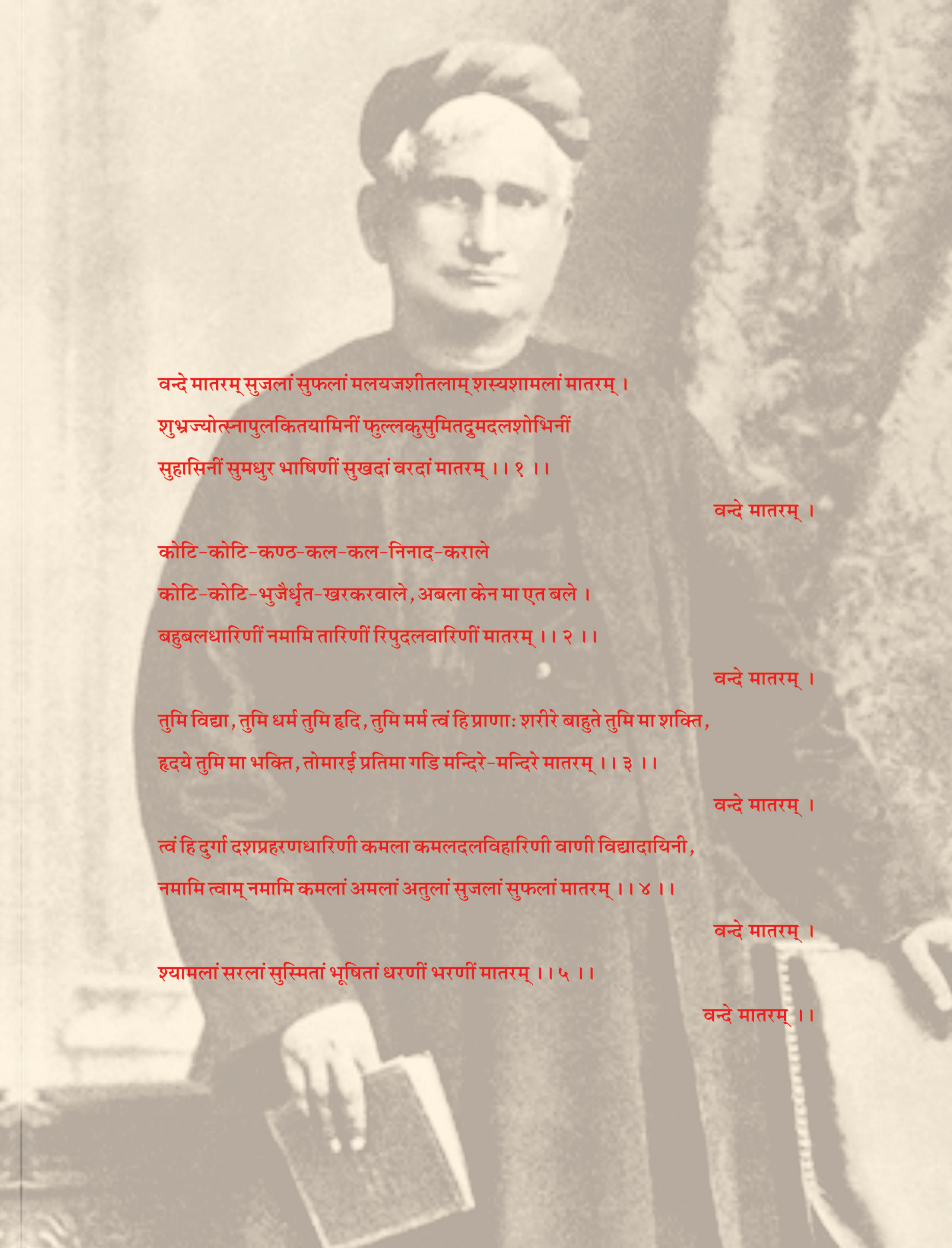

वन्दे मातरम् सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम् शस्यशामलां मातरम् ।

शुभ्रज्योत्स्नापुलकितयामिनीं फुल्लकुसुमितद्रुमदलशोभिनीं

सुहासिनीं सुमधुर भाषिणीं सुखदां वरदां मातरम् ।। १ ।।

वन्दे मातरम् ।

कोटि-कोटि-कण्ठ-कल-कल-निनाद-कराले

कोटि-कोटि-भुजैर्धृत-खरकरवाले, अबला केन मा एत बले ।

बहुबलधारिणीं नमामि तारिणीं रिपुदलवारिणीं मातरम् ।। २ ।।

वन्दे मातरम् ।

तुमि विद्या, तुमि धर्म तुमि हृदि, तुमि मर्म त्वं हि प्राणाः शरीरे बाहुते तुमि मा शक्ति,

हृदये तुमि मा भक्ति, तोमारई प्रतिमा गडि मन्दिरे-मन्दिरे मातरम् ।। ३ ।।

वन्दे मातरम् ।

त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणी कमला कमलदलविहारिणी वाणी विद्यादायिनी,

नमामि त्वाम् नमामि कमलां अमलां अतुलां सुजलां सुफलां मातरम् ।। ४ ।।

वन्दे मातरम् ।

श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषितां धरणीं भरणीं मातरम् ।। ५ ।।

वन्दे मातरम् ।।

गगनांचल

मई-अगस्त, 2017 (संयुक्तांक)

प्रकाशक
रीवा गांगुली दास
महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली

संपादक
डॉ. हरीश नवल

सह संपादक
डॉ. आशीष कंधवे

ISSN : 0971-1430

प्रकाशन सामग्री भेजने का पता
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्,
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली-110002
ई-मेल: **spdawards.iccr@gov.in**

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध है।
www.iccr.gov.in/journals/hindi-journals
पर क्लिक करें।

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुमति दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद् की नीति को प्रकट नहीं करते। प्रकाशित चित्रों और फोटोग्राफ्स की मौलिकता आदि तथ्यों की जिम्मेदारी संबंधित प्रेषकों की है, परिषद् की नहीं।

शुल्क दर

वार्षिक	:		₹ 500
		यू.एस.	$ 100
त्रैवार्षिक	:		₹ 1200
		यू.एस.	$ 250

उपर्युक्त शुल्क-दर का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रक : इमेज इंडिया, नई दिल्ली-110002
9953906256

अनुक्रम

स्वतंत्रता के सत्तर वर्ष संदर्भ

सत्तर के भारत की आवाज़ 5
डॉ. रचना बिमल
शिक्षा के प्रति स्वतंत्र भारत की प्रतिबद्धता 10
डॉ. नीरा नारंग
स्वतंत्र भारत में मीडिया का नया दौर 14
अखिलेश आर्येन्दु
हिंदी ई-पत्रकारिता 18
डॉ. स्मिता मिश्र
हिंदी बाल-साहित्य का स्वातंत्र्योत्तर विमर्श 22
दिविक रमेश
हिंदी रंगमंच: सात दशक 28
माधुरी सुबोध
खेल उपलब्धियों के सात दशक 34
मनोज जोशी
हिंदी आलोचना: आज़ादी के बाद 39
डॉ. आरती स्मित
भाषा-प्रौद्योगिकी: सत्तर साल का सफ़रनामा 46
डॉ. एम.एल गुप्ता 'आदित्य'
आज़ादी के बाद का भारत और हिंदी कविता के बदलते स्वर 53
डॉ. हर्षबाला शर्मा
हिंदी सिनेमा के नये कदम 58
महेंद्र प्रजापति
जब आया रेडियो एफ.एम. 65
डॉ राजश्री त्रिवेदी
आज़ादी, चरखा और खादी 69
डॉ. राकेश चक्र

विमर्श

बंग-भंग आंदोलन: गाँधी एवं प्रेमचंद, सोज़ेवतन और वंदे मातरम् 71
डॉ. कमल किशोर गोयनका
जनगीतों की परंपरा और स्वतंत्रता आंदोलन 77
डॉ. रवि शर्मा 'मधुप'
'झण्डागीत' के रचयिता: श्याम लाल गुप्त 'पार्षद' 82
अशोक कुमार गुप्त 'अशोक'
आज़ादी का सिपाही शायर: पं. त्रिलोकनाथ आज़म 85
संजय स्वतंत्र
विभाजन की करुण कथा 88
कौशलेंद्र प्रपन्न
योग और यौगिक परम्परा 91
शशिकांत 'सदैव'
किसान समस्या: 'गोदान' से 'आखिरी छलांग' 96
डॉ. हरीन्द्र कुमार
नाद्ब्रह्म के साधकों की शती 99
प्रो. राम मोहन पाठक
भारतभूमि नृत्यमय है: गोपिका वर्मा (साक्षात्कार) 102
दीपक कुमार सिन्हा

जब हुआ लोकतंत्र का अपहरण (उपन्यास अंश) 107
मनोहर पुरी
वे पाँच दिन (डायरी) 116
रूचि भल्ला

कहानियाँ

पुनर्जन्म 124
विकेश निझावन
जुपिटर में जगन्नाथ 129
कन्नड़ मूल- के.वी. तिरुमलेश
अनुवाद: डी.एन. श्रीनाथ
हॉर्स रेस 137
अंजना वर्मा
स्वेटर के फंदे 142
डॉ. पूनम गुजराती
गुलफ़िज़ा 146
सीमा असीम सक्सेना
मनीजर बाबू 152
रमेश यादव
चतुर्भुज 156
सुदर्शन वशिष्ठ

लघुकथा

राधेश्याम बंधु की दो लघुकथाएँ 163
वह मसीहा; हृदय परिवर्तन
मारीशस से तीन लघुकथाएँ (रामदेव धुरंधर) 164
कुछ मूल्य शाश्वत; दादी का कंगन; हिम सरोवर
दो लघुकथाएँ 166
आत्मा की यात्रा: *आभा नौलखा*
आश्वस्ति: *जया आर्य*
अंकुश्री की दो लघुकथाएँ 167
अश्लीलता का सच; कहानी का सच

काव्य निधि

आज़ादी के बाद भी 168
नीलोत्पल रमेश
आज़ादी साकार करें 169
कुसुम वीर
जय भारत माता 169
हरीलाल मिलन
हम भरत-भूमि के सुता, सुवन 170
डॉ. रामवृक्ष सिंह
आज की रात फिर 170
राजकुमार कुम्भज
मैं गगन पर 171
विनय सिंघल
भाषा तुम 171
देवेंद्र कुमार शर्मा
दो कविताएं 172
नमिता राकेश
दो गीत 173
अपर्णा पाण्डेय
विजय गीत 173
डॉ. रमा सिंह
सावन: तीन दृश्य 174
इंद्रा रानी
पदचाप: मूल डोगरी : पद्मा सचदेव 175
अनुवाद: *कृष्ण शर्मा*
भारत है अपनी जान 176
किशोर श्रीवास्तव
गौ माता अन्नपूर्णा 177
पूनम माटिया
साथ 178
कृष्णा कुमारी 'कमसिन'
ग़ज़ल 178
सुशील 'साहिल'
दो कविताएँ 179
प्रगति गुप्ता
जीवन एक गुलदस्ता 180
कमलेश पाण्डे 'पुष्प'
पाँच लघु कविताएँ 181
हर्षदान 'हर्ष'

व्यंग्य

खुश रहिए-खुशामद करिए 182
गोपाल चतुर्वेदी
बूढ़ा, पी.एफ. और श्रवण कुमार 184
सुभाष चंदर

समीक्षा ग्राम

सुशील सिद्धार्थ कृत 'हाशिये का राग' 198
डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

आयोजन विवरणिका

बाराबंकी में 'खरी खरी' कार्टून प्रदर्शनी 190
अरुण नागर
डलहौजी में 'व्यंग्य-यात्रा' का दूसरा शिविर 191
आशा कुंद्रा

विविध समारोह

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी स्मृति गोष्ठी 192
शंघाई में पहली बार हिंदी नाटक का मंचन 192
मॉरीशस में राष्ट्रीय हिंदी नाटक समारोह 2017 193
हिंदू गर्ल्ज कॉलेज, मॉरीशस में हिंदी दिवस 193
ब्रिटेन में हिंदी ज्ञान प्रतियोगिता 194
बुडापेस्ट में 7वां अंतरराष्ट्रीय साहित्य एवं संस्कृति सम्मेलन 194

अंततोगत्वा

हमारा स्वराज्य 195
हरीश नवल

प्रकाशकीय

रीवा गांगुली दास
महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

प्रिय पाठकगण, यह अंक भारत की स्वतंत्रता के सत्तर वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में 'विशेषांक' के रूप में आपके हाथों में है। स्वतंत्रता प्राप्ति के विगत सात दशकों में भारत ने विभिन्न क्षेत्रों में क्या प्रगति की, कहाँ-कहाँ हम रुके, कहाँ-कहाँ बढ़े, इसका सिंहावलोकन आप अगामी पृष्ठों में पायेगें।

'गगनांचल' ने यह महत् कार्य अपने अपने क्षेत्र के जाने माने अधिकारी रचनाकारों के सर्वेक्षणों के आधार पर किया। आशा है कि यह 'अंक' भारत के विगत सत्तर वर्षों का एक वृहत परिदृश्य आपके समक्ष प्रस्तुत करने में सक्षम होगा।

पत्रिका का पिछला अंक 'गिरमिटिया और अन्य प्रवासी साहित्य विशेषांक' के रूप में प्रकाशित हुआ था जिसे भारत और भारत के बाहर के देशों में बहुत पसंद किया गया। सोशल मीडिया पर भी इसकी पर्याप्त चर्चा रही। हम आभारी हैं उन सबके प्रति जिन्होंने हमें अपनी प्रतिक्रियाएं प्रेषित कीं।

प्रस्तुत अंक की प्रतिक्रियाओं का भी स्वागत है। इनसे हमें प्रोत्साहन भी मिलता है और बेहतरी के उपाय भी। भारत के सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक आदि परिवेशों के कतिपय अंशों से यह अंक आपको रू-ब-रू करा सकेगा, इस विश्वास के साथ यह अंक आपके हाथ।

हार्दिक शुभकामनाएं,

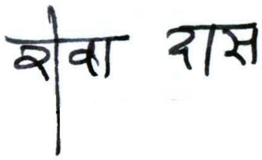

संपादकीय

दासता का स्वर्ण, आजादी की मिट्टी से हीन होता है। सत्तर साल पहले सैंकड़ों वर्षों से बंधी गुलामी की ज़ंजीरों को भारत ने तोड़ा और स्वाधीनता की श्वास ली। अपना देश, अपना राज, अपनी हंसी, अपनी मुस्कान लेते हुए एक नए भारत का जन्म हुआ। 'पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं' परख चुके भारतवासी नए स्वप्नमहलों को खड़ा करने में जुट गए... किन्तु उन महलों को गिरने में देर न लगी। भारत के युवा होते ही तत्कालीन सत्ता द्वारा निर्मित व्यवस्था में नागरिक को एक नव आचरण का पाठ सिखाना आरंभ किया जिसमें आचार शनैः शनैः कदाचार में परिवर्तित होने लगा। राजनीति के गलियारों में जनता के प्रतिनिधि जनकल्याण को भूल 'निज कल्याण' में जुटने लगे। विकास दिख रहा था किन्तु प्रगति की चाल मंदी होने लगी। सब कुछ उत्पादित हो रहा था परन्तु समुचित वितरण न होने से लक्ष्य बाधित होने लगे ..... इसके बावजूद भी कुछ शक्तियां देश में ऐसी थीं जो जनकल्याण हेतु कार्य भी कर रहीं थीं और वैचारिक भूमिका भी बना रहीं थीं — ऐसी भूमिका जो नागरिक का उत्थान कर सके। अतः भारत बढ़ता रहा भले ही मार्ग बहुत प्रशस्त न थे।

समानांतर धाराओं में बहता भारत आज वैश्विक परिप्रेक्ष्य में वर्तमान व्यवस्था को परिवर्तित कर विकास की राह पकड़ रहा है, आशाएं फलित होने के अवसर बनते नजर आ रहे हैं। आशान्वित करते भारत की गति और प्रगतिसूचक लेख इस 'स्वतंत्रता के सत्तर साल' विशेषांक में जुटाए गए हैं जो आपको पसंद आयेगें।

पूर्व अंक 'गिरमिटिया एवं अन्य प्रवासी साहित्य विशेषांक का पाठक जगत में हार्दिक स्वागत हुआ। देश, विदेश से पत्र, ई-मेल, फेसबुक, वाट्स एप, फोन आदि द्वारा भूरि-भूरि प्रशंसा मिली जिसके लिए 'गगनांचल' परिवार पाठकों का आभारी है।

विभिन्न क्षेत्रों की सात दशकीय यात्रा को पढ़कर आपको यह अंक भी उत्कृष्ट लगेगा, ऐसी आशा है।

वंदे मातरम्।

हरीश नवल
संपादक

सत्तर के भारत की आवाज़

डॉ. रचना बिमल

> *...मेरी कटी बाजुओं और तुम्हारे आज के पड़ोसी देशों में कब लोकतंत्र की हत्या कर सैन्य तंत्र स्थापित हो जाए यह तो वहाँ के राजनेताओं से लेकर नागरिकों को नहीं पता लेकिन मेरे यहाँ आपातकाल की निःशब्द रात्रि को छोड़कर न तो लोकतंत्र का स्थगन हुआ है और न ही लोक के अधिकारों में किसी प्रकार की कटौती की गई है। सवा अरब की आबादी की इस उपलब्धि को देखकर दुनिया के बड़े-बड़े महारथी न केवल चकित हैं बल्कि हर पाँच वर्ष बाद होने वाले चुनावी महाकुंभ और शांतिपूर्ण सत्ता हस्तांतरण से हतप्रभ भी रह जाते है।...*

सम्पर्क: हिन्दी विभाग, सत्यवती महाविद्यालय, अशोक विहार, दिल्ली।
फोन: 9868792476

''मैं भारत हूँ। सुना है तुम मेरे पिछले सत्तर सालों का ऑडिट करना चाहते हो। तुम्हारी नजर में मैं सत्तर साल का युवा हूँ, लेकिन मेरी आज़ादी के साथ जन्मी पीढ़ी तो बुढ़ा गई है। मनुष्य की उम्र देश की उम्र की तुलना में कुछ भी नहीं होती। शायद इसीलिए तुम मेरे इतिहास से पीछा छुड़ाकर केवल वर्तमान पर अंगुली टिकाए खड़े हो। उफ़्फ़ कैसे समझाऊँ इतिहास की पोटली को खंगाले बिना वर्तमान को परखा और भविष्य को गढ़ा नहीं जा सकता। इतिहास पुरानी पीढ़ियों का वर्तमान ही तो था जिसे तुम किस्से-कहानी कहकर झुठलाना चाहते हो। ग्लोबल गाँव का हिन्दुस्तानी 'इंडिया' से पूर्व के आर्यावर्त के सुख-दुःख से जुड़कर सभ्यता और संस्कृति की भव्य किन्तु विखंडित वीथियों में स्वयं को खोना नहीं चाहता। सोशल मीडिया से जुड़ी इस पीढ़ी को मैं भी अपने जन्म की गाथा न सही पर ट्विटर के ट्विट की तरह कुछ कहूँगा जरूर। तुम्हारा आज का भारत खण्डित हो गए आर्यावर्त का ही अंश है। विखंडन की प्रक्रिया ने विशाल आर्यावर्त को ही नहीं, मेरी संस्कृति, सभ्यता और उपलब्धियों को भी खंडित किया है। जो समाज अपने जन्म के समय ब्रह्मांड रचयिता से प्रश्न कर रहा था कि — सृष्टि से पहले सत् भी नहीं था असत् भी नहीं, किस देवता को हविष्य अर्पित करूँ? उस समाज के 22 प्रतिशत नागरिक गरीबी रेखा से नीचे जीवन बचाने की चुनौती से जूझ रहे हैं?

जिस संस्कृति में 'परदारेषु मातृवत् लोष्ठयेत्' के संदेश की अवहेलना और सीता के हरण पर दुनिया के सबसे ताकतवर असुरराज रावण को वानर, भालू, किरात जैसी आदिवासी जातियों की मदद से वनवासी राम ने, मनुष्य से देव बनकर पराजित किया तथा द्रौपदी के अपमान का बदला लेने के लिए 'महाभारत' रचा वहाँ आज स्त्री-अपमान पराकाष्ठा पर कैसे पहुँच गया है? दर्द, पीड़ा और तिल-तिलकर मृत्यु की गोद में गई बलात्कार की शिकार निर्भयाओं, 10 साल की उम्र में दुष्कर्म की शिकार बच्ची की टीसता, माँ की कोख में ही कन्या भ्रूणों के प्राण लेने वाले हत्यारे, समाज के भीतर संवेदनाएँ छलनी में जल के समान क्यों छीजती जा रही हैं? मेरे साथ ही औपनिवेशक दासता से मुक्त हुए दूसरे देश प्रगति और विकास की दौड़ में कहीं आगे कैसे निकल गए? यदि इन प्रश्नों के उत्तर जानना चाहते हो तो तुम्हें मेरे दर्द को आज बाँटना होगा?

15 अगस्त, 1947 को मेरी दो बाजू काट दी गई, कथित स्वतंत्रता के दर्द से मैं आज तक निजात नहीं पा सका हूँ। विभाजन की वह आमिष त्रासदी मात्र एक करोड़ जनता के लुटने-पिटने, मरने, हत्या, बलात्कार, आगजनी, हिंसा और बेघर होने की दास्तान ही नहीं, शेष करोड़ों हिन्दुस्तानियों के दिलों में भी भय, नफरत, आक्रोश और मूल्यहीनता के गहरे विषबीजों का रोपण कर गई। इन विष बीजों से पनपे वृक्ष आज कब और कहाँ सिर उठाकर मानवता को शर्मसार करते हुए संवेदनहीनता की जहरीली कार्बन-डाई-ऑक्साइड का रिसाव करने लगे कोई नहीं जानता। ये विषैली जड़ें लोकतंत्र के पहरेदारों से लेकर भीड़ तंत्र के मध्य तक गहरी पैठ बना चुकी हैं जिन्हें साम्प्रदायिकता, छद्म धर्मनिरपेक्षता और सत्तालोभी राजनीति द्वारा सिंचित किया जा रहा है। प्रथम स्वतंत्रता दिवस की मध्य रात्रि को जब मेरे सपूतों ने 'नियति से साक्षात्कार' करने का प्रण किया था तो उस जिजीविषा में सैकड़ों सालों की गुलामी, विदेशी शासकों के अत्याचारों की लोमहर्षक घटनाओं के घाव, आज़ादी की लड़ाई में कंधे से कंधा मिलाकर विभिन्न धर्मों, जातियों के बलिदानी योद्धाओं की किंवदंतियों के साथ-साथ भविष्य के भारत के नवनिर्माण का स्वप्न भी था। उन सपनों में अतीत की गलतियों से सबक लेते हुए समाज की प्रथम पंक्ति से लेकर अंतिम आदमी तक विकास और उपलब्धियों का लाभ समरूपेण पहुँचाना भी शामिल था। स्वतंत्रता सेनानियों के लिए आज़ादी लक्ष्य मात्र नहीं, बड़े लक्ष्यों की प्राप्ति का माध्यम थी; जिससे सोने की चिड़िया कहलाने वाले मुझ भारत को भूख, गरीबी, दुर्भिक्ष जैसी मानव निर्मित जंजीरों से भी मुक्ति मिल सके। आज़ाद भारत को किस दिशा में ले जाना है यह आज़ादी की लड़ाई के दौरान ही तय कर लिया था। दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में इसीलिए बिना किसी भेदभाव के नागरिकों को वयस्क मताधिकार देकर राष्ट्र निर्माण का भागीदार बनाया गया। स्वतंत्र भारत में उस ऐतिहासिक 'राम-राज्य' की कल्पना की गई जहाँ पाँच सौ साल पूर्व गोस्वामी तुलसीदास ने मानक तय करते हुए लिखा था-

''दैहिक, दैविक, भौतिक तापा।।
राम राज नहिं काहुहिं व्यापा।।''

आश्चर्य मत करो तब राम को साम्प्रदायिक विचारधारा का प्रतीक नहीं बल्कि मेरे समाज के स्वर्णिम अध्याय के उस महापुरुष के रूप में आँका गया जिनका जीवन चरित अपवादों को छोड़कर (विशेषकर पत्नी सीता के परित्याग के संबंध में) नव-भारत के नागरिकों का आदर्श हो सकता है। मर्यादा पुरुषोत्तम की मर्यादाएँ नागरिकों से लेकर शासन, प्रशासन तक के लिए उदाहरण बने, तुम्हारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का भी यही मानना था। आधुनिक रामराज्य की कल्पना साकार होने से पूर्व, बदलते दौर की नजीर देकर कोई सत्ताधीश अतीत का नूतन सिद्धांतों की आड़ में 'लोक' की स्वतंत्रता और अधिकारों का हनन न कर सके, इसके लिए दुनिया के सभी उपलब्ध संविधानों का अध्ययन मनन करते हुए संविधान सभा में अति परिश्रम से 'भारतीय संविधान' की रचना की, जो किसी भी भारतीय को, किसी भी स्थिति में विशेष दर्जा नहीं देता। संविधान की यही साम्य दृष्टि भारतीय लोकतंत्र की रक्षा करने में समर्थ हो सकी है।

मेरी कटी बाजुओं और तुम्हारे आज के पड़ोसी देशों में कब लोकतंत्र की हत्या कर सैन्य तंत्र स्थापित हो जाए यह तो वहाँ के राजनेताओं से लेकर नागरिकों तक को नहीं पता लेकिन मेरे यहाँ आपातकाल की नि:शब्द रात्रि को छोड़कर न तो लोकतंत्र का स्थगन हुआ है और न ही लोक के अधिकारों में किसी प्रकार की कटौती की गई है। सवा अरब की आबादी की इस उपलब्धि को देखकर दुनिया के बड़े-बड़े महारथी न केवल चकित हैं बल्कि हर पाँच वर्ष बाद होने वाले चुनावी महाकुंभ और शांतिपूर्ण सत्ता हस्तांतरण से हतप्रभ भी रह जाते हैं।

काश अंग्रेजी श्रेष्ठता के गुमान में डूबे तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल आज जीवित होते तो अपनी आँखों से देखते कि जंगली लोगों (भारतीयों) में लोकतंत्र चलाने की सामर्थ्य उनके देशवासियों से कम नहीं है। चर्चिल महोदय ने भी संभवत: इतिहास नहीं पढ़ा था, क्योंकि जिस समय उनके देशवासी जंगली और बर्बर जीवन जी रहे थे उस समय भी मेरे यहाँ लोकतंत्र और गणराज्य स्थापित थे। चलो तुम्हें इतिहास ज्ञान से बोर

नहीं करता। मैं अब सत्तर सालों का हिसाब तुम्हारे समक्ष रख लाभ-हानि गिना देता हूँ।

देखो! लाभ की प्राप्ति यदि आँकड़ों, प्रति व्यक्ति आय, पसरते शहरों और दिन-प्रतिदिन ऊँची उठती अट्टालिकाओं आदि के रूप में नज़र आती है तो हानि का संबंध टूटती सामाजिक समरसता, पराधीन सोच, खण्डित मूल्य, बढ़ती आय की असमानता, आम आदमी में बढ़ता भय, असंतोष, संत्रास, साम्प्रदायिकता आदि से है। लाभ एवं अर्थ की प्राप्ति तो तकनीक, निवेश, सेंसेक्स की बाजीगरी आदि के प्रयोग से बढ़ाई जा सकती है, किन्तु सामाजिक हानि को किसी भी लाभ में कभी भी नहीं बदला जा सकता। यहाँ तो लम्हों की खता, सदियों को सज़ा देती है। मेरी आज़ादी के दीवाने इस तथ्य को बखूबी समझते थे। उन्होंने अंग्रेजों से भारतीयों को सत्ता हस्तांतरण के समय किसी भी राजा-महाराजा को तवज्जो नहीं दी, जबकि हज़ारों सालों से सत्ता का सुख भोगने वाले रजवाड़ों की गिद्ध दृष्टि में अंग्रेजों से आज़ादी का अर्थ पुनः उनकी अशक्त और भोगवादी राजसत्ता का भावी अभिषेक था। उनकी और अंग्रेजी संस्कृति की हिमायती सामंतवादी कथित भद्रजनों की दृष्टि में भारत का बदहाल आम आदमी इस काबिल कहाँ था जो दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र को अपने कंधों पर बैठा पाता। ये सारे दिवास्वप्न एक झटके मे उस समय धराशायी हो गए जब आम आदमियों की भीड़ में से निकल कर नेतृत्व सँभालने वाले लौह पुरुष — सरदार वल्लभ भाई पटेल ने 565 रजवाड़ों की अक्ल ठिकाने लगाते हुए उन्हें मेरा अभिन्न अंग बना डाला। पटेल सही मायने में 'जन' की नेतृत्व क्षमता और दक्षता की परम्परा के उत्तराधिकारी थे जिसने अंग्रेजी साम्राज्य की चूलें तक हिला दी थीं। राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, केशवचंद्र सेन, स्वामी दयानंद सरस्वती, अजीमुल्ला खां, विवेकानंद, बालकृष्ण गोखले, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, विपिन चंद्र पाल, लाला लाजपत राय, महात्मा गाँधी, सीमांत गाँधी बादशाह खाँ, मौलाना आज़ाद, चंद्रशेखर आज़ाद, भीमराव अम्बेडकर, राजगोपालाचारी आदि असंख्य सपूतों के साथ सुभाष चंद्र बोस जैसे जादुई नेता इसी धरती के लाल थे। अपने घर में तो हर कोई शेर होता है लेकिन विदेशी धरती पर फौज खड़ी कर साम्राज्यवादी सत्ता की जड़ें हिला देने वाली सुभाष की 'आज़ाद हिंद फौज' जैसा दूसरा उद्धरण दुर्लभ है। वो सुभाष ही था जिसने 30 दिसंबर, 1943 के पोर्ट ब्लेयर के जिमखाना मैदान में अंग्रेजों को पराजित कर पहली बार स्वतंत्र भारत (चाहे वो मेरा छोटा सा ही भूभाग था) की जमीन हासिल कर ध्वज फहराया था। दु:ख इस बात का है कि तुम्हारी पीढ़ी को इतनी बड़ी घटना की जानकारी भी नहीं दी गई। राजनीति में व्यक्तिगत वर्चस्व की क्षुद्र सोच मेरे बच्चों के भीतर लम्बे समय से घर कर गई है। उसी का दुष्परिणाम आज तुम्हें परिवारवाद व क्षेत्रवाद की राजनीति के रूप में भोगना पड़ रहा है।

काश सुभाष जैसे लाल को क्षुद्र राजनीति के कारण देश नहीं छोड़ना पड़ता तो मेरी बाजुएँ भी संभवत: कट नहीं पाती। मेरा आँगन जातीयता, साम्प्रदायिकता, क्षेत्रीयता, लैंगिक भेदभाव आदि के कलुष से मुक्त रहता। उस पर मैकाले की अंग्रेजियाई धुँध भी नहीं छा पाती। पर बीता हुआ समय कौन लौटा सका है? मैं भी अपने लहूलुहान वजूद के साथ 'समाजवादी' राह पर 'गुलाब' टाँगकर चल पड़ा। मेरी आम जनता भी अपने दायित्वों को सरकार के सिर मढ़कर व्यक्तिगत कामकाज में उलझ गई। वह भूल गई कि सरकार जनता के पैसे से ही कामकाज करती है। सरकारी कामकाज यदि सही प्रकार से नहीं होता, शासन-प्रशासन भ्रष्टाचार का शिकार न हो जाए इसके लिए लोक को अत्यंत सजग रहना पड़ता है, लेकिन 'लोक' भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भ्रष्टाचार का हिस्सा बन जाए तो उस समाज का रखवाला कौन होगा। भ्रष्टाचार केवल रिश्वत लेना नहीं होता। अपने काम के घंटों में हाजिरी लगाकर दाएँ-बाएँ घूमना, कार्यों का निष्पादन करने के स्थान पर अडंगें लगाकर देरी करना, सार्वजनिक स्थलों, सड़कों, ग्राम सभा की ज़मीनों, तालाबों, जंगलों पर अवैध कब्जा करना, फर्जी संस्थाएँ खड़ी कर अनुदान लेना, दहेज माँगना, कानूनों का दुरुपयोग करना, घर का कूड़ा बाहर बिखरेगा, उद्योग-धंधों का कचरा जलस्रोतों में डालना भला तुम्हारे किस कानून में लिखा है।

भाषा, आचार-विचार के साथ, सस्ती लोकप्रियता पाने या धन कमाने के लिए किया गया गलत व्यवहार भी भ्रष्टाचार होता है यह बात तो आज की पीढ़ी समझना ही नहीं चाहती। जिस यमुना के तटों पर बसी राजधानी को तुम प्रगति और विकास का मापदंड मानते हो उस यमुना में सत्तर साल पहले काँच जैसा नीला जल बहता था, सोच सकते हो? हज़ारों सालों से इस देश की पतित-पावनी नदियाँ अपने समस्त जीव जंतुओं के साथ मानव को भी जीवन के साथ-साथ मुक्ति देती थीं, वे आज कचरा और सीवेज ढोने का काम करते हुए अपनी निर्मलता और अविरलता खो बैठी हैं, यह तुम्हें दिखाई ही नहीं पड़ता। जंगलों के कटान, पहाड़ियों के अवैध खनन और रेत माफियाओं की अवैध करतूतों ने मेरी शस्य-श्यामला धरती को बंजर बना दिया है। इसलिए किसी हिस्से में सूखा है तो किसी में बाढ़। कबूतर

की तरह आँख बंद कर लेने से बिगड़ते मौसम को नजरअंदाज कर उसके घातक परिणामों से नहीं बचा जा सकता।

अपने लोभ और आलस्य को समय रहते तिलांजलि नहीं दी तो तुम अपने ही घर को रहने लायक नहीं पाओगे। इसी से घबराकर मेरे प्रतिभाशाली बच्चे विदेशों की ओर पलायन कर रहे हैं। जिस दिन अखबारों में कोई रिपोर्ट छपती है या बड़ी दुर्घटना घटती है, उस दिन पूरा समाज चिल्लपौं मचाता है और अगले ही दिन खामोशी से काम-धंधे में जुड़ किसी अन्य रिपोर्ट या दुर्घटना का मनचाहा इंतजार करता है। यह कैसी अकर्मण्यता है? इसी रवैये के कारण लायक बच्चे अमरीका, यूरोप, ऑस्ट्रेलिया और न जाने कहाँ-कहाँ जाकर बूढ़े माँ-बाप, रिश्ते-नाते छोड़कर अदृश्य स्वर्ग की आशा में जा बसे हैं। विदेशी उन्हें क्यों स्नेह-आदर से स्वीकारेंगे? मैं तो जाने वालों का दर्द भी बखूबी समझ सकता हूँ। उन्होंने विदेशों में धन तो कमा लिया पर मन कहाँ से कमाएँ? मन का जुड़ाव तो माटी का गंध, रिश्तों की डोरी, पसंद के काम और शांतिपूर्ण व्यवस्था से होता है।

व्यवस्था की टूटन ही अन्याय और अत्याचार को जन्म देती है। इसलिए नवजात मासूमों और नौनिहालों की सरकारी अस्पताल में बदइंतजामी से हुई मौतों पर घड़ियाली आँसू बहाकर शोक मनाने का ढोंग मत करो, बल्कि भविष्य की भी छोटे-बड़े की इलाज के अभाव में मृत्यु न हो, इसकी व्यवस्था करो। जरा सोचो विश्व स्वास्थ्य मानक के अनुसार एक हजार लोगों पर एक डॉक्टर होना चाहिए, तुम्हारे यहाँ 11528 लोगों के लिए एक सरकारी डॉक्टर क्यों है? धरती के कथित स्वर्ग अमरीका में एक हजार लोगों के लिए 2.5 डॉक्टर्स हैं और कुल डॉक्टर्स की संख्या का पाँच प्रतिशत भारतीय डॉक्टरों का है। क्या तुम्हारे पास स्थिति बदलने का सामर्थ्य बचा है?

शिक्षा समाज का परिवर्तन का हथियार होती है और भाषा भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम। इसमें कोई दो राय नहीं। आँकड़ों की दृष्टि से सत्तर सालों में साक्षरता दर छह गुणा बढ़ी है। वर्तमान में मेरे यहाँ 12 लाख प्राथमिक विद्यालय में 12 करोड़ से ज्यादा बच्चे शिक्षा ले रहे हैं जो संख्या की दृष्टि से यह विश्व में प्रथम स्थान पर है। इसी प्रकार 757 विश्वविद्यालयों, 28056 कॉलेजों, 11922 स्वायत्त संस्थान भी शिक्षा देने में संलग्न हैं। वर्ष 2014-15 में एक लाख 12 हज़ार 812 विद्यार्थियों ने पीएच. डी. के लिए पंजीकरण भी कराया है, लेकिन गुणवत्ता की दृष्टि से ये शिक्षण संस्थान प्राचीन भारत के तक्षशिला और नालंदा विश्वविद्यालयों के समकक्ष (जिन्हें तब के विश्व के सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालय माना जाता था) तो क्या, उच्च कोटि के वर्तमान वैश्विक विश्वविद्यालयों की प्रथम 100 की सूची में भी स्थान नहीं मिल सका। इन शिक्षा मंदिरों में विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास की कोई ठोस कोशिश नहीं होती और न ही उनके अंदर विपरीत परिस्थितियों में टिके रहने की क्षमता विकसित की जाती है। आत्मानुशासन तो गुजरे जमाने की बात हो गई है। फलत: यह शिक्षा व्यवस्था साक्षर नौजवानों को तो तैयार कर रही हैं पर बहुसंख्या में सफल नागरिक नहीं दे पा रही है। अपवाद स्वरूप जिस भी भारतीय ने मौलिक चिंतन और अभिनव प्रयोग किए उन्होंने देश की प्रगति में क्रांतिकारी भूमिका निभाई है।

लुटे-पिटे हिन्दुस्तान को सँवारने में नेहरू और उनकी टीम ने महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करना चाहा, लेकिन उनके पश्चिमी सोच के चश्मे ने मेरी अपेक्षाओं की उपेक्षा कर दी। इसी प्रकार पूरे भारत को हिन्दी के माध्यम से एक सूत्र में बाँधने के लिए उसे राजभाषा का दर्जा दिया गया तो इसमें अंग्रेजी को भी सरकारी कामकाज की भाषा के रूप में जारी रखने से फैसले से पलीता लगा दिया गया। देश की सीमाओं पर जो सुरक्षा आरंभ से ही कड़ी की जानी थी उसे गुटनिरपेक्षता और हिन्दी-चीनी भाई-भाई के नारों से ढकने का प्रयास किया गया, परिणामस्वरूप उद्दण्ड पाकिस्तान के साथ-साथ चीन ने भी भाई की पीठ में छुरा घोंपकर पराजय के गहरे घाव दे दिए। नेहरू यह सदमा नहीं झेल सके। पर लालबहादुर शास्त्री ने 'जय जवान, जय किसान' के नारे से मेरे बच्चों के टूटे मनोबल को जाग्रत कर दिया। सन् 1965 और 1971 के पाक युद्धों में इसी आत्मबल से विजयश्री मिली तो डॉ. स्वामीनाथन की हरित क्रांति ने भूखे भारत को खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाया। वर्गिज कुरियन ने सत्तर के दशक में राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड की 'अमूल' योजना से दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में श्वेत क्रांति कर आज मुझे दुनिया में सबसे ज्यादा दुध उत्पादक देश बना दिया है। वह बात और है कि उत्पादन के क्षेत्र की सफलता, विपणन स्तर की विफलता के कारण अन्नदाताओं और गोपालों को सही लाभ नहीं पहुँचा पा रही।

किसान अपनी फसल का लागत मूल्य भी नहीं मिल पाने के आत्महत्या कर रहे हैं तो आम उपभोक्ता उन्हीं वस्तुओं के आसमान छूते दाम चुकाने के लिए मजबूर हैं। दूध निकाल कर सड़कों पर कूड़ा-करकट, पॉलिथीन की थैली चबाने पर मजबूर गौ-माता की दुर्दशा का वर्णन करने की आवश्यकता मुझे नहीं है, क्योंकि इसके दर्शन आज के होरी के साथ-साथ तुम स्वयं कर लेते हो।

हाँ, एक क्षेत्र अभी तक निष्कलंक रूप से तुम्हारा मस्तक ऊँचा करने में सफल रहा है और वह है रक्षा अनुसंधान एवं अंतरिक्ष अनुसंधान केन्द्र। रक्षा अनुसंधान के क्षेत्र में मिसाइल मैन और तुम्हारे प्रिय डॉ. अब्दुल कलाम के नेतृत्व में एक के बाद एक ऐसी मिसाइलें बन गई हैं जो तुम्हें सुरक्षा के प्रति आश्वस्त करती हैं। इसी प्रकार बैलगाड़ी और साइकिल पर प्रक्षेपण के लिए रॉकेट ले जाने वाले इसरो के वैज्ञानिकों ने अद्वितीय कीर्तिमान स्थापित कर मेरा मस्तक तो गर्व से ऊँचा कर दिया है।

24 सितम्बर, 2014 को अपने पहले ही प्रयास में मात्र 400 करोड़ की लागत से (यह रकम हॉलीवुड की किसी भी बड़ी फिल्म के बजट से कम है) 'मंगल मिशन यान' का सफल प्रक्षेपण कर दिया। जीआईएस (भौगोलिक सूचना प्रणाली) धारी मात्र पाँच देशों में आज मैं भी शामिल हूँ। फरवरी 2017 में इसरो ने एक साथ 104 उपग्रहों का सफल प्रक्षेपण कर दुनिया में ऐसा करने वाला 'प्रथम देश' का तमगा दिला कर अमरीका और जापान के अलावा मैं भारत तीसरा ऐसा देश हूँ जहाँ उनसे सस्ता सुपर कम्प्यूटर बनता है। कहते हैं ना हर चमकती चीज सोना नहीं होती और दीपक की सुनहली लौ के नीचे कालिमा छिपी होती है।

कालिमा की परत एक दिन में नहीं जमती। दरअसल एक-एक कर के गई गलतियों, लोक लुभावन नारों और नीतियों के कारण ऐसा हुआ है। राजनीति के दलदल ने भारत के विकास की गति को धीमा कर दिया। अनेक भ्रष्ट नेताओं ने व्यक्तिगत वर्चस्व, परिवारवाद और अकूत धन संग्रह की कामना के कारण सार्वजनिक हितों की बलि चढ़ाकर, अन्याय और गुंड़ों को बढ़ावा दिया। देश में कम्प्यूटर क्रांति के पुरोधा स्व. राजीव गांधी के कथन की सत्यता को कौन झुठला सकता है कि रुपये के 100 पैसों में से मात्र 15 पैसों का लाभ ही आम जनता को मिल पाता है, शेष भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी की भेंट चढ़ जाते हैं।

विधायिका और नौकरशाही गठबंधन के विरुद्ध यदि मेरे किसी बच्चे ने न्यायपालिका की शरण ली भी तो सालों-साल चलते मुकदमों की प्रक्रिया के कारण त्वरित न्याय न मिलने से न्याय की नैसर्गिक हत्या हो गई। इन कारणों से राष्ट्रहित में लड़ने वालों के हौंसले पस्त हुए। विकास के नाम पर विदेशी बैंकों से लिए गए कर्ज की बंदरबाँट ने स्विस बैंकों में काला धन जमा कर स्विट्जरलैंड को तो समृद्धि दी किंतु अपने ही बहन-भाईयों पर करों का बोझ बढ़ा दिया।

लोकतंत्र का प्रहरी 'मीडिया' भी सार्थक भूमिका नहीं निभा सका। पत्रकारिता घर बेचकर राष्ट्रनिर्माण करने का मिशन नहीं, बल्कि बड़े पूँजी निवेश की माँग के कारण पूँजीपतियों के हाथों 'गिरवी' हो गई है जहाँ अखबार ब्रांड में बदल गए हैं। इलैक्ट्रॉनिक मीडिया तो आरंभ से ही पूँजीपति घरानों का खिलौना रहा है। टी.आर.पी की होड़ और ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाने की कारोबारी सोच ने 'विषय वस्तु' को वैचारिक दंगल के मैदान में पटकनी दे दी है।

उदारीकरण और भूमंडलीकरण की आँधी ने सदियों पुरानी भारतीयता के आदर्शों, सिद्धांतों और मूल्यों को अंगूठा दिखा दिया है। मेरी आज की फेसबुकिया पीढ़ी तो 'राष्ट्रीयता' के विचार को ही दकियानूसी समझने लगी है। 'सेल्फी' का ऑबसेशन इस पीढ़ी को व्यक्तिगत आभा से बाहर की दुनिया को बदलने की मुहिम से जुड़ने ही नहीं दे रहा। मैं तो ऑडिट लेने वाली इस पीढ़ी से अपने आत्मज हजारी प्रसाद द्विवेदी के कुछ विचार साँझा करना चाहता हूँ, ''हम असल में परदेसी हैं। देश में पैदा होने से ही देश अपना नहीं हो जाता। जब तक हम देश को नहीं जानते, जब तक उसे अपनी शक्ति से अपना नहीं बना लेते तब तक वह अपना नहीं होता।... डर कर परदेस में अपना बसेरा मत बनाओ। आज भी मुझमें यह ताकत है जो तुम्हें जीवन के समस्त सुखों से परिपूर्ण कर देगी, पर थोड़ी ईमानदारी से मेहनत तो करो। तुम मुझ पर आरोप लगा सकते हो कि मुझे ट्विट करना नहीं आता है। मेरा ट्विट किसी चिड़िया की चूँ-चूँ थोड़े ही है। यह तो प्राचीन देश के छोटे से कालखंड की बात है। बात निकलती है तो दूर तक जाएगी ही। चलते-चलते इतना चाहूँगा, कभी मेरे प्रेम पर शक मत करना। वक्त बदल रहा है, स्थितियाँ बदल रही हैं, राष्ट्रप्रेम की बात होने लगी है। तुम मुझसे हो तो मेरी भी पहचान तुम्हीं से बनेगी।

वक़्त के साथ चलो
विश्वास के साथ बढ़ो
मेरा तुम्हारा उसका
सबका कदम
'हमारा' बने।

-यही मेरा आर्शीर्वाद है।''

तुम्हारा अपना

भारत

शिक्षा के प्रति स्वतंत्र भारत की प्रतिबद्धता

डॉ. नीरा नारंग

...भारत का उद्देश्य एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था का स्थापन था जो न केवल लोगों के जीवन स्तर को उन्नत बनाए, बल्कि हमारे समाज की महान सांस्कृतिक धरोहर को भी संरक्षित रखे। यह प्रारंभ से ही स्पष्ट था कि विकास और प्रगति के क्रम में भारत पश्चिमी विचारों को तो अपनाएगा ही किन्तु यह सब अपने मूल्यों और सांस्कृतिक धरोहर को भुला देने की कीमत पर नहीं होना चाहिए। कई बड़े शिक्षाविदों ने शिक्षा के प्रत्येक स्तर (प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक, विश्वविद्यालय स्तर) को ध्यान में रखकर शिक्षा नीतियों को प्रस्तावित किया है। इस प्रकार देश शिक्षा के सभी स्तरों पर श्रेष्ठता प्राप्त करने के लिए प्रतिबद्ध था। इन शिक्षाविदों का उद्देश्य एक ऐसे मजबूत राष्ट्र की नींव रखना था जो प्रगति के प्रति प्रतिबद्ध हो।...

सम्पर्क: केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, 33, छात्र मार्ग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली–110007

कल 1947: अमृतसर की बाहरी सीमा के एक गाँव में हरि सिंह नामक एक किसान था। उसकी अपनी ज़मीन थी, वहाँ वह अपने परिवार के नौ सदस्यों के साथ रहता था। प्रात: पाँच बजे से शाम के पाँच बजे तक हरि सिंह अपने गेहूँ के खेतों में काम करता था। खेतों की सिंचाई और अच्छी उपज के लिए बढ़िया बीजों को चुनने में हरि सिंह का पिछला अनुभव ही उसके बहुत काम आता था।

आज 2017: हरि सिंह का बेटा राम सिंह उन्हीं खेतों में अपने पिता के साथ सभी आधुनिक मशीनों के साथ काम कर रहा है। वे दोनों अच्छे बीजों को चुनते हैं, बीजारोपण के लिए आधुनिक तरीकों को अपनाते हैं और अपने खेतों की सिंचाई करते हैं। आज उनके पास एक टैक्टर और फसल कटाई की मशीन है। हाल ही में उन्होंने जैविक खेती भी शुरू कर दी है। अपनी फसल को वो अच्छे मुनाफे के साथ बेचते हैं। अपने गाँव के सरकारी स्कूल से उत्तीर्ण होने के बाद राम सिंह का पुत्र आई.आई.टी. खड़गपुर से एग्रीकल्चर इंजीनियरिंग कर रहा है। आज उनका गाँव तमाम अच्छी सुविधाओं से युक्त एक आधुनिक गाँव है जिसमें अंग्रेजी माध्यम का एक विद्यालय है, जिसमें राम सिंह की बेटी शिक्षिका है, सर्वोत्तम सुविधाओं सहित अस्पताल, बेहतर जल निकासी की व्यवस्था है और नजदीकी शहर अमृतसर से जोड़ती अच्छी सड़कें बस सेवा के साथ उपलब्ध हैं। हरि सिंह और उनका परिवार आज एक बेहतर आरामदायक जीवन जी रहा है। आज वे स्मार्ट फोन रखते हैं, जो उन्हें अपने रिश्तेदारों और दोस्तों से जुड़े रहने में मदद करता है। उनका जीवन स्तर पहले से ही काफी बेहतर हुआ है और यह सब शिक्षा के माध्यम से ही संभव हो पाया है।

•••

1947 में जब भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त की थी उस समय देश एक साथ कई चुनौतियों से जूझ रहा था। एक तरफ देश विभाजन की त्रासदी का दंश झेल रहा था, दूसरी तरफ ध्वस्त

होती अर्थव्यवस्था, निरक्षरता, गरीबी के साथ समाज कई बड़ी सामाजिक बुराइयों में जकड़ा हुआ था। इन सभी चुनौतियों से पार पाने का एक प्रभावी रास्ता लोगों को शिक्षित करना था, उसमें भी विशेषकर महिलाओं और निम्न जाति के लोगों को शिक्षित करना और अधिक जरूरी था। ऐसी स्थिति में सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक तौर पर भारत को प्रगतिशील बनाए रखने में शिक्षा को एक महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में देखा गया। ब्रिटिश शासन व्यवस्था में जहाँ एक ओर अंग्रेजों द्वारा भारतीय पर आधुनिक शिक्षा व्यवस्था थोपी गयी वहीं दूसरी तरफ हमारे महान शिक्षाविदों/दर्शनशास्त्रियों यथा महात्मा गाँधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, स्वामी विवेकानंद, श्री अरविंद ने अपने शैक्षिक विचारों को ऐसे दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया, जिसका उद्‌देश्य पश्चिम की आधुनिक शिक्षा व्यवस्था के साथ हमारी आवश्यकता आधारित शिक्षा का सम्मिश्रण करना था।

भारत का उद्‌देश्य एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था का स्थापन था जो न केवल लोगों के जीवन स्तर को उन्नत बनाए, बल्कि हमारे समाज की महान सांस्कृतिक धरोहर को भी संरक्षित रखे। यह प्रारंभ से ही स्पष्ट था कि विकास और प्रगति के क्रम में भारत पश्चिमी विचारों को तो अपनाएगा ही किन्तु यह सब अपने मूल्यों और सांस्कृतिक धरोहर को भुला देने की कीमत पर नहीं होना चाहिए। कई बड़े शिक्षाविदों ने शिक्षा के प्रत्येक स्तर (प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक, विश्वविद्यालय स्तर) को ध्यान में रखकर शिक्षा नीतियों को प्रस्तावित किया है। इस प्रकार देश शिक्षा के सभी स्तरों पर श्रेष्ठता प्राप्त करने के लिए प्रतिबद्ध था। इन शिक्षाविदों का उद्‌देश्य एक ऐसे मजबूत राष्ट्र की नींव रखना था जो प्रगति के प्रति प्रतिबद्ध हो। स्वतंत्रता के पश्चात देश की शिक्षा व्यवस्था में सुधार के लिए सरकार द्वारा कई संस्तुतियाँ की गई और समय पर विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948), माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53), कोठारी आयोग (1964-66), राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के माध्यम से कई अनुशंसाएँ की गई।

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने लोकतांत्रिक परिवेश के निर्माण में शिक्षा की भूमिका पर बल दिया। ''लोकतंत्र प्रत्येक व्यक्ति के मनुष्य के रूप में सम्मान व योग्यता में आस्था पर आधारित होता है... अतः लोकतांत्रिक शिक्षा का उद्‌देश्य है व्यक्तित्व का पूर्ण व चहुँमुखी विकास — अर्थात् एक ऐसी शिक्षा जो विद्यार्थियों को समुदाय में जीने की बहुआयामी कला में दीक्षित करे। बहरहाल, यह स्पष्ट है कि एक व्यक्ति अकेले न तो रह सकता है न ही विकसित हो सकता है... उस शिक्षा का कोई लाभ नहीं जो अपने साथ नागरिकों के साथ शालीनता, सामंजस्य, कार्यकुशलता के साथ जीने की शैली के लिए आवश्यक गुणों को पोषित न करती हो।'' (माध्यमिक शिक्षा आयोग, 1952-53, पृष्ठ 20)।

शिक्षा आयोग ने विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा के विकास पर जोर दिया। उन्होंने शिक्षा को राष्ट्रीय विकास का माध्यम माना। इनकी रिपोर्ट का शीर्षक भी 'शिक्षा एवं राष्ट्रीय विकास' है। हमारी शिक्षा व्यवस्था में कोठारी आयोग की अनुशंसाएँ अपना एक मजबूत आधार रखती हैं। छात्रों को गुणवत्तापूर्ण निर्देशों को देने में शिक्षकों के महत्त्व को समझते हुए कोठारी आयोग ने शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना के लिए भी अपनी संस्तुतियाँ की हैं। कोठारी आयोग (1964-66) के अनुसार, ''भारत का सम्मान कक्षा कक्षों में आकार ले रहा है।'' कोठारी आयोग ने 14 साल तक के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा को सुनिश्चित करने के लिए संविधान में संशोधन के लिए अनुशंसा की और बहुभाषिक भारतीय समाज की स्थिति को ध्यान में रखकर त्रिभाषा सूत्र प्रस्तावित किया। इसी आयोग की अनुशंसा के आधार पर समाज उपयोगी उत्पादक कार्य को लाया गया, जिससे बच्चे श्रम की गरिमा को सीख सकें।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 को भारत के शिक्षा के प्रति प्रतिबद्धता के संदर्भ में एक बड़ा कदम माना जा सकता है। उस समय बड़ी संख्या में बच्चे शिक्षा व्यवस्था से बाहर थे, जो बच्चे विद्यालय आ जाते थे उनमें भी बहुत से बच्चे ऐसे थे, जो पढ़ाई बीच में छोड़ जाते थे। बच्चों की शिक्षा सुनिश्चित करना राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का केन्द्रीय बिन्दु था। शिक्षा नीति ने दूर-दराज के क्षेत्रों में भी शिक्षा की पहुँच बनाने का प्रयास किया। जो विद्यार्थी विद्यालय नहीं आ सकते उनके लिए मुक्त विश्वविद्यालयी व्यवस्था तथा दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था प्रारंभ की गई। पढ़ाई बीच में छोड़ जाने वाले विद्यार्थियों को विद्यालय में रोकने के लिए विद्यालय में आधारभूत सुविधाएँ उपलब्ध कराने के लिए 'ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड' जैसी योजनाओं की अनुशंसा भी इस शिक्षा नीति ने की। शिक्षा में सूचना एवं प्रौद्योगिकी

के प्रयोग द्वारा उसकी प्रभाविता बढ़ाने पर भी जोर इस नीति ने दिया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति की एक अहम चिंता राष्ट्रीय मूल्यों को बढ़ावा देने और अवसरों की समानता उपलब्ध कराने को लेकर थी; इस प्रतिबद्धता को इन पंक्तियों में देखा जा सकता है, ''राष्ट्रीय मूल्यों की सोच को हर व्यक्ति की सोच और ज़िंदग़ी का हिस्सा बनाने की कोशिश की जाएगी। इन राष्ट्रीय मूल्यों में ये बातें शामिल हैं— हमारे समान सांस्कृतिक धरोहर, लोकतंत्र, धर्मनिपेक्षता, स्त्री-पुरुष के बीच समानता, पर्यावरण का संरक्षण, सामाजिक समता, सीमित परिवार का महत्त्व और वैज्ञानिक तरीके के अमल की जरूरत। समानता के उद्देश्य को साकार बनाने के लिए सभी को शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध करवाना ही... पर्याप्त नहीं होगा, ऐसी व्यवस्था होना भी जरूरी है जिससे सभी को शिक्षा में सफलता प्राप्त करने के समान अवसर मिलें।'' (रा. शि. नी., 1986)

सर्वशिक्षा अभियान को भारत की शिक्षा के प्रति प्रतिबद्धता के एक महत्त्वपूर्ण कदम के रूप में देखा जा सकता है। प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के उद्देश्य के साथ 2000-01 में सर्वशिक्षा अभियान को लाया गया जिसके मुख्य केन्द्रबिन्दु थे— हाशियाकृत समूह की शैक्षिक आवश्यकताओं को देखना, शिक्षकों में कौशल विकास और बच्चों की समग्र शिक्षा को सुनिश्चित करना। इसी तरह एक अन्य प्रतिबद्ध कदम के रूप में 86वें संविधान संशोधन के तहत अनुच्छेद 21-क के अनुसार 6 से 14 साल तक के सभी बच्चों के लिए नि:शुल्क व अनिवार्य शिक्षा को सुनिश्चित करने के क्रम में शिक्षा का अधिकार अधिनियम (2010) लाया गया। अनिवार्य शिक्षा से अभिप्राय प्राथमिक शिक्षा में प्रवेश, नियमित उपस्थिति और प्राथमिक शिक्षा पूरी होने तक सरकार की जवाबदेही से है। अधिनियम में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए भी नियम दिए गए हैं जिसके तहत शिक्षकों की न्यूनतम अर्हता, छात्र-शिक्षक अनुपात, विद्यालयी संरचना, बच्चों के समग्र विकास के लिए पाठ्यचर्या निर्माण पर सुझाव दिए गए हैं। वर्तमान में सरकार द्वारा चलाई जा रही विभिन्न योजनाएँ— मध्याह्न भोजन योजना, बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ, आदि ऐसी योजनाएँ हैं जो सौ प्रतिशत साक्षरता प्राप्त करने के प्रति भारत की प्रतिबद्धता को दिखाता है।

''बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ'' जैसी योजनाएँ न केवल शिक्षा के सार्वजनीकरण से संबंधित हैं बल्कि इसका उद्देश्य सामाजिक समता के लक्ष्य को पाना भी है। इसी तरह कौशल विकास योजना को शिक्षा में व्यावसायिकता को बढ़ावा देना और साथ ही युवाओं को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने के कदम के रूप में देखा जा सकता है।

यद्यपि शैक्षिक प्रगति की गति धीमी है, बावजूद इसके ऐसे भी बदलाव हैं जो अधिक से अधिक लोगों को शिक्षा प्राप्त करने की ओर प्रोत्साहित करने वाले हैं। इसके अंतर्गत हम लोगों को उन्नत जीवन स्तर, समुचित संचार व्यवस्था, रोजगार के बेहतर अवसरों को और लोगों की सामाजिक गतिशीलता में शिक्षा की भूमिका को देख सकते हैं। जैसे देशभर में शैक्षिक संस्थानों के न्यूनतम स्तर को सुनिश्चित करने के लिये राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना भी की गई है।

समय के साथ चलने के लिए आज शिक्षा व्यवस्था बदलाव के दौर से गुजर रही है। प्रारंभ में शिक्षा राज्य सूची का विषय थी और इसकी जवाबदेही राज्य की होती थी। 1976 के संवैधानिक संशोधन में शिक्षा को समवर्ती सूची का विषय बना दिया गया जिसके अनुसार सौ प्रतिशत साक्षरता प्राप्ति के उद्देश्य को सुनिश्चित करने में अब शिक्षा के विषय पर राज्य सहित केन्द्र भी अपनी समकक्ष भूमिका निभाएगा। 1935 में बनी केन्द्रीय शिक्षा परामर्श बोर्ड ने शिक्षा संबंधी विभिन्न नीतियों को प्रस्तावित करने और उनकी निगरानी करने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका को निभाया है। राष्ट्रीय स्तर पर एन.सी. ई.आर.टी., राष्ट्र के लिए राष्ट्रीय रूपरेखा को प्रस्ताविक करती है और प्रत्येक राज्य में यही काम एस.सी.ई.आर.टी. द्वारा किया जाता है। एस.सी. ई.आर.टी. प्रत्येक राज्य की विशिष्ट आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या का प्रारूप विकसित करती है। प्रत्येक राज्य को एन.सी.ई.आर.टी. और एस.सी.ई.आर.टी. की पाठ्यचर्या के चयन की स्वतंत्रता है।

विद्यालयी शिक्षा में भी समाज की बदलती आवश्यकताओं व अपेक्षाओं के साथ कदमताल करने के लिए पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। भारत में सरकारी विद्यालय हैं, सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालय है, नवोदय विद्यालय हैं, केन्द्रीय विद्यालय हैं जो

विशेषकर केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों के बच्चों के लिए हैं तथा निजी विद्यालय भी हैं। विद्यालयों के पास सी.बी.एस.ई., राज्य बोर्ड और आई.सी.एस. बोर्ड चुनने का विकल्प भी मौजूद है। कुछ विद्यालयों ने आई.जी.एस.सी. पाठ्यचर्या को भी अपना लिया है जो विद्यार्थियों को विश्व भर के विश्वविद्यालयों में प्रवेश लेने के लिए प्रशिक्षण देती है।

स्वतंत्रता के बाद उच्च शिक्षा में भी विस्तार हुआ। वर्तमान में हमारे देश में सात सौ से अधिक विश्वविद्यालय और पैंतीस हज़ार से अधिक महाविद्यालय हैं। वैश्वीकरण के कारण उच्च शिक्षा में पर्याप्त सुधार हुआ है जिसमें सूचना और प्रौद्योगिकी के उपयोग तथा अनुसंधान और विकास पर बहुत बल दिया गया है। विश्वविद्यालय विद्यार्थियों को विशुद्ध अकादमिक पाठ्यक्रमों से लेकर बहुविद्याशाखाई पाठ्यक्रम चयन की स्वतंत्रता देते हैं। इंटर्नशिप के रूप में प्रायोगिक प्रशिक्षण भी दिया जाता है।

सूचना और प्रौद्योगिकी ने हमारे देश की शिक्षा प्रणाली को रूपांतरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सूचना और प्रौद्योगिकी कक्षाओं को अर्थपूर्ण, रोचक और विद्यार्थी केन्द्रित बनाने, सूचनाएँ साझा करने और ओपन कोर्स सॉफ्टवेयर, दृश्य-श्रव्य सहाय्य साधनों, डिजिटल पुस्तकालयों तथा ऐसे अन्य प्रौद्योगिकीय उपकरणों द्वारा दूर-दराज के क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने का महत्त्वपूर्ण साधन है। सूचना और प्रौद्योगिकी की सहायता से अनेक ऑनलाइन कोर्स भी किए जा सकते हैं जो वृत्तिक विकास में सहायक होते हैं।

समय पर नवीन पाठ्यचर्या का अभिकल्पन न केवल विद्यार्थियों को विशिष्ट विषयों में प्रशिक्षित करने अपितु संस्थाओं में आयोजित विविध पाठ्यचर्या सहगामी क्रियाओं के माध्यम से सम्पूर्ण/समग्र शिक्षा प्रदान करने के लिए किया जाता है। आज के विद्यार्थी जागरूक, आत्मविश्वासी, प्रौद्योगिकीय रूप से समुन्नत तथा स्वतंत्र चिंतक हैं— जो विशेष रूप से वैश्विक समाज की चुनौतियों से निपटने के लिए अनिवार्य है। भारत के पास काफी जनांकिकीय लाभांश है जिसके विदोहन की आवश्यकता है क्योंकि सन् 2020 तक हमारी ज्यादातर जनसंख्या तृतीयक उम्र की होगी। इससे रोजगार के अवसर बढ़ेंगे और अर्थव्यवस्था की संवृद्धि में उनका योगदान होगा।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय नई शिक्षा नीति पर विचार कर रहा है। इसके लिए पूरे देश के शिक्षाविदों और बुद्धिजीवियों में लगातार मंथन चल रहा है। बेहद महत्त्वपूर्ण केन्द्रीय मुद्दों पर विचार किया जा रहा है जो शिक्षा के प्रति देश की प्रतिबद्धता को दर्शाते हैं; इनमें प्रमुख हैं— ग्रामीण अंचल में शिक्षा का स्तर सुधारना, स्त्री शिक्षा, समावेशी शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, शिक्षा की गुणवत्ता, अनुसंधान एवं नवाचार को बढ़ावा देना आदि।

देश की शिक्षा के प्रति प्रतिबद्धता ने नालंदा और तक्षशिला विश्वविद्यालयों से लेकर वर्तमान में विश्व प्रसिद्ध आई.आई.टी. और आई.आई.एम. तक काफी लंबा सफर तय किया है। भारतीय प्रत्येक क्षेत्र में अपनी छाप छोड़ रहे हैं और यह केवल शिक्षा द्वारा संभव हुआ है। हमने प्रत्येक क्षेत्र में उपलब्धियाँ हासिल की हैं और अंतरराष्ट्रीय मंचों पर प्रतिनिधित्व किया है। भावी चुनौतियों में कौशल विकास को बढ़ावा देना और रोजगार सर्जकों का सृजन करना है न कि मात्र नियोक्ता और शिक्षा ऐसी चाहिए कि वह इस दिशा में विद्यार्थियों को तैयार कर सके।

आज़ादी के इन सत्तर वर्षों में शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में भारत ने बहुत-सी उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं। आज यह वैश्विक स्तर पर देखा जा सकता है कि हमारे इंजीनियर, डॉक्टर, वैज्ञानिक आदि दुनिया भर में अपनी योग्यता और विद्वत्ता का लोहा मनवा चुके हैं। यह एक बड़ी शैक्षिक उपलब्धि है कि इसरो जैसे संस्थानों का विश्व के शीर्ष अन्तरिक्ष संस्थानों में स्थान है। हम विश्व के बड़े सॉफ्टवेयर निर्यातकों में गिने जाते हैं। यद्यपि अभी भी हमारे देश में कई बच्चे स्कूली शिक्षा व्यवस्था से बाहर है, इसी तरह की कतिपय और भी शैक्षिक समस्याओं का सामना हम कर रहे हैं। बावजूद इसके भारतीय शिक्षा प्रणाली प्रगतिशील रही है और इसने ईमानदारी, अनुशासन, सच्चाई, अखंडता जैसी अनिवार्य मूल्य व्यवस्था को महत्त्व दिया है। शिक्षा तक पहुँच और शिक्षा की गुणवत्ता के प्रति सरकार के सतत प्रयासों के कारण भारत का भविष्य उज्ज्वल है। यह वही प्रतिबद्धता है जो बेहतर अर्थव्यवस्था, अधिक रोजगार सुनिश्चित करने और देश को विकास के पथ पर अग्रसर करने में सहायक होगी।

◆◆◆

स्वतंत्र भारत में मीडिया का नया दौर

अखिलेश आर्येन्दु

...यदि हम जीवन, परिवार और समाज के बेहतरी के लिए सोशल मीडिया का उपयोग करें तो अनेक लाभ घर बैठे भी हो सकते हैं। कृषि, बागवानी, उद्योग-धंधे, व्यापार, बेहतर शिक्षा, बेहतर सेहत, सुगम यात्रा, सेक्स, कानून की जानकारी, अनेक समस्याओं के निदान, आँधी-तूफान, बाढ़, बारिश, अकाल और पूरी दुनिया के एक-एक कण और पल की स्थिति की जानकारी आज सोशल मीडिया के जरिए उपलब्ध कराया जा चुका है। पुस्तकों का स्थान धीरे-धीरे वेबसाइट्स ने ले लिया है। अनेक एप्स मुफ्त में नेट पर उपलब्ध हैं। इन्हें डाउनलोड करके इनका बेहतर इस्तेमाल किया जा सकता है।...

भारत की आज़ादी का पहले का वह दौर जब उन्नीसवीं सदी में औपनिवेशिक हुकूमत के खिलाफ असंतोष की अंतर्विरोधी छाया में हमारे सार्वजनिक जीवन की रूपरेखा बन रही थी। इस प्रक्रिया के तहत मीडिया दो ध्रुवों में बँट गया। उसका एक मजबूत हिस्सा औपनिवेशिक शासन का समर्थक था तो दूसरा हिस्सा उन क्रांतिकारियों का था जिसमें स्वतंत्रता का झंडा बुलंद करने वाली भारत की जनता समर्थक की भूमिका में थी। राष्ट्रवाद या भारतीयता बनाम उपनिवेशवाद का यह दौर 1947 तक चला। इस दौर में अंग्रेजों के साथ-साथ भारतीय पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन की एक समृद्ध परंपरा दिखाई देती है। इसी समय अंग्रेजी शासन के नियंत्रण में रेडियो का प्रसारण प्रारम्भ हुआ। मीडिया आज के दौर में ज़िंदगी का सबसे जरूरी हिस्सा बन गया है। बिना मीडिया के मानव सभ्यता का विकास संभव नहीं हे, ऐसा माना जाने लगा है। इसमें सोशल मीडिया सबसे अहम बन गया है। समाज का हर तबका इससे सीधे तौर का जुड़ता है।

आज़ादी मिलने के बाद मीडिया का एक नया दौर शुरू हुआ। यह दौर लगभग अस्सी के दशक तक चला। इस दौर में रेडियो के साथ-साथ टेलीविजन, अखबार, पत्र-पत्रिकाएं बड़े पैमाने पर उभर कर आए। इस दौर में मीडिया भारत का एक विकसित राष्ट्र बनाने के लक्ष्य को लेकर चलता दिखाई देता है। केन्द्र सरकार ने प्रेम के कामकाज को नियंत्रित करने के लिए एक संस्थागत ढाँचा बनाना शुरू किया। 1952 से 1977 में दो प्रेस आयोग गठित किए गए। 1956 में 'रजिस्ट्रेशन ऑफ बुक्स एक्ट' का गठन किया गया। इसके तहत 1965 में एक संविधानगत संस्था 'प्रेस परिषद' की स्थापना की गई जो आज भी प्रेस और प्रेस से संबंधित सभी विषयों पर निगाह रखती है।

आज़ादी के बाद राष्ट्र के स्तर पर एक राष्ट्रवाद की सहमति बनाने का लक्ष्य मीडिया के केंद्र में था। मीडिया कहीं न कहीं लोगों में विश्वास का संस्कार जगाने में कामयाब दिखाई देता है। अखबार, पत्रिकाओं में प्रकाशित विचार और समाचार को सत्य, साफ और स्वीकार्य के रूप में देखा जाता था। इसी तरह रेडियो और दूरदर्शन (प्राइवेट चैनलों का उदय नहीं हुआ था) से

सम्पर्क: ए-11, त्यागी विहार, नांगलोई, दिल्ली-110041
मोबाइल: 9868235056

प्रसारित समाचार और विचार को भी सच और उपयोगी मानकर स्वीकार्य किया जाता था। यहाँ तक कि कानून, पंचायत, न्याय और साहित्य के क्षेत्र में इसे प्रामाणिक और तथ्यपरक माना गया। इस समय तक रेडियो और टीवी सरकार के हाथ में और मुद्रित मीडिया निजी क्षेत्र में था। मीडिया का यह दौर कई मायनों में जीवन, समाज, संस्कृति, राजनीति, विज्ञान और शिक्षा को नई दिशा देने में कामयाब दिखाई देता है।

और मीडिया का तीसरा दौर भी आया जब कई स्तरों पर बदलाव हुए। इसकी शुरुआत नब्बे के दशक में हुई। भारतीय राजनीति के केंद्र में कांग्रेस शासित सत्ता नरसिम्हा राव के हाथ में थी। उन्होंने ही तथाकथित राष्ट्र-निर्माण और विकास के नाम पर डब्ल्यूटीओ यानी विश्व व्यापार संगठन में शामिल होकर उदारीकरण, वैश्वीकरण और निजीकरण के फार्मूले को अपनाया और संविधान में संशोधन भी किया। मीडिया का यह दौर ऐसे बदलाओं से गुजरा जो कई रूपों और स्तरों में बाजारीकरण को स्वीकरता दिखाई देता है। टीवी और रेडियो पर सरकारी पकड़ ढीली पड़ी। निजी क्षेत्र में चौबीसों घंटे चलने वाले चैनलों और एफ.एम. रेडियो चैनलों का सारे देश में बहुत बड़े पैमाने पर विस्तार हुआ। उसी का प्रतिफल है कि आज देश में भारतीय भाषाओं में चलने वाले टीवी चैनलों ने अंग्रेजी चैनलों को पछाड़ दिया। करोड़ो लोग भारतीय भाषाओं में चलने वाले इन चैनलों से किसी न किसी रूप में जुड़े हुए हैं। इसे हम मीडिया में आए नव-क्रांति का दौर कह सकते हैं। इसे हम मीडिया का बहु-बाजारीकरण भी कह सकते हैं। नई प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल ने सोशल मीडिया की ताकत अजेय बना दी है। मीडिया की हालात इस तूफानी दौर में महज दस सालों में वही बनती दिखाई देती हैं जिसे पश्चिम में 'मीडियास्फेयर' कहा जाता है।

सोशल मीडिया का आगे होता विस्तार इसका परिणाम बताया जा रहा है। मीडिया का पहली बार इतना विशाल बाजार खड़ा हुआ जिसने राजसत्ता और जनसत्ता दोनों को अपने नियंत्रण में ले लिया। स्वदेशी और विदेशी निजी पूँजी को खुले मन से शासन ने मीडिया में प्रवेश की अनुमति दी। इससे मीडिया पर निजी नियंत्रण का और भी विस्तार हुआ। शिक्षा, सेहत, योग, रोजगार, मनोरंजन, समाचार, विचार और विज्ञान को इस मीडिया ने आम जन तक पहुँच बनाने में बहुत मदद की। 'उपभोक्ता क्रांति' के कारण विज्ञापन से होने वाली आमदनी कई गुना बढ़ गई। प्रौद्योगिकी और उद्यमशीलता की दृष्टि से देखें तो यह पाते हैं कि प्रतिभा का ऐसा उपयोग सोशल मीडिया के जरिए पहली बार किया गया। मीडिया का विज्ञापनी संस्कृति का यह नया दौर कई तरह से सोशल लाइफ पर असरकारी साबित हुआ। यह यही दौर था जब 1995 में भारत में पहली बार इंटरनेट का गाँव, कस्बे और शहरों में बहुत तेजी के साथ विस्तार हुआ। नई पढ़ी-लिखी पीढ़ी ने इसे हाथोंहाथ लिया। जिस जानकारी, मनोरंजन, लाइफ और मस्ती के स्तर पर शायद कल्पना भी नहीं की जाती थी, वह इंटरनेट के आते ही बहुत सहजता से हासिल हो गया।

आज का सोशल मीडिया कई स्तरों पर नया है और अपना असर भी कई तरह से डाल रहा है। हम देखें तो पाते हैं, 21वीं सदी के पहले दशक के अंत तक बहुत बड़ी तादाद में लोगों के निजी और व्यावसायिक जीवन का एक अहम हिस्सा नेट के जरिए संसाधित होने लगा। अब तो ऐसा लगता है कि बिना नेट के समाज के किसी भी तबके की ज़िंदग़ी आधी-अधूरी है। देश-दुनिया से जुड़ जाने का सुख नई पीढ़ी के लिए तो एक अद्‌भुत एहसास होता है। टोटल सोशल मीडिया एक टच स्क्रीन पर बहुत कम व्यय करके हासिल कर लेना नई पीढ़ी के लिए किसी स्वप्न को साकार करने जैसा है। जो मनोरंजन घर में टीवी स्क्रीन पर बैठकर किया जाता था, नेट की सहज उपलब्धता ने उसे उसके मोबाइल पर सहजता से उपलब्ध करा दिया है। दुनिया की कोई भी जानकारी, आविष्कार, खोज, शोध, परीक्षण, रोजगार, साहित्य, मनोरंजन, खेल, संगीत, गीत, समाचार, लेख, बातचीत, संदेश और संवाद एक पल के मोबाइल टच स्क्रीन पर अंगुलियों का स्पर्श पाते ही सामने मौजूद हो जाता है। ऐसा लगता है कि कोई मोबाइल नामक जादूगर ने अपनी जादूगरी से उपभोक्ता की चाहत के मुताबिक तुरत-फुरत में सब कुछ मुहैया करा दिया।

सोशल मीडिया का ही कमाल है कि जो दुनिया कभी रहस्यमय लगती थी उसे वास्तविकता में प्रकट कर दिया है। भारत आज सोशल मीडिया के सबसे बड़े बाजार के रूप में उभर चुका है। इसे देखते हुए विदेशी मीडिया ने भारत को अपने लिए सबसे बेहतर मीडिया सेंटर समझा और यहाँ के सस्ते श्रम का लाभ उठाते हुए मीडिया के सभी आयामों पर कब्जा जमा लिया है। ग्लोबल संस्थाओं ने भारत को अपने मीडिया प्रोजेक्टों के लिए आउटसोर्सिंग के केन्द्र सरकार बनाकर भारतीय बाजार में मौजूद मीडिया के विशाल बाजार पर ही कब्जा नहीं किया बल्कि यहाँ की असाधारण टेलेंट-पूल का ग्लोबल बाजार के लिए दोहन करना शुरू किया। हैरत में डालने वाली बात यह है

कि भारत की नई पीढ़ी ने इस षड्यंत्र को अपने लिए आज भी वरदान समझा हुआ है। जिस तरह से विदेशी कंपनियों ने भारत की अर्थव्यवस्था पर विज्ञापनी सोशल मीडिया के जरिए कब्जा जमाना शुरू किया उसके दुष्परिणामों के बारे में आम आदमी को पता ही नहीं है। वह तो महज इसे विज्ञान का वरदान समझ कर इसका उपभोक्ता बनना ही ठीक समझा है। विज्ञापनों ने इसे और भी अधिक बाजारू बना दिया है। आम आदमी तो इस बाजार का सबसे बेहतर उपभोक्ता साबित करने के लिए इसके कसीदे कढ़ने में ही लगा हुआ।

मीडिया ने टीवी के माध्यम से समाज पर कई स्तरों पर असर डाला। लेकिन इसका नकारात्मक असर समाज की उत्सवधर्मिता और सहज जीवनधर्मिता को कई स्तरों पर प्रभावित कर रहा है। टीवी ने अपने विज्ञापनी संस्कृति के बल पर आम आदमी को अपने आगोश में ले लिया है। केबिल और डीटीएच सेवा ने गाँवों तक जिस सहजता से टीवी स्क्रीन पर कई बड़े चर्चित चैनलों को उपलब्ध करा दिया है उससे आम आदमी ने पश्चिमी संस्कृति और विज्ञापन के भौंडेपन में स्वयं को उलझा लिया है। मनोरंजन, खेल, संगीत, फिल्म, सीरियल, खोज, योग, धर्म, अध्यात्म, राजनीति की हर पल की धड़कन, विज्ञान के आविष्कार और अन्य अनेक क्षेत्रों की जानकारी केबिल और डीटीएच सेवा के माध्यम से टीवी के जरिए आज सहज रूप में प्रत्येक घर में उपलब्ध है। हर पल की खबर, हर दिन के खेल, संगीत और खेती-किसानी जैसी अनेक जानकारियाँ टीवी के माध्यम से आमजन को सुलभ हो गई हैं।

कहा तो यह भी जाता है कि आम आदमी सोशल मीडिया का उपयोग भी बड़े पैमाने पर करके खुद को संतुष्ट पा रहा है। परंतु हकीकत महज इतना ही नहीं है। कहने को तो रेलवे टिकटिंग, लाइफ इंश्योरेंस, ई-कॉमर्स, ई-टिकटिंग और ई-गवर्नेंस जैसी सुलभता सोशल मीडिया का उपहार है, लेकिन दूसरी तरफ अश्लीलता, हिंसा, ठगी, क्रूरता और भ्रष्टाचार के नए चेहरे भी आए। इसने नई पीढ़ी को बहुत ही संकुचित और स्वार्थी बना दिया है।

मीडिया के सकारात्मक पक्ष की बात करें तो पाते हैं कि सेहत, शिक्षा, रोजगार, बाजार, व्यापार और खेती-किसानी जैसे कार्यो में भी मीडिया की पहुँच गहरी हो गई है। बेहतर सेहत के देशी-विदेशी नुस्खे, घातक बीमारियों के सहज इलाज और गुमशुदा की खोज, वर-वधू खोजने से लेकर भविष्यफल और वास्तु शास्त्र की जानकारी सोशल मीडिया के जरिए सुलभता से आज हासिल है वैसा कभी नहीं हुआ।

यदि हम जीवन, परिवार और समाज की बेहतरी के लिए सोशल मीडिया का उपयोग करें तो अनेक लाभ घर बैठे भी हो सकते हैं। कृषि, बागवानी, उद्योग-धंधे, व्यापार, बेहतर शिक्षा, बेहतर सेहत, सुगम यात्रा, सेक्स, कानून की जानकारी, अनेक समस्याओं के निदान, आँधी-तूफान, बाढ़, बारिश, अकाल और पूरी दुनिया के एक-एक कण और पल की स्थिति की जानकारी आज सोशल मीडिया के जरिए उपलब्ध कराया जा चुका है। पुस्तकों का स्थान धीरे-धीरे वेबसाइट्स ने ले लिया है। अनेक एप्स मुफ्त में नेट पर उपलब्ध हैं। इन्हें डाउनलोड करके इनका बेहतर इस्तेमाल किया जा सकता है।

सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र पर प्रभाव

हम देखते हैं कि सोशल मीडिया ने नई पीढ़ी को हर स्तर पर प्रभावित किया है। दिन ही नहीं रात भी सोशल मीडिया के नाम हो गई है। भारत के गाँव और अफ्रीका देशों के किसी गाँव को जोड़ने में एक मिनट भी नहीं लगता। अपने गाँव की मौलिकता, नूतनता और उत्तमता इससे प्रभावित हो रही है। भारतीय संस्कृति, शिक्षा, स्वास्थ्य, भाषा, विज्ञान और अध्यात्म सभी कुछ विदेशी प्रभाव के कारण विकृत होते जा रहे हैं। इस तरह के मिलावटी जीवन शैली बनती जा रही है जो न तो भारतीय रह पा रही है और न तो पूर्णत: विदेशी ही। मैकडोनल संस्कृति के खुलापन ने सोशल मीडिया के जरिए नई पीढ़ी को एक 'वस्तु' मे तब्दील कर दिया है। नई पीढ़ी इसे 'मॉडर्न' विकास के रूप में एक दीवाने के रूप में स्वीकारती जा रही है। इससे भारतीयता का उच्चतम भाव कहीं लुप्त हो गया है।

बात केवल इतनी ही नहीं है। बड़ी से लेकर छोटी-छोटी बातें और विषय भी सोशल मीडिया के हिस्से हैं। दोस्ती का नया अंदाज सोशल मीडिया ने विकसित किया है। नई पीढ़ी अपना ज्यादातर वक्त अपने दोस्तों के संग बिताने में अधिक मशगूल दिखाई पड़ती है। इससे उसकी शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक शक्ति, क्षमता और सहजता पर बहुत बुरा असर पड़ रहा है।

सोशल मीडिया का नकारात्मक असर कई स्तरों पर हमें प्रभावित कर रहा है। रात-दिन नेट पर लगे रहने के कारण आँख, मस्तिष्क और अन्य अंगों पर बुरा असर पड़ रहा है। अनजान लोगों से रिश्ता बनाने के कई दुष्परिणाम सामने आ रहे

हैं। सोशल मीडिया से जुड़ने के कारण युवाओं में कई तरह के मिथ पैदा हो रहे हैं। इससे अभिभावकों के मन में उनके प्रति कई तरह की शंकाएं पैदा हो रही हैं।

अश्लीलता, खुला सेक्स, खुली दोस्ती और अनजानी दोस्ती का बुरा असर, सोशल मीडिया के माध्यम से युवाओं के मन और शरीर पर देखा जा रहा है। इस पर गौर करने की जरूरत है।

नई जानकारियों के नाम पर निजी जानकारियों और फोटो, वीडियो मुफ्त में हासिल करके युवा कई तरह की समस्याओं का शिकार बन रहा है। इस पर भी ध्यान देने की जरूरत है। सोशल मीडिया के अधिक इस्तेमाल के कारण सोशल एंग्जाइटी जैसी समस्या से युवा ग्रस्त हो रहा है।

दूसरी तरफ लड़कियों के शारीरिक और मानसिक क्षमता पर बुरा असर सोशल मीडिया के अधिक इस्तेमाल के कारण देखा जा रहा है। इस ओर ध्यान देना जरूरी है।

धन, समय, सहजता, चिंतन और चिंता की समस्या सोशल मीडिया ने कृत्रिम ढंग से पैदा की है। अभिभावक के लिए यह नई समस्या है।

आतंकवाद, सांप्रदायिकता, नफरत, हिंसा, नई बीमारियों के चपेट में आने का डर, मांसाहार, शराबखोरी, धूम्रपान, गंदी लत और अन्य अनेक समस्याएँ सोशल मीडिया के कारण तेजी के साथ बढ़ी हैं।

यदि सोशल मीडिया के नकारात्मक पक्ष को हम नजरअंदाज करते रहे तो इसके दूरगामी नकारात्मक असर से हम बच नहीं सकते। इसलिए सोशल मीडिया के अच्छे-बुरे इस्तेमाल पर जरूर गौर करना चाहिए, वरना इससे जीवन का बड़ा हिस्सा सोशल मीडिया के नाम होने का खतरा मंडराता रहेगा और ज़िंदग़ी जीने का मायने ही कहीं सोशल मीडिया के नाम न हो जाए। मानव मूल्यों के खत्म होने और इंसान का वस्तु या यंत्र के रूप में तब्दील होने का खतरा आसन्न दिखाई दे रहा है। एक संतुलित जीवन, परिवार, समाज, संस्कृति और देश के लिए सोशल मीडिया के दोनों पक्षों पर हमें खुले मन से विचार करना चाहिए। यदि कानून बनाना पड़े तो भी, कानून बनाकर गिरते जीवन मूल्यों को रोकने की कोशिश भी करनी होगी।

हिंदी ई-पत्रकारिता

डॉ. स्मिता मिश्र

...हिन्दी ब्लॉग एक सशक्त माध्यम के रूप में हिन्दी ई-पत्रकारिता के माध्यम बन कर आये। अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यमों पर उपलब्ध और निरंतर रची जा रही विधाओं के दस्तावेजीकरण का ऐसा प्रयास है जो व्यक्तिगत होते हुए भी सामाजिक हैं और सामाजिक होते हुए भी एकल है। राष्ट्रमंडल खेलों के दौरान दिल्ली विश्वविद्यालय ने खेल ब्लॉग बनाया और स्वयं रिपोर्टिंग करके मल्टी मीडिया समाचार अपलोड करते रहे। यह ब्लॉग खेलों के दौरान इतना लोकप्रिय रहा कि तमाम अन्य देशों के पत्रकार इसे 'ऑफिशियल ब्लॉग' मानने लगे। इसी प्रकार शायरी, यात्रा-पर्यटन, कुकिंग, इलेक्ट्रॉनिक-गज़ट, कानून शिक्षा, स्वास्थ्य आदि तमाम विषयों पर हिन्दी के ब्लॉग ई-पत्रकारिता की संकल्पना को सशक्त कर रहे हैं।...

पिछले एक दशक में सूचना क्रांति ने कितना कुछ बदल दिया। पहले तकनीक फिर हमारी सोच। भारत में दो दशक पहले यह सोच पाना मुश्किल था कि पत्रकारिता का कोई ऐसा माध्यम भी हो सकता है जो अखबार, रेडियो, टीवी पर हावी होकर सर्वाधिक शक्तिशाली हो जाएगा। किन्तु दो दशकों में ही वर्चुअल यथार्थ न केवल वास्तविक यथार्थ के बरक्स आ खड़ा हुआ है बल्कि उसे डिक्टेट भी कर रहा है। आज व्यक्ति हो या संस्थान अपनी वास्तविक उपस्थिति से ज्यादा वर्चुअल उपस्थिति दिखाए जाने के लिए तत्पर है।

भारत में हिंदी पत्रकारिता की प्रिंट से ऑनलाइन होने की एक लम्बी यात्रा है। लगभग दो सदियों की। 1780 में भारत का पहला हिन्दी गज़ट प्रकाशित हुआ और 1826 में हिन्दी का पहला समाचार पत्र 'उदन्त मार्तण्ड'। दोनों कलकत्ता से प्रकाशित हुए। पत्रकारिता समय और उपलब्ध तकनीक के आधार पर परिवर्तित होती गयी। मुद्रित माध्यम से रेडियो और टेलीविजन माध्यम की पत्रकारिता आई। अब ये माध्यम भी पुराने हो गए, क्योंकि न्यू मीडिया तकनीक से ई-पत्रकारिता आई। 15 अगस्त, 1995 को विदेश संचार निगम लिमिटेड ने भारत में इन्टरनेट सेवा प्रारंभ की। 1995 में ही भारत का प्रथम ई-समाचार पत्र 'दी हिन्दू' शुरू हुआ।

विश्व में इन्टरनेट की यात्रा साठ के दशक में अमेरिका से प्रारंभ होती है, जहाँ इन्टरनेट सर्वप्रथम रक्षा मामलों के लिए प्रयुक्त हुआ। 1989 में टिम बर्नर ली ने पहले वर्ल्ड वाइड वेब और हाइपर टेक्स्ट मार्कअप लैंग्वेज का आविष्कार किया। इससे इन्टरनेट के द्वारा नई संभावनाओं का क्षितिज खुल गया। इन्टरनेट आधारित सामग्री के लिए कम्प्यूटर की यह भाषा एक बड़ा वरदान सिद्ध हुई, जिसके चलते दुनिया का प्रथम ई-समाचार पत्र 1992 में 'शिकागो ट्रिब्यून' नाम से निकला। जैसा कि पूर्व में उद्धृत किया जा चुका है कि भारत का प्रथम ई-समाचार पत्र 'दी हिन्दू' था जो कि 1995 में निकला। 1995 में ही अमेरिका के सर्वर की मदद से indiaworld.com वेब पोर्टल प्रारंभ हुआ। इसके पश्चात सभी प्रमुख समाचार पत्रों ने अपने ई-संस्करण शुरू किये। 1996 में 'टाइम्स ऑफ इंडिया' और 'द हिन्दुस्तान

सम्पर्क: आर-38, वाणी विहार, उत्तम विहार, नई दिल्ली-110059,
मो. 9810671016, ई-मेल: smita.sportskreeda@gmail.com

टाइम्स', 1997 में 'जागरण डॉट काम', 1998 में 'अमर उजाला डॉट काम', 'भास्कर डॉट कॉम', 1999 में 'वेब दुनिया डॉट कॉम' आदि।

सूचना की इस 'त्वरित संचार क्रांति' में हिन्दी अनुपस्थित नहीं रही। शुरुआत में इन्टरनेट हिन्दी को रोमन लिपि में लिखा जाता था और रोमन में ही हिन्दी सामग्री डाली जा रही थी। देवनागरी लिपि में हिन्दी सामग्री डालने में तकनीकी दिक्कतें थीं, जिसे कुछ हद तक सुषा और कृतिदेव फॉण्ट ने दूर किया। हिन्दी के पहले वेब पोर्टल 'वेब दुनिया' ने अपने फॉण्ट बनाये, फिर अलग-अलग समाचार साईट अपने-अपने फॉण्ट बनाने लगी। हिन्दी फॉण्ट और की-बोर्ड की समस्या के कारण पहले बहुत कम लोग इससे जुड़े। पर गूगल ट्रांसलिटरेशन के आ जाने से यूनिकोड फॉण्ट ने हिन्दी एवं दूसरे भाषाई ब्लॉगरों के लिए न्यू-मीडिया का रास्ता खोल दिया। पहले इन्टरनेट की हिन्दी सामग्री का उपयोग करने के लिए बहुत जुगाड़ करने पड़ते थे। इसलिए इन्टरनेट पर हिन्दी का प्रयोग जोर नहीं पकड़ पा रहा था। इन दिक्कतों को देखते हुए यूनिकोड को समाधान के रूप में लाया गया। यूनिकोड के आगमन से हिन्दी की जिस नई धारा का जन्म हुआ उसने सभी अपने सभी भाषाई प्रतिबद्धताओं को तोड़ डाला है। अभी तक लोग कम्प्यूटर और अंग्रेजी का ही संबंध जोड़ते थे किन्तु यूनिकोड (यूनिवर्सल कोडिंग) फॉण्ट के द्वारा हिन्दी सहित अन्य भारतीय भाषाएं भी कम्प्यूटर पर अपनी सहज उपस्थिति दर्ज कराने लगीं। हिन्दी ई-पत्रकारिता, हिन्दी ब्लॉगिंग एवं वेबसाइट को बहुत बल मिला। आम व्यक्ति के लिए अपनी भाषा में टाइप कर इंटरनेट पर डाला 'बायें हाथ का खेल' हो गया। यूजर फ्रेंडली तकनीक का साथ मिल जाने से हर आमों-खास हिन्दी में ब्लोगिंग या सोशल मीडिया पर पोस्टिंग हिन्दी में करने लगा।

न्यू मीडिया नए संचार अवसरों का प्लेटफॉर्म बनकर आया जिसके कारण पूरा परिदृश्य बदल गया है। पत्रकारिता का तो जैसे मिजाज ही बदल गया। पत्रकारिता के पारस्परिक स्वरूप में भारी बदलाव आ गया। आज जिस व्यक्ति के पास प्रौद्योगिकी है और साथ ही उसे उस तकनीक की ताकत का अंदाजा है, वह व्यक्ति इतना प्रभावशाली है कि स्वयं ही मीडिया का कोई उद्यम शुरू कर अनगिनत लोगों पर अपनी पहुँच बना सकता है।

वेब पर आधारित इस नई प्रौद्योगिकी के कारण 'ई-पत्रकारिता' या वेब-पत्रकारिता शब्द अस्तित्व में आए। ई-पत्रकारिता शब्द सूचना क्रांति द्वारा उपजी एक नए माध्यम यानी न्यू मीडिया द्वारा की जाने वाली पत्रकारिता के लिए गढ़ा गया। किन्तु 'न्यू मीडिया' ने एक माध्यम भर नहीं बदला बल्कि इस माध्यम ने मीडिया का एक नया रूप गढ़ दिया। इस नये माध्यम में नवीनता तो थी ही, साथ ही अब तक के तमाम मीडया माध्यमों की विशेषताओं को भी अपने में समाहित कर लिया। प्रिंट मीडिया का टेक्स्ट, रेडियो की श्रव्यता और टेलीविजन की दृश्य-श्रव्यता सभी चारित्रिक गुणों को अपने में समावेश कर लिया। इसी के कारण इसे 'मल्टी मीडिया पत्रकारिता' भी कहा जाने लगा। नई सूचना तकनीक पर आधारित इस पत्रकारिता के जरिये सूचनाओं को त्वरित गति से विश्वव्यापी बनाया जा सकता है। ऐसा संभव हुआ लाइट वेग कैमरा, मोबाइल फोन, डिजिटल कैमरा, लैटपटॉप और ऑडियो-फीड से। आज पत्रकार मोबाइल से वीडियो, ऑडियो, फोटो या टेक्स्ट के रूप में या सभी रूपों में समाचार तुरंत वेबसाइट या सोशल मीडिया पर अपलोड कर देता है। न्यू मीडिया इतना त्वरित माध्यम है कि देश काल की सीमाओं से परे किसी भी सूचना को तत्काल उपलब्ध करा देता है। टेक्स्ट, ऑडियो और वीडियो सभी सूचनाओं को एक वेब पृष्ठ पर उपलब्ध करा देता है।

यह माध्यम पारस्परिक जन माध्यमों की तरह इकतरफा संचार नहीं करता, बल्कि यह इन्टर-एक्टिव मीडिया है। पहले प्रापक (पाठक, श्रोता, दर्शक) की भागीदारी पाठकों के पत्र या 'फोन-इन' तक सीमित होती है। आज वह स्वयं समाचार निर्मिति में भूमिका निभाने लगा है। अभिव्यक्ति के नये साधन सामने आने से गूगल, फेसबुक, यू-ट्यूब के द्वारा आज हर व्यक्ति पत्रकार की भूमिका में आ खड़ा हुआ है। सोशल मीडिया के द्वारा अपना और दूसरों का निजी जीवन सार्वजनिक किया जा रहा है। मुख्य धारा का मीडिया सोशल मीडिया को समाचार-स्रोत के रूप में प्रयोग करने लगा है। न्यू मीडिया की विविधता ने प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक दोनों माध्यमों के समक्ष बड़ी चुनौती रख दी है और वह चुनौती है सबसे तेज होने की। जिन टीवी चैनलों ने अपनी पंचलाइन ही रखी थी—सबसे तेज चैनल, वे पंचलाइन अब बेमानी हो गयी हैं।

आज प्रत्येक समाचार पत्र और टीवी चैनल की समाचार वेबसाइट है। रेडियो स्टेशन मल्टीमीडिया एप्रोच कर रहे है। स्टूडियो में कैमरा लगवाए जा रहे हैं ताकि उसे भी न्यूज पैकेज की तरह वितरित किया जा सके। प्रत्येक आरजे के ट्विटर हैंडल हैं, सोशल मीडिया अकाउंट है जिसके द्वारा श्रोता भर ही

नहीं बल्कि दर्शकों और यूजर से भी सम्पर्क किया जा सके। फिर भी यह तो तय है कि रेडियो अभी भी प्रधानत: स्पोकन वर्ड का माध्यम ही है। रेडियो पर प्रसारित होने वाले प्रधानमंत्री के चर्चित मासिक कार्यक्रम 'मन की बात' इसका जीवंत उदाहरण है। यह कार्यक्रम रेडियो के साथ-साथ वेबसाइट, टेलीविजन पर एक साथ लाइव रहता है।

ई-पत्रकारिता में से ही सिटिजन जर्नलिस्ट की अवधारणा भी अस्तित्व में आई। ब्लॉग, वेबसाइट, सोशल मीडिया आदि ने प्रत्येक व्यक्ति को पत्रकार के रूप में खड़ा कर दिया है। वेब की दुनिया में आज पाठक और संपादक दोनों में फर्क कम रह गया है। न्यू मीडिया ने ब्लॉगरों और सिटिजन जर्नलिस्ट की ऐसी पीढ़ी तैयार कर दी है जोकि निजी अभिव्यक्ति ही नहीं कर रहे बल्कि व्यवस्था में हस्तक्षेप का भी कार्य कर रहे हैं। सिटिजन जर्नलिस्ट वह पत्रकार है जो स्वेच्छा से कोई समाचार बनाता है और वितरित करता है, जिसका उसे कोई मानदेय नहीं मिलता है। 24 × 7 टीवी चैनल नागरिक पत्रकारों के द्वारा शेयर किये गए समाचारों और वीडियो से ही पूरा समाचार बनाकर प्रस्तुत कर रहे हैं।

अब ब्रेकिंग न्यूज सबसे पहले सोशल मीडिया पर ब्रेक होती है, फिर चाहे, वह राजनीतिक हेरफेर का मामला हो या पेड न्यूज का। नीरा राडिया, विकीलीक्स इसके बेहतर उदाहरण हैं। फिल्मी स्कूप या सूचनाओं के लिए आज पत्रकार भिन्न-भिन्न फिल्म स्टार के सोशल मीडिया के फोलोवर्स बन जाते हैं, जहाँ ये सूचनायें उन्हें मिल जाती हैं। फिल्म स्टार न्यूज में बने रहने के लिए स्वयं ही अपनी निजी सूचनायें साझा कर देते हैं, जबकि पहले पत्रकारों को उनके पीछे-पीछे भागना होता था या निजी जीवन में तॉक-झाँक करने के लिए बड़े जुगाड़ करने पड़ते थे। फिल्म ट्रेड-विश्लेषक तरन आदर्श तुरंत ही किसी भी नई फिल्म के रिलीज होने के फिल्म विश्लेषण, उसकी कमाई का आंकलन कर ट्विट कर देते हैं। अमिताभ बच्चन, आमिर खान, ऋषि कपूर, करन जौहर, कपिल शर्मा अपने ट्विट से ही फिल्मी पत्रकारों को खूब खबर का मसाला दे देते हैं।

अब पत्रकारों को विपक्षी नेताओं के बयान के लिए उनके घरों में भागम-भाग नहीं करनी पड़ती बल्कि सोशल मीडिया पर ही बयानबाजी मिल जाती है। अपराध-पत्रकारिता में भी आरोपी और विक्टिम के सोशल मीडिया स्टेटस से बहुत सूचनाएँ मिल जाती हैं। विकिलीक्स आज सबसे बड़ी खोजी पत्रकारिता का उदाहरण है। पहले समाचार-पत्र में जो भी लेख छपता था उसकी अनिवार्य शर्त होती थी कि वह अप्रकाशित होना चाहिए, किन्तु अब सोशल मीडिया पोस्ट को सम्पादकीय पृष्ठ पर जगह मिलती है, उनके अलग से कॉलम भी होते हैं।

इसी तरह खेल पत्रकारिता में खिलाड़ी ट्विट और फेसबुक के ज़रिये अपनी फोटो और स्टेटमेंट को पोस्ट करते रहते हैं। सानिया मिर्जा, लिएंडर पेस, विराट कोहली, शिखर धवन, योगेश्वर दत्त, सुशील कुमार, बॉक्सर विजेंदर सिंह के सोशल मीडिया पर पोस्ट की गयी फोटो और स्टेटस काफी समाचार दे देते हैं। प्रमुख समाचार पत्रों के खेल पृष्ठों पर तो खेल कवरेज होती रही है, खेल पर आधारित स्पोर्ट्स स्टार, क्रिकेट स्टार, क्रीड़ा जैसे खेल पत्र-पत्रिकाओं के लिए न्यू मीडिया प्रमुख स्रोत हैं। इधर स्पोर्ट्स वेबसाइट circinfo.com, sportskeeda.com, sportsgranny.com जैसी अंग्रेजी वेबसाइट हों या फिर हिन्दी इंग्लिश द्विभाषिक जैसी वेबसाइट भी खेल पत्रकारिता में महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं।

हिन्दी ब्लॉग एक सशक्त माध्यम के रूप में हिन्दी ई-पत्रकारिता के माध्यम बन कर आये। अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यमों पर उपलब्ध और निरंतर रची जा रही विधाओं के दस्तावेजीकरण का ऐसा प्रयास है जो व्यक्तिगत होते हुए भी सामाजिक हैं और सामाजिक होते हुए भी एकल है। राष्ट्रमंडल खेलों के दौरान दिल्ली विश्वविद्यालय के खालसा कॉलेज के वेब पत्रकारिता के विद्यार्थियों ने खेल ब्लॉग बनाया और स्वयं रिपोर्टिंग करके मल्टी मीडिया समाचार अपलाड करते रहे। यह ब्लॉग खेलों के दौरान इतना लोकप्रिय हुए कि तमाम अन्य देशों के पत्रकार, इसे 'ऑफिशियल ब्लॉग' मानने लगे। इसी प्रकार शायरी, यात्रा-पर्यटन, कुकिंग, इलेक्ट्रॉनिक-गज़ट, कानून शिक्षा, स्वास्थ्य आदि तमाम विषयों पर हिन्दी के ब्लॉग ई-पत्रकारिता की संकल्पना को सशक्त कर रहे हैं।

यह तय है कि ई-पत्रकारिता से पत्रकारिता का लोकतांत्रिकरण हुआ है। आज आम आदमी से जुड़ने के लिए सभी तत्पर हैं,

फिर चाहे वे बड़े-बड़े कॉरपोरेट घरानों हों या फिल्म स्टार या फिर बड़े नेता। जनसंपर्क का सर्वाधिक सशक्त माध्यम बनकर उभरा है यह न्यू मीडिया। भारत सरकार को प्रेस ब्रीफिंग की मजबूरी नहीं रह गयी हैं वह ई-गवर्नेंस के ज़रिये महत्त्वपूर्ण आधिकारिक सूचनाएँ वेबसाईट या सोशल मीडिया पर डाल देती है। अभी तक हमारा मीडिया कला एवं साहित्य से परहेज करता रहा है और छोटे से छोटे नेता का बयान अखबार से पहले पृष्ठ पर आ जाता है। किन्तु आज कोई भी साहित्यिक समाचार अखबार या टीवी का मोहताज नहीं, ब्लॉगर तुरंत अपने ब्लॉग पर डाल कर इसे सोशल मीडिया में साझा कर देता है। साहित्य की तमाम ई-पत्रिकाएं निकल रही हैं जैसे अनुभूति.कॉम, कविता कोष हिन्द युग्म आदि। चिट्ठा-जगत के वासी, फुरसतिया, रवि रतलामी, मेरा पन्ना, रोजनामचा, जानकी पुल आदि हिन्दी के चर्चित ब्लॉग हैं। यही नहीं हिन्दी के साहित्यकार स्वयं फेसबुक पर उपस्थित हो रहे हैं और अपनी नई रचनाओं, पुरस्कारों से अपने पाठकों को परिचित करा रहे हैं। इसी प्रकार साहित्य और भाषा विमर्श के वैश्विक समूह गूगल, याहू पर उपस्थित हैं जैसे हिन्दी विमर्श, हिन्दी शिक्षक बंधु, हिन्दी अनुवादक, ई-कविता आदि।

चुनौतियाँ — सूचना एकत्रीकरण, सूचना निर्मित एवं सूचना वितरण में भारी अंतर होने के बावजूद प्रोफेशनल ई-पत्रकारिता भी पारम्परिक पत्रकारिता की भाँति न्यूज सेन्स और एथिक्स पर जोर देती है और इसके उल्लंघन को बेहतर पत्रकारिता नहीं माना जाता है। गूगल, विकीपीडिया, यू-ट्यूब और फेसबुक के कारण जहाँ आज की पत्रकारिता आसान हुई है वहीं नक्कालों की तादाद भी बढ़ी है। कंट्रोल 'सी' और कंट्रोल 'वी' की कट एंड पेस्ट की पत्रकारिता जोर मार रही है। गूगल में सामग्री खंगाल कर उसे मौलिक लेखन के रूप में रूपांतरित करने में बड़े-बड़े पत्रकार, साहित्य की नई अवधारणाएँ बताते साहित्यकार, आलोचक भी शामिल है।

दूसरा एक बड़ा भारी संकट लोकतंत्र के साथ न्यू मीडिया में आया — अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का दुरुपयोग। समस्या यह है कि ब्लॉग हो या सोशल मीडिया में अभिव्यक्ति करने वाले विद्वान, अपने निजी विचारों को रिपोर्ट अथवा सृजनात्मक भाषा में तब्दील नहीं करते। परिणामस्वरूप अभद्र भाषा, अश्लीलता या इकतरफा मत बढ़ता जा रहा है। कोई भी कुछ भी सामाजिक जिम्मेदारी को अनुभव किए बिना लिख देता है। पारस्परिक द्वेष को गाली-गलौज के स्तर पर आकर सोशल मीडिया में साझा कर रहे हैं। यह स्थिति अत्यंत चिंताजनक है। इसलिए आत्मअंकुश बहुत आवश्यक है। ब्लैकमेलिंग एवं अभ्रद भाषा के प्रयोग को संयमित किया जाना जरूरी है।

भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी कानून 2000 — इसी निरंकुशता के चलते नई स्थितियों के नियमन के लिए सन् 2000 में भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी कानून को प्रभाव में लाया गया। फिर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के दुरुपयोग और नक्कालों से बचाने के लिए इसमें सन् 2008 में धारा 66-ए जोड़ी गयी। इसके अंतर्गत कम्प्यूटर, मोबाइल आदि के जरिये भेजे गए या फॉरवर्ड किये गये अपमानजनक संदेशों के आधार पर गिरफ्तारी संभव थी। पर इस धारा को श्रेया सिंघल द्वारा दायर की गयी याचिका पर मार्च 2015 में सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 66-ए को असंवैधानिक घोषित कर दिया। बौद्धिक संपदा की सुरक्षा हेतु भी कॉपीराइट, पेटेंट, ट्रेडमार्क आदि बौद्धिक संपदा अधिकार कानूनों में भी न्यू मीडिया के कारण संशोधन किया गया।

कहा जा सकता है कि हिन्दी ई-पत्रकारिता की शुरुआत रोमन लिपि में थी या फिर पीडीएफ में हिन्दी सामग्री अपलोड करने से हुई थी। यूनिकोड आगमन के बाद हिन्दी में कंटेंट अपलोड होने लगा। सर्च इंजन, हाइपर लिंक आदि भिन्न-भिन्न प्रयोग होने लगे और अब न्यू मीडिया के अनुरूप ही कंटेंट और भाषा विकसित हो रही है। विश्व भर का सर्वाधिक युवा आबादी वाले देश भारत में पिछले महीने तक के भारतीय इंटरनेट और मोबाइल एसोसिएशन के आँकड़ों के अनुसार 450 मिलियन मोबाइल यूजर हो गए हैं। यह आँकड़ा थ्री-टीयर शहरों और गाँवों में बराबर बढ़ रहा है। जियो टेलिकॉम के कारण आई भारी प्रतिस्पर्धा के कारण इन्टरनेट डाटा पैकेज बहुत सस्ते हो रहे हैं। ऐसी स्थितियाँ निश्चित रूप से न्यू मीडिया और ई-पत्रकारिता के लिए माकूल हैं, क्योंकि युवा फटाफट सूचना और समाचार पाना चाहता है, चाहे फिर वेबसाइट से हो, व्हाट्स-एप पर हो या फिर फेसबुक पर। ऐसी स्थिति में यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि आने वाला समय भाषाई पत्रकारिता का ही है।

◆◆◆

हिन्दी बाल-साहित्य का स्वातंत्र्योत्तर विमर्श

दिविक रमेश

...शास्त्रीय और पहले के बाल-साहित्य के श्रेष्ठ हिस्से के प्रति बिना किसी पूर्वाग्रह के कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता के बाद भारतीय बाल-साहित्य में बच्चों के अनुकूल ऐसा साहित्य लिखा गया जो पुराने साहित्य की तरह उपदेशात्मक नहीं है। इसका मतलब यह नहीं कि हमें बच्चों को शास्त्रीय बाल-साहित्य की जानकारी से वंचित रखना चाहिए। बंगाली में, जोगिंद्रनाथ सरकार द्वारा 1891 में लिखित कहानियों की पुस्तक 'हाँसी और खेला' (हँसना और खेलना) ने पहली बार कक्ष-कक्षा-परंपरा को तोड़ा और यह बच्चों के लिए पूरी तरह मनोरंजनदायक बनी। संयोग से कुछ सीख भी लेना एक अतिरिक्त लाभ था।...

सम्पर्क: एल-1202, ग्रेड अजनारा हैरिटेज, सैक्टर-74, नोएडा-201301
मोबाइल: 9910177099, ई-मेल: divikramesh35@gmail.com

अपनी पुस्तक 'बालगीत साहित्य' में निरंकार देव सेवक ने लिखा है, ''स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बढ़ती हुई रुचि और पढ़ने की भूख का अनुमान करके एक साथ सैकड़ों नए लेखकों ने सभी विधाओं में लिख लिखकर बाल साहित्य का भण्डार भरना प्रारम्भ कर दिया। विराज एम.ए., गोकुल चन्द सन्त, नृसिंह शुक्ल, प्रशान्त, व्यथित हृदय, नरायन व्यास, विशम्भर सहाय प्रेमी, शारदा मिश्र, शिवमूर्ति वत्स, हरिकृष्ण देवसरे, मनहर चौहान ने अनेक पौराणिक, ऐतिहासिक और परीकथायें बच्चों के लिए लिखीं। वैज्ञानिक बाल कथायें रमेश वर्मा, रत्न प्रकाशशील, जयप्रकाश भारती आदि की बहुत पसन्द की गई।'' इस आकलन से बाल साहित्य के परिदृश्य से जुड़ा कोई भी चौंक सकता है, क्योंकि देवसरे को परी कथा आदि के विरोधी के रूप में जाना जाता है और इसके लिए उनके अपने अनेक आवेशपूर्ण वक्तव्य और घोषणाएँ भी जिम्मेदार है, जबकि जयप्रकाश भारती को मात्र पौराणिक, ऐतिहासिक और परी कथाओं वाली राह का लेखक मान कर प्रस्तुत किया जाता रहा है।

इधर-उधर टटोला तो पाया कि परी कथाओं को लेकर देवसरे जी के मत को शायद ठीक से नहीं समझा गया है। वे झूठे कल्पनालोक से बचने की बात तो करते हैं लेकिन समूची 'परीकथा' का विरोध नहीं करते। उन्हीं के शब्दों में, ''परी कथाएं सदियों से बच्चों का मन बहलाती रही हैं। नव-बाल-साहित्य की रचना के सिलसिले में एक आवश्यकता यह भी अनुभव की गयी कि बच्चों को झूठे कल्पना लोक से बचने के लिए जरूरी है कि परी कथाओं के कथ्य को नये आयाम दिए जाएं।'' वे आगे लिखते हैं, ''परी कथाओं के खजाने को अपने शब्दों में बार-बार लिखकर बाल-साहित्य रचना का दम भरने वाले लेखकों के लिए यह भी एक चुनौती थी। उन्होंने इसे समूची 'परी कथा' विरोध माना, जबकि वास्तव में परी कथा की विधा को स्वीकार करते हुए उसके कथ्य की माँग की गई थी।'' (नव बाल-साहित्य के दिशादर्शक, संचेतना, दिसम्बर, 1982, पृ. 215)। कुछ ऐसी ही बात उन्होंने इसी लेख में 'राजा' को

कथा का पात्र बनाने के संदर्भ में लिखी है। उन्हें समझने की विशिष्ट दावा करने वालों को गौर करना होगा कि परी, राजा, भूत, पौराणिक पात्र, पशु-पौधों आदि के प्रयोग से उन्हें दिक्कत नहीं थी बशर्ते कि रचनाकार उनसे जुड़ी कथ्यगत रूढ़ियों के तोड़ने में समर्थ हो।

जयप्रकाश भारती जी की भी उनके विरोधियों ने, बिना उनको ठीक से समझे, गलत-सलत छवि प्रस्तुत करने में भरपूर योगदान किया है। जयप्रकाश भारती की ही निम्न कविता-पंक्तियों पर ध्यान दिया जाए-

''राजा का पेट बड़ा था
रानी का भी पेट बड़ा था।
खूब वे खाते छक-छक-छक-छक
फिर सो जाते थक-थक-थक कर।
काम यही था बक-बक, बक-बक
नौकर से बस झक-झक, झक-झक''

क्या यह कविता पारम्परिक ढंग की राजा-रानी पर लिखी कविता है? क्या यहाँ वहीं सामंती मूल्यों वाला राजा है जिसके सामने जबान खोलना भी अपने को सूली पर चढ़ाने का न्योता देना है? यह प्रजातंत्र के मूल्यों को स्थापित करती हुए एक ऐसी कविता है जिसे पढ़कर ताली बजा-बजा कर मजा लिया जा सकता है। कल्पना पहले के साहित्य में भी होती थी और आज के साहित्य में भी उसके बिना काम नहीं चल सकता। अंतर यह है कि आज के बालक की कल्पना विश्वसनीय की बुनियाद पर खड़ी होनी चाहिए। अर्थात् वह 'ऐसा भी हो सकता है' अथवा 'ऐसा भी हुआ होगा' के दायरे में होनी चाहिए अन्यथा वह रद्दी की टोकरी में फेंक देगा। दूसरे शब्दों में आज का बाल-साहित्यकार ऐसी रचनाएं नहीं देना चाहता जो अंधविश्वास, सामंतीय परंपराओं, जादू-टोनों, अनहोनियों अथवा निष्क्रियता आदि मूल्यों की पोषक हों। आज की कहानियों में भूत, राजा, परी आदि हो सकते हैं लेकिन वे अपने पारम्परिक रूप से हटकर, ऊपर संकेतित पुरानेपन से अलग तरह के होते हैं। आज की कहानी की परी ज्ञान हो सकती है, संगीत परी हो सकती है। भूत औरों को बेवकूफ बना रहा शैतान या दुष्ट बच्चा हो सकता है जिसकी पोल अंततः खुलनी ही होती है। चाँद के अनुभव पर एक कविता है-बालस्वरूप राही की। यह कविता चाँद पर नहीं है बल्कि नई दृष्टि पर है। पर वैज्ञानिक समझ किस प्रकार रचना में पूरी तरह रचा-बसा पर पेश की जा सकती है कि वह एक कलात्मक अनुभव के आनन्द से लहलहा उठे, इसका नमूना है यह कविता। हमारे यहाँ विज्ञान और आधुनिकता का मात्र अलाप करते रहने वाले इससे बहुत कुछ सीख सकते हैं। कविता इस प्रकार हैं-

''चंदा मामा, कहो तुम्हारी शान पुरानी कहाँ गई,
कात रही थी बैठी चरखा, बुढ़िया नानी कहाँ गई?
सूरज से रोशनी चुराकर चाहे जितनी भी लाओ,
हमें तुम्हारी चाल पता है, अब मत हमको बहकाओ।
हैं उधार की चमक-दमक यह नकली शान निराली है
समझ गए हम चंदा मामा, रूप तुम्हारा जाली है।''

बाल-विज्ञान लेखन और राजा-रानी, परी कथाओं, लोक कथाओं, पुराणों या इतिहास पर आधारित रचनाओं के संदर्भ में जो विवादयुक्त टिप्पणियाँ होती हैं उनके पीछे न तो रचनाओं के आधार पर सुचिन्तित मंथन दिखता है और न ही खुला विचार। देवेंद्र मेवाड़ी के शब्दों में, ''विज्ञान लेखन करते समय बच्चों को मन के आँगन में बुलाना होगा और जैसे उनसे बातें करते-करते या उन्हें किस्से-कहानियाँ या गीतों की लय में विज्ञान की बातें बतानी होंगी।... विज्ञान की कोई जानकारी कथा-कहानी के रूप में दी जाएगी तो उसे बच्चे मन लगा कर पढ़ेंगे।'' ध्यान दिया जाए कि यहाँ जानकारी देने पर अधिक जोर है। कविता, कहानी आदि फॉर्म भर हैं। मेरी दृष्टि में बाल-साहित्य से तात्पर्य ऐसे साहित्य से है जो बालोपयोगी साहित्य से भिन्न रचनात्मक साहित्य होता है, अर्थात जो विषय निर्धारित करके शिक्षार्थ लिखा हुआ न होकर बालकों के बीच का अनुभव आधारित रचा गया बाल-साहित्य होता है। वह कविता, कहानी, नाटक आदि होता है न कि कविता, कहानी नाटक आदि के चौखटे अथवा शिल्प से भरी हुई। विषय प्रधान जानकारी, शिक्षाप्रद अथवा उपदेशपूर्ण सामग्री होता है। वह विषय नहीं बल्कि विषय के अनुभव की कलात्मक अभिव्यक्ति होता है। दूसरे शब्दों में कलात्मक अनुभव होता है। इसीलिए वह मौलिक भी होता है। मोबाइल भी कहानी का विषय बन सकता है लेकिन तब जब वह रचनाकार के किसी अनुभव विशेष का अंग बन जाए। कोरी जानकारी उपयोगी हो सकती है लेकिन रचना बनने के लिए उसे

'रचनात्मक शर्तों' से गुजरना होता है और 'रचनात्मक शर्तों' का आशय केवल कविता या कहानी के फॉर्म का उपयोग करना नहीं होता। कोई जब कहता है कि 'कम्प्यूटर जी लॉक कर दीजिए' तो वह कहने की अभिव्यक्ति की खूबसूरती है, अन्यथा लॉक तो आदमी ही करता है। आज का श्रेष्ठ बाल-साहित्यकार पहले की सोच के अनेक बाल-साहित्यकारों से इस दृष्टि से भी भिन्न है।

कुल मिलाकर कहा जाए तो हिन्दी का बाल-साहित्य लोरी, पालना गीतों, प्रभाती, दोहा, ग़ज़ल, पहेली, कविता, कहानी, उपन्यास, संस्मरण, जीवनी, नाटक आदि अनेक रूपों और विधाओं से सम्पन्न है। आज का बाल-साहित्य तो कितने ही सार्थक प्रयोगों से समृद्ध है। हिन्दी के बाल-साहित्य और उसमें भी कविता के क्षेत्र में उसकी महत्त्वपूर्ण उपस्थिति को रेखांकित करते हुए एक समय में (स्वातंत्रोत्तर बाल-साहित्य के संदर्भ में) प्रतिष्ठित बाल-साहित्यकार स्व. जयप्रकाश भारती ने उस समय को बाल-साहित्य का 'स्वर्णिम युग' कहा था जिसे बड़े पैमाने पर स्वीकार भी किया गया एक-आध उपेक्षा-योग्य मामूली कुंठित और पूर्वाग्राही प्रतिक्रिया के। तो भी सच यह भी है कि हिन्दी के बाल-साहित्य के सही मूल्यांकन और उसके सही रेखांकन का अभाव है। जानकारियां हैं, कुछ हद तक इतिहास और शोध-कार्य भी उपलब्ध होने लगे हैं, लेकिन अपने सही अर्थों में, समीक्षात्मक एवं आलोचनात्मक साहित्य की दृष्टि से वह फिलहाल अपने बचपने में ही है। फिलहाल, किसी सुदृढ़-सुचिन्तित सौंन्दर्यशास्त्र और सम्यक या संतुलित दृष्टि के अभाव में आज की तथाकथित उपलब्ध आलोचना प्रायः आलोचक की पसन्द या नापसन्द पर अधिक टिकी होती है। इस क्षेत्र में फिलहाल प्रकाश मनु और डॉ. शकुंतला कालरा का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

हिन्दी के बाल-साहित्य के प्रारम्भ को लेकर थोड़ा विवाद है। बाल-साहित्य की परंपरा को खोजते और सामने लाते हुए हिन्दी के सुप्रतिष्ठित बाल-साहित्यकार और चिंतक निरंकार देव सेवक, स्नेह अग्रवाल और जयप्रकाश भारती के अतिरिक्त उमेश चौहान, डॉ. दिग्विजय कुमार सहाय आदि ने इस ओर कुछ विचार किया है। इन विचारों के अनुसार हिन्दी का बाल-साहित्य 14वीं-15वीं शताब्दी के आसपास से उपस्थित माना गया है। अर्थात अमीर खुसरो, सूरदास, जगनिक द्वारा लिखित आल्हा खंड, राजस्थानी कवि जटमल (1623) की रचना 'गोरा बादल' आदि में बाल-साहित्य की उपस्थिति मानी गयी है। जहां तक बालक की पहली पुस्तक का प्रश्न है तो 'गोरा बादल' को माना गया है, जिसे एक मुकम्मल बाल काव्य के रूप में स्वीकार किया गया। मिश्र बंधुओं ने पुस्तक में खड़ी बोली का प्राधान्य माना है। यदि इस विवाद में न जाएँ तो हिन्दी बाल-साहित्य का वास्तविक प्रारम्भ आधुनिक काल से अर्थात बीसवीं सदी के थोड़े पीछे-आगे से तो मानना ही होगा। सच तो यह है कि भारत की प्रमुख भाषाओं मसलन असमी, बंगाली, मराठी, तमिल, कन्नड़, हिन्दी, मलयालम, उड़िया आदि के आधुनिक बाल-साहित्य के इतिहास पर नजर डालें तो हम पाएंगे कि (अपने वास्तविक अर्थों में) इसका प्रारम्भ 19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी के प्रारम्भ में हुआ था। कुछ अन्य भाषाओं में यह बाद में शुरू हुआ था। उदाहरण के लिए उत्तर-पूर्व की भाषा मणिपुरी में, मुद्रित रूप में बाल साहित्य की जरूरत 1940 के दशक से 1950 के दशक में महसूस होने लगी थी। 1947 के बाद बाल-साहित्य की अनेक पुस्तकों का प्रकाशन हुआ। प्रमुख भाषाओं के मामले में, बाल-साहित्य की शुरुआत के कारणों में से एक शिक्षा के लिए पाठ्यपुस्तकों की तैयारी की जरूरत था। ईसाई मिशनरी स्कूल स्थापित किए गए और उनके कारण नए प्रकार की शिक्षा प्रणाली ने नई शैली की कहानियाँ लिखने के लिए प्रेरित किया।

शास्त्रीय और पहले के बाल-साहित्य के श्रेष्ठ हिस्से के प्रति बिना किसी पूर्वाग्रह के कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता के बाद के भारतीय बाल-साहित्य में बच्चों के अनुकूल ऐसा साहित्य लिखा गया है जो पुराने साहित्य की तरह उपदेशात्मक नहीं है। इसका मतलब यह नहीं है कि हमें बच्चों को शास्त्रीय बाल-साहित्य की जानकारी से वंचित रखना चाहिए। बंगाली में, जोगिंद्रनाथ सरकार द्वारा 1891 में लिखित कहानियों की पुस्तक 'हाँसी और खेला' (हँसना और खेलना) ने पहली बार कक्ष-कक्षा-परंपरा तो तोड़ा और यह बच्चों के लिए पूरी तरह मनोरंजनदायक बनी। संयोग से कुछ सीख भी लेना एक अतिरिक्त लाभ था।

बाल-साहित्य के नाम पर एक अरसे तक 'बालक के लिए साहित्य' लिखा जाता रहा है यँ आज भी ऐसा होते देखा जा

सकता है) जबकि आज 'बालक का साहित्य' लिखा जा रहा है। पिछले वर्षों में यह समझ बहुत शिद्दत से आई है कि बालक के लिए नहीं बालक का बाल-साहित्य लिखा जाना चाहिए। इसका अर्थ है कि बाल-साहित्यकार को बालक बन कर साहित्य रचना होता है। जब हम बालक के लिखने का प्रयत्न करते हैं तो वह बालक पर प्राय: लादे जाने वाले बाल-साहित्य का अभ्यास होता है। आज के तैयार बालक के लिए प्राय: उपदेशात्मक और उबाऊ होता है। आज का बाल-साहित्यकार सिखाने की पुरानी शैली के स्थान पर साथ-साथ सीखने की शैली में अपने को अभिव्यक्त करता है। वह अनुभव और ज्ञान के माध्यम से अर्जित अपनी समझ का बालकों को सहज भागीदार बनाता है। आज का बाल-साहित्यकार कमोबेश बालक का दोस्त बन कर उसके सुख-दुख का, उसकी उत्सुकताओं और कठिनाइयों का यानि उसके सबकुछ का साझीदार होता है। अंग्रेजी के बाल-साहित्य समीक्षक निकोलस टकर का मत भी इस संदर्भ में ध्यान देने योग्य है, ''विश्व के नए बाल-साहित्य के लिए यह जरूरी नहीं है कि वह एकदम साफ-सुथरा हो, उसकी कहानियां एकदम आदर्शपरक हों और उनका अंत सदा सुखदायी ही हो। यह तो वास्तव में अपने समयकाल से जुड़ा प्रश्न है। यदि बाल साहित्य में पाठक यह समझ लेता है कि इसके पीछे एक सुदृढ़ आग्रह है कि जीवन की कठिनाइयों से जूझने और जीवन जीने का वही फार्मूला अपनाओ जो हम बता रहे हैं तो वह तत्काल उसे छोड़ देता है।'' (भारतीय बाल-साहित्य, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, पृ. 15)। वस्तुत: बाल-साहित्य सृजन बहुत ही चुनौती का काम होता है। नामवर सिंह ने ठीक ही लिखा है, ''उनके लिए तो साहित्य वह है जो उन्हें हिलाये, डुलाये और दुलराये भी। यानी वे खुशी से झूम उठें।

हमें यह भी समझना होगा (हालांकि समझा जा रहा है) कि विविधताओं से भरे भारत के संदर्भ में यह बालक बनना क्या है? यहाँ आर्थिक, सामाजिक, भौगोलिक, आयु आदि कारणों से बालक का भी विधिवता भरा स्वरूप है। महानगरी बालक का स्वरूप वह नहीं है जो कस्बाई या ग्रामीण या जंगलों में रहने वाले बच्चे का है। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न बच्चे की मानसिकता वह नहीं है जो गरीबी में पल रहे बच्चे की है। आज कितने ही बच्चों के सामने इंटरनेट, फिल्म तथा अन्य मीडिया की सुविधा के चलते एक नई दुनिया और उसके नए भाषा-रूप का भी विस्फोट हो रहा है और वे उससे प्रभावित हो रहे हैं। अत: आज का बाल-साहित्यकार बालक के बारे में परंपरा भर से काम चलाते हुए, अर्थात उसके विकास की उपेक्षा करते हुए, सामान्य कुछ लिखकर अपने कार्य की इति नहीं कर सकता। सामान्य रूप और दृष्टि हो सकती है, अनुभव, उसका नया बोध और उससे जन्मी नई दृष्टि नहीं। यही कारण है कि पिछले कुछ वर्षों में हिन्दी के बाल-साहित्य में जहाँ भाव और भावबोध की दृष्टि से बालक के नए-नए रूप उभर कर आए हैं वहीं रूप तथा भाषा-शैली में भी नए-नए अंदाज और प्रयोग सम्मिलित हुए हैं भले ही कुछ पहले की सोच में गिरफ्त जन उसे स्वीकार करने में कठिनाई झेल रहे हों। जब हम बालक की बात करते हैं तो हमें नहीं भूलना चाहिए कि हमारे देश में अमीरी-गरीबी, जाति-पांत, भौगोलिक तथा अन्य स्थितियों आदि के कारा बालक बँटा हुआ है। आज के कुछ साहित्यकारों का उस ओर ध्यान है, लेकिन कल लिखे जाने वाले साहित्य में और ध्यान दिया जाना अपेक्षित है। अपने-अपने अनुभव के दायरों में बच्चों के बालमन को समझते हुए रचना होगा। ग्रामीण परिवेश के बच्चों के साथ-साथ आदिवासी बच्चों तक ठीक से पहुँचना होगा अभी यह चुनौती है। नए ढंग से, विशेष वर्ग के बालक के मन की एक कविता 'छाता' है, जो चकमक में प्रकाशित हुई थी-

छाता

''सड़क!
हो जाओ न थोड़ी ऊँची
बस मेरे नन्हें कद से थोड़ी ऊँची
मैं आराम से निकल जाऊँगा तब
तुम्हारे नीचे-नीचे
घर से स्कूल तक।
न मुझे धूप लगेगी, न बारिश।
हमारे घर में
नहीं है न छाता, सड़क!''

एक और कविता देखिए-

गुल्लु का कम्प्यूटर (डॉ. प्रदीप शुक्ल)

''गुल्लु का कम्प्यूटर आया
पूरा गाँव देख मुस्काया

दादी के चेहरे पर लाली
ले आई पूजा की थाली
गुल्लू सबको बता रहा है
लाईट कनेक्शन सता रहा है
माउस उठा कर छुटकू भागा
अभी अभी था नींद से जागा
अंकल ने सब तार लगाये
गुल्लू को कुछ समय न आये
कम्प्यूटर तो हो गया चालू
न! स्क्रीन छुओ मत शालू
जिसे खोजना हो अब तुमको
गूगल में डालो तुम उसको
कक्का कहें चबाकर लईय्या
मेरी भैंस खोज दे भैय्या
बड़े जोर से लगा ठहाका
खिसियाये से बैठे काका।''

आज ऐसी कहानियां उपलब्ध होने लगी है जो आज की की विद्रूपताओं को उजागर कर रही हैं, मसलन लड़कियों के नाजायज़ स्पर्शों की अनुभवसम्पन्न समझ दे रही हैं। गुस्ताखी माफ हो, स्वयं मेरी ही कहानी है-''सॉरी लू लू'', जो आलेख प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित मेरी पुस्तक 'बचपन की शरारत' (सम्पूर्ण बाल गद्य रचनाएं) में संकलित है। आने वाले साहित्यकारों को ऐसी और अन्य बुराइयों से जूझ रहे बच्चों की दुनिया में भी झाँक कर लिखना होगा। क्षमा शर्मा ने उचित ही लिखा है कि ''बहुत से लोग समझते हैं कि फैंटेसी लिखना बहुत आसान है और उसमें कोई तर्क नहीं होता, जबकि फैंटेसी लिखना, ऐसी कथा कहना जिसमें बच्चों का कुतूहल और जिज्ञासा जग सके एक कठिन काम है, इसीलिए अक्सर लोग कहानी लिखने का एक आसान सा रास्ता अपनाते हैं, सरकार के जो नारे चल रहे होते हैं वे उन पर कहानियाँ, कविताएँ लिखते हैं। ऐसी कहानियाँ हमें हज़ारों की संख्या में मिलती हैं जो बेहद अपठनीय होती हैं। इन दिनों पर्यावरण और 'जेंडर सेंसिटाइजेशन' पर लिखने वालों की भरमार है। ये कहानियाँ इतनी उबाऊ होती हैं कि इनके शुरुआती वाक्य पढ़ने के बाद सहज ही समझ में आ जाता है कि आगे क्या होगा।''

जानवर, पेड़ आदि मनुष्य के सहजीवी हैं। रचनाकार अपने दृष्टिसम्पन्न अनुभव की अभिव्यक्ति की क्षमता बन जाता है। मैं बाल कहानियों में से जानवरों को बाहर करने का कतई पक्षधर नहीं रहा हूँ। वह संभव भी नहीं है। हाँ, नए ट्रीटमेंट की जरूरत रहती है। जानवर पात्र होगा तो मनुष्य-पाठक को उसके मन की बात प्रेषित करने के लिए मानव-भाषा का ही उपयोग करना पड़ेगा। यही पेड़, फूल आदि के संदर्भ में भी सत्य है। और इसे एक कुशल रचनाकार बिना मानवीकरण के भी सफलता के साथ सामने ला सकता है।

मोहन राकेश की एक कहानी 'सुनहरा मुर्गा, काला बंदर, लाल अमरूद का पेड़' है। यह कहानी रोचक है और इसमें जो संदेश निकल रहा है वह कहानी की बुनावट का हिस्सा बन कर आया है और कहीं से भी चस्पां या आरोपित होकर नहीं। भले ही पात्र आदमियों के साथ-साथ जानवर और पेड़ हैं लेकिन जानवर और पेड़ आदमियों की दुनिया में इस प्रकार खपाए गए हैं कि वे न तो अलग-थलग लगते हैं और न ही उन पर मानवीकरण हावी हुआ है। आदमियों की अपनी दुनिया है और उनकी अपनी। उन्हें आदमियों से संवाद करते हुए भी नहीं दिखाया गया है। विश्वसनीयता का भी पूरा ध्यान रखा गया है। और वह भी कलात्मकता की कीमत पर नहीं। प्रारम्भ में कोई भी स्वीकार करेगा कि कसाई की निगाह मुर्गे पर है, बंदर पर चिड़ियाघर वालों की और अमरूद के पेड़ पर विद्यार्थियों और लोगों की। कोई 'समझदार' आपत्ति कर सकता है कि ये तीनों जिस तरह एक-दूसरे की रक्षा करते हैं वह कैसे संभव है? बंदर को किसी ने अपनी पीठ पर मुर्गे को बैठा कर पेड़ पर ले जात जो नहीं देखा। या पेड़ ने अपने आप अमरूद कैसे टपकाए। यही तो कलात्मकता है। जब बच्चे ऐसे वर्णन पढ़ते हैं तो कहानी का कलात्मक अनुभव सहज ही दोस्तों में एक-दूसरे की मदद करने के भाव को सर्वोपरि कर देता है। यूँ भी मुर्गा खुद उड़ कर पेड़ पर नहीं जा सकता और पेड़ से फल पक कर टपक भी सकता है। यह तो विश्वसनीयता के दायरे में आता ही है न? एक और वर्ण है जो पेड़ का मानवीकरण जैसा लगता है—बंदर को पेड़ अपनी घनी शाखाओं में छिपा लेता है। यहाँ बिना पेड़ के मानवीकरण के आशय तो स्पष्ट है न? इस रोचक कलात्मक अभिव्यक्ति के स्थान पर यह भी लिखा जा सकता था कि बंदर पेड़ की घनी शाखाओं में छिप गया। कहानी का अगला पड़ाव

है विपत्ति का आना — वर्षा और ओले के रूप में। ऐसे में 'बिगाड़ में दूसरों पर दोष मढ़ा जाता है' वाली कहावत सामने आती है। एक-दूसरे पर आरोप लगाने का सिलसिला शुरू होता है और अविश्वास का जन्म होता है। दोस्ती भंग हो जाती है। और कहनी के अंतिम पड़ाव में स्वाभाविक ढंग से चित्रित किया गया है कि दोस्ती के भंग होने पर, एक-दूसरे की मदद न करने की स्थिति में, कसाई, चिड़ियाघर वाले और उनके संदर्भ में अपने बुरे इरादों में सफल हो जाते है। कहानी खत्म हो जाती है। तो मेरी निगाह में यह कहानी है न कि कहानी के फॉर्म में कोई संदेश या सूचना ठूँसने का प्रयास। कहानी के मज़े के साथ-साथ संदेश खुद-ब-खुद उभर कर आता है। वर्णन में कल्पना है लेकिन विश्वसनीयता की बुनियाद पर। यहाँ शिल्प उजागर नहीं है।

एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि क्या व्यापक संदर्भ में बच्चे को एक ऐसा पात्र मान लिया जाए जिसमें बड़ा को अपनी समझ बस ठूँसनी होती हैं। मैं समझता हूँ कि आज जरूरत बच्चे को ही शिक्षित करने की नहीं है, बड़ों को भी शिक्षित करने की है। इसलिए बाल साहित्यकार के समक्ष यह भी एक बड़ी और दोहरी चुनौती है। वस्तुत: सजग लोगों के सामने मूल चिन्ता यह भी रही है कि कैसे रूढ़ियों में जकड़े माँ-बाप और बुजुर्गों की मानसिकता से आज के बच्चे को मुक्त करके समयानुकूल बनाया जाए। साथ ही यह भी कि आज के बच्चे की जो मानसिकता बन रही है उसके सार्थक अंश को कैसे प्रेरित किया जाए और कैसे दकियानूसी सोच के दमन से उसे बचाया जाए। मैंने अक्सर कहा है कि बाल-साहित्य सबके लिए होता है—केवल बच्चों के लिए नहीं। बाल-साहित्य बड़ों को भी सुसंस्कृत कर सकता है। बाल-साहित्य बच्चों का तो सच्चा दोस्त होता ही है, बड़ों को भी उनका सच्चा दोस्त बनने की राह दिखाता है।

थोड़ी बात इलैक्ट्रोनिक माध्यम और टेक्नोलोजी के हौवे की भी कर ली जाए, जिन्होंने पूरे विश्व को एक गाँव बना दिया है। यह बात अलग है कि भारत में आज भी अनेक बच्चे इनसे वंचित है। इनसे क्या वे तो प्राथमिक शिक्षा तक से वंचित है। कितने ही बच्चे अपने बचपन की कीमत पर श्रमिक तक है। अपने परिवेश और परिस्थितियों के कारण अनेक बुरी आदतों से ग्रसित हैं। वे भी आज के बाल-साहित्यकार के लिए चुनौती होने चाहिए? खैर जिन बच्चों की दुनिया में नई टेक्नोलोजी की पहुँच है उनकी सोच अवश्य बदली है। अच्छे रूप में भी गलत रूप में भी। विषयांतर कर कहना चाहूँ कि मैं टैक्नोलोजी या किसी भी माध्यम का विरोधी नहीं हूँ, बल्कि वे मानव के लिए जरूरी हैं। उनका जितना भी गलत प्रभाव है उसके लिए वे दोषी नहीं हैं, बल्कि अन्तत: मनुष्य ही हैं जो अपनी बाजारवादी मानसिकता की तुष्टि के लिए उन्हें गलत के परोसने की भी वस्तु बनाता है। फिर चाहे वह यहाँ का हो, पश्चिम का हो या फिर कहीं का भी हो। होने को तो पुस्तक के माध्यम से भी बहुत कुछ परोसा जा सकता है। क्या माध्यम के रूप में पुस्तक को गाली दी जाए। आज बहुत-सा बाल-साहित्य इन्टरनेट के माध्यम से भी उपलब्ध है। अत: जरूरत इस बात है कि दोनों के बीच बहुत ही सार्थक रिश्ता बनाया जाए। किताबें कम्प्यूटर पर भी पढ़ी जा सकती हैं। इसके लिए कितने ही वेबसाइट हैं।

आज सृजन, बल्कि उत्कृष्ट सृजन की दृष्टि से समकालीन हिन्दी बाल-साहित्य की स्थिति बहुत अच्छी और संतोषजनक हो चुकी है। ठीक है कि आज भी पारम्परिक सोच और पारम्परिक ढंग से बाल-साहित्य लिखा और छापा जा रहा है लेकिन ऐसे बाल-साहित्य की भी कमी नहीं है जिसमें समसामयिक घटनाओं, परिवेश और भविष्य की दुनिया मौजूद है। जिसमें आज के बच्चे की नब्ज और धड़कन है। स्कूली शिक्षा पद्धति और बस्ते के बोझ की विडम्बना को लेकर सुरेद्र विक्रम की एक बहुत अच्छी मार्मिक कविता है। आज नई पीढ़ी में भी समर्पित और सशक्त रचनाकारों की अच्छी-खासी संख्या है जिनके नामों की गणना करना फिलहाल छोड़ रहा हूँ। लेकिन, मेरे विनम्र मत में, इसके समक्ष आज वास्तविक चुनौती इसकी सही जगह और आकलन को लेकर बनी हुई है, बावजूद कुछ बेहतर हो चुकी स्थितियों के। वस्तुत: आज भी लगता है कि हिन्दी में लिखा जा रहा बाल-साहित्य जो ऊँचाई छू चुका है, न तो उसकी ठीक से पहचान ही हो पा रही है और न ही उसे कायदे से उसकी उपयुक्त जगह ही मिल पा रही है। इसका प्रमुख कारण, मेरी निगाह में, इसे बड़ों के लिए लिखे जा रहे सृजन के समक्ष न समझा जाना ही है कोई सृजन, अगर वह सृजन है तो किसी भी अन्य विधा के सृजन के समकक्ष माना जाना चाहिए और इसे साहित्य के इतिहास में ससम्मान स्थान दिया जाना चाहिए। ◆◆◆

हिंदी रंगमंच: सात दशक

माधुरी सुबोध

...दलित जीवन की सच्चाइयों को उकेरने के लिए 'कबीर' का मिथक लोकप्रिय है। भीष्म साहनी का 'कबिरा खड़ा बजार में', नरेन्द्र मोहन का 'कहे कबीर सुनो भई साधे', मणि मधुकर का 'इकतारे की आँख', शेखर सेन का 'कबीर' में कबीर की यातनाओं और संघर्ष के बहाने दलित चेतना का उभार है। इनमें असमानता और शोषण के विरुद्ध इस वर्ग का सामूहिक संघर्ष और विद्रोह दिखाई देता है। नाटकों में 'ययाति' का प्रसंग भी लोकप्रिय है। ज्ञानपीठ द्वारा पुरस्कृत विष्णु सखाराम खांडेकर का उपन्यास 'ययाति' एक महत्त्वपूर्ण घटना तो मानी ही जायेगी, गिरीश कर्नाड का 'ययाति' हिन्दी मंच पर बहुमंचित नाटक है। भीष्म साहनी का 'माधवी' स्त्री के स्वाभिमान और शोषण की कथा कहता है, वहाँ ययाति पात्र रूप में उपस्थित है। प्रवीर कुमार दास का काव्य नाटक है 'गालव-माधवी-ययाति कथा'। पात्र त्रिकोण में ययाति उपस्थित है। नंदकिशोर आचार्य के 'देहांतर' में भी महाभारत के पात्रों 'ययाति-देवयानी-शर्मिष्ठा-बिंदुमति, इन चार चरित्रों के माध्यम से नारी के द्वंद्व और दुविधा का चित्रण किया गया है।

भारत में रंगमंच की एक दीर्घजीवी, विलक्षण और अद्‌भुत परम्परा रही है जो विश्व पटल पर अलग से पहचानी जा सकती है। आधुनिक समय में ब्रेख्त जैसे महान नाटककार ने भी उसे अपनी रंगचेतना में बसाया और उसका ऋण स्वीकार किया है। स्वाधीन भारत को जो रंगमंच मिला उसकी तमाम प्रवृत्तियों पर पश्चिम का रंग चढ़ा हुआ था। नाटक लिखा जा रहा था किंतु उसमें भी दो प्रभाग बने हुए थे। साहित्यिक नाटक और मंच नाटक। हमारे रंगकर्मियों अथवा नाटककारों के सामने दोहरी चुनौती थी—उन्हें रंगमंच के लिए नाटक की तलाश करनी थी। साहित्य और रंगमंच के बीच बनी खाई को भी पाटना था।

कोई भी नाट्य रचना भले ही काल विशेष में रची जाए किंतु उसमें 'त्रिकाल' समाहित रहता है। तभी वह हर काल के पाठक द्वारा पढ़ी जाएगी और रंगकर्मियों द्वारा खेली जाएगी। हर युग का पाठक उसमें अपना समय देखे, तभी पाठक/दर्शक की उत्सुकता या साझेदारी संभव है। रचना में घटित वह कथा, जिसमें पात्र, घटनाएं और स्थितियां घटित हुई—नाटक की समयबद्धता या यथार्थधर्मिता मानना चाहिए। दूसरा 'कालखण्ड' लेखक का अपना समय है जो कहीं दर्पण की तरह, कहीं संकेतात्मक रूप से, कहीं रचना के समानांतर धरातल पर और कहीं अलग भी प्रतिबिम्बित होता है। समय की तीसरी धारा पाठक या प्रेक्षक का समय है। रचना को पढ़ते हुए अथवा उसका मंचन देखते हुए पाठक/प्रेक्षक उसमें अपने समय की हलचल अथवा तरंगे अनुभव करता है। 'तीनों समय' एकाकार होकर भी रचना में समय की तीन धाराओं का अनुभव कराते हैं। तभी रचनाकार की अनुभव दृष्टि और भाषा व्यवहारों का विश्लेषण करके उसे समझाना संभव हो पाता है। पूरे युगीन परिदृश्य पर सतर्क दृष्टिपात संभव हो पाता है। स्वाधीनता के बाद हमारे नाटककार ने नाटक को समाज से जोड़ने का प्रयास किया। दोनों के बीच एक विशेष संबंध बनाते देखा जा सकता है। वह लोकोपदेशक नहीं रहा, न ही मात्र मनोरंजन या आनन्द प्राप्ति का साधन बना। बल्कि किसी 'जीवनसत्य' से साक्षात्कार का माध्यम बन गया। यह सामाजिक अर्थ नाटककार अपनी रचना में 'शब्द' के माध्यम से और प्रस्तुति में रंगकर्मी रंग संसाधनों से प्रतिबिम्बित करता है। तभी नाटक जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति की सामर्थ्य रखने वाला बन पाता है।

सम्पर्क: डी–3/3359, वसंत कुंज, नई दिल्ली–110070

यथार्थ दुनिया के समानांतर एक नई दुनिया रचकर वह ऐसा करता है। उसकी विवशता है कि अपनी बात प्रत्यक्ष नहीं कह पाता। उसके पास कहने के लिए 'कुछ' है तो उसे कहने के लिए वह कथानक, पात्रों और भाषा को नियोजित करता है। जो कहना है, कथानक, पात्रों और उनके संवादों के माध्यम से ही कहता है। तब निश्चय ही कथानक की प्रतीति सामान्य से विलक्षण हो जाएगी। उसके पास कहने के लिए जो 'कुछ' है वह तभी संप्रेषित हो सकेगा। वास्तविक जीवन में रचना हस्तक्षेप करे, इसी में वह नाटक की सार्थकता पाता है। रंगकर्मी भी तभी प्रस्तुति का मिजाज़ बदल कर एक से अधिक व्याख्याएँ संयोजित कर पाएगा। 'कहने के लिए कुछ कम है' तो दिखाने के लिए 'बहुत कुछ' का उपक्रम रचेगा। संदेश प्रेक्षक तक न पहुँच पाएगा, प्रस्तुति के बिखर जाने की पूरी संभावना है। वह चमत्कृत करने वाली प्रस्तुति तो बनेगी किंतु दिल और दिमाग को प्रभावित कर 'जीवन' में हस्तक्षेप संभव करने वाली रचना' न बन पाएगी।

केवल संवाद लिख देना भर नाटक नहीं है। दृश्य जगत का यथार्थ अनुभव क्या है, दृश्य-श्रव्य के बीच 'रंगमंच' कहाँ है, इसकी तलाश भी जरूरी है। जीवन के यथार्थ के समानांतर रंगमंच के यथार्थ का परस्पर क्या संबंध है, उसे प्रभावशाली रूप में कैसे व्यक्त किया जाए—इसकी तलाश और समझ भी जरूरी है। तलाश जरूरी है कि इन अनुभवों को ज्यों का त्यों कैसे अभिव्यक्ति मिले कि वह 'रंगनाटक' बन जाए। जीवन और 'रंग' की जरूरत से परिचित नाटककार ही ऐसा नाटक रच सकेगा। उसकी न तो कोई पूर्व निर्धारित कसौटी है और न नाटक लिखने वाला हर व्यक्ति भास, कालीदास, शूद्रक, शेक्सपीयर या ब्रेख्त बन सकता है। हाँ, वह जीवन का अनुकर्ता है और अपनी रचनाओं में जीवन का नया सृजन करता है, जिसे प्रस्तुत करने के लिए रंगकर्मी उत्सुक हो सकें। स्वाधीनता के पहले दशक में ऐसे नाटकों की रचना के विशेष प्रयास मिलते हैं। नाटककार और निर्देशक के सहयोग और जुड़ाव ने इसे संभव बनाया, जिनमें जगदीश चंद्र माथुर के 'कोणार्क', 'शारदीया' और 'पहला राजा' का उल्लेख जरूरी हो जाता है। कथानक जयशंकर प्रसाद की तरह इतिहास-पुराण के लिए गए, किंतु कथ्य हमारे आज का है। मोहन राकेश के नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' और 'लहरों के राजहंस' भी इसी परम्परा की कड़ियां हैं। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का 'मादा कैक्टस' संकेत था कि नाटक नई करवट ले रहा है।

आज के बौद्धिक वातावरण में नाटककार और सामाजिक दोनों की बुद्धि अपने समय में मौजूद जीवन की विभिन्न चिंतन धाराओं और हलचलों को अनुभव करने में सक्षम है। उनके पास जीवन और साहित्य को देखने-समझने और विषयों के चुनाव की अपनी विशेष दृष्टि है। भोगी हुई स्थितियों का चुनाव, विश्लेषण और उन्हें क्रमबद्ध करके नाटक बुनने की प्रतिभा उभर रही थी। पश्चिम की प्रेरणा से प्रयोग भी खूब हुए। स्वातंत्र्योत्तर दूसरे दशक के अधिकांश नाटककार पश्चिम की प्रेरणा से प्रयोगों की ओर अभिमुख हुए। कथ्य और शैली दोनों में यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। इस संदर्भ में लक्ष्मीनारायण लाल के नाटक 'मादा कैक्टस' (1959), 'दर्पण' (1961), 'रातरानी' (1962), 'सूर्यमुख' (1968), 'मिस्टर अभिमन्यु' (1971), 'कर्फ्यू' (1972), शंकरशेष के 'कोमल गांधार', 'पोस्टर' तथा 'एक और द्रोणाचार्य' उल्लेखनीय हैं।

विश्व रंगपटल पर ब्रेख्त के नाटकों की सफलता और लोकप्रियता ने अपनी विस्मृत रंग परम्पराओं की ओर हमारे रंगकर्मियों का ध्यान आकर्षित किया। ब्रेख्त के नाटकों में नयापन देने वाले अधिकांश तत्त्व भारतीय परम्परा में पहले से मौजूद थे। हमीं ने उन्हें भुला दिया था। अपनी परम्परा के अभिज्ञान ने हमारे रंगकर्म और नाट्य लेखन को नई चेतना और गति प्रदान की। अपनी जड़ों की ओर लौटने का आह्वान किया गया। नाट्यशास्त्र की प्रेरणा से संस्कृत नाटकों की प्रस्तुतियाँ हुईं। 'उत्तर रामचरित', 'शकुंतला', 'मालविकाग्निमित्र' और 'मृच्छकटिकम्' को विशेष लोकप्रियता मिली। संस्कृत रंगमंच की किसी जीवित परम्परा के अभाव में इनकी प्रस्तुति अनुमानतः उनकी नाट्यशैली के सबसे निकट मानी गई कुडिआइट्टम, यक्षगान और कथकारी जैसी पारम्परिक शैलियों को अपनाया। जीवित रंगचेतना के प्रमाण नौटंकी, तमाशा, छत्तीसगढ़ी जैसी लोकशैलियों के प्रयोग का रुझान बढ़ा। हबीब तनवीर के 'आगरा बाज़ार' (1954, 1970) को मिली सफलता के बाद यह कारवां चलता गया। इसी मार्ग पर चलते हुए हबीब तनवीर ने अपनी पहचान बनायी। 'चरणदास चोर', 'मिट्टी की गाड़ी', 'गांव का नांव ससुरार और मोर नांव दामाद' आदि नाट्य कृतियां हमारे रंगमंच को मिलीं। बाद में इस प्रवृत्ति ने एक आंदोलन का रूप ले लिया। लक्ष्मीनारायण लाल ने अपनी संपूर्ण रंगयात्रा में भारतीय रंगचेतना को तलाश कर तराशा। उनके 'सगुन पंछी बनाम तोता मैना' (1971), 'नरसिंह कथा' (1975), यक्ष प्रश्न, एक सत्य हरिश्चन्द्र (1976), गंगा माटी, सबरंग मोहभंग (1977), लंकाकांड (1971), अरुण कमल एक (1984), कथा विसर्जन (1987) में यह प्रवृत्ति दूर तक चलती है। धर्मवीर भारती का 'अंधायुग' ऐसी महत्त्वपूर्ण

कृति है जिसमें कथ्य और शिल्प दोनों धरातल पर लोकतत्त्वों के प्रयोग की प्रचुर संभावनाएँ हैं। शंकरशेष का 'पोस्टर' एवं मणि मधुकर के 'दुलारीबाई' और 'खेला पोलमपुर' भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय नाटक हैं।

पौर्वात्य और पश्चिमी नाटकों के अनुवाद सदा की तरह लोकप्रिय रहे। शेक्सपीयर, इब्सन के अतिरिक्त ब्रेख्त के नाटक 'काकेरिशयन चैक सर्कल' (खड़िया का घेरा) तथा 'गुड वुमन ऑफ सेत्सुआन' खूब मंचित हुए। भारतीय भाषाओं में लोकशैली का नाटक 'घासीराम कोतवाल' जबर्दस्त लोकप्रिय हुआ। विजय तेंदुलकर का 'कमला' और वसंत कानेतकर के नाटक भी खूब खेले गए। बंगला के रवीन्द्रनाथ टैगोर, डी.एल. राय और बादल सरकार के नाटकों ने रंगकर्मियों और प्रेक्षकों दोनों को आकर्षित किया। हिन्दी रंगमंच पर मिली लोकप्रियता ने अन्य भारतीय भाषाओं के नाटककारों को हिन्दी रंगमंच की महत्ता और सार्थकता का एहसास करवाया। हिन्दी रंगमंच अखिल भारतीय रंगमंच के रूप में उभरता दिखाई दिया।

आठवें दशक तक आते-आते हमारा रंगकर्म नाट्य रचना की दिशा में स्वयं को दोहराने लगा। नये नाटकों की प्रस्तुति अथवा नये मंच-प्रयोगों की जगह रूपांतरण पर अधिक बल दिया जाने लगा। कविता, कहानियों अथवा उपन्यासों के नाट्य रूपांतरण मंचित हुए। मंचन योग्य अच्छे नाटकों की कमी इसका कारण बताई गई। वस्तुतः नाटक लेखन की कमी नहीं थी। जिस अनुपात में रंगकर्म हो रहा था, उस अनुपात में नाटक सामने नहीं आये, इसके अन्य कारण अधिक थे। प्रयोगधर्मी रंगकर्मियों ने प्रस्तुति के क्षेत्र में नये प्रयोगों की ओर अधिक रुझान दिखाया। 'रसगंधर्व' जैसे नाटकों का खूब खेला जाना इसका प्रमाण है। देवेन्द्रराज अंकुर ने जब कहानियों की प्रस्तुतियों द्वारा अपना मंतव्य अभिव्यक्त किया, तब 'कहानी का रंगमंच' सामने आया। नया नाटक लिखने की जगह यह प्रयोग आकर्षक और सुगम था। जिसने हमारे रंगकर्म की तात्कालिक आवश्यकता को पूरा तो किया, साथ ही दर्शकों के सामने साहित्य को परोसने का भी काम किया। इससे हमारे साहित्य अथवा रंगमंच का कोई उपकार नहीं हुआ। न वह अपनी अलग पहचान बना पाया और न ही अपनी कोई रंगशैली गढ़ सका। स्थिति आज भी बहुत भिन्न नहीं है।

आठवां-नौवां दशक हमारे समाज और जीवन में आने वाले परिवर्तनों और होने वाले विमर्शों का साक्षी रहा है। इस समय का साहित्य, चिंतन और जागरूकता के धरातल पर जीवन को बदलने की चेष्टा के तौर पर देखा जा सकता है। सामाजिक जीवन में जो कमियाँ और ज्यादातियाँ हैं, उनकी जानकारी और उनमें बदलाव होना ही चाहिए। यथास्थिति को स्वीकार करके घुटने टेकने की जगह प्रतिकार या विरोध करना होगा। इसके लिए संगठित प्रयास और विद्रोह अनिवार्य हो जाता है। तत्कालीन सभी विमर्श बड़े उत्साह और जोश के साथ सामाजिक, आर्थिक, नैतिक और राजनीतिक समानता की बात कहते हैं और संबंधित वर्ग विशेष की चेतना को जगाने की कोशिश भी करते हैं। इस चिंतन या विमर्श के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसमें अनुभूति की मौलिकता, अभिव्यक्ति के खरेपन पर जोर दिया गया। समाज के हाशिये पर जीने वालों, दलन की पीड़ा झेलने वालों का जीवन अभी तक साहित्य की परिधि में अनकहा ही रहा। दलितों, सताई स्त्रियों, आदिवासियों और शोषित वर्ग के लोगों को प्रेरित किया कि वे अपने जीवन का सच और भुक्त अहसास को 'कागद और स्याही' से बयान करें। उनका अधिकांश जीवन सच अनकहा और रहस्य की परतों के भीतर है। वे अपनी बात खुद कहें, अपना विरोध दर्ज करायें, तभी स्थिति बेहतर हो पाएगी। उनके अनुभवों और पीड़ा को ईमानदारी और सच्चाई से अभिव्यक्त करने के लिए उनकी आत्माभिव्यक्ति या सेल्फ एक्सप्रेशन पर बल दिया। उनका आह्वान किया गया कि आगे बढ़कर अपनी पीड़ा को स्वयं अभिव्यक्त कर साहित्य में अपनी उपस्थिति दर्ज करायें। उन्हें सहानुभूति नहीं चाहिए, सह-अनुभूति का सच ही उनके जीवन की कड़ुवाहट, संघर्ष, घुटन और दर्द को पाठकों तक संप्रेक्षित कर पायेगा। परिणामस्वरूप बहुत सी कहानियां, उपन्यास और आत्मकथाएं लिखी गयीं। जिनमें ऐसे खट्टे-मीठे अनुभव अभिव्यक्त हुए जो उनके जीवन की गुत्थियां को समझने में सहायक हो सकते हैं, जिनसे समाज का साक्षात्कार अभी तक नहीं हुआ था। उसी प्रकार नैतिकता की कोई समजातीय अवधारणा नहीं, नैतिकता के बारे में हर वर्ग की अपनी अवधारणा होती है। अपने नैतिक दृष्टि और आदर्शों को दूसरों पर थोपने से पहले जीवन के प्रति उनकी दृष्टि और आदर्शों को दूसरों पर थोपने से पहले जीवन के प्रति उनकी दृष्टि को समझना भी आवश्यक है। इसने साहित्य की नयी संवेदना और समझ विकसित की। आलोचना के नये क्षितिज की उद्घाटन कर नये मानक या प्रतिमान खोजने के लिए उकसाया। इसे विश्लेषित करने के लिए परम्परागत साहित्यिक मापदण्ड अपर्याप्त थे। आलोचना के नये मानदण्ड खोजने के साथ ही साहित्य शास्त्रीय नयी शब्दावली तलाशनी होगी और समालोचना में उनकी स्वीकार और प्रयोग भी करना होगा। कविता और कथा-साहित्य में उन कसौटियों पर खरी उतरने

वाली अनेक रचनाएं मिल जायेंगी। दलित साहित्य, स्त्रीवादी साहित्य, आदिवासी साहित्य पर्याप्त मात्रा में मिलता है और प्रकाशित हो रहा है।

समाज के हाशिए पर रहने वालों को भी अन्य लोगों की तरह अपने अनुभवों की अभिव्यक्ति का अवसर मिलना चाहिए। उनकी अनुभूतियों के अलग रंग साहित्यलेखन को विशिष्ट भंगिमा दें। किंतु 'स्वानुभूति' के बिना विमर्शशील साहित्य रचना संभव नहीं, यह सोच ही साहित्य रचना के मूलभूत सिद्धांत के विपरीत है। ''रचनाकार संवेदनशील या सहृदय होता है। वह जीवन का अनुकर्ता है, अपनी रचनाओं में जीवन का पुनर्सृजन करता है।'' क्या यह सिद्धांत प्रामाणिक नहीं? साहित्यकार संवेदनशील प्राण ी है। साहित्य में उसका निज या जीवन भले ही उपस्थित न हो, संवेदना और जीवन को देखने की दृष्टि उसकी अपनी होगी। दूसरे के अनुभवों से लेखक के मन में अनुभूति की जो तरंगें उत्पन्न होती हैं व रचनाकार की 'स्वानुभूति' ही है। स्त्री अपने जीवन को एक औरत के नज़रिए से देखेगी। दलित अपनी दृष्टि से ही जीवन को देखेगा। दृष्टि की यह भिन्नता वर्ग, जाति, धर्म के आधार पर हर व्यक्ति की अलग होगी। संवेदनशील और जीवन को निकट से देखने वाले लोग उसे अपनी रचनाओं में न रख पायेंगे, ऐसी सोच कितनी सही है? जाति आधारित दलित लेखन (जिसने आदिवासी लेखन को भी शामिल मानें), लिंग आधारित स्त्रीत्ववादी लेखन— सभी राजनीतिक समझ से प्रेरित है, सबकी अपनी राजनीति है। जीवन के अनेक दायरों को अपने भीतर समेटे और छिपाये महत्त्वपूर्ण है राजनीतिक विमर्श। यह सब के केंद्र में विद्यमान है।

विमर्शपूर्ण साहित्य लेखन कविता, कहानी, उपन्यास और आत्मकथाओं के रूप में प्रचुर मात्रा में मिल जायेगा, किंतु नाट्यलेखन अपवादस्वरूप ही मिलेगा। नाटक लिखना यों भी कठिन काम है, कम ही होता है। खेले जाने की क्षमता उसकी कठिन कसौटी है। तभी तो कविता, कहानियों, उपन्यासों के रूपांतरण और अनुवाद उसके स्थानापन्न रूप में खेले जा रहे हैं। नाटक लिखने का मकसद होता है उसका मंचन। रंगकर्मी किसी नाटक को 'अच्छा नाटक' होने और अपने सामाजिक आशय की अभिव्यक्ति में समर्थ होने के कारण उठायेगा, उसका लेखक दलित है या सवर्ण, इस आधार पर नहीं। दलित जीवन अथवा छूताछूत को आधार बनाकर नुक्कड़ों पर कई 'नुक्कड़ नाटक' खेले गये हैं। इन नाटकों के विषय भले ही गंभीर और सामाजिक सरोकारों वाले हों, वे दर्शकों के बीच जाकर अपनी बात कहते हैं। इसलिए उनमें तात्कालिकता और प्रचार का स्वर अधिक मुखर रहता है। इनमें समाज की बड़ी हलचल रेखांकित होती है। पूरी संभावना है कि कभी मंच नाटकों में ये बड़े मुद्दे बन जायें। प्रस्तुति प्रभावशाली होते हुए भी नुक्कड़ नाटकों में रचनात्मकता कम ही रहती है। आलेखगत गुणवत्ता और मौलिकता की कमी के रहते काल की धारा में कितना टिक पायेंगे, कहना कठिन होगा। नाटक में विमर्श या चिंतन आंदोलन के प्रभाव से कम और नाटककार के कथ्य से जुड़कर आता है, जिसका संबंध नाटक के आलेख से अधिक है। कथ्य के धरातल पर वह सूक्ष्म रूप में ही दिखाई देता है। अन्य विधाओं की तरह प्रचार अथवा बलाघात से नहीं।

इसमें संदेह नहीं कि समाज में होने वाले अत्याचार, अन्याय और शोषण जैसे अमानवीय भेदभाव वाले केंद्रित विमर्श— अमानवीय उत्पीड़न और दमन से उपजी चेतना का ही प्रतिफलन हैं। दलित चेतना की पृष्ठभूमि वाले साहित्य में वर्ग साहित्य की बेचैनियों और उसके प्रभावों को देखा जा सकता है। हिन्दी नाट्य साहित्य में मोहनदास नैमिषराय का 'अदालतनामा', सुनील कुमार 'सुमन' का 'एक बार फिर', आदि ऐसे ही नाटक हैं। दलित चेतना के प्रतिनिधि कलाकार, भोजपुरी हिन्दी के शेक्सपीयर रामबहादुर भिखारी ठाकुर का नाम लिया जा सकता है। उनके नाटक 'बिदेसिया' और 'गबर घिचोर' दलित चेतना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कहे जा सकते हैं। इस चेतना के नाटकों को साहित्य का प्रतिपक्ष नहीं बल्कि पूरक समझना चाहिए। नाटककार अपनी बात यों भी सीधे नहीं पात्रों के माध्यम से कहता है। उसकी बात पात्रों के द्वारा अथवा निर्देशकीय व्याख्याओं के रूप में ही संप्रेषित होती है। नाटक वर्ग विशेष का ही है। इस दृष्टि से भीष्म साहनी अग्रणी नाटककार हैं। उनके 'हानूश', 'कबिरा खड़ा बजार में', 'माधवी' और 'मुआवज़े' जैसे नाटक महत्त्वपूर्ण है। शंकरशेष का 'एक और द्रोणाचार्य', 'पोस्टर'; विजय तेंदुलकर का 'कन्यादान', 'कमला'; लक्ष्मीनारायण लाल का 'यमगाथा' और जगदीशचंद्र माथुर का 'पहला राजा' ऐसे ही नाटक हैं। स्वातंत्र्योत्तर विमर्शों के अंतर्गत संपूर्ण दलित और शोषित वर्ग की त्रासदी उभरकर आती है जिसके मूल में वह मानसिकता है जो बहुसंख्यक या वर्चस्व वाले वर्ग के आगे घुटने टेकना अपना भाग्य समझती है। वे अपनी उस कमजोरी को पहचानें जो उनके विकास में बाधक रही है। प्रतिकार के लिए अपने दिल और हाथों में ताकत जगायें।

विकल्प की खोज का एक और पहलू लिंगभेद आधारित स्त्रीत्ववादी लेखन सामने आया। यह भी जाति, धर्म और वर्ग की सीमाओं के पार अपने अनुभवों को साझा करने तथा अपनी

स्थिति के लिए जिम्मेदार 'पुरुष वर्चस्व' के विरोध में खड़ा दिखाई देता है। वह गुण, शक्ति और सामर्थ्य में पुरुष से कमतर नहीं, फिर भी दोयम दर्जे पर ही रही। उसे हाशिये पर धकेला गया। किसी ने नहीं सोचा कि स्त्री लेखन अलग होगा अथवा किसी 'पाठ' पर उसकी प्रतिक्रिया अलग होगी। वह भी निर्णय का अधिकार रखती है। नाटकों में यह चेतना बड़ी प्रबलता के अभिव्यक्त हुई। भीष्म साहनी का 'माधवी', सुरेन्द्र तिवारी का 'द्रौपदी', शंकर शेष का 'कोमल गांधार' में नारी मन का आक्रोश और प्रतिशोध व्यक्त हुआ। हमीदुल्ला का 'ख्याल भारमली' उसके शोषण-संघर्ष की कथा कहते हैं। प्रभाकर क्षोत्रिय का 'ईहामृग', माधुरी सुबोध का 'स्वयंदीपा' नारी की अवहेलना और उसके साथ होने वाले छल ही नहीं उसकी निर्णय की सामर्थ्य को रेखांकित करते हैं। 'मनवृंदावन' समाज में विधवा मीरा की स्थिति, उसे मिले तिरस्कार और उनके संघर्ष को उकेरता है। 'मनोवीणा' और 'घिर आई सांझा' में स्त्री मन की लालसाओं और महत्त्वाकांक्षाओं के साथ-साथ अपनी शर्तों पर जीवन जीने की क्षमता, निर्णय स्वयं लेने के अधिकार और स्वतंत्रता को चित्रित करते हैं। कृष्णा सोबती के उपन्यास 'मित्रो मरजानी' और लघु उपन्यास 'ऐ लड़की' के नाट्य रूपांतरण मंचित होकर लोकप्रिय हुए हैं।

चिंतन का एक अन्य पहलू राजनीतिक विमर्श भी है जिसे अलग से इंगित करना कठिन है। आज के मौजूदा संदर्भ में राजनीति तो जीवन में व्याप्त है। बिना राजनीतिक संदर्भ के कोई कलारूप जीवित रहेगा— कहना कठिन है। राजनीतिक विषय वस्तु वाले नाटक आम जीवन के दस्तावेज हैं। नाटक और नुक्कड़ नाटक राजनीतिक परिवर्तन और प्रगति की दिशा में हथियार बनकर उपस्थित हैं। जनता के मन में आक्रोश, बेचैनी और संघर्ष पैदा करते हैं। जनता ने इन्हें सराहा भी है।

राजनीति में नाटक खूब होता है और नाटक की भी अपनी राजनीति है। सही राजनीतिक नाटक हमारे आसपास हो रहे भ्रष्टाचार, अन्याय और हर प्रकार के शोषण की बखिया उधेड़ता है, समकालीन जीवन के गहरे अंतर्विरोधों और इसके लिए जिम्मेदार व्यक्तियों को पहचानने की समझ देता है, चाहे वे सत्ताधारी हों या सत्ता विरोधी अथवा अन्य। उनके झूठ को सामने लाकर बेनकाब करता है। मनबहलाव से अधिक यह मनबदलाव का साधन है। दलित या स्त्रीत्ववादी साहित्य की भी एक राजनीति है। वहाँ हो रही अभिव्यक्ति भी एक राजनीति से प्रेरित है। मुट्ठी भर लोग देश-विदेश में स्वेच्छाचारिता पूर्वक धर्म, अर्थ और समाज पर अपना वर्चस्व कायम किये रहते हैं। व्यक्ति, समाज और व्यवस्था का विरोध, उनसे टकराकर बुनियादी सवालों को सुलझाने की कोशिश करता है। उसका लक्ष्य जागरूकता लाकर स्थिति में परिवर्तन करना है। स्त्री-पुरुष के बीच सत्ता संबंध भी इसी के अंतर्गत मानने चाहिए। सुरेन्द्र वर्मा का 'छोटे सैयद बड़े सैयद', लक्ष्मीनारायण लाल का 'सब रंग मोह भंग', गिरिराज किशोर का 'प्रजा ही रहने दो', शंकर शेष का 'पोस्टर' तथा 'एक और द्रोणाचार्य', भीष्म साहनी के 'हानूश' व 'कबिरा खड़ा बजार में', 'मुआवजे', ज्ञानदेव अग्निहोत्री का 'शुतुरमुर्ग' में चुनावी रणनीति और सत्ता हथियाने के हथकंडे देखे जा सकते हैं। धर्मपाल 'अकेला' का 'देखो यह पुरुष', कुसुम कुमार का 'सुनो शफाली' नंदकिशोर आचार्य का 'देहांतर' रमेश बक्षी का 'कसे हुए तार', मणि मधुकर का 'रसगंधर्व' और 'इकतारे की आँख' में यह दृष्टि उल्लेखनीय है। गिरीश कर्नाड का नाटक 'तुग़लक' इन्हीं कारणों से हिन्दी रंगमंच का सर्वाधिक लोकप्रिय नाटक बन गया। 'ख्याल भारमली', 'द्रौपदी' और 'स्वयंदीपा' में स्त्री-पुरुष के बीच सत्ता संबंध उभरते दिखाई देते हैं। कथासाहित्य में रूपांतरित— 'महाभोज', 'राग दरबारी', 'रंगनाथ की वापसी', 'मुख्यमंत्री' इस श्रेणी की महत्त्वपूर्ण रचनाएं मानी जा सकती हैं।

कुछ दिलचस्प बातों का उल्लेख आवश्यक होगा। दलित जीवन की सच्चाइयों को उकेरने के लिए 'कबीर' का मिथक लोकप्रिय है। भीष्म साहनी का 'कबिरा खड़ा बजार में', नरेन्द्र मोहन का 'कहे कबीर सुनो भई साधो', मणि मधुकर का 'इकतारे की आँख', शेखर सेन का 'कबीर' में कबीर की यातनाओं और संघर्ष के बहाने दलित चेतना का उभार है। इनमें असमानता और शोषण के विरुद्ध इस वर्ग का सामूहिक संघर्ष और विद्रोह दिखाई देता है। नाटकों में 'ययाति' का प्रसंग भी लोकप्रिय है। ज्ञानपीठ द्वारा पुरस्कृत विष्णु सखाराम खांडेकर का उपन्यास 'ययाति' एक महत्त्वपूर्ण घटना तो मानी ही जायेगी, गिरीश कर्नाड का 'ययाति' हिन्दी मंच पर बहुमंचित नाटक है। भीष्म साहनी का 'माधवी' स्त्री के स्वाभिमान और शोषण की कथा कहता है, वहाँ ययाति पात्र रूप में उपस्थित है। प्रवीर कुमार दास का काव्य नाटक है 'गालव-माधवी-ययाति कथा'। पात्र त्रिकोण में ययाति उपस्थित है। नंदकिशोर आचार्य के 'देहांतर' में भी महाभारत के पात्रों 'ययाति-देवयानी-शर्मिष्ठा-बिंदुमति, इन चार चरित्रों के माध्यम से नारी के द्वंद्व और दुविधा का चित्रण किया गया है। माधुरी सुबोध का नाटक 'स्वयंदीपा' में कच-देवयानी और ययाति-देवयानी-शर्मिष्ठा के बहाने स्त्री के अंतर्द्वंद्व, आहत स्वाभिमान और आत्मनिरीक्षण के साथ-साथ स्त्री-पुरुष संबंधों की छानबीन सामने आती है।

मौजूदा समय में नाटककार रंगमंच से कटा हुआ नहीं बल्कि जुड़ा हुआ है। नाटक मंच पर प्रस्तुत करने से पहले कथ्य की अभिव्यक्ति में निर्देशक शैली या भंगिमा तलाशता है। विमर्श की चिंता से अधिक उसे दृश्य बनाने की चिंता करता है। रंगशैलियों के मिश्रण से वह 'जीवन सत्य' को संप्रेषित करने के लिए अधिक उत्सुक रहता है। यों भी आज की रंगचेतना 'उत्सवधर्मी' अधिक है, जीवनधर्मी कम। 'जीवन सत्य' को वह 'वाद' या विमर्श के चश्मे से नहीं देखती। जहाँ वह विमर्शधर्मी दिखाई देती है, वहाँ आंदोलन के कारण नहीं, कुछ अन्य कारणों से। लोकनाटकों पर ध्यान दें तो भिखारी ठाकुर के 'बिदेसिया' और 'गबर घिचोर' (घी चोर) दलित चेतना के प्रतिनिधि नाटक कहे जा सकते हैं। दलित जीवन की मार्मिक सच्चाई अभिव्यक्त करते हैं। स्त्री देह पर पति, प्रेमी या पुत्र किसका अधिकार है। स्त्री देह के प्रति पुरुष का आकर्षण सहज है, किंतु आजीविका के लिए उसका अंचल से पलायन एक विवशता। पति विदेश में है, तो पेट की भूख के साथ तपती स्त्री देह। पुत्र का जन्म और समाज का नज़रिया। प्रश्न उठता है पुत्र पर किसका अधिकार? स्त्री उसे 'अपना पुत्र' कहती है। पिता से अधिक संतान पर माँ का अधिकार है। क्योंकि उसका मातृत्व ही प्रामाणिक है।

पुरुष उसे देह मात्र समझता है, उसकी संवेदना तक नहीं पहुँचता। नाटक में स्त्री सामाजिक और नैतिक मूल्यों को नकारती है। नाटककार ने किसी नैतिक मूल्य को नाटक पर हावी नहीं होने दिया। भिखारी ठाकुर स्त्री के प्रति उसी की दृष्टि से विचार करते हैं। पंच का संवेदनशील पुरुष उसे न्याय देता है। यौन शोषण के अतिरिक्त विवशता, वस्तु की तरह उसका इस्तेमाल— सबके विरुद्ध स्वर मुखरित हुआ है। स्थितियों और पात्रों की लय दर्शकों को बाँधती है। साथ ही हास्य का तड़का उसे बोझिल होने से भी बचाता है। हबीब तनवीर के नाटक भी आदिवासी और दलितों की कथा कहते हैं। उन्हीं की शोककथाओं और सांस्कृतिक उपकरणों का प्रयोग करते हैं। तीजन बाई ऐसी स्त्री हैं जो कला के प्रयोग द्वारा शोकजीवन का गायन करती हैं।

लोकतत्व और लोकसंस्कृति का प्रयोग करके हिन्दी नाटक अपनी रंगशैली तलाश रहा है। किन्तु हिन्दी रंगमंच अपने नाटककारों और कलाकारों को संरक्षण नहीं दे पाया है और न ही अपने दर्शकों को रंगशालाओं तक खींचने में समर्थ हुआ है। यह अत्यंत चिंतनीय विषय है। अन्य भाषाओं का रंगमंच आर्थिक रूप से स्वावलंबी है, हिन्दी का रंगकार्य नाटककारों और निर्देशकों के संसाधनों का ही मुखापेक्षी है। इस दिशा में चिंता और चिंतन अपेक्षित है। आर्थिक रूप से अपने पैरों पर खड़ा होना उसकी बड़ी चुनौती है। दर्शकों की भागीदारी से ही यह संभव होगा और उसका नाट्य भंडार समृद्ध होगा, तभी वह अपनी पहचान बना पायेगा।

◆◆◆

खेल उपलब्धियों के सात दशक

मनोज जोशी

...कुल जमा मतलब यह कि मौजूदा सरकार खेल जगत को आदर्श सुविधाएँ देने में आगे आई है। खिलाड़ियों के प्रदर्शन में सुधार भी हो रहा है। देश का परचम लहरा चुके खिलाड़ियों को सरकार की तमाम योजनाओं के साथ जोड़ा गया है। उम्मीद की जानी चाहिए कि खिलाड़ी इन सुविधाओं का भरपूर लाभ उठाएगे और जो कमाल कमाल कुछेक स्पर्धाओं ने 60 और 70 के दशक में किया, वैसा कमाल करने की होड़ कई दिग्गजों में लगेगी और यही होड़ भारत को ओलम्पिक में कई पदक दिलाने में मददगार साबित होगी।

विगत सात दशकों में भारत खेल के मैदान में डटा रहा। हार, जीत होती रही किन्तु खेल भावना जीवन्त रही। सिंहावलोकन करने पर जो दृश्य नजर आए, वे कुछ ऐसे हैं—

1960 के रोम ओलेम्पिक में मिल्खा सिंह के 400 मीटर रेस के टाइमिंग (45.73 सेकंड) को अगले करीब 40 साल तक कोई भारतीय छू नहीं पाया था। 1964 में टोक्यो ओलम्पिक में गुरबचन सिंह रंधावा के 110 मीटर बाधा दौड़ के टाइमिंग (14.0 सेकंड) के करीब तीन दशक से कोई भारतीय आस-पास भी नहीं फटक सका था। रामनाथन कृष्णन ने जो काम 1960 और 1961 में विम्बलडन के सिंगल्स के सेमीफाइनल में लगातार दो बार पहुँच कर किया, वहाँ तक कोई दूसरा भारतीय आज तक नहीं पहुँच सका जबकि आधुनिक युग में हमारी उपलब्धियाँ डबल्स और मिक्स्ड डबल्स तक सीमित रह गईं। कुश्ती में पहलवान खाशाबा जाधव ने जो उपलब्धि 1952 के हैलसिंकी ओलम्पिक में पदक जीतकर हासिल की, उसे इस खेल में दोहराने में भारत को 56 साल लग गए। इसी तरह फुटबॉल टीम ने 1962 के एशियाई खेलों में गोल्ड और 1956 के मेलबर्न ओलम्पिक में चौथा स्थान हासिल किया था मगर इस स्तर तक पहुँचना आज तक भारत के लिए सपना बनकर रह गया। हॉकी में हमें विश्व कप जीते 42 साल हो चुके हैं और ओलम्पिक गोल्ड जीते 37 साल।

इसके अलावा भारत की डेविस कप टीम 80 के दशक तक तीन बार फाइनल में पहुँची लेकिन आज भारत के लिए फाइनल तो दूर, डेविस कप के वर्ल्ड ग्रुप चरण तक पहुँचना ही बड़ी कामयाबी मानी जाती है। इसी तरह मिल्खा सिंह ने जो कमाल 1953 में कॉमनवेल्थ गेम्स में गोल्ड मेडल जीतकर हासिल किया, उसे कोई दूसरा भारतीय एथलीट 2010 में अपनी मेजबानी से पहले तक दोहरा नहीं सका। गुरबचन सिंह रंधावा ने 1962 के एशियाई खेलों में डिकेथलान (कुल 10 इवेंट्स—3 जम्प, 3 थ्रो, 4 रेस) में गोल्ड जीता, उसे भी कोई आज तक दोहरा नहीं सका। विशम्भर सिंह ने विश्व कुश्ती चैम्पियनशिप में सिल्वर मेडल जीतकर जो कामयाबी दिलायी थी, उससे बड़ी

सम्पर्कः 191ए, अनुकम्पा अपार्टमेंटस, अभयखण्ड, इंदिरापुरम, गाजियाबाद, (उ.प्र.), मोबाईलः 9953758804

कामयाबी हासिल करने में भारत को 43 साल लग गए, जब मॉस्को में सुशील विश्व चैम्पियन बने।

मतलब साफ है। इन तमाम उपलब्धियों को दोहराने में भारतीय खिलाड़ियों के पसीने छूट गए और इनमें से कई कामयाबियाँ तो इतिहास के पन्नों में ही कैद रह गईं। यह हालत तब है जबकि उस समय के मुकाबले भारतीय खिलाड़ियों की सुविधाओं में रिकॉर्ड तोड़ सुधार हुआ है और ओलम्पिक पदक जीतते ही भारतीय खिलाड़ी करोड़पति बन जाता है। उसे मान–सम्मान, पैसा, ओहदा सब–कुछ मिलता है।

इन तमाम आँकड़ों से बहुत निराश नहीं होना चाहिए। इन खेलों में आज कई–कई खिलाड़ियों में होड़ दिखाई देने लगी है, जो भविष्य के लिए अच्छा संकेत है। क्रिकेट, कुश्ती और बैडमिंटन जरूर ऐसे खेल हैं जहाँ भारत आज लगातार अच्छा प्रदर्शन कर रहा है। यहाँ तक कि ओलम्पिक में भी भारत को वैयक्तिक स्पर्धाओं में पहले से ज्यादा पदक हासिल होने लगे हैं। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि 1952 के बाद से अगले 44 वर्षों तक किसी भी भारतीय खिलाड़ी को वैयक्तिक स्पर्धा में कोई पदक हासिल नहीं हो सका। यहाँ तक कि 1976 में मांट्रियल, 1984 के लॉस एंजेलिस, 1988 के सोल और 1992 के बार्सिलोना ओलम्पिक में तो पूरा भारतीय दल खाली हाथ घर लौटा था।

दरअसल, 1996 के अटलांटा ओलम्पिक में लिएंडर पेस का पदक भारत के लिए टर्निंग पवाइंट साबित हुआ। इससे अगले ओलम्पिक में वेटलिफ्टर कर्णम मल्लेश्वरी ने महिलाओं के 69 मिलोग्राम वर्ग में कांस्य पदक हासिल किया। उन्हें ओलम्पिक में पदक जीतने वाली पहली भारतीय महिला होने का भी गौरव हासिल हुआ। 2004 के एथेंस ओलम्पिक में राज्यवर्धन सिंह राठौर ने पहली बार भारत को वैयक्तिक स्पर्धाओं में रजत पदक दिलाया। उन्होंने यह कामयाबी निशानेबाजी की डबल ट्रैप स्पर्धा में दिलाई। इससे अगले ओलम्पिक में इतिहास रचा गया। बीजिंग में हुए इन खेलों में भारत को पहली बार कुल तीन पदक हासिल हुए। अभिनव बिंद्रा ने निशानेबाजी की 10 मीटर एयर राइफल स्पर्धा में गोल्ड मेडल हासिल किया। इसके अलवा पहलवान सुशील ने भारत को 60 किलोग्राम वर्ग में और मुक्केबाज विजेंदर ने 75 किलोग्राम वर्ग में कांस्य पदक दिलाये। 2012 के लंदन ओलम्पिक में भारत को पहली बार कुछ छह पदक हासिल हुए। हालाँकि इस बार कोई गोल्ड हासिल नहीं हुआ लेकिन कुश्ती और निशानेबाजी में भारत को दो–दो पदक हासिल होना राहत की बात रही। कुश्ती में सुशील ने सिल्वर और योगेश्वर दत्त ने ब्रॉन्ज मेडल दिलाये जबकि निशानेबाजी में विजय कुमार ने 25 मीटर रैपिड फायर पिस्टल में सिल्वर और गगन नारंग ने 10 मीटर एयर राइफल इवेंट में ब्रॉन्ज मेडल अपने नाम किये। मुक्केबाज मेरीकॉम का पंच महिलाओं के 51 किलोग्राम वर्ग में ब्रॉन्ज पंच साबित हुआ जबकि सायना नेहवाल ने बैडमिंटन में पदक जीतकर वह कमाल कर दिखाया, जिसे प्रकाश पादुकोण से लेकर गोपीचंद जैसे दिग्गज तक नहीं कर पाए थे। रियो ओलम्पिक में पहलवान साक्षी मलिक ने इन खेलों में पदकों के सूनेपन को समाप्त किया और फिर पी.वी. सिन्धू ने सिल्वर मेडल जीता जो किसी भी भारतीय महिला की ओलम्पिक में सबसे बड़ी कामयाबी थी।

कुश्ती में उदयचंद और विशम्भर सिंह ने 60 के दशक में जो उपलब्धियाँ विश्व चैम्पियनशिप में दिलाईं, उन्हें दोहराने में भारत को चार दशक से भी ज्यादा इंतजार करना पड़ा। अलका तोमर ने ग्वांग्झू (चीन) में 2006 में कांस्य पदक जीतकर इस चुप्पी को तोड़ा जबकि रमेश गुलिया ने 2009 में डेनमार्क में इसी कामयाबी को दोहराया। सुशील ने 2010 में विश्व चैम्पियन बनकर इतिहास रच दिया। इसके बाद अमित दहिया ने सिल्वर और बजरंग, संदीप तुलसी यादव, गीता और बबीता ने ब्रॉन्ज मेडल जीतकर भारत की उपलब्धियों को आगे बढ़ाया।

बैडमिंटन जरूर एक अपवाद रहा है जहाँ भारत ने लगातार अच्छा प्रदर्शन किया। साठ के दशक में नंदू नाटेकर के नाम विदेश में पहला टूर्नामेंट जीतने का रिकॉर्ड दर्ज था लेकिन प्रकाश पादुकोण ने ऑल इंग्लैंड, विश्व कप और कॉमनवेल्थ गेम्स में गोल्ड जीतकर खुद को बेजोड़ साबित किया। उनके बाद सैयद मोदी ने आठ बार नैशनल चैम्पियन बनने के अलावा कॉमनवेल्थ गेम्स का गोल्ड अपने नाम किया। गोपीचंद ऑल इंग्लैंड खिताब जीतने के अलावा दुनिया में पाँचवें रैंक तक पहुँचे। फिर सायना नेहवाल विश्व जूनियर, सुपर सीरीज और ओलम्पिक पदक जीतने वाली देश की पहली खिलाड़ी बनी और पी.वी. सिंधू ने रियो ओलम्पिक में सिल्वर जीतकर सायना से भी बड़ी कामयाबी हासिल की। आज हमारे बैडमिंटन खिलाड़ियों के लिए चीन की चुनौती कोई दु:स्वप्न नहीं है। हमारे खिलाड़ी आज कभी ओलम्पिक चैम्पियन को हरा रहे हैं, तो कभी दुनिया के नम्बर एक खिलाड़ी को। यहाँ तक कि

सुपर सीरीज और ग्रांड पी मुकाबलों के फाइनल तक भारतीय खिलाड़ियों के बीच होने लगे हैं। चीन से लेकर तमाम दिग्गज टीमों के खिलाड़ियों की मौजूदगी में ऐसा होना गर्व से सीने को और भी चौड़ा करता है। किदाम्बी श्रीकांत ने 12 दिन में दो सुपर सीरीज खिताब जीतकर चमत्कारिक प्रदर्शन किया है और उनका लगातार तीसरे सुपर सीरीज खिताब के फाइनल में पहुँचना भारत की अब तक सबसे बड़ी कामयाबी है। भारत के इस खेल में दबदबे का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि आज भारत के छह पुरुष खिलाड़ी दुनिया के शीर्ष 50 खिलाड़ियों में शामिल हैं। 62वें नम्बर के पी. कश्यप भी इन छह खिलाड़ियों को हराने का माद्दा रखते हैं। दो सुपर सीरीज खिताब जीतने वाली श्रीकांत इस साल सिंगापुर सुपर सीरीज के फाइनल में एक अन्य भारतीय साईं प्रीत से ही हारे हैं। महिला बैडमिंटन में दो पदक आने के बाद ऐसा लग रहा था कि भारतीय पुरुष खिलाड़ी हाशिये पर चले गये हैं लेकिन सच यह है कि सात पुरुष सिंगल्स खिलाड़ियों का देश में ऐसा पूल तैयार हुआ है, जिनमें कोई भी किसी को हरा सकता है। अगर यह कहा जाए कि भारत आज बैडमिंटन में देश का नम्बर वन खेल बन गया है तो ऐसा कहना गलत नहीं होगा और इसके लिए पुलैला गोपीचंद और उनकी हैदराबाद स्थित एकेडामी को बड़ा श्रेय जाता है। उनकी कड़ी मेहनत से भारतीय बैडमिंटन का परचम दुनिया भर में लहराने लगा है। जिस क्रिकेट टीम को 1932 में मान्यता मिलने के बाद पहली जीत के लिए 20 साल इंतजार करना पड़ा था, वह टीम आज दुनिया की नम्बर एक टीम है। 1983 में कपिल के देवों का विश्व कप जीतना दुनिया के सातवें अजूबे से कम नहीं था क्योंकि पहले दो विश्व कप में केवल एक मैच जीतने वाली यह टीम तीसरे विश्व कप में पिछली दो बार की चैम्पियन टीम को हराकर खिताब जीती थी। इस कामयाबी को दोहराने में भारत को 28 साल लगे। भारत ने 2011 में महेंद्र सिंह धोनी की अगुवाई में दूसरी बार 50 ओवर का विश्व कप जीता। 1983 में मोहिंदर अमरनाथ अगर टूर्नामेंट के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी थे तो 2011 में युवराज सिंह के नाम यह सेहरा बँधा। बीच में 2007 में धोनी की अगुवाई में ही टीम ने सचिन, सौरभ, द्रविड़ और लक्ष्मण के बिना पहले टी-20 विश्व कप का ताज अपने नाम किया।

बेशक टीम इंडिया के प्रदर्शन में लगातार सुधार हुआ है लेकिन विदेश में सीरीज जीतने के मामले में भारत का रिकॉर्ड आज भी काफी खराब है। दोयम दर्जे की श्रीलंका टीम को उसी की जमीं पर हराना रिकॉर्ड के लिहाज से तो उपलब्धि हो सकती है लेकिन इस कामयाबी से भ्रम पालना सही नहीं होगा। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यह श्रीलंका की हाल के वर्षों की सबसे कमजोर टीम है और उसके कुछेक अच्छे खिलाड़ी पूरी तरह आउट ऑफ फॉर्म हैं।

धोनी की कप्तानी में टीम ने न्यूजीलैंड में 41 साल बाद सीरीज जीती थी। राहुल द्रविड़ की अगुवाई में इंग्लैंड को 2007 में इंग्लैंड में 1-0 से हराया था और सौरभ गांगुली की टीम ने ऑस्ट्रेलिया से 2004 में 1-1 से सीरीज ड्रॉ की थी। भारत को 1971 की अजित वाडेकर की उस टीम से सबक सीखना चाहिए जिसने वेस्टइंडीज और इंग्लैंड को उसी की जमीं पर मात दी थी। यह वह समय था, जब वेस्टइंडीज टीम की दुनिया भर में तूती बोला करती थी और भारत ने ही इंग्लैंड टीम के लगातार 26 मैचों से अपराजित रहने के क्रम को तोड़कर इतिहास रचा था। इसी तरह 1967-68 में भारत को विदेश में पहली जीत हासिल हुई थी। तब भारत ने न्यूजीलैंड को न्यूजीलैंड में 3-1 से शिकस्त दी थी। ऑफ स्पिनर इरापल्ली प्रसन्ना उस जीत के महानायक साबित हुए थे।

क्या सुनील गावस्कर के रूप में एक ऐसे खिलाड़ी के सीरीज में 774 रनों को कोई बराबरी कर पाएगा, जिसकी वह पहली सीरीज थी और वह भी एक खूंखार टीम के खिलाफ। इस सीरीज में गावस्कर ने एक डबल सेंचुरी सहित कुल चार सेंचुरी लगाकर हैरतअंगेज प्रदर्शन किया था। वेस्टइंडीज के खिलाफ यह वह सीरीज थी जिसमें गावस्कर के अलावा दिलीप सरदेसाई ने 642 रन बनाए थे और प्रसन्ना, बेदी और वेंकट की तिकड़ी ने वेस्टइंडीज के बल्लेबाजी को बौना बना दिया था। अजित वाडेकर की उस टीम के साने क्लाइव लॉयड, रोहन कन्हाई और गैरी सोबर्स जैसे धाकड़ मौजूद थे। गौरतलब बात यह है कि वह सीरीज भारत ने अपने तुरूप के इक्के यानी चंद्रशेखर के बिना जीती थी।

इसी तरह 1986 में कपिल की टीम में इंग्लैंड में 2-0 से पटखनी दी थी। क्या कपिलदेव, चेतन शर्मा, रोजर बिन्नी और मनिंदर सिंह के उस आक्रमण को कमतर करके आँका जा सकता है जिसने उस जीत में अहम भूमिका निभाई थी और दिलीप वेंगसरकर का बल्ला उस सीरीज में इंग्लैंड के आक्रमण पर भारी पड़ा था। इसी तरह राहुल द्रविड़ की अगुवाई में इंग्लैंड को इंग्लैंड में हराकर उस टीम की जान में जान आ गई थी जो

विश्व कप में बुरी तरह से पराजित हुई थी और ग्रेग चैपल के इस्तीफे के बाद टीम के साथ कोई कोच नहीं था और रही-सही कसर सहवाग और हरभजन की खराब फॉर्म की वजह से दो मैच विनर खिलाड़ियों के बाहर होने से पूरी हो गई थी।

विदेशी जमीं पर जीत की सच्चाई यह है कि हम आज तक ऑस्ट्रेलिया और साउथ अफ्रीका में टेस्ट सीरीज नहीं जीत पाए हैं। हमने श्रीलंका की मौजूदा सीरीज सहित जो 18 जीतें अब तक दर्ज की हैं, उनमें से ज्यादातार एशियाई उप-महाद्वीप में हासिल की गई है। इनमें श्रीलंका से तीन, बांग्लादेश से चार और पाकिस्तान से एक सीरीज जीत शामिल है। इसी तरह एशियाई उप-महाद्वीप के बाहर हमने जिम्बाब्वे से एक और न्यूजीलैंड से दो सीरीज जीती हैं। वेस्टइंडीज से हमने उसी की जमीं पर जिन तीन मौकों पर सीरीज जीती हैं, उनमें दो ऐसे मौके थे, जब यह टीम पूरी तरह से चुक चुकी थी। आज हमारे सामने वैस्टइंडीज और इंग्लैंड के खिलाफ 1971 और इंग्लैंड के ही खिलाफ 1986 की जीतें ही हमें इतराने का मौका देती हैं और मौजूदा टीम को उसी से सीख लेने की जरूरत है। जिस दिन यह टीम ऑस्ट्रेलिया और साउथ अफ्रीका को उसी की जमीं पर हरा देगी, तभी उसे सम्पूर्ण और ऑल टाइम ग्रेट टीम कहना ठीक होगा। क्रिकेट में वीनू मांकड़, कपिलदेव, सचिन तेंदुलकर, महेन्द्र सिंह धोनी, राहुल द्रविड़ और विराट कोहली के रिकॉर्ड तोड़ प्रदर्शन ने इस खेल को लोकप्रियता के सबसे ऊँचे पायदान पर पहुँचा दिया।

एथलेटिक्स में पी.टी. ऊषा भारत की उड़नपरी साबित हुईं। 1988 के सोल एशियाड में उन्होंने भारत को मिले कुल पाँच गोल्ड मेडल में से चार अपने नाम किये। यही उषा 1980 में मॉस्को ओलम्पिक में 400 मीटर बाधा दौड़ में एक सेकंड के सौंवे हिस्से से ब्रॉन्ज मेडल से चूक गई थीं। उनसे पहले श्रीराम सिंह ने 800 मीटर दौड़ में 1974 और 1978 के एशियाई खेलों में गोल्ड मेडल हासिल किया, जबकि 1970 के एशियाड में वह दूसरे स्थान पर रहे। उन्होंने 1976 के मॉन्ट्रियल ओलम्पिक में इसी 800 मीटर दौड़ में वह सातवें स्थान पर रहे लेकिन उन्होंने एक मिनट 45.77 सेकंड के साथ एशियाई रिकॉर्ड बनाया। हालाँकि उनका एशियाई रिकॉर्ड तो टूट गया लेकिन बतौर राष्ट्रीय रिकॉर्ड उनका यह प्रदर्शन आज भी कायम है।

मुक्केबाजी में विजेंद्र और मेरीकॉम ने ओलम्पिक की कामयाबी के अलावा एशियाई खेलों में भी गोल्ड मेडल जीते। उनसे पहले के हवा सिंह ने एशियाई खेलों में दो गोल्ड मेडल अपने नाम किये जबकि डिंको सिंह, पद्म बहादुर मल्ल, विकास कृष्ण यादव और कौर ने एक-एक गोल्ड हासिल किये। इसी तरह कुश्ती में करतार सिंह ने दो और मारूति माने, गणपत

आंदल्कर, मलवा, मास्टर चंदगीराम, सतपाल और योगेश्वर दत्त ने एक-एक गोल्ड अपने नाम किए।

जिस तरह पाकिस्तान का स्केश में दबदबा रहा, वैसा ही दबदबा भारत का बिलियर्डस और स्नूकर में रहा। विल्सन जोंस, माइकल फरेरा, गीत सेठी, ओम अग्रवाल, सुभाष अग्रवाल, मनोज कोठारी, पंकज आडवाणी और यासीन मर्जेंट ने विश्व स्तर पर भारत का परचम लहराकर विशिष्ट पहचान बनाई। शतरंज में विश्वनाथ आनंद ने 1988 में देश का पहला ग्रैंड मास्टर बनने के बाद पीछे मुड़कर नहीं देखा और उन्होंने विश्व स्तर पर भारत की बादशाहत कायम की।

आजादी के बाद से लेकर अब तक भारत ने एशियाई खेलों में मेजबानी दो बार (1951 और 1982) और कॉमनवेल्थ गेम्स की मेजबानी एक बार (2010) की। कॉमनवेल्थ गेम्स में भारत ने निशानेबाजों और पहलवानों के शानदार प्रदर्शन की मदद से पहली बार पदकों की सेंचुरी पार की और जिम्नास्टिक में आशीष कुमार के रूप में भारत को पहली बार पदक (एक सिल्वर, एक ब्रॉन्ज) हासिल हुए। कबड्डी में भारत का एशियाई खेलों में विश्व कप में पूरी तरह दबदबा देखा गया। 1990 में इस खेल को एशियाई खेलों में शामिल किया गया था, तब से अब तक भारत ने इन खेलों में अपना गोल्ड मेडल कभी नहीं गँवाया। यहाँ तक कि 2010 में एशियाड में शामिल महिला कबड्डी में भी भारत सिरमौर रहा। यही स्थिति विश्व कप में भी रही।

कुल जमा मतलब यह कि मौजूदा सरकार खेल जगत को आदर्श सुविधाएँ देने में आगे आई है। खिलाड़ियों के प्रदर्शन में सुधार भी हो रहा है। देश का परचम लहरा चुके खिलाड़ियों को सरकार की तमाम योजनाओं के साथ जोड़ा गया है। उम्मीद की जानी चाहिए कि खिलाड़ी इन सुविधाओं का भरपूर लाभ उठाएगे और जो कमाल कमाल कुछेक स्पर्धाओं ने 60 और 70 के दशक में किया, वैसा कमाल करने की होड़ कई दिग्गजों में लगेगी और यही होड़ भारत को ओलम्पिक में कई पदक दिलाने में मददगार साबित होगी।

◆◆◆

रचनाकारों से अनुरोध

- कृपया अपनी मौलिक और अप्रकाशित रचना ही भेजें।
- कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप कराकर भेजें। ई-मेल द्वारा प्रेषित रचना यूनिकोड में टंकित करें या रचना के साथ टंकित फॉन्ट अवश्य भेजें।
- कृपया लेख, कहानी आदि एक से अधिक और कविता आदि दो से अधिक न भेजें।
- रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हो। शब्द-सीमा 3000 शब्दों तक है।
- रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन-परिचय भी प्रेषित करें।
- रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कहानी के साथ विषय से संबंधित कलाकृतियाँ (हाई रेज्योलेशन फोटो) अवश्य भेजें।
- यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्धृत किए गए हैं तो वर्तनी को कृपया भली-भांति जांच लें।
- यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों तो यह सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।
- रचनाएं किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएंगी। अत: उसकी प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।
- स्वीकृत रचनाएं यथासमय प्रकाशित की जाएंगी।
- रचना के अंत में अपना पूरा पता, फोन नंबर और ई-मेल पता स्पष्ट शब्दों में अवश्य लिखें।
- आप अपने सुझाव व प्रतिक्रिया कृपया pohindi.iccr@nic.in पर प्रेषित कर सकते हैं।

हिंदी आलोचना : आज़ादी के बाद

डॉ. आरती स्मित

... नई कविता के जीवनकाल में गैर वामपंथी सैद्धान्तिक समीक्षा के क्षेत्र में कुछ गंभीर कार्य हुए। छठे दशक में उभरी क्षोभयुक्त साहित्यिक प्रवृत्तियों ने लेखकों को समीक्षा के क्षेत्र में आने को प्रोत्साहित किया। नई कहानी, अकविता, अकहानी, सचेतन कहानी-ये सभी समीक्षा की कसौटी पर स्वयं को कस रही थीं। इस दशक में लेखकों ने लेखन से अधिक वक्तव्यों पर विचार-विमर्श किए। छठे दशक के अंतिम चरण में ही पत्रकारिता में इतिहास और समाज की दुनिया में सीधा हस्तक्षेप करने की ताकत आई और इस नवीन ऊर्जा को प्रस्फुटित करने में हिंदी कवियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।...

हिन्दी आलोचना पिछले सात दशक में कितने चोले बदल चुकी, उसका रूप, उसका सौन्दर्य-बोध वर्तमान में उत्कर्ष पर है या अपकर्ष पर—ये तमाम बातें एक बार फिर साहित्यकारों के मन को मथने लगी हैं। वर्तमान में, ''हिंदी साहित्य से आलोचना विलुप्त हो रही है'', ''नामवर सिंह अंतिम आलोचक हैं'', ''आलोचना के प्रतिमान बासी पड़ चुके'' आदि-आदि प्रतिक्रियाएँ हवा में तैर रही हैं। साहित्यकारों में भी वे साहित्यकार, जो सृजन की विभिन्न विधाओं पर लेखनी चलाते हुए आलोचना के क्षेत्र में भी हस्तक्षेप करते हैं, एक ओर वे हिंदी आलोचना की दयनीत स्थिति से दुखी हैं, दूसरी ओर उसकी समृद्धि को नवीनतम रूप में भी प्रस्तुत करने हेतु प्रयासरत है, जिन्हें स्थापित और प्रतिष्ठित आलोचक समाज एक स्वर में खारिज करता है।

नि:संदेह आज कृतियों की समीक्षा का क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक व्यापक हुआ है। कृतियों पर समीक्षात्मक विचार रचनाकारों को अधिक तुष्टि प्रदान करते हैं। कितने ही रचनाकार ऐसे हैं, जिन्हें साहित्य समाज ने आलोचक नहीं माना, किंतु जिनकी समीक्षा के तेवर प्रखर है, भले ही वे प्रतिष्ठित आलोचकों के बनाए गए सैद्धान्तिक साँचों में फिट ना आते हों, मगर उनके वैचारिक प्रबुद्धता को महज यह कहकर बहिष्कृत या तिरस्कृत नहीं किया जा सकता कि वे रचनाकार हैं। परम्परा की ओर दृष्टिपात करें तो आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध, डॉ. नामवर सिंह प्रभृत विद्वान आलोचक हिंदी साहित्य को एक ही शताब्दी की देन हैं, जिनकी तुलना जॉर्ज लुकाच, टी.एस. इलियट, रेमंड विलियम्स से की जाती है। साठोत्तर रचनाकारों का आलोचना-कर्म से प्रवृत्त होना और साहित्य को समृद्ध करना नकारा नहीं जा सकता, कारण जो भी हो। मसलन, अज्ञेयकालीन कई रचनाकारों ने आलोचना-कर्म की ओर इसलिए पग बढ़ाए क्योंकि वे तत्कालीन आलोचना-कर्म से असंतुष्ट थे। 'तार सप्तक' की भूमिका में कहा गया था, ''इस सहयोगी योजना

सम्पर्क : डी-136, गली नं. 5, गणेश नगर, पांडव नगर कॉम्प्लेक्स, दिल्ली-110092, मोबाइल : 08376836119

में तार सप्तक के लेखक ही उसके प्रकाशक और संपादक भी हैं और अपने जीवनकार भी और प्रवक्ता भी।'' लक्ष्मीकांत वर्मा ने नई कविता के विकासकाल में ही अपने लेखों द्वारा इस आवश्यकता पर बल दिया कि ''नई कविता के विकास के साथ उनका विवेचनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया जाए।''

नई कविता के लेखकों ने आलोचना को निश्चय ही व्यापकता प्रदान की। अज्ञेय और धर्मवीर भारती के साहित्यिक 'परिमल' ने वामपंथ के विरुद्ध अमेरिका और यूरोप में बीसवीं सदी के मध्य में स्थित वैचारिक अभियान को हिंदी में आधार और विस्तार दिया। 'आलोचना' पत्रिका में प्रगतिशील लेखकों के संपादकत्व में वामपंथी साहित्य का विस्तार हुआ, ठीक इसके विपरीत, 'परिमल' के साहित्यकारों व संपादकत्व में वामपंथ के विरुद्ध विचार पूरी तीक्ष्णता से प्रकट हुए। इसी प्रकार 'नई कहानी' के दौर में कमलेश्वर और राजेंद्र यादव द्वारा लिखी गई आलोचनाएँ साहित्यिक राजनीति से प्रभावित रहीं। दूसरी ओर वियजदेव नारायण साही और मुक्तिबोध 'नई कविता' के ऐसे ठोस कवि-आलोचक हुए जिन्होंने नई कविता की मूल स्थापनाओं की निर्भीक और निष्पक्ष व्याख्या की। आज हिंदी कविता के इतिहास में निराला के बाद नागार्जुन, मुक्तिबोध, त्रिलोचन, श्मशेर बहादुर सिंह, केदारनाथ अग्रवाल जैसे कवियों का पुनर्मूल्यांकन हुआ, इसे प्रतिशील विचारधारा का सहयोग कहा जा सकता है।

नई कविता के जीवनकाल में गैर वामपंथी सैद्धान्तिक समीक्षा के क्षेत्र में कुछ गंभीर कार्य हुए। छठे दशक में उभरी क्षोभयुक्त साहित्यिक प्रवृत्तियों ने लेखकों को समीक्षा के क्षेत्र में आने को प्रोत्साहित किया। नई कहानी, अकविता, अकहानी, सचेतन कहानी-ये सभी समीक्षा की कसौटी पर स्वयं को कस रही थी। इस दशक में लेखकों ने लेखन से अधिक वक्तव्यों पर विचार-विमर्श किए। छठे दशक के अंतिम चरण में ही पत्रकारिता में इतिहास और समाज की दुनिया में सीधा हस्तक्षेप करने की ताकत आई और इस नवीन ऊर्जा को प्रस्फुटित करने में हिंदी कवियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

ध्यातव्य है कि जहाँ समाज की हलचल से सीधा जुड़ाव प्रगतिशील लेखकों का था और प्रयोगवादी व नई कविता के लोग इस सवाल करे खारिज करते आए थे, वहीं पत्रकारिता के क्षेत्र में दूसरी श्रेणी के कवि लेखक अधिक आए; यह भी कि अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं में उनकी टिप्पणी लोकधर्मी थी; समय, समाज, राजनीति और संस्कृति के सवाल पर उनका वामपंथियों-सा नहीं था। अधिकांश कवि राजनीति से अपनी वैचारिक विरक्ति त्यागकर कविताओं में सामाजिक सरोकार के महत्वपूर्ण प्रवक्ता हो गए थे। आज इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में भी इन विचारों-सरोकारों की ज्वाला जीवंत है। इसी जीवंत परिवर्तन ने व्यावहारिक समीक्षा को बढ़ावा दिया, जिसकी नींव में समाज, इतिहास, राजनीति के साथ-साथ युगों से चली आ रही मिथकीय परम्पराओं का अंधानुकरण था। डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल मानते हैं कि ''बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में आपातकाल का अंधकार घना होते ही रचना और आलोचना में समय, समाज, संस्कृति, परंपरा, प्रयोग, प्रगति, आधुनिकता, काव्यभाषा, बिम्ब, प्रतीक, मिथक, लय-गति के प्रति एक सजग चौकन्नापन पैदा हुआ है। हिंदी आलोचना में यह अनुभव बहुत सुखद है कि आलोचना अपने समय के तीखे प्रश्नों, तर्कों से टकराकर रचना से सीधे संवाद करती रही है। आज आलोचक रचना का तर्क है, ऐसा तर्क जिसमें वृद्धि की मुक्तावस्था है और हमारी पहचान का, जातीय अस्मिता का विवेक।''

बीसवीं सदी के पांचवें दशक में प्रगतिशीलों एवं परिमल परंपरा के रचनाकारों के बीच आलोचना को लेकर टकराव तो था ही, इनसे भी अधिक टकराहट वामपंथियों में परस्पर हो रही थी। रामविलास शर्मा, रांगेय राघव, प्रकाशचंद्र गुप्त प्रभृत स्थापित आलोचक पारस्परिक कलह को बढ़ावा ही दे रहे थे। सत्तर के दशक में पनपी नई वामपंथी आलोचना के मार्ग में कई चुनौतियाँ, उलझनें और सवाल खड़े रहे। डॉ. नामवर सिंह इस दिशा में जिन विवादों से घिरते रहे, वे वामपंथी आलोचना की अनिवार्य कठिनाइयाँ मानी जा सकती है। किन्तु इसी काल में मैनेजर पांडेय, परमानंद श्रीवास्तव या विश्वनाथ त्रिपाठी जैसे आलोचक व्यावहारिक समीक्षा को अधिक बल देते रहे। मुद्राराक्षस की दृष्टि में, ''नामवर सिंह ऐसे साहित्यचिंतक हैं, जो रचना-विवेक को इतिहास, समाज, दर्शन और समाजशास्त्र के बृहत्तम परिदृश्य पर खड़ा करते हैं। उनका साहित्य और उसका विज्ञान, दर्शन, समाजशास्त्र, इतिहास दर्शन पिछली सदी में ही बहुत कुछ खारिज कर चुका।... वस्तुत: वे साहित्य-चिंता और चिंतन के संसार में सर्वाधिक असहजता बाँटते हैं।'' अरविंद

त्रिपाठी मानते हैं कि ''नामवर जी आज हिंदी के अकेले ऐसे आलोचक हैं जिन्होंने आलोचना को यथार्थवादी, लोकोन्मुख और रचना की समग्र पहचान के साथ आलोचना की दुनिया में संवाद करने के माहौल को साहित्य के क्षितिज पर गर्माया है।... उनकी आलोचना आचार्य शुक्ल की तरह तत्वान्वेषी और श्रीकांत वर्मा की कविता की तरह जिरह करने वाली साबित हुई है।''

नामवर सिंह की आलोचनात्मक कृति 'वाद विवाद और संवाद' की भूमिका में नामवर जी ने लिखा है, ''आलोचना-कर्म, वाद, विवाद और संवाद नहीं है तो और क्या है? लेखक-आलोचक के बीच, आलोचक-आलोचक के बीच मौखिक हो या लिखित संवाद के ही संकल्प के साथ 1967 में 'आलोचना' शुरू की थी। पहले भी आलोचना के इसी स्वधर्म को निभाने की कोशिश की गई। लेकिन मुश्किल यह है कि संवाद की बातें तो बहुत होती हैं, संवाद करने के लिए लोग नहीं मिलते। वह संवाद क्या जिसमें कुछ वाद-विवाद ना हो लेकिन हिंदी संस्कृति में वाद-विवाद को अच्छा नहीं समझा जाता। कबीर तक से लोग इसलिए बिदकते हैं कि उनमें खंडन-मंडन है।''... खंडन-मंडन की यही शिकायत मार्क्सवादी आलोचकों से भी है और अक्सर कहा जाता है कि संवाद में उनका विश्वास नहीं है।'' नई कविता से लेकर अब तक संघर्षशील रहने वाले नामवरजी का वक्तव्य है कि ''1968 के आसपास भारतीय राजनीति में और उसके समानांतर हमारे साहित्य में जो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए थे, उसकी झलक तो '68' में मिली थी, पर उसका वेग बाद में प्रकट हुआ। नक्सलवादी आंदोलन चाहे जितना भी दु:साहसिक रहा हो, उसने हमारी संपूर्ण चेतना को झकझोर दिया।... 1968 के बाद हमारे देश की राजनीति में और साहित्य में जो लड़ाकूपन, एक जुझारूपन आया, अनेक नए कवि एक नई भाषा और एक नई संवेदना लेकर आए... मुझे लगता है कि 'कविता के नए प्रतिमान' में जो नहीं था—परवर्ती परिस्थितियों के कारण मैं उसे अधिक स्पष्टता से देख सका।''

हिन्दी के कई आलोचकों के द्वारा पिछले 10-15 वर्षों की आलोचना-भाषा पर यह आरोप लगा है कि वह पत्रकारिता की भाषा हो गई है। इस संदर्भ में नामवर जी का मानना है कि आलोचना की भाषा का सवाल केवल भाषा का सवाल नहीं है।... हाल के वर्षों में पत्र-पत्रिकाओं में जो व्यावसायिकता आई है, वह इस व्यावसायिक आलोचना के क्षरण का सीधा कारण है।... आलोचना की भाषा की समस्या इस प्रकार माध्यम की समस्या है। माध्यम की वास्तविक समस्या का सामना वे आलोचक करते हैं जिनके लिए आलोचना एक सर्जनात्मक प्रयास है। इस बात से तो कतई इनकार नहीं किया जा सकता कि आलोचना को नवीन सृजन मानने वाले आलोचक ही भाषा के परिप्रेक्ष्य में चिंता और चिंतन करते हैं। विजयदेव नारायण साही के अनुसार, ''आलोचक की सबसे बड़ी शक्ति है—उसका साहस। जब तक आलोचक में सही बात कहने का साहस नहीं होगा तब तक उसकी भाषा अमूर्त, उलझाऊ और सस्ती होगी।'' डॉ. रामविलास शर्मा को भी यह बोध था कि भाषा असितत्व और व्यक्तित्व दोनों ही है। भाषा की स्मृति है, परम्परा है, परम्परा से फूटती आधुनिकता है, इतिहास है, इतिहास चेतना है। परम्परा को जाने बिना साहित्य नहीं जाना जा सकता। भाषा स्वयं में समग्र संस्कृति है। भाषा में ही सभी प्रकार का चिंतन होता है, प्रक्रिया होती है, भाषा से बाहर कुछ नहीं होता।''

यहाँ कृष्णदत्त पालीवाल जी की उक्ति का स्मरण हो उठता है—''आलोचक कंज़्यूमर नहीं है, नए अर्थ का उत्पादक है, कृति के वास्तविक अर्थ का स्रष्टा।... आलोचना कृति के अनुभव का ग्रहण है।... वह कृति के आस्वाद का सहज अनुभव है।... आलोचना का कार्य है—रचना को भेदकर उसके अंत:करण में प्रवेश करना। हिन्दी आलोचना रचना की पिछलग्गू ना होकर, सहचर है और आलोचक उसका साथी।'' नई कविता के पुरोधा कवि-आलोचक विजयदेव नारायण साही ने अपने बहुचर्चित निबंध 'लघुमानव के बहाने हिन्दी कविता पर एक बहस' में लिखा है, ''मेरी समझ में आलोचना का काम साहित्यिक कृति की संवेदना को जबर्दस्ती खींचकर पाठक तक पहुँचाना नहीं है। आलोचना सिर्फ इतना कर सकती है कि पाठक के जो भी वैचारिक या धारणात्मक पूर्वग्रह, जाने या अनजाने अपनी उपस्थिति के कारण पाठक को उस ओर उन्मुख होने से रोक रहे हैं, जहाँ से 'काव्य' का प्रभाव प्रवाहित हो रहा है, उन्हें विनष्ट करके पाठक को एक उचित तत्परता की उस अवस्था में छोड़ दे।'' (छठवाँ दशक, पृ. 260)

मुक्तिबोध ने आलोचना को 'सभ्यता-समीक्षा' मानते हुए कविता की भाँति ही आलोचना को भी सांस्कृतिक प्रक्रिया माना है, अपनी आलोचनात्मक कृति 'नई कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध—समीक्षा की समस्याएँ'' में उन्होंने लिखा है, ''क्या यह दुहराया जाए कि समीक्षक का पहला कर्तव्य यह है कि वह किसी भी कलाकृति के अंतर्तत्वों को, उनके प्राणतत्वों को, भावना-कल्पना को हृदयगम करे और एक विशेष दिशा की ओर प्रवाहित अंतर्धारा की गति को और उसकी अंतिम परिणति को सहानुभूतिपूर्वक अच्छी तरह समझे और तदुपरांत उनका विश्लेषण करे।'' (पृष्ठ 134)

आलोचना काल एवं परिस्थिति के बदलते स्वरूप के साथ अपने आपको परिष्कृत करने की माँग करती है। हिन्दी आलोचना में लघुमानव सिद्धांत को लेकर मार्क्सवादी विरोध के स्वर मुखरित हुए, तो विजयदेव नारायण साही ने अपनी प्रबुद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त की कि ''हम मानकर चलें कि लघु की कल्पना मनुष्य में जो 'महत्' है, उसका निषेध नहीं करती।... हाँ, इस पर बहस हो सकती है कि लघु और महत् जहाँ मिलते हैं, उस मनोभूमि की अनुभूति कैसी है? दोनों के पारस्परिक संबंध की प्रक्रिया क्या है?... आलोचना साहित्य का दर्शनशास्त्र है और उसका एक काम यह भी है कि वह संश्लिष्ट उत्तर का विश्लेषण करके उसकी सीमा-रेखा को सुस्पष्ट और तीक्ष्ण बनाए।'' (छठवाँ दशक, पृ. 262-263)। कृष्णदत्त पालीवाल मानते रहे कि समकालीन हिन्दी आलोचना 'वाद-विवाद-संवाद' कि सक्रिय परिदृश्य के साथ आचार्य शुक्ल जैसे पश्चिमी आतंक से मुक्त, स्वतंत्र गंभीर आलोचक परंपरा का विकास भी है और एक खास अर्थ में उनकी दिशा-दृष्टि को विवेक-वयस्कता से बढ़ाने वाली भी। इसी दृष्टि से डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. देवराज, अज्ञेय, मुक्तिबोध, लक्ष्मीकांत वर्मा, विजयदेव नारायण साही, मलयज, रमेशचंद्र शाह, अशोक वाजपेयी, नन्दकिशोर आचार्य, विजय बहादुर सिंह, नामवर सिंह और नन्दकिशोर नवल जैसे आलोचकों ने मूल्यांधता के समय के रचनात्मक-आलोचनात्मक परिदृश्य में सक्रिय-सीधा हस्तक्षेप किया है। इस आलोचना का उद्देश्य तर्कों, बहसों, प्रश्नाकुलताओं से रचना को परास्त करना नहीं है, बल्कि भारी तैयारी से कलाकृति के अंतर्जगत की छानबीन, व्याख्या, भाष्य, विमर्श से रचना-प्रभाव के सच को समझते हुए पाठक तक पहुँचाना है।

यहाँ मार्क्सवादी और ग़ैर मार्क्सवादी हिन्दी आलोचकों के रास्ते अलग-अलग रहे हैं, लेकिन सत्य में अवगाहन करने का अरमान एक-सा रहा है। पालीवाल जी के इस विचार से भी मत-भिन्नता संभव नहीं कि मतभेदों का उबरना रचना के सत्य के द्वार को चौड़ा करना है। यहाँ आलोचना रचना के पीछे नहीं चलती, वह अपनी अलग विचार-मशाल जलाती है। संभवतः इन्हीं विचारों से लबालब नामवर जी, जिन्हें पारम्परिक मार्क्सवादी साहित्य सैद्धांतिकों के बाद का अकेला ऐसा साहित्य-चिंतक माना गया है, जिस विवेक के प्रकर्ष से साहित्य को जोड़ते हैं वह पहले वैचारिक युद्ध का संसार है। वे इस युद्धभूमि में तनकर खड़े हो, सवालों के साक्षी बने नजर आते हैं। उनके द्वारा व्यावहारिक आलोचना की कोशिश अनगिनत विवादों और असहमतियों को ही जन्म देती है।

वर्तमान समय की त्रासदी यह है कि नई पीढ़ी में कोई गंभीर आलोचक दिखते नहीं या तो नामवर जी की सहृदयता से लाभान्वित कुछ अनुयायी हैं जिन्होंने अपनी सोच को खुलने से पहले ही जोर लगाकर बंद कर दिया या वे, जो आलोचना समाज का हिस्सा बने रहने के लिए उन्हीं सिद्धांतों को दुहराते रहते हैं जो पूर्व-स्थापित हैं। आज रचना संसार अपेक्षाकृत व्यापक हुआ है। इस क्षेत्र में आए दिन नए प्रयोग हो रहे हैं, किन्तु 'समकालीन कविता का जनपद' संवाद में नामवरजी ने कहा है, ''इधर की कविता ने मंजिल तय की है, उसमें खुलापन तो आया है, किन्तु कवि अपनी स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं बना पा रहे हैं, कोई रघुवीर सहाय की परम्परा का कवि अपने को मान रहा है, तो कोई केदारनाथ सिंह की परम्परा का। जबकि रघुवीर सहाय और केदारनाथ सिंह ने अपनी मंजिलें खुद तय की हैं।... आज समकालीन कविता के जनपद में विनोद कुमार शुक्ल ही एक अकेले कवि हैं, जिन्होंने अपनी मंजिल खुद तय की है।'' यही बात लकीर के फकीर बने कुछ परवर्ती आलोचकों पर भी लागू होती है। ऐसी स्थिति में स्थापित सिद्धांतों के आधार पर कृति की आलोचना करके क्या उसके साथ न्याय हो सकेगा? नामवरजी ने जो कहा, उसे सिद्धान्त के रूप में स्थापित कर दिया, परवर्ती आलोचकों और तथाकथित आलोचकों को उनसे यह सीख तो अवश्य लेनी चाहिए।

'समीक्षा की समस्याएँ' निबंध में मुक्तिबोध ने डॉ. रामविलास शर्मा की पीड़ा व्यक्त करते हुए लिखा, ''अपने ढंग से डॉ.

रामविलास शर्मा चिढ़ते, खीझते, तड़पते, छटपटाते हुए, अपनी शक्ति के अनुसार अपनी सारी क्षमताओं और अपनी सारी सीमाओं और कमजोरियों के साथ इस ओर, इस क्षेत्र में काम करते रहे हैं। किन्तु क्या यह सही नहीं है कि यह एक व्यक्ति का काम नहीं है? डॉ. रामविलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, प्रकाशचन्द गुप्त, अमृतराय, डॉ. नामवर सिंह और इसके अतिरिक्त यशपाल और नागार्जुन जैसे लेखक कलाकार क्या कभी इकट्ठा होकर, सम्मिलित रूप से काम नहीं कर सकते थे?'' (पृष्ठ 141)

हिन्दी आलोचना के संदर्भ में अज्ञेय की असंतुष्टि और बेचैनी बराबर रही। उनकी टिप्पणी गौरतलब है—''हिन्दी में साहित्यिक आलोचना साधारणतः बहुत ही निचले स्तर की होती है। जल्दबाजी से भरी हुई, पूर्वाग्रहपूर्ण, कभी-कभी पंडिताऊ और पक्षपातपूर्ण दोनों और इस प्रकार बेहद सिद्धान्तवादी। हिन्दी की समालोचना से लेखक हताशप्राय है।'' ठीक ऐसी ही टिप्पणी वर्तमान के कई साहित्यकारों से सुनने को मिलती है। उनकी हताशा या पीड़ा अनुचित भी नहीं। आलोचक समाज का एक बड़ा हिस्सा उन कृतियों के निरीक्षण-परीक्षण में समय खर्च करना ही नहीं चाहता, जो उनके द्वारा पूर्वस्थापित मानदंडों के अनुकूल नहीं, या जो लेखक उनकी ज्ञान-क्षेत्र से बाहर के जीव हैं, और वो मान लेते हैं कि जहाँ तक उनकी दृष्टि नहीं पहुँच रही, वहाँ कोई सार्थक कार्य हो ही नहीं सकता। एक दिन बैठक में, सहज बातचीत के दौरान लेखिका डॉ. कमल कुमार से मैंने यही प्रश्न किया, ''हिन्दी आलोचना का वर्तमान स्वरूप क्या है?'' उनका सहज उत्तर था ''यह आलोचना का अकाल काल है। आलोचक एक मठाधीश है। आलोचक होना ही अपने आप में एक सत्ता है, कि वह आपकी पुस्तक पर स्वेच्छा से क्या प्रतिक्रिया दे। वह चाहे तो सामान्य पुस्तक को भी शीर्ष पर बिठा दे ना चाहे तो...। हमारी पीढ़ी के बाद किसी नए का नाम सुनाई नहीं पड़ता। या वे हैं जो समीक्षक है।''

''आप आलोचना को किस रूप में लेती हैं?''

''आलोचना एक गंभीर कर्म है। आलोचना का मतलब है—दिए गए सिद्धांतों के खाँचों से बाहर आकर नए ट्रेंड के अनुसार रचनात्मक कर्म समझ और समझा सके तो वह आलोचना है। इसकी एक ट्रेनिंग ऑफ माइड है। कहानी के क्षेत्र में नए-नए प्रयोग हो रहे हैं। जब तक आपको मॉडर्न ट्रेंड पता नहीं है, तब तक आप न्याय कैसे करेंगे?''

''नए लोगों में कोई नाम, जिन्हें पढ़कर आप संतुष्ट हों?''

''प्रांजलधर का नाम लिया जा सकता है। वह रचना की तह में जाकर उसके यथार्थ तक पहुँचता है, फिर अपनी बात कहता है। रोहिणी अग्रवाल और अनिल पुष्कर भी अच्छे समीक्षक हैं। और भी कई नाम, जो अनायास जहन में नहीं आ रहे, लेकिन वे समीक्षक हैं, आलोचक समाज उन्हें आलोचना के क्षेत्र में स्वीकारता है या नहीं, यह समय तय करेगा।''

दरअसल निरपेक्ष भाव से अपनी लेखनी का अस्तित्व बनाए रखने वाले लेखक समाज की पीड़ा यही है कि एक ओर कई अच्छे समीक्षकों को इसलिए स्वीकारा नहीं जा रहा क्योंकि वे स्वतंत्र रूप से अपने विचारों का अस्तित्व बचाए और बनाए रखना चाहते हैं, जबकि कुछ ऐसे नाम, जिन्हें आलोचना के व्यापक फलक का अंदाज़ा तक नहीं, किसी गुट में शामिल होने के कारण आलोचक बन बैठे हैं और उनसे अपने उद्धार के इच्छुक लेखकगण उनकी स्तुति में संलग्न हैं। और तो और एक नया ट्रेंड यह भी चल निकला कि लेखकों का एक समूह आपस में ही एक-दूसरे की पुस्तक का ब्योरेवार समीक्षा कर साहित्य के क्षेत्र में अपनी दमदार उपस्थिति की घोषणा करते-कराते हैं। साहित्य के लिए यह संकट भी कम बड़ा नहीं।

साठोत्तर कवि-आलोचकों में मलयज, अशोक वाजपेयी, कुँवर नारायण, रामस्वरूप चतुर्वेदी, विश्वनाथ त्रिपाठी, परमानंद श्रीवास्तव, रमेशचंद्र शाह, मैनेजर पांडेय, नन्दकिशोर नवल के नाम उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने अपने समय की कविता पर गंभीर विचार-विमर्श किए। गौर करें तो नामवर जी से लेकर इनमें से अधिकांश आलोचकों ने कविता केन्द्रित आलोचना ही लिखी। मलयज ने कई कविता के दौर के कवियों के साथ ही समकालीन कवियों पर भी गंभीर व्याख्या प्रस्तुत की। आचार्य रामचंद्र शुक्ल पर लिखी गई उनकी पुस्तक शुक्ल जी को नएपन के साथ प्रस्तुत करती है। मलयज निष्पक्ष और पारदर्शी आलोचक रहे और अपने समय के अप्रतिम व्यक्तित्व।

अशोक वाजपेयी उन विरले आलोचकों में रहे जिन्होंने नई संभावनाओं की खोज करने और उसकी अपने ढंग से व्याख्या

करने की निपुणता दर्शाई। साहित्य को किसी खूँटे से बाँधकर देखना उन्हें कभी रुचिकर नहीं रहा। साहित्य की स्वायत्तता हेतु अपनी लेखनी को तलवार बनाने वाले वे अकेले व्यक्ति रहे। उन्होंने युवा कविता को केन्द्र में रखकर 'फिलहाल' पहली बार 'नई कविता' से अलग अस्तित्व बना रहे कवियों का विस्तार से मूल्यांकन किया। निकट वर्ष में उनके द्वारा संपादित 'कविता का जनपद' पुस्तक पिछले तीस वर्षों की कविता को परखने का सटीक प्रयास है। इस पुस्तक की भूमिका में वाजपेयी जी ने लिखा है, ''हमारी जिजीविषा का मूलाधार बढ़ती वैचारिक कट्टरता और असहिष्णुता, सर्वथा प्रत्याशित सामान्यीकरण के अतिरेक और अनर्जित युयुत्सा के परिवेश में आलोचना बुद्धि को सक्रिय, सजग, अप्रत्याशित और रहस्यपूर्ण को साहित्य और कलाओं में जानने की जिज्ञासा रहा है। एक ऐसे समय में जब सभी अनुशासन, राजनीति और विचारधारा के पिछलगुए बनाए जा रहे हैं या आत्मनिष्ठा गँवाकर ऐसे होते जाते हैं, साहित्य और कलाओं की स्वाधीनता और अन्य अनुशासनों से (फिर वे धर्म, राजनीति, विज्ञान, विचारधारा हो) प्रजातांत्रिक समकक्षता बनाए रखने और उसका दबाव लगातार परिदृश्य पर डालते रहने की जरूरत है। अगर आज की बहुत सारी कविताओं में एक तरह का बौद्धिक पिलपिलापन है तो यह अकारण नहीं है। सच्ची चौकन्नी और जिज्ञासु वैचारिकाता के लिए कोई उत्साह ही हमारे साहित्यिक परिवेश में नहीं रह गया है। सूक्ष्मता और जटिलता की खिल्ली-सी उड़ाई जाती है और उनसे कुछ यों परहेज़ किया जाता है, मानो वे विचार-मात्र की चारित्रिक विशेषताएँ ना होकर कोई रूपवादी चोचले हों। ज्यादातर रचना और आलोचना में बौद्धिक सख्ती या टफनेस का अभाव है। अगर वह कहीं नजर आती है तो उस पर एक तरह की बर्बरता से सब लोग टूट पड़ते हैं।''

कवि-आलोचक विष्णु खरे एवं कुँवर नारायण ने बहुत ही तटस्थ और कठोर व्याख्या लिखी है। विष्णु खरे की आलोचना कविता का बेहतर स्वरूप प्रस्तुत करती है। इसी प्रकार, कुँवर नारायण की कविता में एक ओर सूक्ष्म काव्य विश्लेषण है तो दूसरी ओर कविता के प्रति चौकन्नापन। उनके बौद्धिक निष्कर्ष पूर्णतः पारदर्शी होते हैं। कथा आलोचना के क्षेत्र में नेमिचन्द्र जैन, विश्वनाथ त्रिपाठी, विजयमोहन सिंह, मधुरेश, डॉ. दीनानाथ सिंह, गंगा प्रसाद विमल ने कलम चलाई है। विश्वविद्यालय के कुछ भाग्य-विधाताओं के द्वारा की गई आलोचना साहित्यिक कम, पाठोपयोगी अधिक है। अभी सिलेबस में किनकी कितनी आलोचनात्मक पुस्तक लगानी है और किस प्रकार की, यह विद्वान आलोचकों की चिंता और चिंतन का विषय है। इधर कहानी के क्षेत्र में आलोचना को लेकर उदासीनता का कारण संभवतः वही है, जिस ओर डॉ. कमल कुमार ने ध्यान आकृष्ट किया, जो हम सब महसूस करते हैं, वह यही कि पुराने औज़ार से नई तकनीकी शल्य-चिकित्सा संभव नहीं।

आलोचक कमला प्रसाद ने इस प्रश्न पर दृष्टि डाली कि हिन्दी आलोचना किस तरह प्रकट हो रही है, जिसे माध्यमों से गुजरते हुए अंततः पाठक तक पहुँचना है? आलोचनाएँ अमूमन पुस्तक समीक्षाओं, संगोष्ठी, आलेखों और विश्वविद्यालय शोध-प्रबंधों से प्रकट होती हैं। इन शोध-प्रबंधों के प्रति उपेक्षा-भाव किसी से छिपा नहीं। अन्य मामलों में लेखक की सामाजिक स्थिति पुस्तक-चयन में सहयोगी होती है। कहा जा सकता है कि आलोचना साहित्य का सही मापदंड नहीं।

पिछली सदी का अंत विमर्शों का दौर लेकर गुशरा। दलित और आदिवासी विमर्श, स्त्री विमर्श, जनवादी विमर्श और जाने क्या-क्या! हर एक विषय एक नई धारा, एक नया प्रवाह लेकर साहित्य में विलीन होने की प्रवृत्ति तो नहीं, अपनी उपस्थिति दर्ज कराने के उद्देश्य से प्रविष्ट हुआ, साहित्य खेमे में बँट गया—अनगिनत विवादों के साथ। अब लेखक या आलोचक नहीं, दलित लेखक, दलित आलोचक, स्त्री विमर्श के विशिष्ट आलोचक, जनवादी आलोचक आदि। ऐसे प्रश्न अब विश्वविद्यालय में सहायक आचार्य पद के आए उम्मीदवारों से पूछे जाने लगे हैं अर्थात् साहित्य का खेमे में बँटना पीड़ादायी नहीं। क्या कोई आलोचक देश, समाज, राजनीति, मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक विषयों पर हाशिये पर रखे गए तमाम प्रश्नों की अस्मिता पर विचार करने के अधिकारी नहीं या किसी एक क्षेत्र का वैशिष्ट्य अनिवार्य है। यही संकट लेखकों के साथ भी है। प्रश्न किया जाता है कि आप किस क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करते हैं—यदि आपने कह दिया कि कविता, कहानी आदि-आदि के साथ आलोचना के क्षेत्र में भी तो आप हँसी के पात्र होते हैं, फिर व्यंग्य होता है, यानि आप कहीं भी नहीं। ऐसे टीकाकार 'नई कविता' के समय की हलचल को भूलकर ही आज एक स्वतंत्र रचनाकार को आलोचक के रूप

में स्वीकारने से कतराते हैं। किसी खेमे से जुड़े लेखक या आलोचक को यह संकट नहीं।

हिन्दी आलोचना के सक्रिय लेखक-समीक्षक रमेशचंद्र शाह ने अपने निबंध 'हिन्दी आलोचना का कल और आज' में लिखा है, ''हिन्दी में ऐसे आलोचक कम ही हुए हैं जो अपनी विचाराधारात्मक प्रतिबद्धता के बावजूद उसकी सीमाओं को उलाँघ सकने का साहस और किसी कृति को कृति की तरह परखने की सामर्थ्य प्रदर्शित कर सके हों। जो हैं भी, उनके किए-धरे का वस्तु-पाठ भी नई पीढ़ी के प्रगतिशील जनवादी खेमों के समीक्षकों में समीक्षा कर्म को सचमुच प्रभावित कर सकता है, इसमें संदेह है।''

स्त्री विमर्श के क्षेत्र में सिमोन द बुवा, प्रभा खेतान, तसलीमा नसरीन, अर्चना वर्मा, अनामिका जैसे बड़े नामों के साथ ही रोहिणी अग्रवाल, शरद सिंह, करुणा शर्मा और वरिष्ठ लेखिका और आलोचक आशारानी व्होरा के वैचारिक उत्कर्ष को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। बाल साहित्य की ओर कुछ आलोचकों का ध्यान खींचने में कथा के संपादक अनुज एवं रेखा पाण्डेय का प्रयास सराहनीय है। किन्तु बाल साहित्य के मंजे हुए रचनाकार ही आलोचक का दायित्व संभाल रहे हैं। इनमें प्रकाश मनु, हरिकृष्ण देवसरे, दिविक रमेश और उषा यादव का नाम लिया जा सकता है। क्षमा शर्मा शीर्ष दीर्घा की आलोचक हैं, जो बाल साहित्य को बाल मन की तह में पैठकर गुनती-धुनती हैं। दिविक रमेश ने माना है कि ''आज साहित्य में दलित, स्त्री और आदिवासी विमर्श की तरह 'बच्चों के अधिकारों के विमर्श' की भी जरूरत हो चली है।'' प्रख्यात साहित्यकार सोफ़ा बांग जंग ह्वान (1899-1931) ने बच्चों के कर्तव्यों के साथ उनके अधिकारों की बात करते हुए 'कन्फ़्यूसियन' सोच से प्रभावित अपने समाज में निडरता के साथ एक आंदोलन शुरू किया था, जिसका नाम था—'बच्चों का आदर करो।' बच्चे को बराबरी कर दर्जा देते हुए उसने उसे 'टोंग मू' या 'साथी' कहकर पुकारा। दिविक रमेश ने मैक्सिम गोर्की के विचारों का हवाला देते हुए इस बात पर बल दिया कि बच्चों को रूढ़िवादी अतीत से मुक्त कराते हुए भी परम्परा से जोड़े रखना अनिवार्य है, साथ ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रत्येक विषय-वस्तु को देखने की क्षमता का विकास करना भी।

हिंदी आलोचना की मार्क्सवादी धारा को चुनौती देने का काम परोक्ष रूप से दलित और स्त्री मुक्ति आंदोलन ने ही किया है।

दलित और स्त्री विमर्श की ऐतिहासिक अनिवार्यताओं को ध्यान में रखते हुए ये प्रश्न महत्वपूर्ण हो उठे हैं कि देश की सामाजिक बनावट और बुनावट को परखने के लिए क्या मार्क्सवादी दृष्टिकोण में बदलाव अपेक्षित नहीं? बाबा अंबेडकर से लेकर ओमप्रकाश वाल्मीकि, प्रोफेसर कुंतीराम, खुशालचंद्र मेश्राम, मोहनदास नैमिशराय, निर्मला पुतुल, सुशीला टांकभौरे व कुछ अन्य की जीवन दृष्टि इसलिए व्यापक रही क्योंकि इनमें से कुछ ने परिवार और समाज दोनों की उपेक्षा सही, कुछ ने केवल समाज की नृशंसता है। कई स्थलों पर स्त्री-व्यथा का रूप पूर्णतया समान दिखता है, चाहे वे अवर्ण हों या सवर्ण। शोषण की शैली और आवरण में भिन्नता भले ही हो। अनदेखे, अनकहे प्रश्नों को एक बार फिर विचारने की आवश्यकता है और आवश्यकता है वर्तमान आलोचाकों को नपे-तुले खाँचों से बाहर निकलने की ताकि सच को उजागर करने वाले, नए मौलिक प्रश्नों की ओर ध्यान केन्द्रित करने वाले लेखकों की कृति के साथ न्याय कर सकें।

आज अकादमिक आलोचना के एकछत्र के शासन के बावजूद साहित्य की सामाजिक प्रतिबद्धता से सम्बद्ध आलोचकों की तीन पीढ़ी एक साथ सक्रिय है, भले ही उन्हें अपनी जगह बनाने में समय लगे किन्तु समय और परिस्थिति के साथ साहित्य का आलोचना-क्षेत्र निश्चय ही स्वायत्त समृद्धि प्राप्त करेगा।

आभार-

1. हिन्दी आलोचना का उत्तर आधुनिक विमर्श, कृष्णदत्त पालीवाल।
2. आलोचक और आलोचना, कमला प्रसाद।
3. आलोचना का समाजशास्त्र, मुद्राराक्षस।
4. आलोचना की साखी, अरविंद त्रिपाठी।
5. हिन्दी आलोचना: समकालीन परिदृश्य, कृष्णदत्त पालीवाल।

◆◆◆

भाषा प्रौद्योगिकी: सत्तर साल का सफरनामा

डॉ. एम. एल. गुप्ता 'आदित्य'

...अगर इतिहास में जाकर देखें तो ज्ञात होगा कि विदेशी शक्तियों के सामने भारत की पराजय का एक बहुत बड़ा कारण प्रौद्योगिकी में पिछड़ापन रहा। पानीपत के पहले युद्ध में भी बाबर की सेना की तोपों के सामने खड़े हमारे हाथी अपनी ही सेना को कुचल रहे थे। जब कभी हमलावर आया तो वह बेहतर प्रौद्योगिकी लेकर आया और हम अपने परंपरागत तरीकों पर निर्भर रहे। भाषा के मामले में भी लगभग ऐसी ही स्थिति रही। बांस की कलम से लेकर, होल्डर फाउंटेन पैन और आगे के सफर में भी हमें काफी समय लगा। जब भारत में हिन्दी में काम करने के लिए हम कलम थामे हुए थे, अंग्रेजी के लिए टाइपराइटर आ चुका था। हिन्दी के लिए टाइपराइटरों की व्यवस्था में काफी समय निकल गया और अंग्रेजी प्रौद्योगिकी व्यवस्था के बूते अपनी बढ़त बनाती रही। ऐसा ही टेलीप्रिंटर, टेलेक्स मशीन आदि के संबंध में भी हुआ। हालांकि आगे चलकर हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के लिए टाइपराइटर/टेलीप्रिंटर आदि की व्यवस्था हुई और हिन्दी की गाड़ी चलने लगी।...

स्वतंत्रता के 70 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर इस विषय पर तो विचार होना ही चाहिए कि क्या हम स्वतंत्रता सेनानियों और भारत के संविधान की अपेक्षाओं के अनुरूप हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं को स्थापित कर सके हैं? क्या हम ऐसा कर सके कि देश की व्यवस्था भारतीय भाषाओं में चल सके? यदि इस कार्य में अपेक्षित सफलता नहीं मिली तो उन कारकों पर भी गहनता से विचार किया जाना आवश्यक है, जिनके चलते इतने लंबे अर्से बाद भी हम लक्ष्य से बहुत दूर खड़े दिखते हैं। ऐसा क्यों है कि हिन्दी व अन्य भारतीय भाषाओं को व्यवस्था में स्थापित करने के लिए हम जितना आगे बढ़ते हैं, लक्ष्य उतना ही दूर होता जाता है? यूँ तो लक्ष्य प्राप्ति में वांछित सफलता न मिलने के अनेक कारण हैं, लेकिन इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण रहा 'भाषा प्रौद्योगिकी' के क्षेत्र में अपेक्षित व समयानुकूल प्रगति का अभाव।

अगर इतिहास में जाकर देखें तो ज्ञात होगा कि विदेशी शक्तियों के सामने भारत की पराजय का एक बहुत बड़ा कारण प्रौद्योगिकी में पिछड़ापन रहा। पानीपत के पहले युद्ध में भी बाबर की सेना की तोपों के सामने खड़े हमारे हाथी अपनी ही सेना को कुचल रहे थे। जब कभी हमलावर आया तो वह बेहतर प्रौद्योगिकी लेकर आया और हम अपने परंपरागत तरीकों पर निर्भर रहे। भाषा के मामले में भी लगभग ऐसी ही स्थिति रही। बांस की कलम से लेकर, होल्डर फाउंटेन पैन और आगे के सफर में भी हमें काफी समय लगा। जब भारत में हिन्दी में काम करने के लिए हम कलम थामे हुए थे, अंग्रेजी के लिए टाइपराइटर आ चुका था। हिन्दी के लिए टाइपराइटरों की व्यवस्था में काफी समय निकल गया और अंग्रेजी प्रौद्योगिकी व्यवस्था के बूते अपनी बढ़त बनाती रही। ऐसा ही टेलीप्रिंटर, टेलेक्स मशीन आदि के संबंध में भी हुआ। हालांकि आगे चलकर हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के लिए टाइपराइटर/टेलीप्रिंटर आदि की व्यवस्था हुई और हिन्दी की गाड़ी चलने लगी। इन्हीं समस्याओं से निपटने के लिए भारत सरकार द्वारा राजभाषा विभाग मे एक तकनीकी पक्ष की भी स्थापना की गई जो अंग्रेजी सहित विश्व की अन्य भाषाओं की तरह हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के

सम्पर्क: 104, चंद्रेश हाइट्स, जैसल पार्क, भायंदर (पूर्व), जिला ठाणे-401105 मोबाइल: 09869374603,
ई-मेल: vaishwikhindisammelan@gmail.com

लिए भी आवश्यक प्रौद्योगिकी के विकास, प्रशिक्षण और प्रयोग के मार्ग को प्रशस्त कर सके।

इसमें कोई संदेह नहीं कि भारत विभिन्न कारणों से प्राय: विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के मामले में पाश्चात्य देशों के मुकाबले पीछे रहा है। हम प्राय: प्रौद्योगिकी विकास के बजाय प्रौद्योगिकी आयात पर निर्भर रहे हैं। सूचना-प्रौद्योगिकी और भाषा-प्रौद्योगिकी भी इसका अपवाद नहीं। ज्यादातर प्रौद्योगिकी हमें प्राय: पाश्चात्य देशों से या उनके माध्यम से या यूँ कहें कि अंग्रेजी के माध्यम से ही मिलती रही है। इसी का परिणाम था कि जहाँ अंग्रेजी के लिए तत्काल आयातित प्रौद्योगिकी उपलब्ध होती रही वहीं भारतीय भाषाओं के लिए प्रौद्योगिकी की व्यवस्था से लेकर उसे प्रयोग में लाने तक की कवायद में काफी समय लगता रहा जिसके चलते हिन्दी सहित भारत की भाषाएँ अंग्रेजी के मुकाबले हमेशा पिछड़ती रहीं और विभिन्न समस्याओं का सामना करती रहीं। जब हम अपने यहाँ हिन्दी टाइपराइटर के प्रशिक्षण में लगे थे तब तक बेहतर प्रौद्योगिकी से लैस इलैक्ट्रॉनिक टाइपराइटर हमारे सामने पहुँच गया था। जब तक हम हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के लिए इलेक्ट्रॉनिक टाइपराटर को अपनाते तब तक अत्याधुनिक उन्नत प्रौद्योगिकी से लेस कम्प्यूटर बाजार में आ चुका था और इसकी अनंत शक्ति अंग्रेजी को लेकर वायुगति से आगे बढ़ रही थी।

कम्प्यूटरों पर हिन्दी में कार्य के लिए भाषा-प्रौद्योगिकी में सर्वप्रथम शुरुआत हुई वर्ड प्रोसेस एप्लीकेशन से। कम्प्यूटर की शक्ति को भारतीय भाषाओं के अनुकूल बनाने के लिए हमने हाथ-पाँव मारने शुरू किए। प्रारंभ में आई.आई.टी. कानपुर ने हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाओं के लिए कम्प्यूटर पर काम करने हेतु फॉन्ट उपलब्ध करवाए। भारत सरकार द्वारा सी.डैक. पुणे में भारतीय भाषाओं के लिए विशेष प्रकोष्ठ की व्यवस्था की गई और उनके द्वारा जिस्ट टेक्नोलोजी का प्रयोग करते हुए कम्प्यूटरों में हिन्दी कार्य करने की सुविधाएँ उपलब्ध करवाई गई। 90 के दशक में भारतीय एनकोडिंग के साथ आई.आई.टी. कानपुर और सी.डैक. सहित बाजार की माँग को देखते हुए कई निजी कंपनियां भी मैदान में उतरीं और उन्होंने भी ऐसे अनेक सॉफ्टवेयर विकसित किए। कई तरह के फॉन्टस भी उपलब्ध हुए जिनके माध्यम से कम्प्यूटरों पर हिन्दी में कार्य किया जा सकता था।

लेकिन यह राह कोई सरल नहीं थी। प्रति कम्प्यूटर इतने महंगे सॉफ्टवेयर खरीदना आम आदमी के बूते की बात तो नहीं थी। फिर उन पर काम कैसे किया जाए और उसका प्रशिक्षण कैसे मिले? कुछ सरकारी कार्यालयों द्वारा सीमित ग्रुप में या कुछ समाचार पत्रों और प्रकाशकों आदि द्वारा ऐसे सॉफ्टवेयर आदि का प्रयोग किया जाता रहा। लेकिन यहाँ भी सबसे बड़ी दिक्कत यह थी कि जिस सॉफ्टवेयर की मदद से अपने कम्प्यूटर पर किसी ने भारतीय भाषा में काम किया है वह उसी कम्प्यूटर के माध्यम से प्रिंट हो सकता था जिसमें वही सॉफ्टवेयर है। सॉफ्टवेयर न होने या सॉफ्टवेयर बदलने से सब कचरा यानी गार्बेज में बदल जाता था। इसलिए यह व्यवस्था भी बहुत ही सीमित स्तर तक ही काम कर सकती थी। अगर आसान शब्दों में कहें तो व्यवस्थाएँ अंग्रेजी के लिए उपलब्ध व्यवस्थाओं की तुलना में बहुत ही सीमित थीं। जिसके चलते हिन्दी और भारतीय भाषाएँ अंग्रेजी के मुकाबले लगातार पिछड़ती जा रही थीं।

इंटरनेट के आगमन के पश्चात तो भारतीय भाषाओं की राह और अधिक जटिल होती गई। इंटरनेट के माध्यम से कोई भी सामग्री तत्क्षण विश्व के किसी भी कोने में पहुँच सकती थी और पढ़ी जा सकती थी। लेकिन यहाँ समस्या यह थी कि यह कार्य किसी भारतीय भाषा में संभव नहीं था। इसकी मुख्य वजह यह थी कि इंटरनेट पर टंकित होकर विश्व के कोने-कोने में पहुँचने वाली सामग्री यूनिकोड यानी यूनिवर्सल एंकोडिंग फोन्ट्स के माध्यम से ही यथावत सही पहुँच सकती थी। लेकिन प्रारंभ में यूनिकोड फोन्ट्स की व्यवस्था अंग्रेजी सहित कई यूरोपीय भाषाओं तक ही सीमित थी। किसी अन्य सॉफ्टवेयर के माध्यम से टंकित सामग्री यदि इंटरनेट के माध्यम से कहीं प्रेषित की जाती थी तो वह गार्बेज यानी कचरे की तरह ही दिखती थी। हालांकि कुछ लोगों ने पीडीएफ फाइल के माध्यम से इसे चित्र का रूप देते हुए भेजने का कार्य शुरू किया। लेकिन यह कोई समस्या का समाधान तो था नहीं। लंबे समय तक हम भारतीय भाषाओं के लिए यूनिकोड की उपलब्धता की प्रतीक्षा में रहे। उद्योग जगत हो, व्यवसाय जगत हो या सेवा के अन्य क्षेत्र, कोई भी अपने व्यवसाय को या कार्य को आगे बढ़ाने के लिए इस प्रतीक्षा में तो नहीं रह सकता था कि कभी आगे चलकर हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के लिए यूनिकोड की व्यवस्था होगी और उसके बाद वे उसे अपनाएंगे। उन्होंने अपने व्यावसायिक क्षेत्रों को ध्यान में रखते हुए अविलंब उच्च प्रौद्योगिकी की इंटरनेट सुविधाओं को अंग्रेजी के माध्यम से अंगीकार किया और अंग्रेजी दुनिया भर में ही नहीं भारत में भी संचार और कामकाज के क्षेत्र में अपनी बढ़त बनाती रही।

आगे चलकर वह समय भी आया जब विश्व की लगभग सभी प्रमुख भाषाओं की तरह भारतीय भाषाओं के लिए भी यूनिकोड फॉन्ट्स की व्यवस्था हुई जिसे माइक्रोसॉफ्ट, आईबीएम, गूगल आदि सहित ऑपरेटिंग प्रणालियों द्वारा स्वीकार किया गया। यही नहीं इसी बीच यूनिकोड फॉन्ट्स पर टाइप करने के लिए इन्स्क्रिप्ट की-बोर्ड भी विकसित कर लिया गया। यह इन्स्क्रिप्ट की-बोर्ड न केवल पिछले की बोर्डों के मुकाबले अधिक वैज्ञानिक था बल्कि इसे सीखना भी सरल है। यहीं नहीं सबसे बड़ी बात यह थी कि किसी कम्प्यूटर में हिन्दी या अन्य कोई भारतीय भाषा सक्रिय करते ही यह की-बोर्ड स्वयंमेव उपलब्ध हो जाता है। भारत सरकार ने भी इसे मानक मान कर इसके प्रसार व प्रशिक्षण की व्यवस्थाएं की। उससे भी महत्वपूर्ण बात यह थी कि जो लोग अंग्रेजी में टाइप करना जानते हैं वे केवल 18 घंटे के अभ्यास के पश्चात इस की-बोर्ड पर तेज गति के साथ टाइप करने के लिए पारंगत हो सकते हैं। यह व्यवस्था आज से नहीं बल्कि करीब वर्ष 2000 या उसके भी पहले से उपलब्ध है। लेकिन फिर बात वहीं आकर ठहर जाती है कि भारतीय भाषाओं के लिए उपलब्ध इस सरलतम की-बोर्ड पर कार्य करने की जानकारी कितने लोगों को है? कितनों को इसकी जानकारी दी गई?

प्रश्न यह है कि देश के सभी स्कूलों में कम्प्यूटर शिक्षा में सभी भारतीय भाषाओं के लिए उपलब्ध इस सरल व मान की-बोर्ड के संक्षिप्त से प्रशिक्षण को पाठ्यक्रम में शामिल क्यों नहीं किया गया? प्रसिद्ध सूचना-प्रौद्योगिकी विशेषज्ञ व केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की पाठ्यक्रम समिति के सदस्य व भारत सरकार, इलेक्ट्रॉनिक विभाग के वरिष्ठ कार्यपालक डॉ. ओम विकास के अनुसार समिति द्वारा इस संबंध में सिफारिशें की गई लेकिन देश के विद्यार्थी इससे अनभिज्ञ रहे। यह प्रशिक्षण केवल किसी बोर्ड या राज्य के स्कूलों में नहीं बल्कि देशभर के सभी स्कूलों में राज्य की या संघ की राजभाषा में दिलवाया जाना चाहिए था। यह भी जरूरी नहीं था कि की-बोर्ड का यह प्रशिक्षण हिन्दी या देवनागरी लिपि में ही दिलवाया जाता, किसी भी भारतीय भाषा में यह प्रशिक्षण दिया जाता तो बात बन जाती, क्योंकि यह की-बोर्ड सभी भाषाओं के लिए एक समान है। यदि ऐसा होता तो देश के सभी बच्चे अपनी भाषा में सभी इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों में कार्य करने में सक्षम होते। इसके कारण देश-विदेश में हिन्दी के प्रयोग व प्रसार में तेज गति आती। मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि सूचना-प्रौद्योगिकी के अच्छे खासे जानकार और इस क्षेत्र में कार्यरत लोग भी जब कहते हैं कि उनके कम्प्यूटर में हिन्दी या उनकी मातृभाषा में कार्य करने का सॉफ्टवेयर नहीं है। उन्हें बताया जाए कि सब सुविधाएँ उपलब्ध हैं तो वे कहेंगे कि उन्हें इनकी की-बोर्ड नहीं आता। इन्स्क्रिप्ट की-बोर्ड के अलावा भी रोमन लिपि के माध्यम से देवनागरी व अन्य भारतीय लिपियों के निःशुल्क उन्नत सॉफ्टवेयर लंबे समय से उपलब्ध हैं। अब तो मोबाइलों और कम्प्यूटर आदि उपकरणों पर बोल कर टाइप करने की सुविधा भी है। पर देश के लोगों को बताए कौन? स्कूलों के भाषा शिक्षकों की बात छोड़िए विश्वविद्यालय के भाषायी शिक्षकों में भी एक ऐसा बड़ा वर्ग है जो अभी भी कम्प्यूटर से दूर भागता है। गलती शिक्षकों, विद्यार्थियों की या जनसामान्य की नहीं है। इन्हें भारतीय भाषाओं के लिए उपलब्ध नवीनतम प्रौद्योगिकी की जानकारी व प्रशिक्षण की कोई योजना बनी ही नहीं। कहीं बनी भी होंगी तो व्यवहार में उतरी नहीं। ऐसे में भारतीय भाषाओं के प्रयोग और प्रसार को बढ़ाने की बात बेमानी सी प्रतीत होती है।

कम्प्यूटरों आदि पर हिन्दी में केन्द्रीय विद्यालयों में यह कार्य अवसर राजभाषा कर्मियों को सौंप दिया जाता रहा। जिनमें से अधिकांश स्वयं इस कार्यप्रणाली से अथवा कम्प्यूटर पर कार्य की पेचीदगियों से बहुत अधिक परिचित नहीं होते थे। यह कार्य इन संस्थानों, कार्यालयों के प्रौद्योगिकी के लिए कार्यरत अधिकारियों/कर्मचारियों का होना चाहिए था लेकिन ऐसा अक्सर हुआ नहीं। नतीजा यह कि अधिकांश कार्यालयों में जहाँ हिन्दी का प्रयोग किया जाना वांछित था वहाँ पर भी यह अक्सर हिन्दी अनुभाग तक ही सिमटा रहा, जबकि तमाम अन्य कम्प्यूटरों पर अंग्रेजी में निर्बाध ढंग से कार्य होता रहा। हालांकि केन्द्रीय सरकार के स्तर पर इस संबंध में विभिन्न सम्मेलनों, कार्यक्रमों, आयोजनों व प्रशिक्षण कार्यक्रमों और प्रकाशनों आदि के द्वारा इस संबंध में आवश्यक सूचनाएँ, परामर्श व जानकारी निरंतर दी जा रही थी। लेकिन इसके बावजूद भी अधिकांश संस्थानों व कार्यालयों ने अपनी कार्यप्रणाली में भारतीय भाषाओं की प्रौद्योगिकी के समावेश का दायित्व हिन्दी अनुभागों के ऊपर छोड़कर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर ली।

जहाँ तक निजी क्षेत्र का प्रश्न है यदि कुछ प्रकाशन और मुद्रण से संबंधित संस्थानों को छोड़ दें जहाँ यह अति आवश्यक है अधिकांशतः भारतीय भाषाओं की नवीनतम प्रौद्योगिकी को अंगीकार करने पर कोई विशेष ध्यान दिया ही नहीं गया।

आज हिन्दी और भारतीय भाषाओं में कार्य करने संबंधी सुविधाएँ तो प्राय: उपलब्ध हो गई है। वर्ड, ऐक्सल, पावर पाइंट आदि से लेकर इंटरनेट पर हिन्दी और भारतीय भाषाओं में कार्य की तमाम सुविधाएँ हैं और तमाम बाधाओं के बावजूद हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं ने इंटरनेट और सोशल मीडिया पर अपनी एक खास जगह बना ली है। लेकिन उपर्युक्त ऐसी समस्याओं के चलते विपुल जनसंख्या और इंटरनेट पर हमारी अच्छी खासी उपस्थिति के बावजूद हिन्दी की उपस्थिति नगण्य सी ही है। हमारे देश के अधिकांश लोग हिन्दी व अन्य भारतीय भाषाओं को भी रोमन लिपि में लिखते हैं।

चीन के बाद इस समय इन्टरनेट का इस्तेमाल करने वालों की सख्या की दृष्टि से भारत विश्व में दूसरा बड़ा देश है। 30 करोड़ से भी अधिक संख्या के साथ इंटरनेट प्रयोगकर्ताओं में चीन के बाद भारत दुनिया में दूसरे नंबर पर है। प्रतिशत की दृष्टि से चीन में 21.97 प्रतिशत, अमेरिका में 9.58 के बाद 8.33 प्रतिशत के बाद भारत तीसरे नंबर पर है और इसकी वार्षिक वृद्धि दर करीब 16 प्रतिशत है। लेकिन प्रयोगकर्ताओं के प्रतिशत की दृष्टि से भारत इन देशों में भी सबसे नीचे के पायदान पर है। इंटरनेट का इस्तेमाल करने वालों की संख्या की दृष्टि से भारत विश्व का दूसरा बड़ा देश होने के बावजूद यदि इंटरनेट पर भारत की प्रमुख और विश्व की अग्रणी भाषा हिन्दी की स्थिति को देखें तो चौंकाने वाले आँकड़ें सामने आते है। भाषावार स्थिति देखें तो ज्ञात होता है कि अंग्रेजी 55.5 प्रतिशत के साथ शीर्ष पर है और उसके बाद 5.9 प्रतिशत के साथ रूसी भाषा दूसरे स्थान पर है फिर उसके बाद जर्मन, जापानी, स्पैनिश, फ्रैंच, चीनी, पुर्तगाली, इटैलियन आदि भाषाओं का स्थान है। इस क्रम में 35वें स्थान पर केटालन का स्थान है। इंटरनेट पर जिसकी सामग्री 0.1 प्रतिशत है। लेकिन हिन्दी की स्थिति 0.1 प्रतिशत से भी कम है और दुनिया की अनजान-सी भाषाएँ भी इस मामले में हिन्दी से काफी आगे हैं। यह स्थिति भी तब है जबकि इंटरनेट का प्रयोग करने के मामले में भारत दूसरे स्थान पर है।

जब तक हम कम्प्यूटरों पर हिन्दी में काम करने की समस्याओं को सुलझाते, दुनिया काफी आगे बढ़ चुकी थी। इस बीच मुख्यत: बैंकों, कंपनियों, संस्थानों व कार्यालयों की कार्यप्रणालियों में एक बड़ा परिवर्तन आ गया है। 1990 के दशक के बाद से टेक्नोलोजी के विकास ने विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों के संगठनों की कार्य पद्धतियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया है। विशेषकर खुदरा, निर्माण और बैंकिंग, औद्योगिक और व्यवसायिक क्षेत्रों में आई.टी. समाधानों को क्रियान्वित किया है जो उन्हें अपने दैनिक क्रियाकलापों का बेहतर निष्पादन, प्रबंधन और नियंत्रण करने, कार्यकुशलता बढ़ाने तथा मार्केटिंग, लाभप्रदताओर पारदर्शिता जैसे लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए और अपनी उत्पादकता को बढ़ाने की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण साधन साबित हुए हैं। आज बाजार अपने विस्तार के लिए ग्रामीण और अर्धशहरी क्षेत्रों पर ध्यान देने लगा है। भारत सरकार भी बैंकिंग और वित्तीय समावेशन और कासा अभियान के माध्यम से हर व्यक्ति तक पहुँचने के लिए प्रयासरत हैं। इसके लिए भारतीय बैंकिंग क्षेत्र ने पहले से ही संचार को ध्यान में रखते हुए आवश्यक परिवर्तन किए हैं और आई.टी. समाधानों यानि ऐंटरप्राइज सॉफ्टवेयरों को कार्यान्वित भी किया है। कार्यकुशलता बढ़ाने तथा खर्च घटाने की दृष्टि से ऐसे आईटी समाधान सॉफ्टवेयरों का प्रयोग तेजी से बढ़ा है। पिछले कुछ समय से सरकारी कंपनियों, संगठनों, बैंकों, वित्तीय संस्थानों, बीमा कंपनियों, राजस्व वसूली, पासपोर्ट के कार्य आदि सहित स्थानीय निकायों का कार्य, बिजली-पानी के बिल, आदि तेजी से कम्प्यूटर प्रणालियों से जुड़ते जा रहे हैं। निजी क्षेत्र की कंपनियां, उद्यम या संस्थान हों या सरकारी या सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियां, बैंक, संस्थान या कार्यालय हों अधिकांश कार्य इन्हीं आई.टी. समाधानों के माध्यम से होता है जो ऐंटरप्राइज सॉफ्टवेयर की श्रेणी में आते हैं।

लेकिन हिन्दी सहित भारतीय भाषाओं की सबसे बड़ी समस्या यह है कि हम इन आई.टी. समाधानों के मामले में भारतीय भाषाओं को साथ लेकर चलने में सफल नहीं हो सके। इसके लिए जिस स्तर पर और जिस प्रकार के प्रयासों व रणनीति की आवश्यकता थी, वह संभव नहीं हुई। इसके कारण निजी क्षेत्र में ही नहीं अधिकांश सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों, कंपनियों, संस्थानों व कार्यालयों के कार्य में सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से हिन्दी और भारतीय भाषाओं का प्रयोग नगण्य सा है। आई. टी. समाधानों के हिन्दी और भारतीय भाषाओं में उपलब्ध न होने के कारण अधिकांश भारतीय संगठनों और कंपनियों को ग्राहक-सेवा, जनसंचार और मार्केटिंग जैसे अपनी रणनीति के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों की उपेक्षा करते हुए इन्हें अंग्रेजी में कार्यान्वित करने पर मजबूर होना पड़ा। SAP (सैप), जे.डी. ऐडवर्ड, कोर बैंकिंग सोल्यूशन, बीमा, राजस्व, आदि से संबंधित ज्यादातर ई. आर.पी. सॉफ्टवेयर आदि प्राय: अंग्रेजी में कार्य के लिए हैं जहाँ कहीं कथित रूप में हिन्दी अथवा द्विभाषी व्यवस्थाएँ हैं भी, तो

वे प्राय: संवैधानिक प्रावधानों के अनुपालन की औपचारिकता पूरी करती दिखती हैं। सी.बी.एस. कोर बीमा समाधान व ऐसे अन्य समाधानों के माध्यम से हिन्दी का कार्य नगण्य सा है। जहाँ कहीं ऐसे समाधानों में हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं की व्यवस्था है भी, वहाँ भी प्रयोग प्राय: केवल अंग्रेजी में ही होता है। जबकि ग्राहक सेवा के लिए जनभाषा प्राथमिक आवश्यकता होती है। इसलिए इसका एकमात्र उपाय यही है कि आईटी समाधान सॉफ्टवेयरों/एंटरप्राइज सॉफ्टवेयरों में हिन्दी-अंग्रेजी व्यवस्था अलग-अलग न रख कर इसके माध्यम से सृजित मानक पत्र/विवरणियाँ/पास बुक/सूचनाएँ आदि एक ही पृष्ठ पर द्विभाषिक रूप में हों, इससे न केवल बहानेबाजी पर लगाम लगेगी बल्कि राजभाषा अधिनियम-1976 के अनुसार वर्गीकृत सभी क्षेत्रों (क, ख, ग) में ग्राहकों की सुविधा के साथ-साथ आदतन केवल अंग्रेजी का विकल्प चुनने पर भी लगाम लगेगी। इन आई.टी. समाधानों की मदद से कंपनियों, बैंकों आदि का 90 प्रतिशत से भी अधिक कार्य जो अंग्रेजी में होता है द्विभाषी (हिन्दी-अंग्रेजी) में कर सकेंगी। लेकिन अभी तक इस दिशा में कोई विशेष प्रगति दिखाई नहीं देती।

कुछ कंपनियां व संगठन आदि जिन्होंने अपने लिए विशेष रूप से ऐंटरप्राइज सॉफ्टवेयर बनवाए या विकसित किए हैं और उनमें से कुछ ने तो प्रारंभ से ही उसमें अंग्रेजी के साथ ही हिन्दी अथवा साथ-साथ द्विभाषी अथवा त्रिभाषी कार्य की व्यवस्था करवा ली है। हालांकि ऐसी कंपनियों व संगठनों की संख्या नगण्य सी है जिन्होंने अपने ऐंटरप्राइज सॉफ्टवेयरों में बेसिक प्रोग्रामिंग में इस प्रकार की व्यवस्था करवाई है, वह भी प्राय: सीमित प्रयोजन के लिए। भारत की लगभग 92 प्रतिशत जनता अंग्रेजी नहीं जानती। ऐसे में भारत जैसे जनतांत्रिक देश में आई.टी. समाधानों के बिना हिन्दी और भारतीय भाषाओं में कार्य की सुविधा उपलब्ध करवाए ई-गवर्नेंस तथा जन-कल्याण योजनाओं को सफल बनाना कठिन है।

जहाँ तक जन सूचना की बात है किसी भी कंपनी, संस्थान या संगठन आदि की या उससे संबंधित सूचनाएं वेबसाइट से मिलती है। लेकिन इन वेबसाइटों से भी हिन्दी या भारतीय भाषाओं के लिए कोई अच्छी खबर नहीं मिलती दिखती। कुछेक सरकारी वेबसाइटों को छोड़ दें तो सब अंग्रेजी में ही दिखता है। ऐसा लगता है कि तमाम जानकारियों की आवश्यकता केवल उन्हीं चंद लोगों को है जो अंग्रेजी में पारंगत हैं। देश की लगभग 92 प्रतिशत लोगों को कोई जानकारी दी जानी इस देश की जनतांत्रिक व्यवस्था में आवश्यक क्यों नहीं माना जाता? जहाँ तक सरकारी वेबसाइट का मामला है वहाँ भी स्थिति कोई बहुत अच्छी तो नहीं है। या तो वे द्विभाषी हैं नहीं, हैं तो आंशिक रूप में। समय पर अद्यतन नहीं होतीं। वैसे भी प्राय: हिन्दी-अंग्रेजी में एक साथ न होकर अलग-अलग होती हैं जिसमें प्राय: अंग्रेजी पहले प्रकट होती है और हिन्दी का पता नहीं लगता। पता लग भी जाए तो वह आधी-अधूरी होती है। होना तो यह चाहिए कि ये अलग-अलग न होकर एक साथ होनी चाहिए जिसमें बाएँ-दाएँ हिन्दी अंग्रेजी की सामग्री तथा शीर्षक ऊपर-नीचे दिए गए हों। इससे लोगों को सभी जानकारियाँ एक साथ मिल सकेंगी। वे आवश्यकतानुसार इसका प्रयोग कर सकेंगे। यह भी कि वेबसाइट अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी में भी यथासमय अद्यतन हो सकेंगी।

भारत सरकार डिजिटल इंडिया को अत्यधिक प्राथमिकता देते हुए इसे कार्यान्वित करवाने के लिए योजनाबद्ध रूप से सक्रियतापूर्वक लगी है। निश्चय ही यह कदम देश की प्रगति के लिए आवश्यक व सराहनीय है। इसके माध्यम से न केवल व्यवस्था चुस्त-दुरुस्त होती है, बल्कि पारदर्शिता भी बढ़ती है। सरकार द्वारा अधिकांश व्यवस्थाओं को ऑन-लाइन कर दिया गया है। आयकर विवरणी हो, पासपोर्ट बनवाना हो, तरह-तरह के बिल भरने हों, कोई आवेदन करना हो सब ऑन-लाइन हो गया है। निश्चय ही यह अति उत्तम व्यवस्था है लेकिन यह ऑन-लाइन भी केवल अंग्रेजी की लाइन में चले और इससे हिन्दी की लाइन दिखे ही नहीं तो इससे हिन्दी का प्रयोग बढ़ने की बात तो दूर, प्रयोग करना भी संभव न होगा। आवश्यकता इस बात की है कि इन सेवाओं को जनभाषा में उपलब्ध करवाना आवश्यक किया जाए तथा प्रारंभिक स्तर पर ही उक्त व्यवस्था करवाते समय आवश्यकतानुसार ऐसा किया जाए।

यही बात ई-गवर्नेंस पर भी लागू होती है। पिछले दो दशक से ई-गवर्नेंस की बात चल रही है। विभिन्न स्तरों पर इसे कार्यान्वित भी किया गया है जिसके काफी अच्छे परिणाम भी मिले हैं और मिल रहे हैं। लेकिन ई-गवर्नेंस जिसके सबसे निचले पायदान पर यह आम आदमी बैठा है जो अंग्रेजी दां नहीं है। जनतंत्र की तो वैसे भी यह प्राथमिक आवश्यकता है कि व्यवस्था जन तक जनभाषा में पहुँचे। ऐसे में यदि ई-गवर्नेंस यदि इंग्लिश गवर्नेंस बन जाए तो यह न केवल जनतंत्र और जनहित के प्रतिकूल है बल्कि इसके चलते हिन्दी या अन्य किसी भी भारतीय भाषा के प्रयोग को बढ़ाया जाना संभव न होगा। जनसुविधाओं के

लिए तैयार सभी ऐप हिन्दी व क्षेत्रीय भाषाओं के आधे-अधूरे नहीं बल्कि इस रूप में लैस होने चाहिए कि उनके माध्यम से ऐप का हिन्दी आदि में सरलता से प्रयोग किया जा सके। यहाँ उल्लेखनीय है कि कई सरकारी ऐप ऐसे हैं जिनमें हिन्दी की व्यवस्था तो है लेकिन समग्र रूप से नहीं। अत: ई-प्रशासन के सभी स्तरों और आयामों में जब हिन्दी व क्षेत्रीय भाषाओं का समावेश होगा निश्चय ही इससे हिन्दी का प्रगामी प्रयोग भी बढ़ेगा।

यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि पहले प्रौद्योगिकी के परिवर्तन में दशकों लग जाते थे। कहीं-कहीं तो सदियों तक गाड़ी एक ही ढर्रे पर चलती रहती थी। लेकिन इलैक्ट्रॉनिक उपकरणों और सूचना-प्रौद्योगिकी के आगमन के पश्चात प्रौद्योगिकी में परिवर्तन की गति इतनी तेज है कि पलक झपकते ही कोई नई पद्धति, प्रणाली या उपकरण आ जाता है। यह भी कि आयातित होने के चलते प्राय: अंग्रेजी में ही आता है। जब तक हम इनके लिए हिन्दी की व्यवस्था करें, तब तक पता लगता है कि दुनिया में प्रौद्योगिकी काफी आगे निकल गई है। कम्प्यूटर पहले केवल डेस्क टॉप के रूप में आया और फिर बाद में लैपटॉप से होते हुए आई-पैड और टैबलेट से होते हुए आखिरकार पॉम-टॉप यानी हथेली में मोबाइल के भीतर आकर समा गया है। इसी प्रकार टेलीफोन से लेकर आज तक के स्मार्ट मोबाइल फोन का सफर भी यही दर्शाता है कि सूचना-प्रौद्योगिकी से लैस उपकरणों में प्रौद्योगिकी परिवर्तन का यह सारा का सारा खेल मुख्यत: स्वतंत्रता की कुल अवधि के आखिरी चरण में ही घटित हुआ है। अब बाजार की गला काट स्पर्धा के चलते कैलेंडर बदलते-बदलते उच्च-प्रौद्योगिकीयुक्त सुविधाओं से लैस कुछ न कुछ नया बाजार में आ जाता है। अब तो न्यू जैनरेशन कम्प्यूटरों और दूसरी ओर कृत्रिम बुद्धि युक्त रोबोट की नवीनतम खेप के आने की प्रतीक्षा है। अब गूगल वॉयस जैसी प्रौद्योगिकी कलम और की-बोर्ड से मुक्ति दिलवाने में लगी है।

इंटरनेट और उससे जुड़ी सेवाओं से देश को जोड़ने में भाषा की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है इसी तथ्य को ध्यान में रखकर विश्व के कई प्रमुख देशों ने अपने देश के अलग से सर्च इंजिन तैयार किए हैं। विश्व में विशेषकर भारत में गूगल जैसे सर्च इंजिन सर्वाधिक प्रयोग में है। लेकिन अपनी भाषा के प्रयोग और उपयुक्तता को ध्यान में रखकर चीन, रूस और दक्षिण कोरिया जैसे देशों ने अपना खुद का सर्च इंजिन तैयार कर लिया है। इन सर्च इंजिनों को वहाँ की भाषा के हिसाब से डिजाइन किया गया है। चीन ने बाइडू को 2001 में लाँच किया था। इस समय चीन में 60.5 प्रतिशत से अधिक लोग बाइडू का प्रयोग करते हैं जबकि 0.1 प्रतिशत ही गूगल का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार रूस ने 1997 में ही येनडेक्स लाँच कर दिया था। रूप में 59.9 प्रतिशत लोग येनडेन्क्स का और 32.8 प्रतिशत गूगल का और अन्य पर 7.5 प्रतिशत लोग इस्तेमाल करते हैं। दक्षिण कोरिया ने 1999 में नवर नाम से अपना सर्च इंजिन बना लिया था। दक्षिण कोरिया में 73 प्रतिशत लोग नवर का ही इस्तेमाल करते हैं। लेकिन इस दिशा में भारत और भारतीय भाषाएँ कहीं नहीं है। हम आज भी लगभग पूरी तरह गूगल और दूसरे सर्च इंजिनों पर ही निर्भर हैं। यह अत्यधिक आवश्यक है कि अविलंब भारतीय भाषाओं का सर्च इंजिन बनवाया जाए।

यह कोई बहुत पुरानी बात नहीं जब कम्प्यूटर के पटल पर फेसबुक का जन्म हुआ और मीडिया का पर्याय बन कर कुछ ही समय में सोशल मीडिया को चुनौती देने लगा और देखते ही देखते प्रयोक्ताओं में भारत विश्व में दूसरे स्थान पर आ गया। फिर क्या था, गूगल, ट्विटर, लिंक्डइन आदि सोशल मीडिया के कई प्लेटफॉर्म मैदान में आ गए, लेकिन इन सबको पछाड़ने का कार्य किया एक कॉलेज के विद्यार्थी द्वारा बनाए गए सोशल मीडिया के सरलतम प्लेटफॉर्म — व्हाट्सैप ने। इसने विश्व के सर्वाधिक लोकप्रिय प्लेटफॉर्म फेसबुक के मालिकों ने बहुत बड़ी राशि दे कर इसे खरीद कर फेसबुक की लाज बचाई। सोशल मीडिया पर भारत की खासी धमक है लेकिन देवनागरी लिपि में टाइपिंग व अन्य भाषाई उपकरणों की जानकारी व प्रशिक्षण आदि के अभाव में भारतीय भाषाएँ प्राय: रोमन लिपि में लिखी जा रही हैं।

आज़ादी के सत्तर वर्ष पश्चात और सूचना-प्रौद्योगिकी व कम्प्यूटर के आगमन के तीन दशक बाद भी जहाँ देश के ज्यादातर लोग कम्प्यूटर पर देवनागरी में लिखना तक न जानते हों, जहाँ हम आई.टी. समाधानों में हिन्दी या अन्य कोई भारतीय भाषा कार्यान्वित न करवा सके हों, जहाँ जनता के लिए उपलब्ध करवाई गई ज्यादातर ऑन लाइन सेवाओं और जन उपयोगी ऐप्स में से हिन्दी तक गुल हो और ई-गवर्नेंस भी अंग्रेजी की चाल चलता दिखे तो हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं का प्रयोग व प्रसार कैसे बढ़ेगा। यूँ भी पल-पल परिवर्तित प्रौद्योगिकी के युग में केवल सरकारी साधनों-संसाधनों और सीमित व्यवस्थाओं के सहारे भारतीय भाषाओं के लिए अद्यतन प्रौद्योगिकी विकास की बात व्यावहारिक नहीं लगती। यदि इसे गंभीरतापूर्वक यथार्थ के

धरातल पर उतारना है तो इसके लिए एक ऐसी सुविधा-संपन्न उच्च-स्तरीय संस्था के गठन की भी आवश्यकता है जो भाषा के लिए उपलब्ध होने वाली प्रत्येक नवीनतम भाषा-प्रौद्योगिकी पर पैनी नजर रखे। इसके अतिरिक्त यह अविलंब स्वतः संज्ञान लेकर निर्धारित अवधि में यथावश्यक निजी क्षेत्र को साथ लेकर भारतीय भाषाओं के लिए अनुसंधान व विकास का कार्य करने के साथ ही इसके रख-रखाव और प्रशिक्षण जैसे कार्यो को कार्यान्वित करने तक के दायित्वों का निर्वाह कर सके। वे भी ऐसे कि जो प्रयोक्ताओं के लिए सरल व उनके अनुकूल और परिणामजनक भी हों।

आज हम देश के भाषा-प्रौद्योगिकी से जुड़ी बीस-तीस साल पुरानी समस्याओं को भी ठीक प्रकार से सुलझा या कार्यान्वित नहीं कर सके हैं। विश्व सूचना-प्रौद्योगिकी के नए युग में प्रवेश करने जा रहा है। उत्पादन-विपणन, सेवा, अनुसंधान-विकास और मानव संसाधन आदि विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ कर एक नई दुनिया में जाने को तैयार है, जिसे वर्च्युअल-वर्ल्ड यानी आभासी दुनिया कहा जा रहा है। अब न्यू जैनरेशन यानी नई पीढ़ी की कम्प्यूटर प्रणालियों की चर्चा है जिनके लिए संस्कृत को सर्वाधिक अनुकूल बताया जा रहा है। क्या हम भारतीय-भाषाओं में कल ही प्रौद्योगिकी के लिए तैयार हैं? यदि भाषा-प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हम दुनिया के साथ कदमताल करते हुए आगे नहीं बढ़े तो हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाएँ संवैधानिक और जनतांत्रिक आवश्यकताओं के अनुकूल अपेक्षित प्रगति नहीं कर सकेंगी।

स्वतंत्रता के सत्तर वर्ष के भाषाई सफरनामे पर प्रौद्योगिकी के चश्मे से गहनतापूर्वक विचार करते हुए हमें भातीय भाषाओं के लिए आवश्यक प्रौद्योगिकी कार्यान्वित करने के लिए व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन करने होंगे। यह भी कि योजना केवल सरकारी कार्यालयों के लिए ही नहीं बल्कि देश के सभी नागरिकों, व्यापार-वाणिज्य, उद्योग व सेवा सहित विभिन्न क्षेत्रों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर बनानी और कार्यान्वित करनी होंगी। इसका मार्ग सरकारी कार्यालयों से नहीं बल्कि विद्यालयों, विश्वविद्यालयों, अनुसंधान व विकास संस्थानों और नीति-निर्माताओं की प्रतिबद्धता से निकल सकेगा। आज भारत सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में स्वयं को एक महाशक्ति मानता है, तो ऐसे में इस महाशक्ति के बड़े-बड़े योद्धाओं को भाषा-प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उतार कर हमें अपनी भाषाओं के प्रसार के संघर्ष में विजय हासिल करनी होगी।

◆◆◆

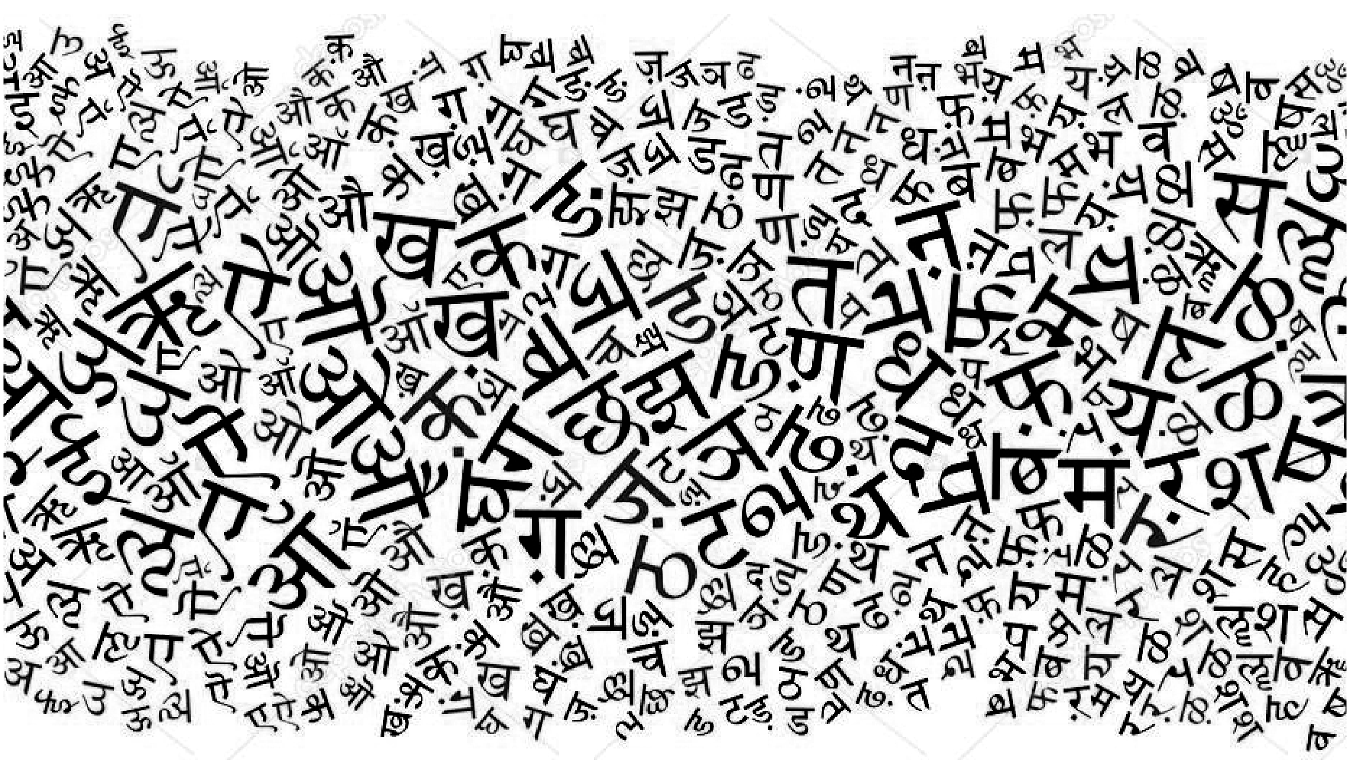

आज़ादी के बाद का भारत और हिंदी कविता के बदलते स्वर

डॉ. हर्षबाला शर्मा

...आज़ादी के स्वप्न के साथ ही विभाजन की हकीकत सामने आई पर धीरे-धीरे जख्म भुलाकर लोग सामान्य जीवन जीने का प्रयास करने लगे। हरित क्रांति से लेकर पंचशील के सिद्धांत मानो एक नए राष्ट्र के युवा के भीतर उत्साह भर रहे थे। हिन्दी कविता संसार में भी इसकी अभिव्यक्ति दिखाई देती है परन्तु चीन और उसके पश्चात पाकिस्तान के साथ होने वाले छोटे-छोटे युद्धनुमा संघर्षों से भरा यह काल सन साठ के पश्चात नेहरू युग से मोहभंग का दौर था। युगीन दबावों से जूझती यह कविता विसंगति और विडम्बना का चयन करती है।...

सम्पर्कः असिस्टेंट प्रोफेसर, इन्द्रप्रस्थ कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

एक लम्बे संघर्ष के उपरान्त 1947 में भारत को आज़ादी प्राप्त हुई और 15 अगस्त 1947 की आधी रात को भारत को आज़ाद भारत का दर्जा हासिल हो गया। हालांकि इसके पीछे हज़ारों लोगों की चीखें और तकलीफें साफ-साफ सुनी जा सकती थीं। केवल चीखें ही नहीं बँटवारे की चोट इतनी बड़ी थी कि अपने ही घर में बसा आदमी एक क्षण में ही बेगाना और अन-पहचाना हो गया था। एक साथ लड़ी जाने वाली लड़ाई के योद्धा अब अपरिचित हो गए थे। मिलकर जिस भारत की आज़ादी का स्वप्न देखा गया था, अचानक उसकी जमीन के टुकड़े ने हर चीन्हें चेहरे को अनचीन्हा कर दिया। आज़ादी मिली पर अपने साथ भयावहता और डर भी लाई। 'देश की धरती के सोना उगलने' का स्वप्न धूल धूसरित हो गया।

कमलेश्वर 'नई कहानी' की भूमिका[1] में लिखते हैं, ''गोरे साहब गए, ब्राउन साहब आ गए।... एक शानदार अतीत कुत्ते की मौत मर रहा है, उसी में से फूटता हुआ एक विलक्षण वर्तमान रूबरू है— अनाम, अरक्षित और आदिम अवस्था में खड़ा वह मनुष्य अपनी भाषा चाहता है, आस्था चाहता है, कविता और कला चाहता है, मूल्य और संस्कार चाहता है, अपनी मानसिक और भौतिक दुनिया चाहता है...।''

इस दुनिया की तलाश में व्यक्ति कविता की दुनिया में प्रवेश करता है और आज़ादी के स्वप्न भंग से पूर्व आज़ादी मिलने की खुशी को महसूस करने की चाहत कविता में व्यक्त करता है—

''मैंने कहा आ-ज़ा-दी
और दौड़ता हुआ खेतों की ओर
गया वहाँ कतार के कतार
अनाज के अँकुए फूट रहे थे
मैंने कहा जैसे कसरत करते हुए—
बच्चे। तारों पर
चिड़ियाँ चहचहा रही थीं
मैंने कहा काँसे की बजती हुई घण्टियाँ...
खेत की मेड़ पार करते हुए
मैंने एक बैल की पीठ थपथपायी

सड़क पर जाते हुए आदमी से
उसका नाम पूछा
और कहा बधाई...
घर लौटकर
मैंने सारी बत्तियाँ जला दीं
पुरानी तस्वीरों को दीवार से
उतार कर
उन्हें साफ किया
और फिर उन्हें दीवार पर उसी जगह
पोंछकर टाँग दिया।'' (पटकथा)[2]

आज़ादी के स्वप्न के साथ ही विभाजन की हकीकत सामने आई पर धीरे-धीरे जख्म भुलाकर लोग सामान्य जीवन जीने का प्रयास करने लगे। हरित क्रांति से लेकर पंचशील के सिद्धांत मानो एक नए राष्ट्र के युवा के भीतर उत्साह भर रहे थे। हिन्दी कविता संसार में इसकी भी अभिव्यक्ति दिखाई देती है परन्तु चीन और उसके पश्चात पाकिस्तान के साथ होने वाले छोटे-छोटे युद्धनुमा संघर्षों से भरा यह काल सन् साठ के पश्चात नेहरू युग से मोहभंग का दौर था। युगीन दबावों से जूझती यह कविता विसंगति और विडम्बना का चयन करती है। औद्योगीकरण, पूँजीवाद, शहरीकरण, बेरोजगारी ने एक ओर मध्यवर्गीय समाज को असंतुलित किया तो वहीं अस्तित्ववाद ने मानव मूल्य व जीवन दर्शन को बदला। वैयक्तिक स्वच्छन्दता, दु:ख, पीड़ा, अस्तित्वबोध जैसे विषयों ने स्थान ग्रहण करते हुए लघु मानव की अवधारणा का विकास किया।

कविता अपने युग बोध और दायित्व की सबसे सार्थक अभिव्यक्ति है। कम शब्दों में सार्थक हस्तक्षेप करती कविता भारतीय सत्ता और समाज के पारस्परिक संबंधों के भूगोल को रचती है। सत्ता और समाज के संबंधों के बीच हिन्दी कविता हस्तक्षेप करती है— आपातकाल की स्थितियों को लेकर, किसानों और मज़दूरों की यातनाओं, नक्सलबाड़ी आन्दोलन से गुजराती हिन्दी कविता ने उदारवादी नीतियों, बाजार के कारण बदलते समय की नई नीतियों, स्त्री और उसकी जमीन की तलाश से लेकर दलित को स्वर देती है।

आज़ादी के बाद की हिन्दी कविता ने कविता के भाव परिवर्तन की जमीन तैयार की। इस कविता के केन्द्र में पर्यावरणीय सरोकार भी हैं और बच्चों के प्रति चिंता भी। ये कविता पिता के प्रेम की भी बात करती है और माँ के लिए कविता न लिख पाने की पीड़ा से भी कवि गुजरते हैं। लड़कियों के भीतर प्रेम के हिंडोले पर सवार होकर उड़ने की इच्छा भी इस कविता में है। प्रेम और विरोध पर समानांतर कविता भी है। मंगलेश डबराल की कविताओं में पहाड़ का दर्द मूर्त होता है वहीं राजेश जोशी वृक्षों का प्रार्थना गीत रचते हैं, चाँद की आदतों पर बात करते हैं, नन्हीं मुनिया की गुनगुनाहट है जहाँ चिड़िया का एक पंख धूप है और दूसरा पानी। विरल संगीत और पारदर्शिता के स्वर भी मौजूद हैं। अरुण कमल की कविता में शोर किए बिना साधारण आदमी का दर्द मौजूद है—

''जैसे ही कौर उठाया
हाथ रुक गयाा
सामने किवाड़ से लग कर
रो रहा था वह लड़का
जिसने मेरे सामने
रक्खी थी थाली'' (होटल)[3]

सातवें-आठवें दशक की कविता के साथ प्रगतिशील स्वर और नई कविता के सन्दर्भ नवीन रूप धारण करके सामने आते हैं। इस कविता में एक ओर मुक्तिबोध हैं जो अँधेरे में तौल्स्तोय को देखते हैं तो कर्नल, ब्रिगेडियर, जनरल और मार्शल को भी, वहीं दूसरी ओर राजकमल चौधरी की मछली मरी हुई से रघुवीर सहाय तक यह यात्रा चलती है। रघुवीर सहाय पत्रकारिता की दुनिया के माध्यम से जन-मन की पीड़ा को खंगाल रहे थे। वे रामदास जैसे आदमी के इस आज़ाद देश में खुलेआम सड़क पर मरने की तकलीफ बयाँ करते हैं जहाँ आज़ादी के 30 वर्षो के भीतर ही पुलिस और जनतंत्र से जनता का विश्वास लुप्त हो चुका है और जनता सड़क पर मरने के लिए विवश है।

''रामदास उस दिन उदास था
अंत समय आ गया पास था
उसे बता यह दिया गया था...
उसकी हत्या होगी।'' (रामदास)[4]

अकविता के दौर में चूँकि मनुष्य का विश्वास राजनैतिक अराजकता के कारण मनुष्यता से उठ चुका था तो रचनाकार कविता पर से भी विश्वास खो रहा था। 1971 में भारत-पाकिस्तान युद्ध के बाद बांग्लादेश का उदय होता है और 1975 में इंदिरा गाँधी इमरजेंसी लागू करती हैं। साहित्यकारों-पत्रों की अभिव्यक्ति का अधिकार छीना जाता है और कुछ भीतरी सुगबुगाहटों के बाद

साहित्य में इसकी प्रतिक्रया भी दीखने लगती है। मुक्तिबोध, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, गिरिजा कुमार माथुर, श्रीकांत वर्मा, रघुवीर सहाय, कुंवर नारायण, केदारनाथ सिंह इस कल के प्रमुख स्वर थे। जहाँ गिरिजाकुमार माथुर 'छाया मत छूना नाम' के माध्यम से भावनात्मक अभिव्यक्ति को माध्यम बनाते हैं वहीं रघुवीर सहाय पत्रकारिता को आधार बनाकर राजनीतिक ठंडेपन को उभारते हैं। मुक्तिबोध अभिव्यक्ति के कुचले जाने पर अँधेरे के बीच चलने की राह बनाते हैं और कवियों द्वारा विषय न मिलने की शिकायत पर आस-पास के जन के भीतर छिपे आक्रोश के अन्दर झाँक कर विषयों को ढूँढ़ने की बात कहते हैं—

''एक कदम रखता हूँ तो
सैकड़ों राहें फूटती हैं
मैं उन से गुजरना चाहता हूँ...''

कुंवर नारायण आस्था और जिजीविषा को जिलाये रखने वाले कवि हैं। आज़ादी के 30 वर्षों के भीतर जनमन से जो आस्था का विनष्ट होना आरम्भ हो चुका था, उसे जीवित रखने के लिए वे कविता को ही आधार बनाते हैं—

''बहुत कुछ दे सकती है कविता
क्योंकि बहुत कुछ हो सकती है कविता
ज़िंदगी में
अगर हम जगह दें उसे
जैसे फलों को जगह देते हैं पेड़
जैसे तारों को जगह देती है रात
हम बचाये रख सकते हैं उसके लिए
अपने अन्दर कहीं
ऐसा एक कोना
जहाँ ज़मीन और आसमान
जहाँ आदमी और भगवान के बीच दूरी
कम से कम हो।'' (कुंवर नारायण)[5]

इस कविता में राजनीतिक सरोकार है और व्यंग्य भी।

आठवें दशक में नक्सलवादी आन्दोलन देश में तेजी से उभरा। इस युग में 'कविता की वापसी' का नारा भी दिया गया। धूमिल, चंद्रकांत देवताले, लीलाधर जगूड़ी, अरुण कमल, राजेश जोशी जैसे बड़े कवि इसी युग की देन है। धूमिल ने अकविता को भी प्रभावित किया और राजनैतिक कविता को भी। चंद्रकांत देवताले आदिवासी महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों को दर्शाते हैं और 'लक्कड़बघ्घा हँस रहा है', 'आग हर चीज में बताई गई थी' जैसे संग्रहों के माध्यम से अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं।

यहाँ विचारणीय प्रश्न यह है कि आज़ादी के इतने दशक बाद भी कवि को लौ जलाने पर विवश क्यों होना पड़ रहा है? ये तो सच है कि कविता प्रेरणा देना कभी नहीं छोड़ सकती पर यह भी विचारणीय है कि क्यों सत्ता के नाखून इतने तीखे और धारदार होते जा रहे हैं जिसके खिलाफ कवि को लगातार संघर्ष करना पड़ रहा है? लोकतंत्र के इस स्वरूप की कामना तो किसी ने नहीं की थी। अपना देश, अपना लोकतंत्र, अपनी आज़ादी के बीच जीने के लिए भी संघर्ष करना पड़ेगा, ये तो स्वप्न हमने नहीं देखा था। कभी आदिवासियों पर होने वाले अत्याचार, कभी धर्म के नाम पर होने वाले संघर्षों के बीच कविता की जिम्मेदारी बढ़ती गई साथ ही वैश्वीकरण के इस दौर में सत्ता और साहित्य का संघर्ष भी बढ़ता गया। लीलाधर जगूड़ी की कविता भूख की बात करती है। यहाँ तक आते-आते कवि राजनीति और सत्ता के संघर्ष के साथ-साथ न दिखने वाली समस्याओं को भी कविता का विषय बनाता है—जैसे भूख, गरीबी, बचपन। यह विषय मौजूद तो हैं पर प्राय: उपेक्षित। यहाँ आकर कवि भूख पर मारक कविता लिखता है, क्योंकि—

''एक चिड़िया की भूख
एक चींटी की भूख
एक हाथी की भूख
भूख चाहे किसी की हो
मार एक है।'' (लीलाधर जगूड़ी)[6]

नवें दशक की कविता शाश्वत जीवन मूल्यों, क्षेत्रीयता के संकट, युवाओं के आक्रोश, स्त्री कविता के बदलते विषयों और दलित कविता के एक नए सौन्दर्य शास्त्र से बनती है। इस युग के प्रमुख कवियों में केदारनाथ सिंह, अरुण कमल, दूधनाथ सिंह, राजेश जोशी, उदय प्रकाश, अनामिका आते हैं। केदारनाथ सिंह इस युग की कविता के विषय में लिखते हैं।

''नौवें दशक के शुरू में कविता के अस्तित्व को लेकर अनेक शंकाएँ व्यक्त की गई थीं। पर शती के अंतिम द्वार दस्तक देने से पहले हम देखते हैं कि कविता ने सिर्फ जीवित है बल्कि उसने अपनी एकाकार कर लिया है।''[7]

उदय प्रकाश की कविता 'सुनो कारीगर', 'रात में हारमोनियम', 'क से कबूतर' आदि कविता संग्रहों में समाज के बीच छोटी-छोटी घटनाओं के बीच खुशी तलाशने का उपक्रम मिलता है। बच्चे की हँसी और शरारत भी इनकी कविता में स्थान पाती हैं—

''छत पर बच्चा
अपनी माँ के साथ आता है।
पहाड़ों की ओर वह
अपनी नन्हीं उंगली दिखाता है।
पहाड़ आँख बचा कर
हल्के-से पीछे हट जाते हैं
माँ देख नहीं पाती।
बच्चा देख लेता है।
वह ताली पीटकर उछलता है
— देखा माँ, देखा
उधर अभी
सुबह हो जाएगी...'' (शरारत)[8]

मजदूर, कारीगर, बढ़ई इनकी कविता में प्रवेश पाते हैं और आम आदमी के श्रम पर कविताएँ बात करती हैं। राजेश जोशी वृक्षों का प्रार्थना गीत रचते हैं और बच्चों के काम पर जाने को दुनिया की सबसे कटु बात मानते हैं। बाल श्रम का विरोध करती और बच्चों के बचपन को बचाने की मुहिम के साथ लिखी कविता के फलक को और अधिक विस्तृत करती है—

''बच्चे काम पर जा रहे हैं
हमारे समय की सबसे भयानक पंक्ति है यह
भयानक है इसे विवरण के तहत लिखा जाना
लिखा जाना चाहिए इसे सवाल की तरह
काम पर क्यों जा रहे हैं बच्चे?''[9]

मंगलेश डबराल की कविता में प्रकृति, पहाड़ और फूल-पत्ते प्रवेश पाते हैं। हरिनारायण व्यास सृष्टि से जुड़कर अपनी सार्थकता मानते हैं। नवें-दसवें दशक की कविता पर्यावरण को भी सरोकार मानती है और भोपाल त्रासदी में जाने वाले जानों के प्रति भी सम्वेदनशील होती है। आने वाली पीढ़ियों के प्रति चिंता भी इस कविता का विषय बनती है। स्नेहमयी चौधरी लिखती है— *''न जाने किस क्षण छिड़ जाए/जहरीली गैस की लड़ाई।''*

स्त्री कविता भी नवें-दसवें दशक में प्रवेश करती है। स्त्री की भूमिका भी बदलने लगती है और धार्मिक कट्टरता का आवरण ओढ़े पुरुष उसे परेशान करने लगते हैं। आजादी का अर्थ सभी को समान तरह से जीने का हक़ मिलना भी था पर आज भी बाहर से सामाजिक और भीतर से कट्टर दिखता पुरुष स्त्री को उसी चौहद्दी में समेटे रखना चाहता है। स्त्री अपनी आज़ादी और अपने जैसी— मज़दूरनों, कहारनों और बेड़िनों की आज़ादी का सूत्र रचती है। अनामिका लिखती हैं—

''लोग मिले— पर कैसे-कैसे—
ज्ञानी नहीं, पंडिताऊ,
वफ़ादार नहीं, दुमहिलाऊ,
साहसी नहीं, केवल झगडालू,
दृढ़ प्रतिज्ञ कहाँ, सिर्फ जिद्दी,
प्रभावी नहीं सिर्फ हावी,
दोस्त नहीं मालिक,
सामाजिक नहीं, सिर्फ एकांत भीरु
धार्मिक नहीं, केवल कट्टर।'' (अनब्याही औरतें)[10]

दलित कविता ने जातिगत भेद से मुक्ति का स्वप्न देखा। आज़ादी की बयार सभी को जीने का हक़ प्रदान कर सके, ऐसा स्वप्न सभी ने देखा था, पर दलितों को यह स्वप्न पूरा करने का मौका कभी नहीं मिला। साहित्य इनकी मुक्ति का मार्ग बन सकता है और उनके लिए मार्ग बना भी सकता है, इसे शिक्षा के माध्यम से उन्होंने भी समझा। श्योराज सिंह बेचैन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, कंवल भारती ने दलित कविता लिखी और आज भी लिख रहे हैं। यह कविता प्रतिरोध की कविता है और एक नए सौंदर्यशास्त्र की माँग करती है। जयप्रकाश कर्दम लिखते हैं—

''चमड़े के टुकड़े
पॉलिश की डिबिया और
ब्रुशों को
उलटते-पलटते अपने
नंगे-अधनंगे बेटे को देखता है
विवशता से व्याकुल हो
अपने मन को मसोसता है
अपनी भूख और बेबसी को
कोसता है, और
ईर्ष्या, ग्लानि और क्षोभ से भरकर
व्यवस्था के जूते में
आक्रोश की कील
ठोक देता है!'' (आज का रैदास)[11]

आज की कविता आतंकवाद का भी विरोध करती है और आज़ादी के बाद अनेक प्रयासों से प्राप्त हुए इस स्वतंत्रता को गंवाने के लिए कतई तैयार नहीं है। आतंक धर्म के नाम किया जाए अथवा राष्ट्र के छोटे-छोटे हिस्सों पर दावेदारी के नाम पर, अंततः बालकों और स्त्रियों को ही इसका सर्वाधिक भुगतान करना पड़ता है। कविता इसमें हस्तक्षेप करती है और आतंक का विरोध करती है—

> *''फिर रंग गई धरती*
> *किसी के रक्त से*
> *फिर से आई किसी बूढ़ी माँ की चीख*
> *फिर*
> *मासूम बच्चे ने*
> *प्रश्नसूचक दृष्टि से निहारा*
> *माँगा आतंक का जवाब।''* (अवशेष)[12]

कविता प्रतिपक्ष में खड़ी होती है और सही का समर्थन करती है। कविता करना सरल नहीं और प्रतिपक्ष में खड़े होना तो और भी कठिन है। बहुत अधिक साहस चाहिए सत्य कहने और जनवादी होने के लिए। पर हिन्दी कविता ने इस जिम्मेदारी को निभाया है।

अरुण कमल की एक कविता है—'उधर के चोर' जिसमें वे उन चोरों का वर्णन करते हैं जो बासी चावल चुराते हैं और उसी को अपनी नियति मान लेते हैं—

> *''कहते हैं एक चोर सेंध मार घर में घुसा*
> *इधर-उधर टो-टा किया और जब कुछ न मिला*
> *तब चुहानी में रक्खा बासी भात और साग खा*
> *थाल वहीं छोड़ भाग गया—*
> *वो तो पकड़ा ही जाता यदि दबा न ली होती डकार।''*[13]

राजतंत्र और जनतंत्र का ये कैसा विरोधाभास है कि आज़ादी के बाद देखे गए सभी अपने झूठे सिद्ध हो जाते हैं। यदि साधारण आदमी आज भी नियति में वही पीड़ा और दबाव को देखता है जो प्रेमचंद के हल्कू की नियति का हिस्सा था, तो कौन-सी आज़ादी पाई हमने। ये एक बड़ा प्रश्न है जिससे हमें निरंतर जूझना चाहिए और साहित्य की भूमिका पर विश्वास करना चाहिए। जब आकाश में कोहरा घना हो तो कविता के फलक और सरोकारों को और अधिक पैना और गहरा होना पड़ता है। कविता लगातार लिखी जा रही है, और स्वाधीनता की नयी परिभाषा रच रही है। स्त्री के प्रति बदलती दृष्टि, आम आदमी की पीड़ा, पर्यावरण, विश्व दृष्टि इस कविता के केन्द्र में हैं जिससे आज़ादी को नए अर्थ मिल रहे हैं और मिलते रहेंगे। लोकतंत्र में विश्वास के साथ धर्मवीर भारती के इन शब्दों को दोहराना उचित होगा, *''आस्था तुम लेते हो/लेगा अनास्था कौन!''* कविता इस आस्था और अनास्था दोनों का वरण करती है।

सन्दर्भ सूची

1. कमलेश्वर, नई कहानी की भूमिका
2. सुदामा पाण्डेय धूमिल, पटकथा
3. अरुण कमल, होटल
4. रघुवीर सहाय, रामदास
5. कुंवर नारायण, बहुत कुछ दे सकती है कवित
6. लीलाधर जगूड़ी, चिड़िया का प्रसव
7. केदारनाथ सिंह, यहाँ से देखो
8. उदय प्रकाश, शरारत
9. राजेश जोशी, बच्चे काम पर जा रहे हैं
10. अनामिका, अनब्याही औरतें
11. जयप्रकाश कर्दम, आज का रैदास
12. प्रमोद शर्मा, अवशेष
13. अरुण कमल, उधर के चोर

हिन्दी सिनेमा के नये कदम

महेंद्र प्रजापति

समानान्तर सिनेमा को हिन्दी सिनेमा की मजबूत कड़ी के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। समानान्तर सिनेमा को आरम्भ में बदलाव के रूप में देखा गया और उसे 'समाज का सिनेमा' कहा गया जो अभिनय और पुरस्कार की दृष्टि से महत्वपूर्ण तो साबित हुआ लेकिन जल्द ही इस तरह की फिल्में बनाने वाले फिल्मकारों को यह महसूस होने लगा कि वे कुछ 'विशेष' हैं। अपने 'विशेष' होने का यही भान उन्हें ले डूबा।

हिन्दी सिनेमा में व्यावसायिक और अव्यावसायिक फिल्मों पर हमेशा बहस होती रही है। सिनेमा में अथाह धन लगाने और कमाने की संभावना रहती है क्योंकि यह पूर्ण रूप से व्यावसायिक विधा मानी जाती है। लोकप्रिय और सामाजिक फिल्मों के साथ ही हर दशक में कुछ यथार्थवादी फिल्मों का निर्माण भी होता रहा है। इस तरह की फिल्मों में मनोरंजन की संभावना न्यूनतम होने के कारण दर्शकों का बहुत प्यार नहीं मिल सका लेकिन सपनों की दुनिया में खोए हिन्दी सिनेमा को सच्चाई से अवगत कराने के लिए इस तरह की फिल्मों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। हालाँकि इस तरह की फिल्मों का निर्माण बहुत कम हुआ लेकिन सत्तर और अस्सी के दशक में यथार्थवादी फिल्मों ने बहुत ही भव्य तरीके से अपनी शुरुआत की। जिसमें मृणाल सेन, कुमार शहानी, श्याम बेनेगल, मणि कौल, बासु चटर्जी, मीरानायर, दीपा मेहता, कल्पना लाजमी और गोविन्द निहलानी जैसे निर्देशकों के नाम प्रमुख हैं। इन फिल्मकारों ने न केवल सामाजिक फिल्मों का निर्माण किया बल्कि साहित्य को सिनेमा से जोड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। अस्सी तक आते-आते इन फिल्मों की बौद्धिकता एवं सूक्ष्म बुनावट ने अपना प्रभाव लगभग खो दिया। उदारीकरण के प्रभाव ने भी इस तरह की फिल्मों की जड़ों को तोड़ने में बहुत बड़ी भूमिका निभाई। दरअसल भूमंडलीकरण अपने साथ एक बाजार लेकर आया जिसने हिन्दी सिनेमा की धारा को ऐसी तरफ मोड़ दिया जहाँ सिर्फ व्यावसायिकता ही पहला धर्म था।

2000 के बाद नई विचारधारा के युवा निर्देशकों के हस्तक्षेप ने हिन्दी सिनेमा को फिर से यथार्थवादी फिल्मों की तरफ मोड़ दिया। राजकुमार हीरानी, मधुर भंडारकर, विशाल भारद्वाज, नीरज पाँडे, फरहान अख्तर और अनुराग कश्यप जैसे अपनी धुन के पक्के निर्देशकों ने यथार्थवादी सिनेमा को नए ढंग से प्रस्तुत किया। उन्होंने अपनी नयी सोच और विचारधारा के बलबूते हिन्दी सिनेमा में खोयी और मृत पड़ी यथार्थवादी फिल्मों को फिर से जीवन्त कर दिया।

अनुराग कश्यप इस धारा के मुखिया कहे जा सकते हैं। उन्होंने हिन्दी फिल्मों की लीक को तोड़ने का यथासंभव प्रयास किया

सम्पर्क: एफ-14, तृतीय तल, वेद विहार, डी.एल.एफ. गाजियाबाद (उ.प्र.), मोबाईल: 9871907081,
ई-मेल: mahendraprajapati39@gmail.com

जिसमें वह बहुत हद तक सफल भी हुए हैं। उनके द्वारा लिखित और निर्देशित फिल्मों ने हिन्दी सिनेमा में यथार्थवादी फिल्मों की सूची तैयार की। अनुराग कश्यप हिन्दी सिनेमा के वर्तमान समय के सबसे क्रांतिकारी तेवर के निर्देशक और लेखक कहे जा सकते हैं। उनकी हर फिल्म एक नए विषय को लेकर प्रस्तुत होती है। आलोचकों और दर्शकों को उनकी फिल्मों का इसलिए इंतजार रहता है कि कुछ अलग देखने को मिलेगा। अनुराग भी हर फिल्म में अपने प्रशंसकों को कुछ नया दिखाने के लिए ईमानदारी से फिल्म निर्माण करते हैं। बोल्ड विषय, भाषा और गीतों के कारण अनुराग कश्यप की फिल्मों का मूल्यांकन यथार्थवादी दृष्टि से किया जा सकता है।

अनुराग कश्यप की फिल्मों में सामाजिक यथार्थ की बहस बहुत बड़े स्तर पर होने की संभावना है। इनकी फिल्में बोल्ड विषय और अलग शैली में बने होने के कारण लोगों को भाती है। इस विषय पर शोध करते हुए मुझे यह अनुभव हुआ कि अनुराग जो सिनेमा बना रहे हैं वह हमारे समाज का ही आईना है बस उनके बनाने की शैली पश्चिम की है। 'देव डी' का देव हमारे ही समाज का अभिजात्य वर्ग में पैदा हुआ कोई युवा है जो लंदन जैसे अतिआधुनिक देश से शिक्षा लेकर लौटा है इसीलिए हमें उसकी हरकतें खटकती हैं, लेकिन जो भारत की युवा पीढ़ी है वह उसी तरह बेफिक्र होकर जीना चाहती है। संभव है अनुराग भविष्य में आने वाली पीढ़ी की एक झलक इस फिल्म के माध्यम से दिखाना चाह रहे हों। फिल्म 'गुलाल' सत्ता और जमींदारी प्रथा के चेहरे पर बेईमानी के 'गुलाल' को धो देने की जिद से बनायी गई फिल्म है। यह फिल्म अनुराग की राजनीतिक चेतना को समझने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है और देश में होने वाली छात्र राजनीति के घिनौने सच को परखने के लिए भी।

'गैंग्स ऑफ वासेपुर' अपनी लोक चेतना और कल्ट अभिव्यक्ति के लिए हमेशा याद रखी जा सकती है। इस फिल्म ने अपने चरित्रों, विषय, भाषा और गीतों के माध्यम से उस समाज को फिल्मों में वापस ला दिया जो वर्षों से हाशिये पर था।

सन् 2000 के बाद जिन फिल्मों का निर्माण हुआ उसके दो खेमे बने। एक वे निर्देशक थे जो दिमाग घर पर रख कर फिल्म देखने की अपील करते हैं। एक वो जो सिनेमा को इन्सान और संवेदना के बीच की मजबूत कड़ी मानते हैं। उनका आग्रह रहा कि जब भी आप सिनेमा देखने आएँ तो सारी चेतना अपने साथ लेकर आएँ। इस संबंध में जवरीमल्ल पारख ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी सिनेमा का समाजशास्त्र' में लिखा है, ''सिनेमा चाहे मनोरंजन के लिए हो या व्यवसाय के लिए या कला के उत्कर्ष की अभिव्यक्ति के लिए, उसमें अपने दौर का समाज किसी-न-किसी रूप में व्यक्त हुए बिना नहीं रह सकता। यह अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष और अतिरंजित रूप में भी हो सकती है और प्रत्यक्ष और रचनात्मक रूप में भी।''

गौर से देखें तो सहज ही पता चल जाएगा कि इस समय में बड़े निर्देशक, बड़े स्टार, बड़ी फिल्में और बड़ा बैनर, इन सबका तिलिस्म टूट गया। हिन्दी सिनेमा में पहली बार सभी के लिए दरवाजे खुले चाहे वो छोटा हो या बड़ा, शर्त बस इतनी है कि उसमें प्रतिभा और कुछ अच्छा कर गुजरने की क्षमता हो। इसी दरवाजे से अनुराग कश्यप, तिग्मांशु धूलिया, विशाल भारद्वाज, राजकुमार हिरानी, मधुर भंडारकर, नागेश कुकूनूर, संजय लीला भंसाली, आशुतोष गोवरीकर, इम्तियाज अली, दिवाकर बनर्जी, संजय पूरन सिंह चौहान, नीरज पांडे जैसे अपने धुन के पक्के निर्देशक हिन्दी सिनेमा के विराट पटल पर चित्रित हुए और अपने अलग-अलग फ्लेवर की फिल्मों के निर्माण के कारण स्थापित भी हुए। इसी दशक में देव डी, ब्लैक, रंग दे बसंती, मुन्ना भाई एम.बी.बी.एस., लाहौर, सरकार, लगे रहो मुन्ना भाई, लगान, स्वदेश, चक दे इंडिया, गुलाल, कंपनी, सरकार, रण, क्या कहना, दिल चाहता है, मकबूल, इश्किया, ओमकारा, उड़ान, खोसला का घोसला, गुजारिश, चाँदनी बार, कॉरपोरेट, पेज थ्री, ए वेडनस डे, तारे जमीं पर, चीनी कम, मैंने गाँधी को नहीं मारा, हजारों ख्वाहिशें ऐसी, लाईफ इन अ मेट्रो, सत्ता, युवा, गंगाजल, मिस्टर एंड मिसेस अय्यर, मकबूल, शहीद, पान सिंह तोमर, कहानी, डर्टी पिक्चर, विक्की डोनर, थ्री इडियट जैसी लीक से हट कर फिल्मों का आगमन भी हुआ। कम शब्दों में कहा जाए तो पहली बार ऐसा हुआ जब यह बात सामने आई कि, जो अच्छा करे वही बड़ा। इस दौर में युवा निर्देशक की एक लम्बी फौज तैयार हुई जिन्होंने अर्थपूर्ण फिल्मों का निर्माण किया हालाँकि बाजार भी उनके साथ हमेशा मौजूद रहा।

समानान्तर सिनेमा को हिन्दी सिनेमा की मजबूत कड़ी के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। समानान्तर सिनेमा को आरम्भ में बदलाव के रूप में देखा गया और उसे 'समाज का सिनेमा' कहा गया जो अभिनय और पुरस्कार की दृष्टि से महत्वपूर्ण तो साबित हुआ लेकिन जल्द ही इस तरह की फिल्में बनाने वाले

फिल्मकारों को यह महसूस होने लगा कि वे कुछ 'विशेष' हैं। अपने 'विशेष' होने का यही भान उन्हें ले डूबा। 'समानान्तर सिनेमा' के नाम पर ऐसी फिल्मों का निर्माण किया जाने लगा जो अपनी सूक्ष्म 'बुनावट' और धीमी गति के कारण मात्र बौद्धिक लोगों के जेहन तक सिमट कर रह गई जबकि सिनेमा पूरे समाज का होता है। समाज की किसी भी समस्या के गलत-सही का फैसला केवल बौद्धिक वर्ग ही क्यों करे? आखिर वह वर्ग भी तो देखे और समझे जिसके बारे में दिखाया जा रहा है। गौर करें तो देखा जा सकता है कि समानान्तर सिनेमा का दौर वही है जब अमिताभ बच्चन के नायकत्व का नशा हर युवा में छाया था। अमिताभ भी अपनी फिल्मों में सामाजिक विसंगतियों से लगातार लड़ते रहे और हाशिए के समाज का मानसिक संबल बने रहे। कला सिनेमा का विषय भी लगभग इसी तरीके का था। कमोवेश दोनों का लक्ष्य एक ही था, फिर आखिर क्या वजह थी कि अमिताभ की फिल्में सुपरहिट और अमिताभ सुपर स्टार बने? जबकि 'समाज का सिनेमा' होने का दावा करने वाली कला फिल्में लोगों में लोकप्रिय नहीं हो सकी। दरअसल कला सिनेमा एक वर्ग को ध्यान में रखकर निर्मित किया जाने लगा। इस बात में कोई शक नहीं कि कुमार शाहनी, श्याम बेनेगल, गोविन्द निहलानी, चंद्रप्रकाश द्विवेदी और अपने आरंभिक समय में महेश भट्ट, प्रकाश झा जैसे निर्देशकों ने अपने 'समानान्तर' में भी लोकतांत्रिकता को बनाए रखा। गुलजार की फिल्मों को कला सिनेमा ही कहा गया जो बड़े पर्दे पर रिश्तों की महीन बुनावट को भी कविता की तरह प्रस्तुत करते हैं साथ ही मनोरंजन का भी ध्यान रखते हैं तभी सफल भी होते हैं। उनकी 'कोशिश', 'मौसम', 'इजाजत', 'माचिस' फिल्में इसी धारा की हैं। जिस 'यथार्थवादी' सिनेमा को 'समानान्तर सिनेमा' कहा गया वह मात्र अपने बोझिलता के कारण हाशिये पर चला गया क्योंकि उसमें मनोरंजन नहीं था। फिल्मों का अंत अक्सर एक प्रश्नचि बनकर रह जाता है। फिल्मकार चाहे जिस विषय को भी उठाए दर्शकों का उससे भवनात्मक जुड़ाव सबसे आवश्यक तत्त्व है। अनुराग कश्यप की फिल्मों को भी इसी धारा की फिल्मों में रखा जा सकता है। बस एक चीज जो बदली है वो थे कि सामाजिक यथार्थ की प्रस्तुति के साथ अपनी फिल्मों में वह मनोरंजन का भी ध्यान रखते हैं। ऐसी फिल्मों को सिनेमा आलोचक सुनील मिश्र 'नव समानान्तर सिनेमा' नाम देते हैं। इस धारा में अनुराग कश्यप, राजकुमार हिरानी, मधुर भंडारकर, तिग्मांशु धूलिया और विशाल भारद्वाज को मुख्य रूप से शामिल करते हैं। इस संबंध में वह लिखते हैं, ''नयी सदी के सिनेमा में बाजारू सिनेमा के समानान्तर एक धारा और विकसित होते हम देख रहे हैं। हमारे सामने युवा फिल्मकारों का काम पिछले लगभग एक पूरे दशक में उभर कर आया है जिन्होंने अपनी फिल्मों के समय और समयसापेक्ष चुनौतियों को प्रमुख मुद्दा बनाया है। उनके सिनेमा में कथ्य सशक्त है उसका निर्वाह स्वतंत्रता लेकर साहस के साथ किया गया है और ऐसे पक्षों का समावेश किया गया है जो कहीं-ना-कहीं हमें गहरे भीतर तक कुरेदते हैं।''

सन् 1990 के बाद उदारीकरण और वैश्वीकरण की बयार ने हिन्दी सिनेमा को मारधाड़ और हिंसा प्रधान फिल्मों की गली से निकलकर पुन: ऐसी फिल्मों के निर्माण के लिए विवश किया जो सामाजिक संवेदना को उठाने में भी सक्षम हों। अनुराग कश्यप ने अपनी फिल्मों का विषय ऐसा रखा जो दर्शकों को किसी ऐसी दुनिया से परिचित कराता है, जो हमारी जरूरत तो होती है पर हमें दिखती नहीं है। 'नया सिनेमा' ने युवाओं को सबसे अधिक प्रभावित किया। इस समय की फिल्मों में सेक्स और हिंसा के दृश्यों की भरमार अवश्य है परन्तु उसकी बनावट में नयापन है जो उसे अन्य फिल्मों से अलग करती है। इस समय की फिल्मों में विचारों की अभिव्यक्ति में अधूरापन नहीं है। वह अपनी पूरी शक्ति के साथ प्रस्तुत हुआ है बिना यह सोचे की परिणाम क्या होगा। ''युवा सिनेमा का वर्तमान दौर आवेगमयी या यों कहें 'पैशनेट' है। 'गन्दा है पर धंधा है' जुमले को नकारने में सौ फीसदी समर्थ यह पीढ़ी यही कोई 15 वर्षों के भीतर सामने आयी है। लेकिन विचार के धरातल पर उसमें सृजनात्मकता, तीव्रता और संवेदना जबरदस्त है।''

अनुराग कश्यप की फिल्मों के गीतकार वरुण ग्रोवर ने 'समसामयिक सृजन' (अक्टूबर-मार्च) के अंक सिनेमा अंक से साक्षात्कार देते हुए यह स्वीकार किया कि यह समय सिनेमा के गाँव और कस्बों में लौटने का है। फिल्म निर्देशक सुजॉय घोष कहते हैं, ''फिल्म बनाते समय सबसे पहले मैं यह तय करूँगा कि ये मेरे स्थानीय दर्शकों के लिए है या ग्लोबल दर्शकों के लिए। और इसमें अगर चुनाव करना पड़ा तो सबसे पहले भारतीय दर्शकों को तरजीह दूँगा। भारतीय सिनेमा की अपनी अलग पहचान है, तकनीकी और कहानी कहने का अंदाज जुदा है जिसमें संगीत भी होता है। अच्छी फिल्म वही है जिसे दर्शक स्वीकार करे।''

अनुराग कश्यप ने लेखन से शुरुआत कर निर्देशन तक की बेहतरीन पारियाँ खेंलीं। ब्लैक फ्रायडे, देव डी, नो स्मोकिंग, गुलाल, गैंग ऑफ वासेपुर जैसी अलग-अलग फ्लेवर की फिल्में बनाकर अनुराग ने सिनेमा को एक ऐसे रास्ते की ओर मोड़ दिया जहाँ से हिन्दी सिनेमा को अंतरराष्ट्रीय सिनेमा की मंजिल का रास्ता साफ-साफ दिखने लगा। उन्होंने सिनेमा की दिशा बदलने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। उनकी फिल्मों ने वैश्वीकरण की गोद में बैठे और पैसे का लालच देकर पुचकारे जा रहे हिन्दी सिनेमा को सिखाया कि यह तुम्हारा सच नहीं है। उन पैरों पर खड़ा होना सीखो जिसमें नीचे तुम्हारी अपनी जमीन है। अनुराग कश्यप की फिल्मों ने हिन्दी सिनेमा के सारे समीकरण तोड़े हैं, इनकी फिल्मों ने ही बताया कि बड़ी फिल्में सिर्फ बड़े स्टारों और बड़ी लागत से ही नहीं बनती। उनकी 'ब्लैक फ्रायडे' अपने समय की फिल्मों से बहुत आगे की फिल्म है। भारतीय दर्शकों में सच देखने और समझने की ताकत नहीं है और न ही वह मानवीय सरोकारों की फिल्मों से स्वयं को जोड़ पाता है। जिसे हम 'कला सिनेमा' कहते हैं वह इसी तरह का सिनेमा है। कला सिनेमा में समाज के यथार्थ को नंगा करके दिखाया जाने लगा, शायद इसीलिए मनोरंजन और हिंसा की फिल्मों के आदी हो चुके भारतीय जनमानस को वैचारिक और समाज के किसी समय पर बहस करने वाली धीमी गति की फिल्में लुभा नहीं पायीं। 'ब्लैक फ्रायडे' ने एक पहल शुरू की। इस फिल्म में अनुराग ने जिस तरह का परिवेश खड़ा किया वह दर्शकों को तब तक बाँधे रखता है जब तक फिल्म खत्म नहीं होती। इतना ही नहीं फिल्म की समाप्ति पर भी दर्शक एक सवाल अपने साथ लेकर जाता है कि लोगों को क्या बनाया जा रहा है? कौन बना रहा है और क्यों बना रहा है? ऐसा भी नहीं कि लोग जानते ही नहीं हैं परंतु उसे जड़ तक जानना नहीं चाहते हैं। यही वजह है कि ऐसी घटनाएँ भारतीय समाज को समय पर झकझोरती रहती हैं। पूरी फिल्म में एक बौखलाहट है जो दंगों की पोल खोलती है और उनका भी जो इसमें किसी-न-किसी वजह से शामिल हैं। अजय ब्रह्मात्मज लिखते हैं, ''दरअसल... 'ब्लैक फ्रायडे' एक ऐसी फिल्म है जिसकी सफलता सृजनात्मक अकुलाहट से भरे दर्जनों दर्शकों के लिए नयी राह खोल सकती है। ये निर्देशक प्रेम, रोमांस और सपनों की दुनिया के बाहर की...हमारे आस-पास की सच्ची कहानियों को सुख-दुख और हर्ष-विषाद और जोश-उन्माद के साथ लाने को बेताब हैं।'' ब्लैक फ्रायडे' में कोई कहानी नहीं है। कोई विशेष परिवार और समुदाय नहीं है सिर्फ घटनाएँ हैं और घटनाओं का विवरण है। फिल्म के रीलीज होने तक इस केस का कोई निर्णय कोर्ट की तरफ से नहीं आया था इसलिए फिल्म किसी फैसले तक नहीं पहुँच पाती। सिर्फ दर्शकों में कुछ सवाल छोड़ जाती है जिसमें उसी का उत्तर भी छुपा हुआ है। फिल्म के आरंभ में ही स्क्रीन पर महात्मा गाँधी का एक प्रसिद्ध कथन उभरता है, ''आँख के बदले आँख की भावना एक दिन पूरी दुनिया को अंधा कर देगी।'' यह कथन अनुराग की पूरी फिल्म में अपने वजूद के साथ मौजूद है। पूरी फिल्म इसी गुजारिश में निकल जाती है कि जो नफरत हम बो रहे हैं वो एक दिन हमारे ही लोगों का नुकसान करेगी।

'देव डी' अपने एडवांस कलेवर और प्रस्तुति के कारण कई तरह के दर्शकों को चौंकाती है। अनुराग कश्यप ने अपनी कल्पना का प्रभावशाली प्रयोग कर आज के युवाओं के उन रगों पर हाथ रख दिया है जो अकेले में उन्हें कचोटती हैं और वह उस पर दुखी होते हैं। वह अकेले में जो सारी बातें करते हैं उसे 'देव डी' में खुलेआम दिखाया गया है परंतु समाज और परिवार की संरचना इस तरह की है कि कुछ कहना या कर पाना संभव नहीं है। 'देव डी' युवा लड़के-लड़कियों की दमित होती इच्छाओं को पर्दे पर खोल देती है। अनुराग कश्यप का नायक किसी विराट चरित्र का निर्माण नहीं करता वह अपनी सारी इच्छाओं की पूर्ति के लिए जीना चाहता है इसलिए वह वर्जनाओं और सामाजिक नियमों को अपने ढंग से तोड़ता भी है। 'देव डी' की कहानी उस देवदास की कहानी नहीं है जो पारो से बार-बार प्यार और उसका प्यार माँगता है बल्कि आज के डिजिटल युग का वह युवा है जो 'गूगल' जैसे साधन हमेशा अपने मोबाइल में साथ रखता है। जब उसका मन करता है और जिस चीज का मन करता है सर्च करके देख लेता है। 'देव डी' उन्हीं युवाओं का प्रतिनिधि है जो यह नहीं कहता कि, ''मैं तुमसे प्यार करता हूँ।'' बल्कि यह कहता है, ''मैं तुमसे प्यार करना चाहता हूँ।'' इस संवाद पर गौर करें तो साफ पता चल जाएगा कि अनुराग के देव में सेक्स की इच्छा को दबा कर जीने की ताकत नहीं है। वह प्यार करना चाहता है और 'करना' क्रिया, हिन्दी की सबसे घातक क्रिया है। इतना ही नहीं जब पारो से उसे उलाहना मिलती है तो वह चुन्नी से साफ कहता है, ''यार एक लड़की दिला।'' यहाँ पर चुन्नी घरेलू यारों का यार नहीं है बल्कि दलाल है जो लड़कियों की खरीद-फरोख्त करता है और 'देव डी' के देव जैसे न जाने कितनों युवाओं के सेक्स की पूर्ति कर इनके व्यावसायिक यार होने का प्रमाण देता है।

'देव डी' की कहानी मात्र देवदास के आधुनिक रूपान्तरण की कहानी नहीं है बल्कि उन युवा लड़कियों की भी कहानी है जिनके लिए सेक्स और शराब सामान्य-सी बात है। 'देव डी' की पारो समाज के नियमों में फँसती और कराहती नहीं है। 'देव' के एक बार कहने पर वह अपनी नग्न तस्वीर खींचकर उसे ईमेल करती है। इतना ही नहीं अपनी यौन इच्छा को पूरा करने के लिए स्वयं बिस्तर में पहुँच जाती है। यह सीन दर्शकों में उत्सुकता के साथ एक सवाल भी खड़ा करता है कि क्या गाँव की लड़कियाँ इस तरह के साहस करने लगी हैं? यह दृश्य जितना ही ज्वलंत है सवाल उससे कहीं अधिक ज्वलंत है।

'ब्लैक फ्रायडे' देख चुके दर्शकों को अनुराग कश्यप से बदलाव की इतनी उम्मीद नहीं थी परंतु अनुराग तो जैसे सच दिखाने पर उतारू थे। फिल्म समीक्षकों ने इस बारे में उनसे कई बार सवाल किए और अनुराग ने हर बार एक नया जवाब दिया जिसका सार हमेशा यही रहा कि समय की डिमांड यही है। यही समाज का सच और यथार्थ है। एक पत्रकार के सवाल करने पर कि ''समाज काफी बदल रहा है लेकिन फिर भी लोगों में सेक्स के बारे में बातें अब भी नहीं हो रही थी। आपने इस सिलसिले को तोड़ने की कोशिश की है?'' अनुराग कश्यप कहते हैं, ''हम शराब पीएँ तो ठीक लेकिन अगर महिलाएँ पीएँ तो संस्कृति पर हमला हो जाता है। आज औरतों को जो चाहिए वो माँगती हैं। पुरुषों का दोगलापन सामने आ रहा है इसलिए उन्हें इसमें अश्लीलता नजर आती है। जबकि, 'मस्ती, जैसी फिल्म के बारे में कुछ नहीं कहते हैं जिसमें तीन लड़के, लड़कियों को देखते हुए कुछ भी बातें करते हैं।''

'देव डी' में अनुराग कश्यप ने युवा चेहरों के बीच छुपे चेहरों को सामने किया जो प्रेम पाना नहीं प्रेम करना चाहते हैं। उत्तर आधुनिकता के इस दौर में शहरों में रह रही, मल्टीप्लेक्सों में घूमती और कान में ईयर फोन लगाकर रेडियो के तमाम बाजारू चैनलों की चटपटी खबरें सुनती युवा पीढ़ी का 'देव डी' प्रतिनिधत्व करता है। उन चटपटी खबरों में लड़के लड़कियाँ कैसे पटाएँ? और लड़कियाँ अपने बॉयफ्रेन्ड को केसे करें प्रभावित? से लेकर ब्रेकअप के बाद कैसे खोजें नया साथी? और प्यार में सबकुछ जायज है जैसे युवा मन को लुभानेवाले नुस्खे भी सुनने को मिलते हैं। टीवी के लम्बे धारावाहिकों में 'लिव इन रिलेशनशिप' और समलैंगिकता की झलक देखती युवा पीढ़ी को 'देव डी' ने आकर्षित किया तो चकित होने की कोई बात नहीं है। फिल्म की नायिका पारो पुरानी 'देवदास' की नायिका नहीं है जो मर्यादा और प्रेम की मूर्ति है। वह ऐसी नारी है जो प्यार भी अपनी शर्तों पर करती है। 'देव' से होटल में मिलने भी जाती है तो उसकी औकात याद दिला कर वापस आ जाती है। चंदा अपने पिछले जीवन के कुछ छिछालेदार कारणों को अपना बिजनेस बना लेती है और जब उसे उसी की तरह भटकता कोई अपने जैसा मिल जाता है तो उससे शादी करके घर भी बसाना चाहती है। वह ऐसी लड़की की भूमिका में है जो हमारे समाज में ही रहती है लेकिन हमें पता नहीं चलता। अनुराग कश्यप उसे समझने की कोशिश करते हैं इसीलिए वह वर्तमान सिनेमा की लीक तोड़ने वाले निर्देशकों के अगुआ कहते जा सकते हैं।

'देव डी' अनुराग कश्यप के लिए व्यावसायिक सुकून देनेवाली फिल्म साबित हुई। यह व्यावसायिक सफलता अनुराग कश्यप के लिए बहुत आवश्यक भी थी। उनकी पहली दो फिल्मों के विवादों और वर्षों बाद के प्रदर्शन ने अनुराग कश्यप को आर्थिक रूप से बहुत कमजोर किया। इसमें कोई दो राय नहीं कि अपने समय से प्रदर्शित नहीं होने वाली फिल्में अपना महत्त्व खो देती हैं। 'ब्लैक फ्रायडे' और 'गुलाल' के साथ यही हुआ था। अगर ये फिल्में समय से आयी होतीं तो हिन्दी सिनेमा में अनुराग कश्यप कुछ और वर्ष पूर्व ही चर्चि त हो चुके होते। 'देव डी' के नए कलेवर को दर्शकों और आलोचकों का जबरदस्त स्नेह मिला। काफी दिनों के बाद टाइम्स ऑफ इंडिया ने किसी फिल्म को 5 में से 5 स्टार दिए। 'अच्छे फिल्मकार' से ज्यादा 'देव डी' ने यह साबित किया कि अनुराग कश्यप 'मेहनती कलाकार' हैं।

'गुलाल' की कहानी सीधी और सपाट नहीं वह कई टुकड़ों में बँटी हुई है। एक तरफ कॉलेज में पढ़ने वाले छात्र हैं तो दूसरी तरफ सत्ता में काबिज रहने के लिए इन छात्रों का उपयोग करने वाले अभिजात्य और स्वार्थी लोग हैं। जयपुर में कानून की पढ़ाई करने आए छात्र दिलीप (राजसिंह चौधरी) की पहले दिन ही रैगिंग की जाती है जिसमें उसे नंगा किया जाता है। वजह जिस रूम में नंगा करके भेजा जाता है उसमें विश्वविद्यालय की नई प्रोफेसर अनुजा (जे सी रंधावा) को पहले से ही निर्वस्त्र करके रखा गया है। यह दृश्य अचानक चकित करता है और तब और भी जब यह पता चलता है कि वह लड़की विश्वविद्यालय की प्रोफेसर है। 'गुलाल' यूनिवर्सिटी के अंदर विकृत हो चुकी

राजनीति को बहुत अच्छे तरीके से व्यक्त करने में सफल हुई है। इसके बाद शुरू होती है खून की होली जो रोज किसी-न-किसी के खून से शुरू होकर किसी-न-किसी की हत्या पर आकर ही खत्म होती है। फिल्म में मुख्य अभिनेता कोई नहीं है सब कहानी को सिर्फ आगे बढ़ाने में सहयोग करते हैं बावजूद इस फिल्म के दो किरदार महत्त्वपूर्ण हैं—पहला दिलीप सिंह जिसके प्रोफेसर, उसका दोस्त रणंजय और उसका रसोइया और एक लड़की जिसे फिल्म की तो नहीं लेकिन दिलीप सिंह की नायिका कहा जा सकता है। दूसरी ओर दुकी 'के.के. मेनन' हैं जिनके साथ पीयूष मिश्रा, उनका सहयोगी और माही गिल हैं। माही गिल फिल्म में दुकी की अघोषित प्रेमिका भी हैं।

जिस भाषा और तेवर में इस फिल्म का निर्माण हुआ है अगर उसी भाषा और तेवर में कहें तो माही गिल दुकी के राजघराने की नाच कर मनोरंजन करने वाली और अपनी कातिल अदाओं के कारण दुकी की रखैल भी हैं। फिल्म में किरण का किरदार इस तरह का है कि वह अपने भाई की इच्छाओं और अपने अति महत्त्वाकांक्षी स्वभाव के हाथों बिकी हुई हैं। उसने एक ऐसी प्रेमिका की भूमिका को अंजाम दिया है जो सत्ता में आने के लिए अपनी यौनिकता का भरपूर उपयोग करती है। दिलीप इसे अपने जीवन में आने वाली प्रेम की मासूम लहर समझ कर खुश होता है। दुकी इन सबका अलग-अलग तरीके से 'यूज एंड थ्रो' करता है। पीयूष मिश्रा व्यवस्था और समाज से दुखी है। वह सिर्फ उस पर अपनी काव्यशक्ति का प्रयोग करके अपनी कुंठा निकालने के लिए विवश है। अन्ततः फिल्म में कुछ नहीं बचता। बचता है तो सिर्फ खलनायक। खलनायक भी ऐसा जो खून करता नहीं, करवाता है। सत्ता में सुरक्षित रहने और जगह बनाने के लिए अपनी बहन की यौनिकता का भावनात्मक प्रयोग करता है। फिल्म अपने समापन तक न कोई फैसला दे पाती है और न ही कोई सवाल उठा पाती है। बस कुछ भ्रष्ट चेहरों पर क्रांति का नकली 'गुलाल' पोछ कर झटके से खत्म हो जाती है। अनुराग ने जिस समय इस फिल्म की पटकथा लिखी कमोबेश सभी विश्वविद्यालयों की स्थिति कुछ ऐसी ही थी। एक समय में यू.पी. और बिहार के विश्वविद्यालयों से ही राजनेताओं और माफियाओं की शुरुआत होती थी। वर्तमान में प्रशासनिक दबावों के कारण चुनावी प्रक्रिया को ध्वस्त कर दिया गया जिससे इसमें थोड़ी कमी आयी पर खत्म नहीं हुई। 'गुलाल' को प्रदर्शन के लिए दो वर्षों तक रोका गया क्योंकि वह राजस्थान के महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों की नंगी तस्वीर दिखाने के साथ वहाँ के जमींदारों और राजनेताओं की पोल खोलती है।

सफलता और असफलता से हटकर सोचा जाए तो अनुराग कश्यप ने 'गुलाल' में इस विषय को उठाकर एक साहसी और जुझारू निर्देशक होने का परिचय दिया है जिसके लिए हिन्दी सिनेमा अपने जीवित रहने तक उन्हें याद रखेगा। इस फिल्म के संबंध में फिल्म समीक्षक गौरव सोलंकी ने बहुमूल्य टिप्पणी की है, ''गुलाल' क्रोध, दु:ख और सच का सिनेमा है। अनुराग कश्यप शेक्सपियराना हो गए हैं इसलिए आखिरी आधे घंटे में 'मकबूल' और ओमकारा' भी याद आती है। 'गुलाल' वहीं खत्म होती है जहाँ आधी सदी पहले 'प्यासा' खत्म हुई थी। अनुराग की खासियत है कि वे अपने आपको जीवन में पूरी तरह डुबाकर उसकी निस्सारता की बात करते हैं। हमारे हाथ में जो अच्छी किताबें चाचा नेहरू दे गए थे, 'गुलाल' उन्हें बदतमीजी से फाड़ और फोड़ देती है। जिसे 'दिल्ली-6' का फकीर लिए फिरता था, वह यही बेशर्म आइना है जिसके सामने बाल सँवारते-सँवारते हम अपने चेहरे भूल गए हैं। हमें सिर्फ अपने सिर याद हैं जो भीड़ बनकर लोकतंत्र की खुराक बन गए।''

अनुराग के हिस्से कभी बड़ी व्यावसायिक सफलता नहीं आयी शायद यही वजह है कि गैंग्स ऑफ वासेपुर' जैसी गाली-गलौज, सेक्स और हिंसा से लिपी-पुती फिल्म का निर्माण उन्हें करना पड़ा। जाहिर है बाजार का दबाव उन पर भी पड़ा होगा। फिल्म निर्माण में अथाह पैसा लगता है जो उन्हें उनकी पिछली फिल्मों से नहीं मिला। अनुराग को भी यह बहुत जल्द ही समझ आ गयी। 'गैंग्स ऑफ वासेपुर' उसी का फल है। बड़े प्रचार-प्रसार के बाद भी दो खण्डों में बनी 'गैंग्स ऑफ वासेपुर' बड़ी हिट फिल्म नहीं बन सकी। वजह सिर्फ इतनी थी पिछली फिल्मों की व्यावसायिक असफलता से अनुराग इतने डरे हुए थे कि इस फिल्म में उन्होंने हिंसा और सेक्स की चाशनी इस कदर बढ़ा दी कि फिल्म की मूल संवेदना हाशिए पर आ गयी।

फिल्म वासेपुर को देखते हुए कई बार यह लगता है कि अनुराग कश्यप आखिर दिखाना क्या चाहते हैं? थोड़ी देर बाद समझ आया, 'तीखा मनोरंजन'। आज जिस तरीके की फिल्में बन रही हैं उसमें जो दिखाया जा रहा है वह निश्चित रूप से वासेपुर से अलग और बेहतर दिखाया जा रहा है। बदलाव, समय, समाज का सच तथा नग्न यथार्थ के नाम पर पूरी फिल्म में हिंसा और सेक्स को परोसा गया है। गालियों और गोलियाँ तो बात-बात

पर निकलती हैं। बहुत कुछ यह भी सच है कि यह वासेपुर की फिल्म नहीं है वहाँ के एक समुदाय की फिल्म है। वो भी उस समुदाय के जीवन के पक्ष की न कि पूरे जीवन की।

पूरी फिल्म में एक छटपटाहट है कोई भी पात्र सुकून से नहीं रहता, उसे हमेशा यही खौफ है कि कब कहाँ से कौन-सी गोली उसके भेजे को चीर कर निकल जाएगी पता नहीं है। फिल्म देखकर यही संदेश मिलता है कि वासेपुर के कसाई बाड़ा में मांस बेचने वाले लोग आदमी और बकरे में भेद नहीं समझते हैं उन्हें सिर्फ काटने से मतलब है।

रविशंकर कुमार ने काफी हद तक सच लिखा है कि, ''शुरू में कहानी में बाधा मगर, धीरे-धीरे कहानी ढीली पड़ती चली गयी और चित्रों में बदलती चली गयी... बीच-बीच में कुछ ऐसे दृश्य जरूर आए थे, जिसे मन स्वीकार नहीं सका। जैसे कसाईखाने का वह दृश्य। वो कहीं से भी सिनेमा का दृश्य नहीं लगा। मन में एक अजीब-सी जुगुप्सा पैदा हुई और सोचने पर मजबूर हुआ कि जीवन और सिनेमा के दृश्यों के बीच एक बहुत बारीक कैंची होती है और होनी भी चाहिए, वो कैंची यहाँ नहीं लगी। मेरे अनुसार लगनी चाहिए।''

अनुराग ने जो कुछ भी दिखाया वह वासेपुर का असली चेहरा नहीं था। एक धुँधली तस्वीर मात्र थी। हालाँकि उनके सहयोगियों और स्वयं अनुराग कश्यप ने इसे वर्तमान समय के यथार्थ का सिनेमा कहकर खुद को बचाने की पुरजोर कोशिश की जबकि उन्हें यह बात भी समझनी चाहिए कि फिल्मकार की एक नैतिक जिम्मेदारी भी होती है और सिनेमा समाज का होता है, जिसमें हर तरह के लोग होते हैं।

श्याम बेनेगल से बड़े यथार्थवादी फिल्मकार अनुराग नहीं हैं। बेनेगल की फिल्मों में, जो अनुराग दिखाते हैं वो सब होता है लेकिन सिनेमा की प्रस्तुति का भी अपना महत्त्व होता है जो अनुराग में है भी। उनकी पिछली फिल्में लाजवाब हैं। अगर अनुराग कश्यप 'गैंग्स ऑफ वासेपुर' जैसी फिल्में बनाने का मोह नहीं छोड़ पाए तो बहुत संभव है उन्हें 'बी ग्रेड' के फिल्मकार होने का तमगा मिल जाए, जिसे समाज का वह वर्ग देखता है जिसके लिए सिनेमा मनोरंजन और उत्तेजना की सामग्री मात्र होती है।

तिग्मांशु धूलिया अनुराग कश्यप के ही समकक्ष हैं। 'हासिल', 'साहब बीबी और गैंगस्टर', 'पानसिंह तोमर' जैसी बेहतरीन फिल्मों का निर्माण कर तिग्मांशु ने अपनी जो पहचान बनाई है वर्षों तक उन्हें हिन्दी सिनेमा अपने साथ जोड़े रखेगा। यथार्थवादी सिनेमा में व्यवसाय और मनोरंजन के लिए किस तरह से स्पेस बनाया जा सकता है यह तिग्मांशु बेहतर तरीके से जानते हैं। तिग्मांशु की सबसे बड़ी ताकत यह है कि वह जो भी करते हैं तन्मयता और आराम से करते हैं। शॉर्टकट और हड़बड़ी उनके जीवन का रिजल्ट है। उन्होंने साबित किया कि वह सफल निर्देशक के साथ एक सफल अभिनेता भी हैं।

अनुराग कश्यप एक जुझारू फिल्मकार हैं इसमें कोई दो राय नहीं है। वह जिस तरह की फिल्मों को आर्थिक सहयोग कर रहे हैं वह फिल्में अपने तीखे कलेवर के कारण दर्शकों का भरपूर प्यार लूट रही हैं। समकालीन सिनेमा में जिस तरह की फिल्मों का निर्माण हो रहा है उसे देखते हुए यह साफ शब्दों में कहा जा सकता है कि वर्तमान सिनेमा में समाज अपने पूरे ताकत से लौटा है। अनुराग कश्यप की प्रतिभा पर कोई शक नहीं किया जा सकता है। अनुराग को सिनेमा विरासत में नहीं मिला, उन्होंने जो कुछ पाया अपनी मेहनत और संघर्ष से पाया है। उत्तर प्रदेश जैसे ग्रामीण परिवेश से आने के कारण उनकी फिल्मों में गँवई संस्कृति पूरी तरह से दिखती है। इतना ही नहीं उनका नायक भी किसी आम आदमी का ही प्रतिनिधित्व करता दिखता है।

वर्तमान सिनेमा के बदलने की जब भी चर्चा की जाएगी अनुराग कश्यप का नाम आएगा ही। सिनेमा को बदलने में अनुराग कश्यप ने जिस तरह की भूमिका अदा की वह किसी अन्य से संभव नहीं हो सका। सबने बस अपना काम किया परंतु अनुराग ने सिनेमा बनाने के साथ ही सिनेमा की बहसों में सेमिनारों में भी हिस्सा लिया। उनकी बातों से बार-बार यह पता चलता है कि वह चाहते हैं कि भारतीय दर्शकों का सिनेमा देखने का नजरिया बदले इसीलिए वह कभी-कभी दर्शकों की पसंद और लकीर पर चलने वाले निर्देशकों-अभिनेताओं पर अपना गुस्सा भी जाहिर कर देते हैं, ''आज आम आदमी, आम आदमी की कहानी पर बनी फिल्म में नहीं, केटरीना कैफ में ज्यादा दिलचस्पी लेने लगा है।''

जब आया रेडियो एफ. एम.

डॉ. राजश्री त्रिवेदी

...आस्ट्रेलिया में 1947 में एफएम स्टेशन शुरू हुए और 1961 में बंद कर दिए गए क्योंकि ये बेन्ड टेलीविजन को दे दिया गया था। फिर इनकी शुरुआत 1975 में की गई तथा इनकी लोकप्रियता को देखते हुए एएम (मीडियम वेव) को एफएम में बदल दिया गया। एफएम रेडियो स्टेशन की अवधारणा स्थानीय प्रसारण के लिए सर्वथा उपयुक्त है और इसे लोकल रेडियो का कान्सेप्ट दिया गया है। एफएम प्रसारण के अनेक उपभोक्ता उपयोग भी हैं कुछ देशों में बहुत छोटे ट्रांसमीटर से या ऑडियो डिवाइस से किसी भी रेडियो सेट के संकेत भेजे जाने की सुविधाएं है। एक ही छोटे प्रेक्षित से किसी भी छोटे परिसर में संगीत सुनाया या शब्द प्रसारण सुना जा सकता है। इसके लिए हर देश में अलग-अलग कानून बने हुए हैं।...

सम्पर्क: एम-106, सेकेंड फ्लोर, ग्रेटर कैलाश-1, नई दिल्ली-110048, मो: 9810073423, ई-मेल: trivedirajshree@gmail.com

यह दुनिया बहुत विराट और बिखरी-बिखरी थी जब तक गुलीमो मारकोनी ने 1895 में रेडियो का आविष्कार नहीं किया था। ये कदाचित दुनिया के लिए चमत्कार ही था और दुनिया स्वर लहरियों पर सिमटने लगी थी, प्रयोग शुरू हुए और बेतार के इस अभिनव साधन पर 1905 और 1906 तक संगीत थिरकने लगा। 1923 तक आते-आते संसार में (वीएचएफ) वेरी हाई फ्रीक्वेंसी के रेडियो स्टेशन शुरू हो गए थे। शुरुआती दिनों में रेडियो प्रसारण लांग वेव, मीडियम वेव और शार्ट वेव बेन्ड पर बहुत उच्च तरंगों वीएचएफ या अल्ट्रा हाई फ्रीक्वेंसी पर होते थे। इसके पूर्व इंग्लैंड, हंगरी और फ्रांस ने 1890 में कुछ स्टेशनों पर पारंपरिक टेलीफोन लाइन्स पर निजी घरों में खबरें, संगीत, लाइव थियेटर, उपन्यासों का वाचन, धार्मिक प्रवचन सुनाने की व्यवस्था थी। जिसे इलेक्ट्रो फोन सुविधा का नाम दिया गया था।

1950 तक लगभग हर देश में सरकार द्वारा संचालित एक प्रसारण व्यवस्था थी उसके साथ ही अमेरिका, आस्ट्रेलिया और योरोपीय देशों में व्यापारिक रेडियो स्टेशनों पर वैकल्पिक रेडियो व्यवस्था शुरू हो गई तथा रेडियो का निजीकरण शुरू हो गया था।

1960 के बाद एक और जबरदस्त परिवर्तन आया, बड़े-बड़े रेडियो सेट छोटे-छोटे ट्रांजिस्टरों में सिमटने लगे और उसकी परिणति आज यह है कि छोटे से मोबाइल में सारी दुनिया के रेडियो स्टेशन उपलब्ध हैं।

रेडियो प्रसारण तकनीकों में पिछले सवा सौ सालों में क्रांति आई है। मीडियम वेव, शार्ट वेव प्रसारण, एएम यानी एम्प्लीट्यूड मोड्यूलेशन से होता है वहाँ एफएम प्रसारण फ्रीक्वेंसी मोड्यूलेशन से होता है। एएम में जो एफएम से पहले प्रचलित है उसमें प्रोग्राम को एक विद्युत संकेत के माध्यम से एक विशेष आवृत्ति फ्रीक्वेंसी की वाहक तरंगों (कैरियर वेयर) पर प्रसारित किया जाता है और इसमें वाहक तरंगों के एम्प्लीट्यूड को मोड्यूलेट किया जाता है। वहीं एफएम प्रसारण में वाहक तरंगों की आवृत्ति या फ्रीक्वेंसी को मोड्यूलेट किया जाता है। शार्ट वेव में तरंगें ऊपर नीचे जाती हैं यानी इस प्रकार से........ जब कि मीडियम

वेव से तरंगें, ... इस प्रकार से चलती हैं मगर एक-एक में तरंगें समान रूप से चलती हैं।

एफएम और मीडियम वेव में रेडियो की तरंगें जमीन के समानांतर चलती हैं जबकि शार्ट वेव में उछल कर चलते हुए। मीडियम वेव का प्रसारण एक किलोवाट से हजारों किलोवाट विद्युत ट्रांसमीटर्स से होता है और ये जमीन के समानांतर कर हजार किलोमीटर्स तक को रेडियो संकेत भेज सकते हैं परंतु कई और फ्रीक्वेंसी और रेडियो तरंगों के व्यवधानों के कारण प्रसारण स्पष्ट नहीं होता है ऐसा ही शार्ट वेव में भी है। जहाँ तक एफएम क्रांति की बात है प्रसारण स्पष्ट और डिजिटल तथा स्टीरियो प्रारूप में सुना जा सकता है। मगर ये ज्यादातर 10 किलोवाट के ट्रांसमीटर (प्रेक्षित) होते हैं और हद से हद 70-80 किलोमीटर तक सुनाई देते हैं। पूर्णतः स्पष्ट डिजीटल क्वालिटी के साथ एफएम प्रसारण का आविष्कार 1933 में अमेरिकी इन्जीनियर एडविन आर्म स्ट्रांग द्वारा किया गया था। एफएम प्रसारणों में बहुत उच्च आवृत्तियों (वीएचएफ) का उपयोग किया जाता है। जिससे आवाज की गुणवत्ता अपने शीर्ष पर होती है।

यह तो सभी जानते हैं कि किसी देश को रेडियो आवृत्तियों का स्पेक्ट्रम वाले फलक्रम एक अंतराष्ट्रीय संगठन द्वारा किया जाता है। एफएम के लिए रेडियो फलक्रम 87.5 से 106.0 मेगाहर्टज तक है। ये बहुत ही उच्च आवृत्तियाँ हैं। संगीत प्रसारण की विभिन्न विधाओं के प्रसारण के लिए एफएम प्रसारण सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि डिजिटल मोड मे स्टीरियो संभव हो सका है। इसे मल्टीप्लेक्स प्रसारण भी कहा जाता है। डिजिटल के समावेश के साथ ही एफएम प्रसारणों में डोल्बी सिस्टिम आ गया जिसमें व्यवधान और शोर कम करने का भी प्रावधान जुड़ गया है।

एफएम के प्रसारण में सुनाई देने वाले क्षेत्र बहुत ही सीमित है। यानी आप जहाँ तक देख सके कुछ वैसा है। लगभग 40 मील या 70-80 किलोमीटर्स जमीन के समानांतर चलने के कारण अगर रास्ते में पहाड़ हो या अन्य रुकावट हो तो एफएम के प्रसारण नहीं सुनाई देते हैं।

1930 में आविष्कार होने के साथ ही अमेरिका और यूरोप में अनेक एफएम स्टेशन शुरू हो गए थे। अमेरिका में इनका उपयोग संगीत प्रसारण के लिए हुआ और ये लोकप्रिय होते चले गए। यहाँ तक कि 40 एफएम संगीत स्टेशन बन गए और इसके चलते मीडियम वेव स्टेशन बंद होते गए। ये युवाओं के मनभावन केंद्र थे। यूरोप में बेल्जियम, नीदरलैंड, डेनमार्क, जर्मनी पहले ऐसे देश थे जहाँ एफएम प्रसारण शुरू हुआ। इंगलैंड में 1955 में एफएम प्रसारण बीबीसी ने शुरू किया। 1973 तक वहाँ एफएम रेडियो का जाल बिछाना शुरू हो गया था। इस क्षेत्रफल के हिसाब से अपेक्षाकृत छोटे देश में 2010 तक 450 एफएम रेडियो के लाइसेंस जारी किए गए थे। बीबीसी के एफएम रेडियो 1, 2, 3, 4 के नाम से जाने जाते हैं। इटली और ग्रीस में एफएम प्रसारण स्वतंत्र रेडियो के नाम से शुरू हुए जहाँ अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को लेकर बहस शुरू हुई और मामला अदालतों तक गया, इन्हें पाइरेट रेडियो कहा गया, अदालत ने भी इनके पक्ष में फैसला सुनाया था।

इस प्रकार सभी देशों में एफएम प्रसारण का अपना-अपना इतिहास है। आस्ट्रेलिया में 1947 में एफएम स्टेशन शुरू हुए और 1961 में बंद कर दिए गए क्योंकि ये बेन्ड टेलीविजन को दे दिया गया था। फिर इनकी शुरुआत 1975 में की गई तथा इनकी लोकप्रियता को देखते हुए अनेक एएम रेडियो (मीडियम वेव) को एफएम में बदल दिया गया था।

एफएम रेडियो स्टेशन की अवधारणा स्थानीय प्रसारण के लिए सर्वथा उपयुक्त है और इसे लोकल रेडियो का कान्सेप्ट दिया गया है।

एफएम प्रसारण के अनेक उपभोक्ता उपयोग भी हैं कुछ देशों में बहुत छोटे ट्रांसमीटर से या ऑडियो डिवाइस से किसी भी रेडियो सेट के संकेत भेजे जाने की सुविधाएं हैं। एक ही छोटे प्रेक्षित से किसी भी छोटे परिसर में संगीत सुनाया या शब्द प्रसारण सुना जा सकता है। इसके लिए हर देश में अलग-अलग कानून बने हुए हैं।

भारत में एफएम प्रसारण की शुरुआत उस समय की गई जब बड़े शहरों में प्रचलित एएम रेडियो का भवन कम होने लगा था। आकाशवाणी ने उसका बीड़ा उठाया। आवाज या स्वर की रिकार्डिंग और प्रसारण में हो रही क्रांति तथा युवाओं में संगीत मोह को देखते हुए ये कदम उठाना आवश्यक हो गया था। संगीत को हाई फाई, स्टीरियो में तथा डिजिटल विधा में सुनना एक फैशन का रूप ले रहा था। शोर मुक्त प्रसारण भी अनिवार्य हो गया था एएम रेडियो यानी मीडियम वेव शोर से भरे थे। देश में एफएम रेडियो के सूत्रपात का श्रेय आकाशवाणी को ही दिया जाना चाहिए। प्रायोगिक तौर पर 1977 में आकाशवाणी ने चेन्नई में अपना पहला एफएम चैनल शुरू किया था। इसके बाद 1984 में आकाशवाणी ने देश में लोकल रेडियो कान्सेप्ट की अवधारणा पर अनेक रेडियो स्टेशन शुरू किए। ये सभी एफएम रेडियो स्टेशन थे। अभी तक देश में एएम रेडियो सेट थे एफएम रेडियो सेट आए नहीं थे तो लोगों में ये प्रसारण नहीं पहुँच पा रहा था। इसका कारण नए रेडियो सेट खरीदने में लोगों की अरुचि। बाद में ऐसे रेडियो सेट आने लगे जिसमें एफएम और एएम दोनों का प्रावधान था लेकिन स्थानीय भाषा, संस्कृति और बोलियों तथा स्थानीय संगीत परंपराएं तथा त्योहारों और मेलों को समाहित करने के कारण तथा प्रसारण की स्पष्टता के कारण ये केन्द्र लोकप्रिय हो गए। ये स्टेशन बड़े शहरों से दूर दराज के इलाकों में खोले गए हैं। ये इलाके अभी तक उपेक्षित थे। आज आकाशवाणी के 216 एफएम रेडियो स्टेशन प्रसारण कर रहे हैं। ये रेडियो स्टेशन देश के कुल क्षेत्रफल का 24.94 हिस्सा कवर करते हैं इनकी पहुँच देश की जनसंख्या के 36.81 लोगों तक है। ये 206 रेडियो स्टेशन कम्यूनिटी रेडियो के विस्तार के

प्रयोजन से बनाए गए थे लेकिन इनका ट्रांसमीटर एफएम का ही था। इस नेटवर्क ने स्थानीय लोगों की आवश्यकतानुसार सेवा की, कृषि और अन्य सामाजिक दायरों में।

आकाशवाणी में एफएम–1 और एफएम–2 के नाम से 1993 में शुरू किया दिल्ली में। इसमें से कुछ समय टाइम्स एफएम के प्रसारण के लिए दिया गया था। शुरुआती दौर में कालांतर में यही एफएम–1 और एफएम–2 एआईआर रेनबो और एआईआर एफएम गोल्ड के रूप में नामित हुए। ये देश के युवाओं के लिए बड़ी देन थी। इन स्टेशनों ने एक तरह से रेडियो को पुनर्जीवित कर दिया जो टेलीविजन के कारण अपनी जमीन खोने लगा था। पारंपरिक आकाशवाणी शैली की उद्घोषणाओं को बदल दिया। अंदाज पूरी तरह से श्रोताओं से सीधा संवाद करने का किया गया जिसे एन्करिंग कहा जाता है। उद्घोषकों की जगह आर.जे. यानी रेडियो जॉकी ने ले ली, प्रस्तुतिकरण में गति और अनौपचारिक अलिखित तत्त्व का समावेश किया गया। लेकिन राष्ट्रीय प्रसारण नीति (संसदीय) का पूरा ध्यान प्रसारण में रखा गया। प्रसारण का मुख्य स्वर युवा और मनोरंजन था। ऊर्जावान कार्यक्रम निर्माण और प्रस्तुतिकरण में गति के कारण युवा आकर्षित होने लगे। प्रसारण 24 घंटे का किया जाने लगा। मनोरंजन की नयी–नयी विधाओं को प्रसारण से जोड़ा जाने लगा। एफएम रेनबो पॉप संगीत, फिल्म गीत, शास्त्रीय और भक्ति संगीत मुख्य समाचार अनौपचारिक चैट शो और अपने फोन इन कार्यक्रमों के कारण लोकप्रिय है वहीं दूसरी ओर एफएम गोल्ड पुराने दशकों के फिल्म संगीत और समाचारों का ऐसा अनोखा मेल है जिसे श्रोता पसंद करते हैं। न्यूज और करेंट अफेयर्स के साथ आज सुबह परिक्रमा वाद संवाद के साथ–साथ सुरीली फिल्म संगीत इस चैनल को प्रभावशाली बनाता है। ''गा मेरे मन गा'' और ''गाता जाए बंजारा'' जैसे कार्यक्रम बहुत लोकप्रिय हैं। ''गा मेरे मन गा'' के देश में विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ी हस्तियों के साथ उनके कृतित्व और व्यक्तित्व पर चर्चा होती है और उनके पसंद के गाने सुनाए जाते हैं। यह कार्यक्रम किसी एक व्यक्ति पर धारावाहिक रूप से चलता है आकाशवाणी के साक्षात्कारकर्ताओं के शोध और बौद्धिक प्रश्नों के ज्ञान पर मेहमान भी चकित हैं। कालांतर में आकाशवाणी ने दिल्ली के अलावा मुंबई, कोलकाता, चेन्नई में एफएम के यही चैनल शुरू किए।

इसी बीच सरकार ने एफएम रेडियो के संचालन के लिए निजी क्षेत्र को भी खोला। इन्दौर, हैदराबाद, मुंबई, कोलकाता, विशाखापटनम, गोआ में निजी क्षेत्र के लिए एयरटाइम स्लाट्स दिए गए। इन संचालकों ने अपने ही कार्यक्रम बनाए। लेकिन जहाँ एक ओर आकाशवाणी के एफएम प्रसारण शालीन और संगत है वहीं निजी एफएम केन्द्र के प्रसारण मे खुलापन और स्वच्छंदता है।

टाइम्स एफएम ने अपने कार्यक्रमों का प्रसारण एआईआर एफएम पर 1988 में शुरू किया। अहमदाबाद में इसे अब रेडियो मिर्ची के नाम से जाना जाता है और ये लगभग सभी शहरों मे है। सन् 2000 में सरकार ने 108 एफएम फ्रीक्वेंसीज की नीलामी की फलस्वरूप अनेक निजी रेडियो एफएम केन्द्र शुरू हुए। रेडियो सिटी, बिग एफएम, रेड एफएम, वन एफएम, रेडियो नशा ओरो, जैसे अनेक सारे देश में फैले प्रमुख एफएम रेडियो केन्द्र हैं, इसके साथ ही अनेक विश्वविद्यालयों के अपने रेडियो स्टेशन हैं। इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के 34 एफएम रेडियो सारे देश में लगाए गए हैं। प्रत्येक की क्षमता 10 किलोवाट है, इनमें 8 से 16 घंटे तक प्रसारण की व्यवस्था है। शैक्षणिक प्रसारण की हर शहर में एफएम निजी रेडियो का जाल है जो मनोरंजन करने तक ही सीमित है और इन्हें लाइसेंस भी इसी हेतु दिए गए हैं।

इन निजी स्टेशनों को अभी समाचार और उससे जुड़े कार्यक्रमों को प्रसारित करने की अनुमति नहीं है, हाँ, वे आकाशवाणी के समाचार रिले कर सकते हैं बगैर किसी कांट–छांट के। यद्यपि बहुत से समाचार पत्र इस बात के लिए जोर डाल रहे हैं। यह समूह कई एफएम केन्द्रों का संचालन कर रहे हैं। यह भी सच है कि रेडियो एक बहुत ही संवेदनशील मीडियम है।

देश असंख्य बोलियों, भाषाओं, परंपराओं, रीति–रिवाज में बँटा हुआ है। विविधता में सांस्कृतिक एकता है। भारत की जनसंख्या विराट है। कितने ही केन्द्र खुले कमी तो रहेगी ही। संसार में अनेक विकसित देशों में टेलीविजन चैनलों की बाढ़ के बावजूद रेडियो समाप्त नहीं हो सका, बल्कि इसका विकास और लोकप्रियता निरंतर बढ़ती रही। भारत जैसे विराट विकासशील देश में जहाँ मनोरंजन के अलावा हर क्षेत्र मे पब्लिक सर्विस की महत्ता है और जरूरत है। रेडियो की प्रसंगिकता हमेशा बनी रहेगी, रेडियो शाश्वत है और शाश्वत रहेगा। ◆◆◆

आज़ादी, चरखा और खादी

डॉ. राकेश चक्र

...वर्तमान में भारत सरकार द्वारा खादी ग्रामोद्योग को प्रोत्साहन दिए जाने के कारण नए-नए उत्पादनों का विस्तार हो रहा है। खादी ग्रामोद्योग द्वारा वर्तमान में सूती, ऊनी, पोली, फ्लोरिंग मैटीरियल, खादी टेडी बियर, खादी बेडशीट, मैट्स और कंबल आदि नए-नए स्वरूपों, डिजाइनों, फैशनों के हिसाब से राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनाने का भरसक प्रयास किया जा रहा है, इसी कारण खादी के उत्पादनों की बिक्री में बढ़ोतरी हुई है। हस्तकला और हाथ से बने पेपर को भी बढ़ावा दिया जा रहा है।...

सम्पर्क: एम.डी. (एक्युप्रेशर एवं मैग्नेटिक), एम.ए., एल.एल.बी., 90-बी, शिवपुरी, मुरादाबाद-244001
मोबाइल: 91-9456201857, ई-मेल: rakeshchakra00@gmail.com

चरखा और खादी एक दूसरे का पर्याय है। भारत देश को परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्ति दिलाने के लिए अनेकानेक स्वतंत्रता संग्राम सेनानी अपना सर्वस्व लुटा रहे थे। उस समय महात्मा गाँधी के मन-मस्तिष्क में एक विचार उपजा कि यदि हम भारतवासी घर-घर चरखा चलाकर सूत कातें तथा उसी सूत के बने कपड़े पहनें, तो देश को स्वतंत्र कराया जा सकता है क्योंकि अंग्रेजी सत्ता ने दुष्चक्र चला रखा था कि भारत से कच्चा माल इंग्लैंड ले जाना तथा वहाँ से पक्का माल तैयार कराकर भारत में भेज कर पूरा मुनाफा कमाना। इसी खेल में वह मालामाल होते रहे तथा भारतीयों में फूट डालकर अपना राज दो सौ वर्षो तक चलाते रहे।

महात्मा गाँधी जी जानते थे कि प्रत्येक मनुष्य के जीवन की तीन मूलभूत आवश्यकताएँ हैं — कपड़ा, रोटी और मकान। यदि मनुष्य के पास पहनने का वस्त्र होगा, तो वह आत्मनिर्भर हो जाएगा क्योंकि अन्न उत्पन्न करने तथा मकान बनाने के लिए जमीन थी ही। चरखा और खादी बनाने का विचार राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी को सन् 1920 में आया। सन् 1920 से ही खादी और चरखा भारत के जनमानस का मूलभूत अंग बन गए। दोनों का घर-घर खूब प्रचार-प्रसार हुआ। महात्मा गाँधी जी स्वयं ही सूत कातकर देशी करघे पर वस्त्र बनवाकर पहनते। उनका अनुसरण करते हुए अनेकानेक स्वतंत्रता संग्राम सैनानी भी चरखा से सूत कातकर वस्त्र पहनने लगे। खादी का प्रचार-प्रसार इस तरह बढ़ता गया, बल्कि, कुटीर उद्योग के रूप में घर-घर में सुविकसित होता गया। स्वदेशी आंदोलन में चरखा और खादी का बहुत बड़ा योगदान रहा है। चरखा गति का प्रतीक है, खादी स्वाभिमान की। चरखा और खादी ने ही भारत की अनेकानेक जातियों और धर्मो को एक माला में पिरोने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। परतंत्रता के समय आडंबर और छुआछूत चरम पर थी। लेकिन ज्यों-ज्यों खादी और चरखा का प्रचार-प्रसार हुआ, महात्मा गाँधी के प्रयासों और योगदान से अनेकानेक कुरीतियों, आडंबरों और छुआछूत जैसी समाज में फैली महामारियों पर अंकुश लगना प्रारंभ हुआ।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी के लिए चरखा और खादी का विचार प्रारंभ में सांकेतिक तथा राजनैतिक था लेकिन धीरे-धीरे

यही विचार ऐसा गतिमान हुआ कि स्वतंत्रता संघर्ष का प्रेरक बन गया। चरखा भारत की गरीबी के विरुद्ध एक ऐसा महा शस्त्र था, जिससे स्वरोजगार की नींव रखी गई थी, साथ ही तन ढकने का कौशल, क्योंकि उस समय लोग महा गरीबी के कारण अपना तन तक नहीं ढक पाते थे। महात्मा गाँधी जी ने जब देश की ऐसी हालत देखी, तब उन्होंने स्वयं भी तन ढकने के नाम पर केवल एक धोती ही पहननी शुरू कर दी थी।

महात्मा गाँधी जी की अपील पर पूरा देश चरखा और खादी का मुरीद होता गया। इससे स्वरोजगार को बढ़ावा मिला, सभी जातियों और धर्मो को एकता के सूत्र में बाँधने का महामंत्र देश को मिल गया।

देश की आज़ादी के बाद चरखा और खादी का स्वरूप

भारत माँ को आज़ाद कराने में भारत माँ के लालों ने अनेकानेक शहादतें दीं। महात्मा गाँधी तथा अनेकानेक महापुरुषों के अथक प्रयासों से देश को आज़ादी मिली। देश की आज़ादी के बाद चरखे का स्वरूप भी धीरे-धीरे विकसित होता गया। लेकिन सन् 1965 के बाद तक मैंने अपनी माँ तथा अन्य ग्रामीण महिलाओं को चरखा पर कपास से रूई और बिनौला निकालते देखा, साथ ही दूसरे प्रकार के चरखा पर सूत कातते देखा। इस तरह मैंने चरखे का दो प्रकार का स्वरूप देखा। बचपन में मैंने भी यदा-कदा चरखा चलाया तथा कभी-कभी खेल-खेल में रूई और अच्छा बिनौला निकालने वाले चरखा पर कपास लगाने का काम किया। जब माँ या बहनें चरखा चलातीं तथा मैं खेल-खेल में उसमें कपास लगाता था, कितना अच्छा लगता था, जब रूई और बिनौला कपास से अलग होते थे। धीरे-धीरे कस्बा और शहरों में कपास से रूई और बिनौला निकालने की छोटी-बड़ी मशीनें लगने लगीं। सन् 1980 के आसपास तक लोग अपनी रजाइयाँ और गद्दे भी रूई धुनों से रूई धुनवाकर बनवाते थे। साथ ही कस्बों और नगरों में भी रूई धुनने की मशीनें लगने लगीं तथा बाद में लोग कस्बों और नगरों में रजाई और गद्दे आदि भरवाने लगे। कमतर ही सही, लेकिन पुराना चलन अनवरत आज भी जारी है।

वर्तमान में सरकार द्वारा खादी ग्रामोद्योग की उन्नति और रोजगार के अवसर उत्पन्न करने के लिए अनेकानेक प्रयास किए जा रहे हैं। आज भी ग्रामीण क्षेत्रों और अनेक आदिवासी-पहाड़ी क्षेत्रों में विकसित चरखों से सूत काता जा रहा है जिसमें सूती, ऊनी तथा कई अन्य तरह का धागा प्रयोग होता है। यही सूत हथकरघों पर पहुँचता है। इसी सूत से अनेकानेक प्रकार के सूती, ऊनी, टेरीकॉट, फैंसी वस्त्रों का निर्माण हो रहा है। राज्य और केन्द्र स्तर पर खादी ग्रामोद्योग का प्रचार-प्रसार-विस्तार किया जा रहा है लेकिन वर्तमान में बहुत किया जाना शेष है। खादी ग्रामोद्योग में कार्यरत वरिष्ठ अधिकारियों की नीयत और नीति का बदलना बहुत आवश्यक है, तभी खादी घर-घर तक दस्तक देने में सफल हो सकेगी।

वर्तमान में खादी ग्रामोद्योग के लिए केन्द्रीय सरकार की उपलब्धियाँ

वर्तमान में केन्द्र सरकार के प्रधानमंत्री आदरणीय नरेन्द्र मोदी जी द्वारा खादी ग्रामोद्योग का प्रचार-प्रसार-विस्तार-स्वरोजगार के लिए अनेकानेक योजनायें प्रारंभ की गई हैं। अन्य सम्बन्धित मंत्रीगण एवं इनके सहयोगी भी इस ओर काफी रुचि ले रहे हैं। भारत सरकार द्वारा दिल्ली में इसका भवन ही अलग बनाकर अपनी रुचि को मूर्त रूप प्रदान कर दिया गया है। खादी ग्रामोद्योग की अलग वेबसाइट है जिस पर खादी से सम्बन्धित बुनाई-कताई, फिल्म एंड टेलीविजन, फिल्म संपादन, फैशन, प्रोत्साहन आदि के बारे में विस्तार से जाना और समझा जा सकता है।

वर्तमान में भारत सरकार द्वारा खादी ग्रामोद्योग को प्रोत्साहन दिए जाने के कारण नए-नए उत्पादनों का विस्तार हो रहा है। खादी ग्रामोद्योग द्वारा वर्तमान में सूती, ऊनी, पोली, फ्लोरिंग मैटीरियल, खादी टेडी बियर, खादी बेडशीट, मैट्स और कंबल आदि नए-नए स्वरूपों, डिजाइनों, फैशनों के हिसाब से राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनाने का भरसक प्रयास किया जा रहा है, इसी कारण खादी के उत्पादनों के बिक्री में बढ़ोतरी हुई है। हस्तकला और हाथ से बने पेपर को भी बढ़ावा दिया जा रहा है। भारत के प्रिय प्रधानमंत्री जी के प्रयासों से बनारस के बुनकरों को नया आयाम और काम मिल रहा है। देश के अन्य भागों में भी इसी तरह की पहल हो तो खादी ग्रामोद्योग की तकदीर और तस्वीर बदल सकती है, साथ ही इसे फिर से ग्रामीण, आदिवासी और पहाड़ी क्षेत्रों में जन आंदोलन के रूप में विकसित करने की आवश्यकता है।

खादी के वस्त्र हम सबको इसलिए पहनने चाहिए कि इससे बने वस्त्रों के कोई नुकसान नहीं है, साथ ही आरामदायक हैं, वातावरण और पर्यावरण के अनुकूल हैं तथा रासायनिक पदार्थो से दूर हैं। यदि सभी देशवासी खादी से बने वस्त्रों का प्रयोग और उपयोग करने में अधिक-से-अधिक रुचि लें इससे देश के लाखों बुनकरों, सूत कातने वालों को प्रोत्साहन और रोजगार मिलेगा तथा देश उन्नति के शिखर पर आसीन होगा।

◆◆◆

बंग-भंग आंदोलनः गाँधी एवं प्रेमचंद, सोज़ेवतन और वंदे मातरम्

डॉ. कमल किशोर गोयनका

> *...गाँधी जी की दृष्टि में भी बंग-भंग की घटना से भारत की वास्तविक जागृति की शुरुआत हुई और इससे ही स्वदेशी और स्वराज्य का आन्दोलन प्रमुखता से आरम्भ हुआ। इस घटना ने पूरे देश को जागृत कर दिया और अंग्रेजी जहाज में दरार डाल दी। इस कार्य में बंग-भंग के साथ बंकिमचन्द्र के गीत 'वन्देमातरम्' ने अद्भुत योगदान किया। गाँधी जी ने 'इंडियन ओपिनियन' के 2 दिसम्बर, 1905 के अंक में 'वन्देमातरमः बंगाल का शौर्य गीत' शीर्षक से लिखा कि ''बंगाल में स्वदेशी माल के व्यवहार-सम्बन्धी आन्दोलन के सिलसिले में विराट सभाएँ की गयी हैं। उनमें लाखों लोग एकत्रित हुए हैं और सभी ने बंकिमचन्द्र का गीत गाया है, कहा जाता है कि यह गीत इतना लोकप्रिय हो गया है कि राष्ट्रगीत बन गया है।... इस गीत का मुख्य हेतु सिर्फ़ स्वदेशाभिमान पैदा करना है।...''*

सम्पर्कः ए-98, अशोक विहार फेज प्रथम, दिल्ली-110052

प्रेमचंद ने 'ज़माना' उर्दू मासिक पत्रिका के अगस्त, 2007 में 'तुर्की में वैधानिक राज्य' शीर्षक टिप्पणी में लिखा था, ''उन्नीसवीं सदी में एक बार आज़ादी की हवा चली तो उसने इटली, फ्रांस, स्विट्जरलैण्ड, संयुक्त राष्ट्र अमरीका आदि देशों को आज़ाद कर दिया। इस हवा का असर योरप तक ही सीमित रहा मगर बीसवीं सदी के आरम्भ में जो हवा चली है वह अपेक्षाकृत बहुत ज्यादा स्वास्थ्यप्रद और शक्तिशाली है। इस थोड़ी-सी अवधि में उसने फारस को आज़ाद कर दिया है और अब खबरें आ रही हैं कि तुर्की की बूढ़ी-पुरानी हड्डियों में भी उसने रूह फूँक दी।''

प्रेमचंद भारत में बैठे तुर्की की स्वतंत्रता की आवाजें सुन रहे थे और अपने इन एशियाई भाइयों को आज़ादी पर मुबारकबाद दे रहे थे और अपने देश में उठने वाले देश-प्रेम और क़ौमी जोश के साथ स्वदेशी के देशभक्तिपूर्ण आन्दोलन का समर्थन कर रहे थे।

उधर महात्मा गाँधी दक्षिण अफ्रीका में 'इंडियन ओपिनियन' साप्ताहिक समाचार-पत्र निकालते हुए भारत में होने वाली गतिविधियों पर पैनी नज़र रखे हुए थे। बीसवीं सदी का पहला दशक भारत के स्वराज्य आन्दोलन के लिए मील का पत्थर होने जा रहा था। देश में 1857 की असफल क्रान्ति के बाद अंग्रेजों ने पूरे देश में क्रूर एवं बर्बर दमन चक्र चलाया और धर्म, संस्कृति, राजनीति, अर्थ, समाज आदि सभी क्षेत्रों में भारत को पतित, असभ्य तथा मूर्ख देश होने का योजनाबद्ध रूप में प्रचार आरम्भ किया। ब्रिटिश शासन तथा उनके बुद्धिजीवियों ने यह प्रचारित किया था कि वेद गडरियों के गीत हैं, आर्य बाहर से आये थे, भारत कभी एक राष्ट्र नहीं था तथा संस्कृत एक मृत भाषा है। इसके साथ ही ईसाई धर्म का प्रचार, हिन्दुओं का ईसाईकरण तथा अंग्रेजी जीवन-शैली, रहन-सहन तथा खान-पान की श्रेष्ठता का मनोभाव भी उत्पन्न किया जा रहा था। मैकाले की योजना तेजी से क्रियान्वित हो रही थी तथा कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में अंग्रेजी पढ़ा-लिखा तथा अंग्रेजी की जीवन-शैली को अपनाने वाला भारतीयों का एक वर्ग पूरे देश में फैलता जा रहा था, किन्तु उन्नीसवीं सदी में ही सांस्कृतिक जागरण आरम्भ हो गया था और बंगाल इसका केन्द्र बनता जा रहा था। राजा राममोहन राय,

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, अरविन्द घोष, बंकिम चन्द्र, मधुसूदन दत्त, गिरीष घोष, देवेन्द्र ठाकुर, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शरत् चन्द्र आदि ने संस्कृति, धर्म, शिक्षा, साहित्य, दर्शन तथा समाज के विविध अंगों में नवजागरण का सूत्रपात करके भारत को जगाने का जैसे आन्दोलन ही शुरू किया। इस सांस्कृतिक जागरण में स्वामी दयानन्द जैसे ऋषि भी थे जिन्हें अंग्रेजी का ज्ञान नहीं था और संस्कृत, हिन्दी एवं गुजराती भाषाओं के द्वारा स्वधर्म, स्वभाषा तथा स्वराज्य के भाव को पूरे देश में फैला रहे थे। उन्नीसवीं सदी के लगभग अन्तिम वर्ष में ए.ओ. ह्यूम ने कांग्रेस की स्थापना की जिसे सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, दादा भाई नौरोजी तथा फिरोजशाह मेहता जैसे नेताओं ने भारतीयों के अधिकारों की माँगों के साथ जोड़ा, लेकिन इसके साथ ही श्याम जी कृष्ण वर्मा, सावरकर बन्धु, अरविन्द घोष, रवीन्द्रनाथ सान्याल आदि ने क्रांतिकारियों का दल संगठित करके भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन को नया रूप दिया, जिनके हिंसक विरोध के विरुद्ध गाँधी जी ने 'हिन्दू स्वराज्य' नामक पुस्तक की रचना की।

उन्नीसवीं सदी का अन्त होने को था कि सन् 1899 में लार्ड कर्जन भारत का वाइसराय बनकर भारत आया। कलकत्ता उस समय देश की राजधानी थी। वह अहंकारी था और कांग्रेस को समाप्त करने का उद्देश्य लेकर आया था। उसने कलकत्ता पहुँचकर सन् 1899 में 'कलकत्ता कारपोरेशन एक्ट' बनाकर नगर निगम की स्वायत्ता का अपहरण किया और सन् 1904 में विश्वविद्यालय विधेयक बनाकर उस पर सरकार का पूर्ण नियंत्रण कर लिया। लार्ड कर्जन ने बीसवीं सदी के पहले दशक में 'फूट डालो और राज करो' की नीति के अनुसार 20 जुलाई, 1905 को बंगाल का विभाजन करने की घोषणा की, लेकिन वह यह नहीं समझ पाया कि बंग-भंग एक राष्ट्रीय आन्दोलन बनकर स्वदेशी एवं स्वराज्य का मंत्र फूँक देगा।

भारत के मुख्य सचिव एच.एच. रिस्ले ने 17 दिसम्बर, 1903 को पहली बार बंग-भंग की योजना अपने एक पत्र में लिखी थी जिसमें चटगाँव विभाग, ढाका एवं मैमन सिंह के जिलों को बंगाल से अलग कर असम के साथ जोड़ने का प्रस्ताव था। इसका मूल उद्देश्य बंगाल के राष्ट्रवादी आन्दोलन तथा उसके बौद्धिक नेतृत्व को छिन्न-भिन्न करना था। एच.एच.रिस्ले ने अपनी 6 दिसम्बर, 1904 तथा 7 फरवरी, 1905 की दो टिप्पणियों में लिखा कि एकजुट बंगाल एक शक्ति है, विभाजित होकर बंगाल विभिन्न दिशाओं में बिखर जायेगा। हमारा लक्ष्य दरार डालकर ब्रिटिश राज्य के विरोधियों की एकजुटता को तोड़ना है। लार्ड कर्जन की नीति भी यही थी। लार्ड कर्जन ने 17 फरवरी, 1904 को भारत सचिव ब्रोडरिक को पत्र में अपनी नीति तथा बंग-भंग के औचित्य के संबंध में लिखा कि बंगाली लोग अपने को एक राष्ट्र समझते हैं। वे उस भविष्य का सपना देख रहे हैं जब अंग्रेजों को बाहर खदेड़ कर वे कलकत्ता के गवर्नर हाउस में किसी बंगाली बाबू को बैठा देंगे। इसीलिए वे ऐसी किसी भी योजना को सहन नहीं करेंगे, जो उनके सपने की पूर्ति में बाधा बन सके। अगर हमें झुक कर अपना निर्णय वापस लेना पड़ गया तो हम आगे कभी भी बंगाल के टुकड़े अथवा उसकी सीमाओं को छोटी नहीं कर पायेंगे। आप अनजाने में ही भारत की पूर्वी सीमा पर ऐसी शक्ति को और सुदृढ़ व ऐक्यूबद्ध बनाने में सहायक होंगे जो अभी ही काफी चुनौतीपूर्ण है और भविष्य में हमारे लिए निश्चित ही काफी बड़ा सिरदर्द बनने वाली है। लार्ड कर्जन की योजना सफल हुई, 20 जुलाई, 1905 को शिमला में वाइसराय ने बंग-भंग की अधिकृत घोषणा की और 16 अक्टूबर, 1905 को वह क्रियान्वित हुई और इस प्रकार एक अलग मुस्लिम राज्य की स्थापना का बीजीकरण हुआ।

बंगाल का विभाजन होते ही 7 अगस्त, 1905 को कलकत्ता में एक विशाल जनसभा हुई जिसकी अध्यक्षता महाराज मणीन्द्र चन्द्र नंदी ने की। सड़कों पर अपरिमित भीड़ 'वन्देमातरम्' तथा 'बंग माता' एवं 'भारत माता' का जयघोष करती जा रही थी। इस सभा में चार प्रस्ताव स्वीकृत हुए—(1) सरकार बंग-भंग के निर्णय को बदले, (2) बंग-भंग के विरोध में समस्त देश में आन्दोलन होगा, (3) बंग-भंग के आदेश के निरस्त होने तक ब्रिटिश वस्तुओं का बहिष्कार करना, तथा (4) जब तक बंग-भंग का निर्णय रद्द नहीं होगा, तब तक आन्दोलन रुकेगा नहीं। इस ऐतिहासिक घटना पर 'वन्देमातरम्' पत्रिका ने लिखा, ''7 अगस्त भारतीय राष्ट्रवाद का जन्मदिन था। भारतीय राष्ट्रवाद के दो अर्थ हैं—स्वतंत्रता की वेदी पर अपना ध्यान केन्द्रित करना और स्वाधीन भाव से आचरण करना। अस्तु, 7 अगस्त का दिन है, जब भारत ने अपनी आत्मा और स्वाधीनता को पहचाना था। उस दिन जब हमने दृढ़तापूर्वक अपने कदम बढ़ाये, तो उसी दिन भारतीय राष्ट्रीयता की आधारशिला रख दी गयी थी।'' इसके बाद 28 सितम्बर, 1905 को कलकत्ता के हजारों नर-नारी काली घाट स्थित माता के मन्दिर के प्रांगण में एकत्र हुए। लगभग पचास हजार व्यक्तियों का समूह था

और सौ कीर्तन मंडलियाँ देशभक्ति के गीत गा रहीं थी और मन्दिर के ब्राह्मण सब देवताओं से पहले मातृभूमि की स्तुति करने का आह्वान कर रहे थे। इस प्रकार कोटि-कोटि पुत्रों की काली माता बंगाल की शक्ति के रूप में प्रकट हुई और स्वधर्म से देश-धर्म की यात्रा शुरू हुई। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के आह्वान पर 16 अक्टूबर, 1905 को शोक दिवस, गंगा-स्नान और राखी तृतीया के रूप में मनाया गया। पूरे बंगाल में एक-दूसरे को राखी बाँधी गयी और एक पतले धागे ने सारे बंगाल को बाँध लिया और एक ही स्वर गूँजा— हम एक हैं, एक रहेंगे। यह बंग-भंग आन्दोलन सर्वव्यापी होगा और सम्पूर्ण देश राष्ट्रीयता में रंग गया।

मोहनदास करमचन्द गाँधी इस कालखंड में दक्षिण अफ्रीका में थे और 'इंडियन ओपिनियन' साप्ताहिक-पत्र निकालते थे। वे दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों के लिए न्याय और स्वाभिमान की लड़ाई लड़ रहे थे, किन्तु भारत से उनके सम्बन्ध भी बने हुए थे और यहाँ के समाचारों पर तो उनकी गहरी दृष्टि थी। उन्हें बंग-भंग का समाचार मिला तो 'इंडियन ओपिनियन' के 19 अगस्त, 1905 के अंक में गाँधी जी ने गुजराती भाषा में लिखा, ''कर्जन साहब बंगाल के दो भाग करके एक भाग असम से जोड़ देने की कोशिशें काफी अरसे से कर रहे हैं। वे उसका कारण यह बताते हैं कि बंगाल इतना बड़ा प्रांत है कि उसका सारा कामकाज एक गवर्नर नहीं देख सकता। असम एक छोटा-सा प्रांत है, उसकी जनसंख्या बहुत कम है, लेकिन वह बंगाल से लगा हुआ है इसलिए माननीय गवर्नर जनरल का इरादा है कि बंगाल का कुछ हिस्सा असम में मिला दिया जाये। बंगाली लोग कहते हैं कि बंगाली और असमी दोनों बिलकुल अलग-अलग हैं। बंगाली अत्यन्त शिक्षित हैं। वे एक जमाने से एक साथ रहते आये हैं। उनको विभक्त करके उनका बल तोड़ देना और उनमें से बहुतों को असम के साथ मिला देना, यह बड़े अन्याय की बात है। बंगाल में बड़ी-बड़ी सभाएँ हो रही हैं। दक्षिण अफ्रीका तक समाचार पहुँच रहे हैं, व्यापारी विलायत के साथ व्यापार करने पर प्रतिबन्ध लगा रहे हैं। बंगाल में इतना ऐक्य बन जाये, देशहित में व्यापारी लोग हानि उठाने को तैयार हो जायें तो मानना होगा कि भारत सचमुच जाग गया है।''

गाँधीजी ने बंग-भंग को राष्ट्रीय दृष्टि से देखा और व्यापारियों द्वारा विदेशी माल के बहिष्कार में सोयी जनता की जागृति पायी। गाँधीजी ने 'इंडियन ओपिनियन' के 7 अक्टूबर, 1905 के अंक में 'बहिष्कार' शीर्षक अपनी टिप्पणी में लिखा कि बंग-भंग आन्दोलन जनता की तीव्र भावना का परिणाम है। बंग-भंग के विरुद्ध वर्तमान आन्दोलन चाहे जो हो, बहिष्कार का प्रभाव भारत के लिए हितकर ही होगा। इससे देशी उद्योगों को आश्चर्यजनक प्रोत्साहन मिला है और इससे राष्ट्रीय भावना के विकास में मदद मिलेगी। गाँधीजी बंग-भंग में, ब्रिटिश नीति की 'फूट डालो और राज करो' को पूरी तौर पर समझ रहे थे और यह भी कि अंग्रेज इस मामले में भी हिन्दू-मुसलमान को एक-दूसरे के विरुद्ध खड़ा कर रहे हैं। बंग-भंग होने पर नये प्रान्त की राजधानी ढाका में जब बीस हजार मुसलमानों ने विभाजन तथा उसके फलस्वरूप हिन्दुओं के अत्याचारों से मुक्ति पा जाने के लिए खुदा की इबादत की और उसका शुक्रिया माना तो गाँधीजी ने अंग्रेजों की इस 'फूट डालो और राज करो' की दुर्नीति की आलोचना और हिन्दू-मुसलमानों से अपने सामूहिक हित के लिए सभी आपसी मतभेद तथा ईर्ष्या-द्वेष भुलाकर भारत की जनता का भविष्य उज्ज्वल करने की प्रार्थना की। गाँधीजी ने 5 फरवरी, 1907 को 'इंडियन ओपिनियन' में पुन: लिखा कि ''सब लोग मिलकर अपने हक माँगे और माँगने पर जो कुछ हानि हो उसे झेलने के लिए तैयार रहें तो भारत में हमारे बंधन आज भी टूट सकते है।''

महात्मा गाँधी ने इंग्लैण्ड से लौटते समय 'किल्डोनन केंसिल' नामक पानी के जहाज पर 13-22 नवम्बर, 1909 को 'हिन्द स्वराज' की रचना गुजराती में की थी जो 'इंडियन ओपिनियन' के 11 तथा 18 दिसम्बर, 1909 के दो अंकों में छपी। गाँधीजी ने इसमें दूसरा अध्याय 'बंग-भंग' शीर्षक से लिखा है जिसमें वे फिर बंग-भंग की चर्चा करते हैं और वे कई महत्त्वपूर्ण निष्कर्षो तक पहुँचते हैं—

1. देश में सच्ची जागृति बंग-भंग से हुई।
2. बंग-भंग से अंग्रेजी राज्य को जो धक्का लगा है, वैसा किसी दूसरी बात से नहीं लगा और उसी दिन से अंग्रेजी राज्य के भी टुकड़े हो गये।
3. बंगाल का विभाजन मिटेगा, बंगाल फिर एक होगा, परंतु अंग्रेजी जहाज में जो दरार पड़ गयी है, वह तो बनी ही रहेगी। वह दिन-ब-दिन चौड़ी होगी। जागा हुआ भारत फिर से सो जाये, यह सम्भव नहीं। विभाजन रद्द करने की माँग स्वराज्य की माँग के बराबर है।

4. जनता ने यह समझा कि अंग्रेजों के सम्मुख प्रार्थना-पत्र भेजने के साथ बल भी चाहिए और लोगों में कष्ट उठाने की शक्ति भी आवश्यक है। यह नयी भावना ही बंग-विभाजन का मुख्य परिणाम मानी जायेगी। पहले अंग्रेजों को देखते ही छोटे-बड़े सब भाग जाते थे, किन्तु अब डर चला गया, मारे-पीटे जाने की परवाह नहीं और जेल जाने की अब कोई बुराई नहीं मानी जाती। यह नयी जागृति है।

5. बंगाल की हवा उत्तर में पंजाब तक और दक्षिण में कन्याकुमारी तक पहुँच गयी है।

6. बंग-भंग से अंग्रेजी जहाज में तो दरार पड़ी ही है, वह हमारे बीच भी पड़ी है और हमारे नेता 'मॉडरेट' (नरम दल) और 'एक्सट्रीमिस्ट (गरम दल) के दो दलों में बँट गए हैं, लेकिन यह देश के लिए शुभ-चिन्ह नहीं है।

7. बंग-भंग से जनता की नींद टूटी तो है, फिर भी तंद्र पूरी नहीं गयी। अभी हम अंगड़ाई की हालत में हैं। स्थिति अभी अशान्ति की है जो सारे देश में फैली है और जो असन्तोष का प्रतीक है।

इस प्रकार गाँधी जी की दृष्टि में भी बंग-भंग की घटना से भारत की वास्तविक जागृति की शुरुआत हुई और इससे ही स्वदेशी और स्वराज्य का आन्दोलन प्रमुखता से आरम्भ हुआ। इस घटना ने पूरे देश को जागृत कर दिया और अंग्रेजी जहाज में दरार डाल दी। इस कार्य में बंग-भंग के साथ बंकिमचन्द्र के गीत 'वन्देमातरम्' ने अद्‌भुत योगदान किया। गाँधी जी ने 'इंडियन ओपिनियन' के 2 दिसम्बर, 1905 के अंक में 'वन्देमातरम: बंगाल का शौर्य गीत' शीर्षक से लिखा कि ''बंगाल में स्वदेशी माल के व्यवहार-सम्बन्धी आन्दोलन के सिलसिले में विराट सभाएँ की गयी हैं। उनमें लाखों लोग एकत्रित हुए हैं और सभी ने बंकिमचन्द्र का गीत गाया है लोकप्रिय हो गया है राष्ट्रगीत बन गया है।... इस गीत का मुख्य हेतु सिर्फ स्वदेशाभिमान पैदा करना है। इसमें भारत को माता का रूप देकर उसका स्तवन किया गया है।''

गाँधी जी ने जो लिखा, वह अक्षरक्ष: सत्य था। बंकिमचन्द्र को 7 नवम्बर, 1875 को इस गीत की रचना के बाद इसकी अनुभूति हो गयी थी कि यह गीत भविष्य में राष्ट्र-मंत्र बनेगा। बंकिम ने अपनी पुत्री से कहा था, ''तुम एक दिन देखोगी कि दस-बीस वर्ष में ही इस गीत के कारण सारा बंगाल सुलग उठेगा और सारे देशवासी इसके प्रभाव में आ जायेंगे।'' यह गीत बंकिम के उपन्यास 'आनन्दमठ' (1880-1882) में संकलित हुआ और बंग साहित्य में तहलका मच गया। 'आनन्दमठ' उपन्यास का एक नाटक के रूप में 1883 में मंचन हुआ तो इस गीत का पहली बार रंगमंच पर गायन हुआ। इसके बाद कांग्रेस के अधिवेशन में 1896 में पहली बार इसका सम्पूर्ण गायन हुआ और कविवर रवीन्द्रनाथ ने इस मंत्र को अपनी वाणी और संगीत दिया। कांग्रेस के 1905 के बनारस अधिवेशन में रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बड़ी बहन स्वर्णकुमारी की पुत्री सरला देवी ने इसका सम्पूर्ण गायन किया और 'वन्देमातरम्' के जयनाद से सारा अधिवेशन गुंजायमान हो गया।

श्री अरविन्द ने इस गीत के सम्बन्ध में ठीक ही लिखा कि 'वन्देमातरम्' एक संजीवन क्षेत्र है। हमारे स्वतंत्रता संग्राम का एक प्रभावशाली हथियार है। यह कोई सामान्य गीत नहीं, मातृभूमि की वन्दना करने का सन्देश देने वाला महामंत्र है। प्रेमचंद ने 'वन्देमातरम्' को ही स्वाधीनता आन्दोलन का महामंत्र माना। इसी कारण उनकी कहानियों में स्वाधीनताकामी नेता एवं जनता 'वन्देमातरम्' तथा 'भारत माता की जय' का नारा लगाते हुए मिलेंगी। 'वरदान' उपन्यास (1912) के आरम्भ में देवी प्रकट होती है और सुवामा देशभक्त पुत्र होने का वरदान माँगती है।

बंग-भंग तथा 'वन्देमातरम्' राष्ट्र-गीत ने सम्पूर्ण देश को जागृत कर दिया। इस गीत ने सोते हुए भारतीयों को जगाया और जगे हुओं को अंग्रेजों के दु:शासन के विरुद्ध खड़े होने की शक्ति प्रदान की। साहित्य इस राष्ट्रीय उद्वेलन तथा जागृति से अलग नहीं रह सकता था। उर्दू में प्रेमचंद का आविर्भाव हो चुका था और उर्दू में वे हिन्दू समाज की कुछ बुराइयों पर उपन्यास लिख रहे थे। उन्होंने पहले उर्दू उपन्यास में मन्दिरों में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा भोली-भाली स्त्रियों को वासना के जाल में फँसाने का भण्डाफोड़ किया और दूसरे उपन्यास 'प्रेमा' में विधवा तथा विधवा-विवाह के सुधारवादी कथानक की रचना की। इसी बीच बंग-भंग की घटना घटी और प्रेमचंद एकाएक समाज सुधार से देश-प्रेम एवं राष्ट्रीय चेतना की ओर मुड़े और उन्होंने वर्ष 1908 में स्वदेश-प्रेम की कहानियों का उर्दू में एक संग्रह 'सोज़ेवतन' के नाम से प्रकाशित कराया। प्रेमचंद ने अपने 'जीवन-सार' लेख में लिखा कि उन्होंने अपनी आरम्भिक अवस्था में बंकिम बाबू के उपन्यासों के उर्दू अनुवाद पढ़ लिये थे और 'सोज़ेवतन' की कहानियों का प्रेरणा-स्रोत बंग-भंग आन्दोलन ही था।

प्रेमचंद ने इसमें लिखा, ''पाँच कहानियों का संग्रह 'सोज़ेवतन' के नाम से 1909 (यह जुलाई, 1908 में छपा था) में छपा। उस समय बंग-भंग का आन्दोलन हो रहा था। कांग्रेस में गर्म दल की सृष्टि हो चुकी थी। इन पाँचों कहानियों में स्वदेश-प्रेम की महिमा गायी गयी है।'' इनमें केवल चार कहानियाँ ही देश-प्रेम से सम्बन्धित हैं, प्रेमचंद ने पाँचों कहानियों के सम्बन्ध में जो लिखा है, वह स्मृति को धोखा है। इसकी पहली कहानी 'सांसारिक प्रेम और देश-प्रेम' है जिसमें एक प्रेमी अपनी प्रेमिका के प्रति अपने प्रेम से देश और जाति के प्रेम को श्रेष्ठ मानता है। इटली का 'नामवर देश-प्रेमी' मैज़िनी तथा मैग्डलीन में अटूट प्रेम है, परन्तु मैज़िनी तो देशोत्थान के लिए पागत है और वह अपनी प्रेमिका को इस कारण बहन मानकर मन में कहता है, ''मैं तेरे प्रेम, सच्चे, नेक और निःस्वार्थ प्रेम का आदर करता हूँ; मगर मेरे लिए जिसका दिल देश और जाति पर समर्पित हो चुका है, तू एक प्यारी और हमदर्द बहन के सिवा और कुछ नहीं हो सकती।''

इसकी दूसरी कहानी है 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन', जो पहली कहानी के समान ही एक प्रेम-कहानी है और इसके पात्र भी विदेशी है, किन्तु इसमें एक भारतीय राजपूत सैनिक है जो विदेशी हमलावरों को बड़ी संख्या में मार कर अन्तिम साँसे गिन रहा है और वह 'भारत माता की जय' कहकर प्राण त्याग देता है। इसके बाद उसके सीने से खून का आख़िरी क़तरा निकल पड़ता है और लेखक लिखता है, ''एक सच्चे देश-प्रेमी ने देशभक्ति का हक़ अदा कर दिया।'' इसी प्रकार प्रेमी दिलफिगार जब इस खून के आखिरी कतरे को दुनिया का सबसे अनमोल रतन मानकर अपनी प्रेमिका दिलफरेब के पास पहुँचा और उसकी हथेली पर रखा तो वह उससे लिपट गयी और उसे अपना मालिक मानते हुए एक रत्नजड़ित मंजूषा में रखी तख़्ती निकाली और उस पर सुनहरे अक्षरों में लिखा था, ''खून का आख़िरी क़तरा जो वतन की हिफ़ाजत में गिरे, दुनिया का सबसे अनमोल चीज़ है।''

इसकी तीसरी कहानी 'शेख़ मख़मूर' भी विदेशी पात्रों की कहानी है, परन्तु इसमें भी शाह बामुराद और उसके बेटे मसऊद (शेख मख़मूर) के देश-प्रेम की उच्चता दिखायी गयी है। चौथी कहानी 'यही मेरा वतन है' (हिन्दी में 'यही मेरी मातृभूमि है') का पात्र भारतीय है और वह 60 वर्ष के बाद अमरीका से लौटकर अपना अन्तिम समय अपनी मातृभूमि में गुज़ारना चाहता है। वह अन्त में 'पतित-पावनी गंगा' के तट पर पहुँचता है, जिसकी गोद में मरना, लेखक के अनुसार, प्रत्येक हिन्दू अपना परम सौभाग्य समझता है। पतित-पावनी भागीरथी गंगा कथा-नायक के गाँव से छः सात मील पर बहती थी और उसके दर्शनों की लालसा सदैव रहती थी। वह कहता है, ''अब मैं अपने देश में हूँ। यही मेरी प्यारी मातृभूमि है। ये लोग मेरे भाई हैं और गंगा मेरी माता है।''

यहाँ गंगा को 'माता' कहने का भावबोध 'वन्देमातरम्' राष्ट्र-गीत से आया है और देश-प्रेम तथा मातृभूमि के प्रति समर्पण एवं आसक्ति का भाव बंग-भंग की देन है। यह एक ऐसे प्रवासी भारतीय की कहानी है जो अमरीका के धन-वैभव तथा सुख-विलास का त्याग करके अपनी मातृभूमि के चरणों में तथा गंगा-माता की गोद में अपने प्राणों का विसर्जन करना चाहता है। इसकी पाँचवीं कहानी 'शोक का पुरस्कार' है जो देश-प्रेम की नहीं विशुद्ध प्रेम कहानी है जो पति, पत्नी और प्रेमिका के त्रिकोण पर आधारित है।

'सोज़ेवतन' की भूमिका हमारे इस मन्तव्य को और भी स्पष्ट करती है कि युग की नयी प्रवृत्तियाँ किस प्रकार साहित्य पर अपना प्रतिबिम्ब छोड़ रही थीं और बंग-भंग की घटना किस प्रकार साहित्य में देश-प्रेम और राष्ट्रीयता की नयी धारा की सृष्टि कर रही थी। प्रेमचंद आरम्भ में ही स्वीकार करते है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है, ''हरेक कौम का इल्म-ओ-अदब अपने ज़माने की सच्ची तस्वीर होता है। जो ख़यालात क़ौम के दिमाग़ों को मुतहर्रिक (सक्रिय) करते हैं और जो ज़ज़्बात क़ौम के दिलों में गूँजते हैं, वो नज़्म-ओ-नस्त (पद्य-गद्य) के सफ़ों में ऐसी सफ़ाई से नज़र आते है।''

प्रेमचंद ने साहित्य की परिभाषा बदली, समय के साथ साहित्य को जोड़ा और युग-चेतना एवं रचना को अटूट सम्बन्ध में बाँधा और बंग-भंग जैसी ऐतिहासिक घटना के प्रभाव में लिखी जाने वाली अपनी कहानियों के औचित्य को सिद्ध किया। इसके बाद प्रेमचंद ने अपनी भूमिका में तीन युगों के स्वरूप का उद्घाटन किया—एक, आरम्भिक युग जो प्रेम-ग़ज़लों तथा अश्लील कहानियों का था, जिसे हम रीति-काल कहते हैं। प्रेमचंद ने इसके बारे में लिखा, ''हमारे लिटरेचर का इब्तिदाई (आरम्भिक) दौर वो था कि लोग ग़फ़लत के नशे में मतवाले हो रहे थे। इस ज़माने की अदबी यादगार बजुज़ (अलावा) आशिकाना ग़ज़लों और चन्द फ़हहाश क़िस्सों (अश्लील कहानियों) के

और कुछ नहीं।'' दूसरे दौर पर प्रेमचंद ने लिखा, ''दूसरा दौर उसे समझना चाहिए जब क़ौम के नये और पुराने ख़यालात मे ज़िदग़ी और मौत की लड़ाई शुरू हुई और इस्लाहे-तमद्दुन (सांस्कृतिक सुधार) की तजवीज़ें सोची जाने लगी। इस ज़माने के क़सम-व-हिकायत (किस्से तथा कहानी) ज़्यादातर इस्लाह (सुधार) और तज़्दीद (नवीनता) ही का पहलू लिये हुए हैं।''

यह युग आधुनिकता, जो अंग्रेजी शासकों के द्वारा आ रही थी, तथा भारतीय-बोध के द्वन्द्व का युग था। इसमें सांस्कृतिक जागरण और सुधार की प्रवृत्ति प्रबल थी और यह उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशकों का प्रमुख आन्दोलन था जो इक्कीसवीं सदी के आरम्भ होने पर भी चलता रहा। इस दूसरे दौर में परिवर्तन तब हुआ जब बंग-भंग ने पूरे देश में राष्ट्र-प्रेम की लहर उत्पन्न कर दी। प्रेमचन्द ने इस तीसरे दौर के सम्बन्ध में लिखा, ''अब हिन्दुस्तान के क़ौमी ख़याल ने बलोग़ीयत (बालिग़पन, बुद्धिमत्ता) के जीने पर एक कदम और बढ़ाया है और हुब्बे-वतन (देश-प्रेम) के जज़्बात लोगों के दिलों में उभरने लगे हैं। क्यूँकर मुमकिन था कि इसका असर अदब पर न पड़ता? ये चन्द कहानियाँ इसी असर का आगाज़ (आरम्भ) हैं और यकीन है कि ज्यों-ज्यों हमारे ख़्याल वसीह (विस्तृत) होते जायेंगे, इसी रंग से लिटरेचर का रोज़-अफ़्ज़ों (प्रतिदिन वृद्धि) फ़रोग़ (उन्नति) होता जायेगा। हमारे मुल्क को ऐसी किताबों की अशद (सख्त) ज़रूरत है जो नयी नस्ल के जिगर पर हुब्बे-वतन (देश-प्रेम) की अज़मत (महिमा) का नक्शा जमायें।''

यह तीसरा दौर ही बंग-भंग के आन्दोलन तथा उससे उत्पन्न देश-प्रेम, राष्ट्रीयता तथा स्वदेशी की तीव्र लोक-आकांक्षा का था। प्रेमचंद ने अपने समय के लोगों के साथ नयी नस्ल के युवकों के जिगर पर भी देश-प्रेम की मोहर अंकित करने के लिए 'सोज़ेवतन' की कहानियाँ लिखीं। उन्होंने इस कहानी-संग्रह का विज्ञापन स्वयं लिखा जो 'ज़माना' के सितम्बर-अक्टूबर, 1908 के अंक में छपा और इसमें भी उन्होंने यही लिखा कि ये कहानियाँ पाठक के दिल में दर्दे-वतन के साथ देश-प्रेम का पवित्र भाव उत्पन्न करेंगी। प्रेमचंद ने इस उर्दू में लिखे विज्ञापन में लिखा, ''उर्दू जुबान में हुस्नो-इश्क़, वस्लो-फ़िराक़, अय्यारी-व-मक्कारी, जंगो-जदल वग़ैरहा की बहुत-सी दास्तानें मौजूद हैं और इनके बाज़ बहुत ही दिलचस्प हैं; मगर ऐसे किस्से जिनमें सोज़े-वतन (देश-प्रेम) की चाशनी हो, जिनमें हुब्बे-वतन (देश-प्रेम) एक-एक हर्फ़ से टपके, इस वक़्त तक मादूम (अनुपलब्ध, अदृश्य) हैं। इस किताब में पाँच क़िस्से लिखे गये हैं और सब दर्दे-वतन जी जज़्बात से पुर है। मुमकिन नहीं कि इन्हें पढ़कर नाज़रीन के दिल में वतन की उल्फ़त का पाक जज़्बा मौजज़न न हो पाये।''

किसी भी पत्रिका में यह अपने प्रकार का पहला विज्ञापन था। अंग्रेजी सरकार ने बंग-भंग के विरोधियों को जैसे दमित करने का प्रयत्न किया, उसी प्रकार प्रेमचंद के इस कहानी-संग्रह 'सोज़े-वतन' में उन्होंने राजद्रोहात्मक सामग्री पायी और जिलाधीश ने उन्हें बुलाकर फटकार लगायी और बिगड़ कर बोले, ''अपने भाग्य को बखानो कि अंग्रेजी अमलदारी में हो। मुगलों का राज्य होता, तो तुम्हारे दोनों हाथ काट दिये जाते। तुम्हारी कहानियाँ एकांगी है, तुमने अंग्रेजी राज्य की तौहीन की है।''

प्रेमचंद को इसका दंड भोगना पड़ा। 'सोज़ेवतन' की शेष बची 700 प्रतियाँ अंग्रेज हाकिम को देनी पड़ीं जिन्हें अग्नि के अर्पित कर दिया गया। इस घटना एक प्रकार से ऐतिहासिक बन गयी। 'सोज़ेवतन' के लेखक नवाबराय का अन्त हुआ और 'प्रेमचन्द' का जन्म हुआ और प्रेमचंद ने देश-प्रेम की कहानियों का मार्ग छोड़कर परिवार एवं समाज तथा ऐतिहासिक पात्रों पर कहानियों की रचना का रास्ता अपनाया। यह एक बड़ा परिवर्तन था, किन्तु सामाजिक जागृति एवं सामाजिक सुधार तथा इतिहास-बोध भी उसी राष्ट्रीय जागृति एवं देश-प्रेम के अंग थे, जिसका मुख्य लक्ष्य राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जागृति से स्वदेशी, स्व-भाषा, स्व-संस्कृति तथा स्वराज्य का राष्ट्रीय-बोध निरन्तर विकसित होता जाये और सम्पूर्ण देश स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए उद्वेलित हो उठे। अतः 'सोज़ेवतन' कहानी-संग्रह का वही महत्त्व है जो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'भारत-दुर्दशा' (1880), महात्मा गाँधी के 'हिन्द स्वराज्य' (1909) तथा मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' (1912) का है।

◆◆◆

जनगीतों की परंपरा और स्वतंत्रता आंदोलन

डॉ. रवि शर्मा 'मधुप'

...''गाँधी बाबा दुल्हा बने हैं
दुल्हन बनी सरकार,
चरखवा चालू रहै।
वीर जवाहर बने सहबाला
इर्विन बने नेवतार,
चरखवा चालू रहै।
दुल्हा गाँधी जेवन बैठे
देजै में मांगे स्वराज,
चरखवा चालू रहै।
लार्ड विलिंगडन दौरत आये
जीजा, गौने में दीवो स्वराज,
चरखवा चालू रहै।...

साहित्य समाज का दर्पण कहा जाता है, क्योंकि साहित्य में उस समय के समाज का सारी हलचल, छटपटाहट, उतार-चढ़ाव, सपने-आशाएँ व्यक्त होती हैं। साहित्य समाज का केवल हू-ब-हू चित्रण नहीं करता, अपितु वह तत्कालीन समस्याओं और स्थितियों से जूझता है, उनके समाधान हेतु सुझाव देता है, जनमत तैयार करता है और समाज को दिशानिर्देश, मार्गदर्शन देता है। इसीलिए साहित्य शब्द का अर्थ है, सहित या हित सहित। लोक साहित्य, साहित्य का वह रूप होता है, जो सीधे लोक द्वारा लोक के लिए रचा जाता है। उसमें रची गई पद्य रचनाएँ जन-जन के कंठ का हार बन जाती हैं।

भारत में जनगीतों की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। जनगीतों में जनसामान्य के दैनिक जीवन और व्यवहार से जुड़े मुद्दे जनसामान्य की बोली अर्थात् बोलचाल की भाषा में प्रस्तुत किए जाते हैं। सीधी जनहृदय से उमड़ी अनुभूतियाँ जनभाषा में अभिव्यक्ति पाकर जनगीतों के माध्यम से जनसामान्य के मर्म को स्पर्श करती हैं। शास्त्रीयता, सैद्धांतिकता, भाषिक बौद्धिक कृत्रिमता से परे ये जनगीत अपनी सरसता और सहजता से जनमन को प्रभावित कर लेते हैं। इसीलिए कभी-कभी परिष्कृत, पुस्तकीय साहित्य से भी कहीं अधिक प्रभावशाली तथा लोकप्रिय ये गीत साहित्य की मुख्यधारा को चुनौती देते प्रतीत होते हैं।

सन् 1857 की क्रांति से लेकर सन् 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति तक का दौर, भारतीय इतिहास का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण तथा उल्लेखनीय पृष्ठ है। लगभग एक शताब्दी के इस समय में हिन्दी सहित भारत की लगभग समस्त भाषाओं और बोलियों में अनेक ऐसे जनगीत रचे गए, जिन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन की आग में घी का काम किया। इन जनगीतों ने भारतीयों को जगाया। उन्हें उनके विस्मृत गौरव का ज्ञान कराया। जन्मभूमि के प्रति प्रेम तथा सर्वस्व समर्पण के लिए प्रेरित किया। रूढ़ियों, कुप्रथाओं और कुरीतियों के उन्मूलन का आग्रह किया। स्वतंत्रता के लिए व्यक्तियों तथा दलों द्वारा देश-विदेश में किए जा रहे प्रयासों की प्रशंसा की। अंग्रेजों की वास्तविकता से आम आदमी को परिचित कराने तथा आपसी मतभेद भुलाकर एकजुट होकर

सम्पर्कः एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, श्रीराम कॉलेज ऑफ कॉमर्स, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007
'सुर सदन' डब्ल्यू जैड 1987, रानी बाग, दिल्ली-110034
मोबाइलः 9811036140

शत्रु का सामना करने की प्रेरणा देने वाले ये जनगीत इस दौर की उपलब्धि हैं। ये रचनाएँ कितनी क्रांतिकारी होती थी, इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि तत्कालीन अंग्रेज सरकार इनके प्रभाव से थर्रा जाती थीं और ऐसी रचनाओं पर प्रतिबंध लगा दिया करती थी। भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली में फोर्ट विलियम कॉलेज द्वारा संग्रहीत कृतियाँ, गोपनीय प्रकाशन तथा प्रतिबंधित प्रकाशन सुरक्षित रखे गए हैं। उनमें असमी की 8, बंगला की 44, अंग्रेजी की 89, गुजराती की 39, हिंदी की 138, कन्नड़ की 4, मलयालम की 3, मराठी की 55, उड़िया की 2, पंजाबी की 92, सिंधी की 11, तमिल की 31, तेलुगु की 20 और उर्दू की 68 प्रतिबंधित कृतियाँ संग्रहीत हैं।

यूँ तो सभी भाषाओं और बोलियों में ऐसी रचनाएँ लिखी गईं, परंतु हिन्दी, पंजाबी, उर्दू, मराठी, बंगला भाषाओं में तथा ब्रज, अवधी, बुंदली, भोजपुरी, राजस्थानी आदि बोलियों में ऐसे जनगीतों की रचना बहुतायत से हुई। भारतेन्दु हरिश्चंद्र और उनकी मंडली के कवियों ने सबसे पहले तत्कालीन फूट, दरिद्रता और अंग्रेजों की चालबाजियों की ओर भारतीयों का ध्यान दिलाते हुए लिखा—

''भीतर भीतर सब रस चूसे,
हँसि-हँसि के तन-मन-धन-मूसे।
जाहिर बातन में अति तेज़
क्यों सखि साज्जन? नहिं अंगरेज़।''

भारतेन्दु ने कभी भी अंग्रेजी शासन को 'अंधेर नगरी' कहा, तो कभी 'भारत दुर्देव'। भारत की दुर्दशा देखकर कवि का हृदय चीत्कार कर उठा—

''रोवहु सब मिलि के आवहु भारत भाई,
हा! हा! भारत दुर्दुशा न देखि जाई।''

प्रतापनारायण मिश्र ने भारतीयों की अकर्मण्यता पर व्यंग्य करते हुए लिखा—

''सर्वसु लिए जात अंगेरज,
हम केवल 'ल्यक्चर' के तेज़।''

उर्दू साहित्य में अठारहवीं सदी से ही ब्रिटिश राज के विरोध के स्वर सुनाई देते हैं। मुसहफी ने स्पष्ट शब्दों में कहा—

''हिंदोस्ताँ की दौलत व हशमत जो कुछ थी,
ज़ालिमों फिरंगियों ने बतदबीर खींच ली।''

अजीमुल्ला खाँ ने 1856 में 'पयामे आज़ादी' नामक अखबार निकाला था। 1857 की क्रांति के मुखपत्र इस अखबार में ही 1857 के क्रांतिकारियों का यह अभियान गीत प्रकाशित हुआ था—

''आया फिरंगी दूर देश से, ऐसा मंतर मारा।
लूटा दोनों हाथों से, प्यारा वतन हमारा।
आज शहीदों ने है तुमको अहलेवतन ललकारा।
तोड़ो गुलामी की ज़ज़ीरें, बरसाओ अंगारा,
हिंदू-मुस्लिम सिख हमारा, भाई-भाई प्यारा।''

1857 की क्रांति के समर्थन में नज्म कहने और क्रांतिकारियों का साथ देने के आरोप में मौलवी इमाम बख्श सहबाई, मिर्जा आगा खाँ 'आगा', मिर्जा अहमद बेग 'अहमद', मिर्जा गुलाम मोहिउद्दीन अश्की, शहजादा ज़फरयार खाँ रासिख, नवाब ग़ज़नफ़र हुसैन सईद, मिर्जा कमरूद्दीन शैदा, मुहम्मद इसमाइल जौक़ (जो उस्ताद जौक़ के इकलौते सुपुत्र थे), मुंशी महाराज सिंह अजीज़ देहलवी आदि को क्रांति के बाद गिरफ्तार करके फाँसी पर लटका दिया गया।

सन् 1857 की क्रांति के आधार बनाकर अनेक बोलियों में जनगीत लिखे गए। राजस्थानी में बांकीदास ने लिखा—

''आयो इंगरेज मुलुक रै ऊपर, आहंस लीधा खेंचि उरा।
घणियां मरै न दीधी धरती, घड़ियाँ ऊभा गई धरा।।

***	***	***

पुर जोधांण, उदैपुर, जैपुर, थारां खँटा परियाण।
आंकै गई आवसी आंके, बांके आसल किया बखाण।।''

80 वर्षीय बाबू कुंवरसिंह के शौर्य का यशोगान अनेक लोकगीतों में मिलता है। इस भोजपुरी जनगीत में होली के समय उनका स्मरण किया गया है—

''बाबू कुंअरसिंह तोहरे राज बिनु, अब न रंगइबो केसरिया
इतते अइले घेरि फिरंगी, उतते कुंअर दुई भाई
गोला बारूद के चले पिचकारी, बिचवा में होत लराई।
बाबू कुंअरसिंह तोहरे राज बिनु, अब न रंगइबो केसरिया।''

1857 के योद्धा अवध के राणा वेणीमाधव की वीरता का वर्णन इस अवधी लोकगीत में है—

''अवध में राजा भयो मरदाना।
पहिल लड़ाई भई बकसर माँ सेमरी के मैदान।
हुवां से जाय पुरवामां जीत्यो तबै लाट घबराना।
नक्की मिले, मानसिंह मिलिगै जाने सुदर्शन काना।
छत्री वंश एकु ना मिलि है जाने सकल जहाना।''

इसके अतिरिक्त गोंडा के राजा देवी बक्श सिंह, संडीले के गुलाब सिंह, चहलारी-नरेश बलभ्रद सिंह, अवध की बेगम हजरत महल आदि के बारे में कई प्रभावशाली अवधी जनगीत आज भी लोकप्रिय हैं। इन जनगीतों से जनता की यह समझ व्यक्त हुई है कि केवल वे ही राजा वंद्य हैं जिन्होंने अंग्रेजी की चालों का समझा और क्रांतिकारी सिपाहियों का साथ दिया। एक लोकगीत में अंग्रेजों की पत्नियाँ घबराकर अपने पति से कहती हैं—

''डियर अब चलो पलट घर चलें
सजन अब चलो पलट घर चलें
कि राजा बड़ा है लड़ैया ना।''

बुंदेलखंड के लोकगीतकारों ने रानी लक्ष्मीबाई और 1857 की अन्य क्रांतिकारी वीरांगनाओं की बहादुरी, देशभक्ति तथा बलिदान की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए अन्य लोगों को मुक्ति संघर्ष में भाग लेने की प्रेरणा दी—

''खूब लड़ी मरदानी, अरे झांसी वारी रानी
बुरजन बुरजन तोपें लगा दई, गोली चलाए आसमानी
छोड़ मोरचना लसकर को दौरी, ढूँढेहु मिले नहीं पानी।
अरे झांसी वारी रानी, खूब लड़ी मरदानी।''

एक बुंदेली लोकगीत में महिला वीरांगनाओं की प्रशस्ति इस प्रकार की गई है—

''बांदा लुटौ रात के गुइयां, सोउत रई चिरैयां
सीला देवी लरी दौर के संग में सहस मिहारियां
अंग्रेजन सों करी लराई मारे लोग लुगइयां।

*** *** ***

नन्हीं रानी ऊधम करती, जिगनी में धम भरतीं
संग में जवान सात सौ लैके फौज फिरंगिन लरतीं।''

ब्रज के जनगीतों में महुऔ, वीठना, कोल गाँवों में 1857 की क्रांति होने की बात कही गई है—

''महुऔ मारि बीठना मारयौ
कोलि के लगि गए तारे,
स्यानास गहलऊ वारे।''

एक अज्ञात वीर 'अमानी' का गौरवगान इस ब्रज लोकगीत में किया गया है—

''अमानी मानै तो मानै थोड़ी ना मानै
के अंगरेज चढ़े घोड़िन पै, किले पैदल आये
किते पकरि कुंअन में डारे, किते उल्टे भाजे।
करौ अमनी ने जब पीछौ, बीन बीन के मारै
अमानी मानै तो मानै, थोड़ी ना मानै।''

भारतीय जनता ने फिरंगी लुटेरों के 1857 की क्रांति में स्वयं लुट जाने पर प्रसन्नता प्रकट की—

''फिरंगी लुट गयौ रे, हाथुस के बाज़ार में
गोरा लुट गयौ रे, हाथुस के बाज़ार में
टोप लुटि गयौ, घोड़ा लुटि गयौ
तमंचा लुटि गयौ, जाकौ चलते बाज़ार में।
फिरंगी.........''

सन् 1885 ई॰ में कांग्रेस का जन्म उस युग की महत्त्वपूर्ण घटना है। आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, मुस्लिम लीग की स्थापना, बंग-भंग, कांग्रेस विभाजन आदि घटनाओं का भी उस युग की कविताओं और जनगीतों में वर्णन मिलता है। 1920 से 1948 का समय भारतीय इतिहास में गाँधी युग कहलाता है। गाँधी जी के महान व्यक्तित्व और कार्यों से तो पूरा युग ही प्रभावित है। इसलिए खादी, चरखा, असहयोग, सत्याग्रह, किसानों और मज़दूरों की पीड़ा, अछूतोद्धार, एकता, बंधुत्व, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, मद्यनिषेध, स्वभाषा प्रेम आदि गाँधीवादी प्रवृत्तियाँ उस युग के जनगीतों पर छाई रहीं। गोरखपुर, बस्ती आदि जिलों की महिलाएँ शादी के अवसर पर बारातियों को खाना खिलाते हुए 'चरखा चालू रहे' लोकगीत गाती थीं। इसमें गाँधीजी को दूल्हा, जवाहरलाल को सहबाला तथा ब्रिटिश सरकार को दुल्हन बनाया गया और दहेज में तो स्वराज्य ही माँग लिया है—

''गाँधी बाबा दुल्हा बने हैं
दुल्हन बनी सरकार, चरखवा चालू रहै।

वीर जवाहर बने सहबाला
इर्विन बने नेवतार, चरखवा चालू रहै।
दुल्हा गाँधी जेंवन बैठे
देजै में मांगे स्वराज, चरखवा चालू रहै।
लार्ड विलिंगडन दौरत आये
जीजा, गौने में दीवो स्वराज, चरखवा चालू रहै।

एक हरियाणवी जनगीत में गरीब जनता गाँधी जी से दीया दिखाकर उजाला करने का अनुरोध करती है, ताकि चोरों की तरह भारत में घुस आये टोपधारी अंग्रेजों को पहचाना जा सके—

''तेरे घर में घुस आये चोर
गाँधी दीवला दिखाइए रे।
तरे तो भाई गाँधी टोपी आले
ये टोप आलै कौण, गाँधी दीवाला दिखाइए रे।

*** *** ***

तरे तो भाई गाँधी लाठी आले
ये बंदूक आले कौण, गाँधी दीवला दिखाइए रे।''

एक भोजपुरी गीत में गाँधी के युग में वर्णन इस प्रकार किया गया है—

''गाँधी के आइल जमाना, देवर जेलखाना अब गइले।
जब से तपे सरकार बहादुर भारत मरे बिनु दाना
देवर जेलखाना....''

एक बुंदेली जनगीत में, जिसके रचयिता है—मूलचंद्र 'चंद्र' स्वतंत्रता संग्राम से उदासीन लोगों को उलाहना देते हुए कहा है—

''भारत के गारद कराय दिया भाई, तुम्हें शरम न आई...
गाँधी, तिलक, जवाहरलाल कीनां तन धन पै न ख्याल
जिनका जग जानत है हाल रह गए जेलों में कई साल
माता की लाज राख कीन्हीं भलाई, तुम्हें शरम न आई।''

राजस्थानी जनकवि बारहठ केसरीसिंह ने अंग्रेज परस्त राजाओं को धिक्कारते हुए लिखा—

''पराधीन भारत हुयो, प्यालां री मनुवार।
मातृभोम परतंत्र हो, बार बार धिक्कार।।
दुसमण देसा लूट कर, ले ज्यावे परदेश।
राजन चड़ल्या परहल्यो, धरो जनानो भेस।।
कठै गई वा वीरता, कठै रजपूती सान।
टुकणां रा मोताज हो, खो बैठया अभिमान।।''

हिन्दी की इन विभिन्न बोलियों के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में भी स्वतंत्रता आंदोलन की आग को जनगीतों ने भड़काया। 19वीं सदी के मध्यकाल में बंगाल के महान कवियों रंगालाल, मधुसूदन, हेमचंद्र और नवीनचंद्र तथा महान उपन्यासकार बंकिमचंद्र चटर्जी ने देशभक्ति का शंखनाद किया। बंकिमबाबू के उपन्यास 'आनन्दमठ' (1882) का गीत 'वन्देमातरम्' क्रांतिकारियों का राष्ट्रीय गीत बन गया। जहाँ भी 'वन्देमातरम्' का स्वर गूँजता, अंग्रेजी हुकूमत काँप उठती यह गीत क्रांति का स्वर था, स्वतंत्रता संग्राम का अचूक मंत्र था। आज़ादी के दीवानों का दृढ़ संकल्प था—

''छीन सकती है नहीं सरकार वन्देमातरम्।
हम गरीबों के गले का हार वन्देमातरम्।।

इस गीत को अलग-अलग कवियों ने अपनी-अपनी भाषा में गाया। रामचरित उपाध्याय ने लिखा—

''बोलो अभय हो आर्य वीरो आज वन्देमातरम
जप तप यही है धर्म धीरो आज वन्देमातरम्।''

महाकवि सुब्रह्मण्यम भारती ने 'वन्देमातरम्' शीर्षक से एक गीत उन दिनों लिखा, जब इसका उच्चारण भी देशद्रोह माना जाता था—

''वन्देमातरम् उन्बोम्-एंगल
मालिन तायै वणुंदुमेन् बोम्। वन्देमातरम्...''

इसका अर्थ है—वन्देमातरम् कहें। महान भूमि माता को सिर झुकाएँ, कहें वन्देमातरम्। राष्ट्रगान के रचयिता रवींद्रनाथ टैगोर का प्रसिद्ध गीत, ''भारत तीर्थ'' भारत की विशेषताएँ बताता है—

''हे मोर चित्त, पुण्य तीर्थ जागो रे धीरे।
एइ भारतेर महामानवेर सागर तीरे।।
हेथाये दाड़ाये दु बाहु बाड़ाए नमि नरदेव तारे,
उदार छंदे परमानंदे बंदन करि ताँरे।''

एक क्रांतिकारी झबेरचंद ने अदालत में अपना गीत गाकर सुनाया तो मेघाणी की बुलंद आवाज़ और कविता के भाव ने जज, जो

की भारतीय था, पर ऐसा प्रभाव डाला कि उसने अदालत में बैठे-बैठे ही अपना इस्तीफा लिख डाला और अंग्रेज सरकार की नौकरी छोड़ दी — छेल्ली प्रार्थना अर्थात् 'आखिरी प्रार्थना' शीर्षक उस गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है—

''प्रभुजी! अमारा यज्ञनी छेल्ली बलि: आमीन के जे।
गुमावली अमे स्वाधीनता तुं फेर देजें
बधारे मूल लेवां होय तोय मागी लेजें
अमारा आखरी संग्राम गां साथे ज रे' जे!''

अर्थात् हे प्रभु हमारे यज्ञ का यह आखिरी नैवेद्य है। इसलिए अब आप 'तथास्तु' कह देना। खोई हुई हमारी स्वाधीनता हमें वापस दे देना। इसके लिए यदि और अधिक कीमत लेनी हो तो माँग लेना, किंतु हमारे संग्राम में हमारे साथ अवश्य रहना।

पंजाबी साहित्य में अनेक ऐसे जनप्रिय गीत रचे गए, जिनमें क्रांतिकारी चेतना की जोरदार अभिव्यक्ति हुई है। लाला बांके दयाल का 1907 में लिखा गीत 'पगड़ी संभाल जट्टा' बहुत प्रसिद्ध हुआ तथा किसान आंदोलन का मुख्य गीत बन गया। गीत की कुछ पंक्तियाँ हैं—

''पगड़ी संभाल जट्टा, पगड़ी संभाल ओए
हिंद सी मंदिर साड्डा, इस दे पुजारी ओए
मरणे तो जीना भैड़ा, होके बेहाल ओए
मरणे दी कर लै हुण तू छेती तैयारी ओए।
पगड़ी संभाल जट्टा.......''

एक अन्य गीत की पंक्तियाँ हैं—

''सानँ रख सुतंतर, बंदी साथों दूर रहे
परतंतर ना कदे कराई, खुलदा सदा शाऊर रहे।''

शहीद भगतसिंह तो पंजाबी जनगीतों के हीरो रहे। अरजन टन नामक कवि लिखते हैं—

''भगत भगत सी देश दा भगत प्यारा।''

'गदर की गूँज' घर-घर में गाया जाने वाला पंजाबी का लोकप्रिय गाना इस प्रकार था—

''सारा जगत भगवान दा जागदा ऐ,
तुसीं घूक सुत्ते हिंदुस्तान वालो।
मिट्ठा बोल फरंग ते गर्क कीते
किवें मस्त बैठे ओ गुमान वालो।।

***   ***   ***

करके जंग फरंग नँ तंग करिए
छेती करो चालक कहान वालो।
आओ वीरो आज़ादी दी हवा लइये
मुद्दत तीक गुलाम कहान वालो।''

भारत की विभिन्न भाषाओं और बोलियों में रचे गए इन जनगीतों के अतिरिक्त हज़ारों ऐसे लोकप्रिय जनगीत उस दौर में रचे गए, जिनमें से कुछ हैं—

रामप्रसाद बिस्मिल का— *''सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।''*

मोहम्मद इकबाल का— *''सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्ताँ हमारा...''*

श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' का— *''विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा।*

हितैषी का— *''शहीदों की चिताओं पर, जुड़ेंगे हर बरस मेले।/ वतन पर मिटने वालों का, यही बाकी निशां होगा।''*

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का— *''कोटि कोटि कंठों से निकली, आज यही स्वरधारा है।/भारतवर्ष हमारा है, यह हिंदुस्तान हमारा है।''*

सुभद्राकुमारी चौहान का— *''बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी।/खूब लड़ी मरदानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।''*

इन क्रांति जनगीतों के अमर रचयिताओं को सादर नमन। शत शत नमन।

संदर्भ ग्रंथ—

1. लोक साहित्य की भूमिका, कृष्णदेव उपाध्याय।
2. लोक साहित्य: स्वरूप एवं सर्वेक्षण, जवाहरलाल।
3. आज़ादी के क्रांतिगीत।
4. चुने हुए राष्ट्रीय गीत।
5. आज़ादी की अग्निशिखाएँ, संपादक डॉ. शिवकुमार मिश्र
6. भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन और हिन्दी साहित्य, डॉ. विश्वमित्र उपाध्याय।

'झण्डागीत' के रचयिता श्याम लाल गुप्त 'पार्षद'

अशोक कुमार गुप्त 'अशोक'

...'पार्षद' जी के जीवन में अनेक अविस्मरणीय तथा प्रेरणादायी घटनाएँ जुड़ी हैं। सन् 1921 में पार्षद जी ने व्रत लिया कि जब तक देश स्वतंत्र नहीं होगा नंगे पाँव रहूँगा, धूप या वर्षा में छाता नहीं लगाऊँगा, कंधे पर अंगौछा नहीं रखूँगा, इसका पूरी तरह पालन भी किया। पं. जवाहरलाल नेहरू ने 'पार्षद' जी के आमंत्रण पर गणेश सेवा आश्रम नरवल का शिलान्यास सन् 1934 में किया था। 'पार्षद' जी ने एक बार विधानसभा का टिकट माँगा तो पं. गोविन्द वल्लभ पंत राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन ने कहा कि पार्षद टिकट लेकर पछताओगे। यह बात प्रथम आम चुनाव की है। इसके बाद 'पार्षद' जी ने कभी लखनऊ और दिल्ली की राजनीति की तरफ देखा ही नहीं। 1972 में स्वतंत्रता की रजत जयंती पर 'पार्षद' जी ने झण्डा गीत लालकिला से गाया तो उपस्थित नेताओं के साथ जनसमूह ने दोहराया था।...

सम्पर्क: 124/14, संजय गांधी नगर, नौबस्ता कानपुर-208021, उ.प्र.
मो. 9956126487

विश्व एक नाट्यशाला है, प्रत्येक मनुष्य अपना किरदार निभाता है और चला जाता है किन्तु कुछ विरले मनुष्य होते हैं जो व्यक्तियों और समाज में अमिट छाप छोड़ जाते हैं तथा दे जाते हैं जीवनदायी शक्ति एवं साहस से संचित प्रेरणा। कुछ व्यक्ति केवल अपने लिए जीते हैं और मर जाते हैं, कुछ लोग अपने परिवार के लिए जीते हैं तथा कुछ समाज और संसार के लिए जी कर अमर हो जाते हैं।

श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' का नाम उन अग्रगण्य महापुरुषों में श्रद्धा के साथ लिया जाता है जिन्होंने देश धर्म के लिए अपना सर्वस्व निछावर कर दिया। वह केवल झण्डा गीत के रचयिता ही नहीं थे वरन् धर्म परायण राम भक्त, समाजसेवी एवं समर्पित स्वतंत्रता सेनानी थे। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की विशिष्ट अनुकम्पा उन पर थी। गोस्वामी तुलसीदास विरचित रामचरितमानस उन्हें कंठस्थ थी और प्रतिपल वह श्रीराम का गुणगान किया करते थे। वह एक-एक चौपाई को बड़ी सहजता के साथ कह जाते थे और उन चौपाइयों को महामंत्र की संज्ञा दिया करते थे।

'पार्षद' जी जन्म 9 सितम्बर, 1896 को ग्राम नर्वल तहसील व जिला कानपुर में दोसर वैश्य परिवार में हुआ था। उनके पिता विश्वेश्वर प्रसाद गुप्ता धर्मपरायण एवं समाजसेवी थे। उनकी माता कौशल्यादेवी विदुषी महिला थीं। माता-पिता के संस्कारों से सम्पृक्त श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' जी भी धर्मानुरागी एवं महान देशभक्त के गुण से सम्पन्न हो गए। उनके अपर मिडिल तक शिक्षा मिली तथा शिक्षा विशारद की उपाधि से विभूषित हुए। उन्होंने अध्यापन एवं पत्रकारिता को आजीविका का साधन बनाया।

वैश्य परिवार में जन्म लेने के बाद भी उनका मन पैतृक व्यवसाय में नहीं लगा। वह देश की परतन्त्रता से आहत होकर स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी करने लगे। वह गाँव-गाँव जाकर आन्दोलन को धार देते रहे। उनके अन्दर एक स्वतंत्रता सेनानी ने जन्म ले लिया। इस कारण उन्हें जीवन में आठ बार जेल यात्रा करनी पड़ी। भारत माता को स्वतंत्र कराने के लिए प्राणपण से बीड़ा उठा लिया। वह लगभग सतहत्तर महीने जेल में रहे।

उनको देशभक्ति की प्रेरणा पं. लक्ष्मी नारायण अग्निहोत्री, पं. प्रतापनारायण मिश्र एवं गणेश शंकर विद्यार्थी से मिली। इन महानुभावों की कार्यशैली ने उन्हें सदैव क्रियाशील रखा। उनको देश के शीर्षस्थ राजनेताओं, मनीषियों एवं समाज सेवियों का सान्निध्य प्राप्त हुआ जिसमें प्रमुख रूप से मोहनदास करम चंद गाँधी, महादेव देसाई, पं. सोहन लाल द्विवेदी, पं. गोविन्द वल्लभ पंत, पं. मोतीलाल नेहरू, पं. जवाहरलाल नेहरू, जमनालाल बजाज एवं राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन प्रमुख थे।

'पार्षद' जी ने आजीवन राष्ट्र सेवा का व्रत लिया। रामचरितमानस के मर्मज्ञ एवं प्रसिद्ध रामायणी होने के नाते समाज में उन्हें बहुत सम्मान मिला। उनकी बात को सभी लोग महात्मा गाँधी की आवाज मानते थे। इसी कारण वह निरन्तर बत्तीस वर्ष स्वतंत्रता प्राप्ति तक एक समर्पित एवं कर्मठ स्वतंत्रता सेनानी का दायित्व बखूबी निभाते रहे। उन्होंने एक प्रखर राष्ट्र सेवी, कुशल आन्दोलनकारी, नमक आन्दोलन एवं अंग्रेजों भारत छोड़ो आन्दोलन के प्रमुख संचालक का दायित्व निभाया, वह निरन्तर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस फतेहपुर के उन्नीस वर्ष तक अध्यक्ष रहे।

'पार्षद' जी के रग-रग में समाज सेवा का भाव भरा था। वह दीन-दु:खियों और ज़रूरतमंदों की नि:स्वार्थ भाव से सेवा किया करते थे। उनके विषय में यह भी कहा जाता था कि तमाम छोटे-बड़े सामाजिक मसले वे स्वयं निबटा दिया करते थे। उनकी कुशाग्र बुद्धि के द्वारा समाज को विशेष योगदान मिला। सन् उन्नीस सौ ग्यारह से मृत्युपर्यन्त दस अगस्त उन्नीस सौ सतहत्तर तक समाज सेवा में सतत् लगे रहे। अपने जीवन में उन्होंने दोसर वैश्य जिला विद्यालय एवं अनाथालय, गणेश सेवा आश्रम, गणेश शंकर बालिका विद्यापीठ, दोसर वैश्य महासभा, वैश्य पत्र समिति के साथ अन्य कई संस्थाओं की स्थापना एवं संचालन किया। वह स्त्री शिक्षा तथा दहेज के विरोध में आजीवन अपनी आवाज़ बुलन्द करते रहे। अनाथ, असहाय बालक-बालिकाओं की शिक्षा के लिए सदैव प्रेरणास्रोत रहे।

साहित्य सेवा का भाव राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त एवं भारतेन्दु हरिशचन्द्र के लेखन से जागृत हुआ। वह मातृभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार में आजीवन लगे रहे। राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने का भाव जागृत करने के लिए वह ओजस्वी कविताएँ लिखते रहे। वह जगन्नाथ दास रत्नाकर एवं जमुनालाल बजाज पुरस्कार से पुरस्कृत हुए। साहित्य वारिधि एवं अनेकानेक साहित्यिक सम्मानों से सम्मानित हुए। आपने गणेशशंकर विद्यार्थी के सान्निध्य में 'प्रताप' में कार्य किया। सुकवि पं. गया प्रसाद शुक्ल सनेही के सान्निध्य में साहित्यिक पत्रिका 'सचिव' का संपादन एवं प्रकाशन किया। वह लगभग पचास वर्ष तक मासिक पत्र 'वैश्य' का संपादन करते रहे। वह अक्सर सनेही जी की निम्नांकित पंक्तियाँ गुनगुनाया करते थे—

''जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं
वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।''

तथा मैथिलीशरण गुप्त जी की निम्नांकित पंक्तियों को स्वयं पर चरितार्थ किया—

''राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है
कोई कवि बन जाए यह संभाव्य है।''

'पार्षद' जी के द्वारा 3/4 मार्च, 1924 को रचित झण्डागीत सर्वप्रथम 13 अप्रैल, 1924 को जलियाँ वाला बाग दिवस पर फूलबाग कानपुर में पं. जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में सार्वजनिक रूप से सामूहिक गायन किया गया। सन् 1924 में कांग्रेस के बम्बई अधिवेशन में झण्डागीत व 1934 की हरिपुरा 7 पदों में लिखा गया। इसमें कई संशोधन भी किए गए। अब केवल 3 पद ही प्रचलित हैं जो निम्नांकित हैं—

''झण्डा ऊँचा रहे हमारा, विजयी विश्व तिरंगा प्यारा
झण्डा ऊँचा रहे हमारा...
सदा शक्ति सरसाने वाला, वीरों को हरषाने वाला
प्रेमसुधा बरसाने वाला मातृभूमि का तन मन सारा।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा...
आओ प्यारे वीरों आओ, देश धर्म पर बलि बलि जाओ
एक साथ सब मिलकर गाओ, प्यारा भारत देश हमारा
झण्डा ऊँचा रहे हमारा...
शान न इसकी जाने पाए, चाहे जान भले ही जाए
विश्व विजय करके दिखलाएँ, तब होवे प्रण पूर्ण हमारा
झण्डा ऊँचा रहे हमारा...''

'पार्षद' जी ने 'राष्ट्र गगन की दिव्य ज्योति, राष्ट्रीय पताका नमो, नमो, भारत जननी के गौरव की अविचल शाखा नमो नमो' यह राष्ट्री ध्वज वन्दन भी लिखा था लेकिन सर्वमान्य 'झण्डा ऊँचा रहे हमारा' हुआ। 'पार्षद' जी ने 1952 में 15 अगस्त को लालकिला से स्वयं झण्डा गीत गाया। 1954 में 'राष्ट्रपति भवन'

में रामायण वाचन किया। 15 अगस्त, 1972 को लालकिला में अभिनन्दन व ताम्रपत्र प्राप्त किया। 26 जनवरी, 1969 को 'पार्षद' जी 'पद्मश्री' पुरस्कार से अलंकृत हुए। उनकी स्मृति में 1997 में डाक टिकट भी जारी हुआ।

'पार्षद' जी के जीवन में अनेक अविस्मरणीय तथा प्रेरणादायी घटनाएँ जुड़ीं हैं। सन् 1921 में पार्षद जी ने व्रत लिया कि जब तक देश स्वतंत्र नहीं होगा नंगे पाँव रहूँगा, धूप या वर्षा में छाता नहीं लगाऊँगा, कंधे पर अंगौछा नहीं रखूँगा, इसका पूरी तरह पालन भी किया। पं. जवाहरलाल नेहरू ने 'पार्षद' जी के आमंत्रण पर गणेश सेवा आश्रम नरवल का शिलान्यास सन् 1934 में किया था। 'पार्षद' जी ने एक बार विधानसभा का टिकट माँगा तो पं. गोविन्द वल्लभ पंत और राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन ने कहा कि 'पार्षद टिकट लेकर पछताओगे'। यह बात प्रथम आम चुनाव की है। इसके बाद 'पार्षद' जी ने कभी लखनऊ और दिल्ली की राजनीति की तरफ देखा ही नहीं। 1972 में स्वतंत्रता की रजत जयंती पर 'पार्षद' जी ने झण्डा गीत लालकिला से गाया तो उपस्थित नेताओं के साथ जनसमूह ने दोहराया था।

श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के अप्रतिम सैनिक, कुशल वक्ता, उत्कृष्ट विद्वान, समाज सेवी तथा तत्कालीन परिस्थिति में ओजस्वी उद्बोधन देकर राष्ट्र जागरण के कार्य में महती भूमिका निभाकर अमर हो गए। यह एक संयोग ही है कि उनका जन्म हिन्दी दिवस के पाँच दिन पूर्व तथा निर्वाण दिवस, 10 अगस्त 1977, स्वतंत्रता दिवस के पाँच दिन पूर्व हुआ। ऐसे महान स्वतंत्रता सेनानी, कवि, पत्रकार का झण्डा गीत युग-युग तक हमें प्रेरणा देता रहेगा।

◆◆◆

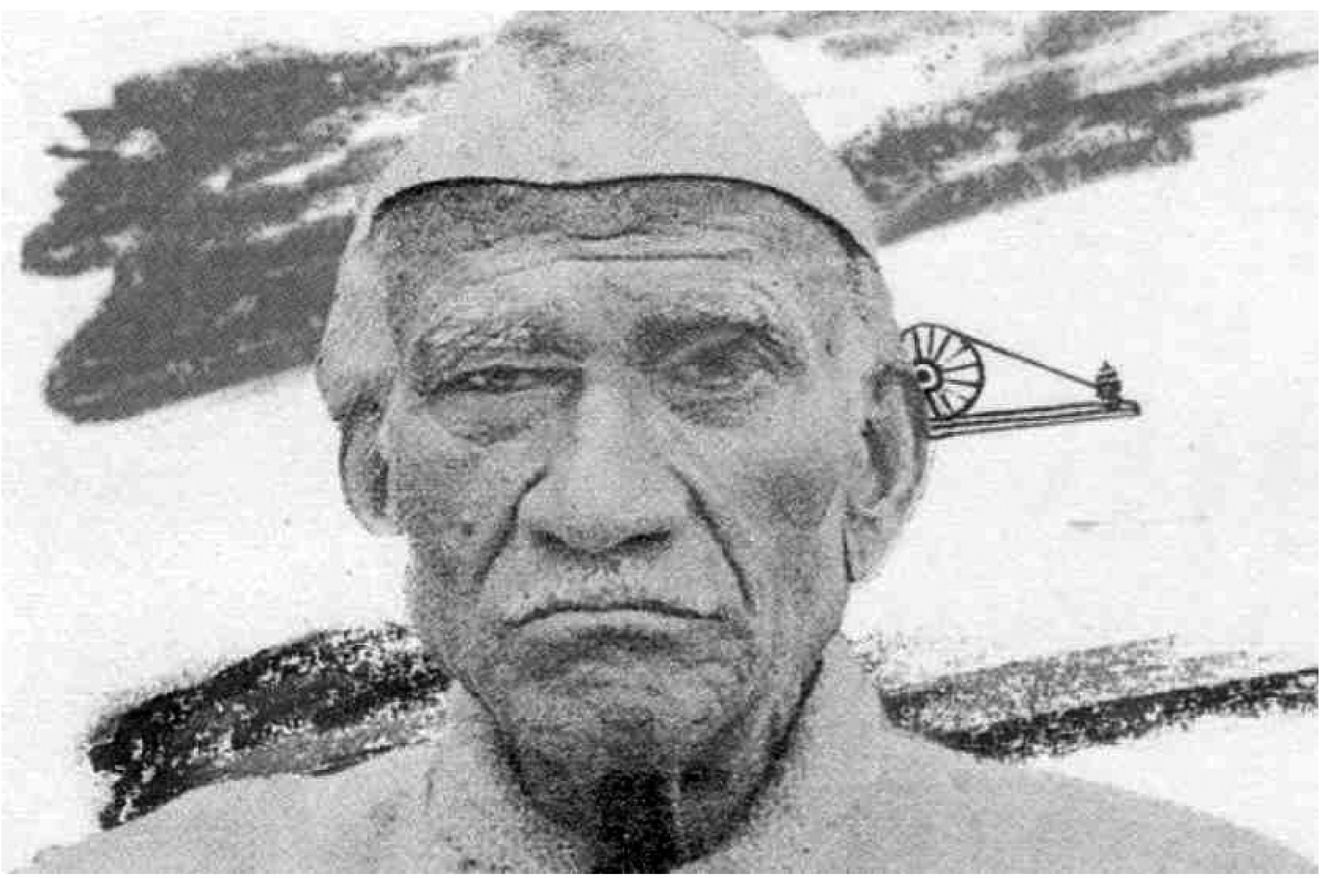

आज़ादी का सिपाही शायर पं. त्रिलोकनाथ आज़म

संजय स्वतंत्र

"...यह बात बहुत कम लोगों को मालूम है कि भगत सिंह की दाढ़ी-मूँछें साफ कर हैट-कोट, पैंट पहना कर नया रूप देने वाले पंडित त्रिलोक नाथ 'आज़म' ही थे। इस नए वेश में भगतसिंह कई दिनों तक पंडित जी के घर छिपे रहे। एक बार रामपुर नवाब का इलाज करने पर इनके पास घोड़ा-गाड़ी में रूपए भिजवाए गए, जिन्हें पंडित जी ने रास्ते में ही भगतसिंह और अन्य क्रांतिकारियों के गुप्त अड्डे पर भिजवा दिया।"

सम्पर्कः ए बी 33, शालीमार बाग, दिल्ली-110088, मो. 9868663111

5 मार्च, 1931 के बाद की घटना है। लॉर्ड इरविन से बातचीत के बाद गाँधी जी को जब निराशा हाथ लगी तो देश का कोना-कोना सुलग उठा और देखते ही देखते शिमला की ठंडी हवा भी गरम हो गई। लोगों में सुगबुगाहट हुई और एक भारी जुलूस हाथों में तिरंगे लिए माल रोड पर लगे कर्फ्यू को तोड़ने बढ़ चला। पुरुषों के पीछे महिलाएँ मधुर स्वर में 'झंडा ऊँचा रहे हमारा' गाते हुए चल रही थीं। लोअर बाजार से होते हुए सैकड़ों उत्साहित कदम जैसे माल रोड की तरफ बढ़े वैसे ही वहाँ खड़े अंग्रेज सिपाहियों ने पानी की तेज बौछार करके जुलूस को कुछ तितर-बितर करने की कोशिश की। भगदड़ तो मची लेकिन कुछ लोग आगे-आगे बढ़ते रहे और जब माल रोड़ तक पहुँचे तो अंग्रेज सैनिकों से संगीन लगी बंदूकें इन बहादुरों की छाती पर तान दी। आगे-आगे चलने वाले नंदलाल और बाबू जगजीवन राम रुक गए लेकिन इनका एक साथी सहसा गरज उठा—

'जी में आता है मैं भी जेलखाना देख लूँ
देख लूँ अंदाज तेरा जालिमाना देख लूँ
किस तरह गिरती है बिजली खिरमन-ए-उम्मीद पर
आ तेरे पिस्तौल का मैं भी निशाना देख लूँ।''

और तभी एक संगीन उस बहादुर की छाती में जा धँसी। चोट खाकर वह बहादुर गिर पड़ा। नन्दलाल और बाबू जगजीवन राम ने उसे सँभाला और ''पिस्तौल का निशाना देखने'' का जुनून लिए ये तीनों आगे बढ़ते रहे। सैनिक हाथ मलते देखते रह गए, क्योंकि इन्हें पता था कि इस बहादुर को यदि पकड़ लिया तो पूरे हिमाचल में आग लग जाएगी। इसीलिए वे कभी जेल में न भेजे गए।

वह बहादुर और कोई नहीं अपने जमाने में उर्दू के मशहूर शायर पं. त्रिलोकनाथ आज़म थे। जब उन्होंने मुस्कुराते हुए छाती पर लगी संगीन के निशाान दिखाए थे, मैं न केवल रोमांचित हुआ वरन् श्रद्धावनत भी हो उठा था।

पं. त्रिलोकनाथ आज़म का जन्म 14 फरवरी, 1897 को कोयटा (बलूचिस्तान) में हुआ। इनके पिता पं. गोपाल दास वहीं पर ही रेलवे में मुलाजिम थे। चार भाइयों में सबसे छोटे त्रिलोकनाथ

का बचपन अत्यंत संघर्षमय एवं उतार-चढ़ाव का रहा। वे जब दस रोज के ही थे तब इनकी माता का देहांत हो गया। ममतामयी भाभी इन्हें जलालाबाद (अमृतसर) ले आई। यहाँ आप तीन साल तक रहे। इसके बाद बड़े भाई के पास लाहौर चले आए और करीब चार साल यहाँ रहे।

त्रिलोक जब सात साल के हुए तो पिता ने इन्हें अपने पास बुला लियां यहीं पर इन्होंने संडेमान हाईस्कूल कोयटा से सातवीं कक्षा पास की। फिर यहाँ से दुबारा लाहौर बड़े भाई के पास चले आए। यहीं 1912 में उर्दू की परीक्षा 'मुंशी आलम' पास की। शायरी का चस्का अब तक लग चुका था। जब आपने कलम उठायी तो आपकी पहली पंक्ति इस प्रकार थी—

''हुक्का हुज़ूर मौला बेजान बोलता है
मसीहा के हाथ में।''

त्रिलोकनाथ अठारह साल के हुए लाहौर से जलालाबाद चले आए। 1914 में फतेहाबाद के मशहूर वैद्य उधोराम शर्मा से भेंट हुई जिनकी प्रेरणा से उन्हीं के मार्गदर्शन में चार साल तक आयुर्वेद के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ चरक संहिता, सुश्रुत, माधवनिदान आदि का गहरा अध्ययन किया। इन्हीं दिनों आपका विवाह हो गया। उधोराम से आयुर्वेद की शिक्षा मिलने के बाद 1918 में लाहौर के डी.ए.वी. कॉलेज में दाखिला लेने जा पहुँचे। लेकिन प्राचार्य ने इनको हिन्दी और संस्कृत में कमजोर देख दाखिला देने से मना कर दिया। तब आपने इस्लामी कॉलेज (लाहौर) में दाखिला लिया। यहाँ तीन साल तक यूनानी चिकित्सा का अध्ययन करके 'हकीम हाजिक' और 'हुम्दा हुल हुकमा' दो डिग्रियाँ हासिल कीं।

डिग्री मिलने के बाद लाहौर में त्रिलोकनाथ ने प्रैक्टिस शुरू कर दी। कुछ दिन गुरदासपुर (पंजाब) में भी रहे फिर शिमला चले आए। यहीं से इनकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैलने लगी। इलाज के लिए पटियाला नरेश भूपेन्द्र सिंह, गुजरात में इडर के राजा, जोधपुर के महाराजा, कपूरथला नरेश, नाभा नरेश खासतौर से आपको अपने पास बुलाते थे। आज़ादी के बाद आप डॉ. अम्बेडकर के वर्षों निजी चिकित्सक रहे। ''मंत्री बनने के बाद भी बाबू जगजीवन राम मुझे ही इलाज के लिए बुलाते थे।'' पं. त्रिलोकनाथ ने बताया था।

राजाओं और नवाबों के चिकित्सक होने के कारण आपको धन खूब मिलता था। सादा जीवन व्यतीत करने वाले पं. त्रिलोकनाथ अपने शायर दोस्त क्रांतिकारी बिस्मिल के द्वारा क्रांतिकारियों को गुप्त रूप से आर्थिक सहायता पहुँचाते। एनी बेसेन्ट के सहयोगी और महामना पं. मदनमोहन मालवीय के भी वे अत्यंत करीब रहे। पंडित जी ने अपने पुराने दिनों को याद करते हुए बताया, ''बटुकेश्वर दत्त, अम्बा प्रसाद, अजीत सिंह जैसे क्रांतिकारी अक्सर मेरे घर में छिपते थे। जलियावाला बाग कांड के बाद डॉ. किचलू और डॉक्टर सत्यपाल को मैंने ही अपने घर छिपाया।'' यह बात बहुत कम लोगों को मालूम है कि भगत सिंह की दाढ़ी-मूँछें साफ कर हैट-कोट पैंट पहना कर नया रूप देने वाले पं. त्रिलोकनाथ आज़म ही थे। इस नए वेश में भगत सिंह कई दिनों तक पंडित जी के घर छिपे रहे। एक बार रामपुर नवाब का इलाज करने पर इनके पास घोड़ा-गाड़ी में रुपये भिजवाये गए, जिन्हें पंडित जी ने रास्ते में ही क्रांतिकारियों के गुप्त अड्डे पर भिजवा दिया।

1931 के दौरान पंडित जी शिमला में जिला कांग्रेस कमेटी के सचिव थे। मार्च में लॉर्ड इरविन के बुलावे पर गाँधी जी तब शिमला पहुँचे तब अन्य कांग्रेसी लीडर पं. मोतीलाल नेहरू, मदनमोहन मालवीय, सेफ्फुद्दीन किचलू रायबहादुर मोहनलाल की कोठी पर ठहरे हुए थे। मुशोबरा से 5 मील दूर लार्ड वायसराय के सरकारी बंगले तक गाँधी जी वं अन्य नेताओं को पहुँचाने का जिम्मा पं. त्रिलोकनाथ को सौंपा गया। पंडित जी ने बताया, ''लार्ड साहब के बंगले की तरफ जाने वाले माल रोड पर गाड़ियाँ चलाने की पाबंदी थी। इसीलिए वे आठ रिक्शा ले आए। जिन्हें बड़े जतन से तिरंगे झंडे से सजाया गया। चालकों को खद्दर की वर्दियां पहनाई गईं।

रिक्शा लेकर जब पंडित जी गाँधी के पास पहुँचे और रिक्शा पर बैठने को कहा तो वे बोले, ''त्रिलोकनाथ, यह क्या आडम्बर है?'' ''क्यों क्या हुआ बापू?'' पंडित जी घबराए। ''क्या इन बच्चों के कंधे पर चढ़ कर जाऊँगा, जिनके लिए मैं लड़ रहा हूँ'' और यह कह कर महात्मा जी अपनी आदत के मुताबिक तेजी से पैदल चल पड़े।

पं. त्रिलोकनाथ आज़म न केवल खुद शायरी करते थे बल्कि मुशायरों का आयोजन भी बराबर कराते थे। शिमला में प्राय: देश के बड़े-बड़े शायर और कवियों का जमघट इसी वजह से बना रहा था। मुशायरा प्राय: सर सैय्यद रजाली (तुर्कीस्तान के तत्कालीन राजदूत) की अध्यक्षता में हुआ करता था। आज़म ने बताया कि जोश मलीहाबादी, हफीज जालंधरी, मेलाराम वफा, साहिर कपूरथलवी, साहिर लुधियानवी, हरिचंद अख्तर और अन्य कई शायर इन मुशायरों में मौजूद रहते।

पं. त्रिलोकनाथ आज़म का तमाम लेखन उर्दू में है इसमें कोई दो राय नहीं कि इन्होंने अपनी कलम से उर्दू साहित्य को समृद्ध किया है। उर्दू को उनकी सबसे बड़ी देन श्रीमद्भागवतगीता का उर्दू में किया गया पद्यानुवाद है। यह अनुवाद उन्होंने सन् 1945 में किया। उर्दू विद्वान पं. त्रिलोकनाथ आज़म को गीता का सर्वप्रथम उर्दू का पद्यानुवादक होने का श्रेय जाता है। आज़म के अनुसार इस अनुवाद के तब तक आठ संस्करण बिक चुके थे। पाकिस्तान के हिन्दी विद्वान अहमद हमेशा बताते हैं कि पाकिस्तान में इस अनुवाद को काफी अहमियत है। अगला संस्करण निकालने के लिए पाकिस्तान के कुछ प्रकाशकों ने आज़म से पेशकश भी की थी।

पं. त्रिलोकनाथ आज़म ने दिल्ली से प्रकाशित 'दस्तगीर' उर्दू मासिक पत्रिका का सम्पादन भी किया। यह पत्रिका सन् 1940 से सन् 1952 तक निरन्तर छपती रही। 'दस्तगीर' में हिन्दुस्तान के मशहूर शायर छपा करते थे। पत्रिका के प्रकाशन की व्यवस्था का जिम्मा आज़म के सुयोग्य सुपुत्र हरिकृष्ण नवल पर था। उनके असमय देहावसान के कारण 'दस्तगीर' का प्रकाशन बंद कर देना पड़ा।

आज़म ने उर्दू में चार नाटक 'समाज की भेंट', 'सतीश्यामा', 'इन्द्रबाला' और 'हैदराबाद' लिखे। 1949-50 के दौरान लिखे गये 'हैदराबाद' को विशेष ख्याति मिली। इस ऐतिहासिक नाटक को शिमला के मशहूर गेटी थियेटर में 'इंडियन एमोच्योर ड्रामाटिक क्लब' द्वारा कई बार खेला गया। बाद में यह नाटक दिल्ली के संगम थियेटर में भी खेला गया। चिकित्सक के पेशे से जुड़े रहने के कारण आयुर्वेद पर उर्दू में दो पुस्तकें 'ख्वाश अल अदवइया' और 'मुकवात-ए-आज़म' भी लिखी। पुस्तकें आयुर्वेदिक नुस्खे, रस-रसायन और यूनानी चिकित्सा से संबंधित हैं।

आज़म की शायरी के अनेक रंग है जिन्हें 'कुलियात-ए-आज़म', 'क्लास-ए-आज़म', 'गीता-ए-आज़म' और 'मालूमत-ए-आज़म' उनकी इन चार पुस्तकों में देखा जा सकता है। खुदा से आपको शिकायत है—

''कठिन काम इंसान का जिस वक्त पाया
बना ख़ुद ख़ुदा मुझको इंसा बनाया।''

इनकी हर शायरी में कई जगह जिन्दगी का फलसफा सहज ही देखा जा सकता है—

''मुझे देखिए मैं क्या बन गया हूँ
ख़ुदी को मिटा कर ख़ुदा बन गया हूँ।''

कहीं-कहीं आशिकमिजाज़ी के रंग हैं तो कहीं सच्चा इंसान न बन पाने का भी गम है—

''हिन्दू न बन सका मुसलमां न बन सका
गीता न पढ़ी हाफ़्ज़े क़ुरान न बन सका।''

आज़ादी से पहले और बाद के दोनों दौरों को बड़ी गहराई से देख चुके वयोवृद्ध स्वतंत्रता सेनानी और शायद पं. त्रिलोकनाथ आज़म बहुत कुछ करने की तमन्ना रखते थे, लेकिन बुढ़ापे के आगे विवश हो गए। फिर भी बड़े प्रेम से हर किसी से बोलते थे और मुस्कुराते हुए अपनी ये पंक्तियाँ गुनगुनाते थे—

''छड़ी लिए चलता हूँ
जवानी खो गई है
उसे ढूँढ़ता हूँ''

13 सितम्बर, 1989 को 93 वर्ष की आयु में दिल्ली में उनका देहांत हुआ।

◆◆◆

विभाजन की करुण कथा

कौशलेंद्र प्रपन्न

...साहित्य और समाज के साथ मानवीय विकास की यात्रा के समझना बेहद दिलचस्प होता है। यह तथ्य पूर्व के साहित्यों में पढ़ने को मिली है। साहित्य यदि निरपेक्षभाव से लिखा जाए तो उसमें घटने वाली घटनाएँ पाठक समाज को नई रोशनी प्रदान करती है। विभाजन को हमने जीया। एक बड़े वर्ग ने इसे महसूसा और क्षति से भी गुजरे। अब सवाल यह उठता है कि क्या खोए हुए अतीत पर रुदन ही करें या फिर साहित्य में जज़्ब उत्साह और बहुधर्मी और बहुसांस्कृतिक थाती को अपने में स्थान दें। यह हमारी आने वाली पीढ़ी पर काफी हद तक निर्भर करती है।...

ज़मीनी विभाजन और संवेदना का दो फाँक हो जाना दो अलग भाव भूमि पर अपनी छाप छोड़ती हैं। मानवीय विकास यात्रा के इतिहास में ऐसी ही एक घटना को अंजाम दिया गया। इसे अब सत्तर बरस हो गए। लेकिन आज भी विभाजित, विखंडित मानवीय पीड़ा की टीस हमें बेचैन करती है। सन् 1947 का मंज़र ही ऐसा है जिसे जितनी बार, जितने कोणों से देखने समझने की कोशिश करें हज़ारों, लाखों अश्रुपूरित आँख़ें नज़र आती हैं। वह सजल नयन इस पार के हों या उस पार के भौगोलिक भूखंड बेशक अलग कर दिए गए लेकिन संवेदनाएँ वहीं की वहीं हैं। संवेदनाओं को आज तक सीने में दबाए काफी लोग हैं जो जी रहे हैं। उन्हें अभी भी उम्मीद है कि एक दिन ऐसा आएगा जब दोनों ही देशों के बीच खटास कम होंगे। दोनों ही देशों के मध्य रिश्तों की स्नेहिल बयार बहेगी। लेकिन यह कब और किन मूल्यों पर होगा यह अभी कहना व अनुमान लगाना ज़रा कठिन है। क्योंकि जैसे ही मानवीय रिश्तों की रेलगाड़ी पटरी पर आती नजर आती है वैसे ही डिरेल करने वाली ताकतें अपनी तमाम शक्ति इसमें झोंकने लगती हैं। दोनों ही देशों के रणनीतिकार, समाज वैज्ञानिक, शिक्षाविद् आदि मानते हैं कि यह तक़सीम विश्व के सबसे विनाशकारी और विभाजन की घटना रही है। इसमें जान–माल की क्षति तो हुई ही साथ ही दोनों देशों के गंगाजमुनी संस्कृति को ख़ासा हानि पहुँची। यदि बँटवारे के इस दंश की टीम का अंदाज़ा लगाना हो तो दोनों ही देशों के कलमकारों, लेंसकारों, कलाकारों की कृतियों में बहुत मुखरता से दिखाई और सुनाई पड़ती है। ये साहित्यकार हों, संगीतकार हों या फिर सृजनात्मकता के जिस भी विधा से जुड़े लोग हों, उन्होंने अपनी आहत संवेदना को स्वर देने में पीछे नहीं रहे। यदि हम साहित्य, कला, सिनेमा के आँगन में छायी छवियों की विवेचना करें तो एकबारगी 1947 से दो तीन साल पूर्व और दो तीन साल बाद की घटनाएँ ताजा हो जाती हैं। यही कारण है कि जब हम 'सिक्का बदल गया', 'पेशावर ट्रेन', 'खोल दो', 'टोबा टेक सिंह', 'झूठा सच', 'काली सलवार', 'दो हाथ', 'जिन्ने लाहौर नी वेख्या ते जन्मीया नई' आदि साहित्यिक रचनाओं में कलमकारों ने तब की घटनाओं को न केवल कलमबद्ध किया, बल्कि उसी छटपटाहटों को शिद्दत से महसूस भी है। वह एक प्रकारांतर से भोगा हुआ यथार्थ है।

सम्पर्कः डी–11/25, सेकेंड फ्लोर, सेक्टर–8, रोहिणी, दिल्ली–110085, मो. 9891807914

साहित्य को इसीलिए समाज और कालखंड का जीता जागता सच कहा गया है, क्योंकि इस दर्पण में वर्तमान समय की बेचैनीयत, बजबजाहटों के साथ ही तत्कालीन समाजो-सांस्कृतिक हलचलों को भी दर्ज किया जाता रहा है। यह अलग विमर्श का मसला हो सकता है कि कई बार साहित्य भी पूर्वग्रह के राह पर चला है। दूसरे शब्दों में कहें तो यदि कलमकारों ने अपनी निजी मान्यताओं, आस्थाओं, पूर्वग्रहों आदि को नियन्त्रित नहीं किया तो उसकी छाप उनके साहित्य में स्पष्टत: दिखाई देती है। और ऐसे लेखन ने साहित्य की मूल आत्म, संवेदना को थोड़ा गंदला ही किया है लेकिन जिन रचनाकारों ने अपनी वैश्विक जवाबदेही को महसूसा है और जिसने तटस्थता बरती है उनकी रचनाओं को आज भी बड़े सम्मान के साथ साहित्य में स्थान मिला है। ''आज़ादी की छाँव'' एनबीटी से प्रकाशित उपन्यास में मोहनीश बेग़म ने बड़ी शिद्दत से आज़ादी से दो साल पूर्व से लेकर 1948 तक की पूरी घटनाओं को जिस तरह से बयां किया है उसे पढ़कर अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि वह दौर कैसा रहा होगा। दंगे में लेखिका अपने प्रशासनिक अधिकारी पति जो नेहरू के करीबी थे, उन्हें हमेशा के लिए खो देती है। यह तो लेखिका की निजी क्षति थी। लेकिन उससे बढ़कर जो देश की स्थिति थी उसे समझाना हो तो इस उपन्यास को पढ़ना चाहिए। यह तो एक बानगी हुई। इसके साथ ही जिसने भी खोल दो, दो हाथ, सिक्का बदल गया या फिर 'जिन्ने लाहौर नहीं वेख्या...' देखी व पढ़ी हो तो वे महसूस कर सकते हैं कि साहित्य ने किस प्रकार उस कालखंड को कलमबद्ध किया। एक लेखक की हैसियत तो इस पूरी प्रक्रिया में शामिल थी ही साथ ही एक जिम्मेदार संवेदनशील नागरिक भी जिंदा था, तभी इस प्रकार की कहानियां, उपन्यास, रिपोर्ताज, यात्रा संस्मरण आदि की सर्जना हो पाई। हम जहाँ मोहन राकेश, कृष्णा सोबती, इस्मत चुगताई, असगर वजाहत, मंटो, कृश्न चंदर, कुलदीप नैयर, कमलेश्वर, नरेंद्र मोहन आदि की रचनाओं का अनुशीलन करते हैं तो स्पष्ट तौर पर तक़्सीम की रूखी हवा हमें छू कर निकल जाती है। कमलेश्वर जी की 'कितने पाकिस्तान' एक शोधपरक उपन्यास के हिस्से आता है, जहाँ इतिहास के साक्ष्यों के बरक्स पूरी घटना की परतों की पड़ताल की जाती है। वहीं हाल ही में कृष्णा सोबती जी की लिखी अधुनातन उपन्यास 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान' को पढ़ना दिलचस्प होगा। यह महज उपन्यास भर नहीं है, बल्कि लेखिका अपनी मातृभूमि पाकिस्तान के गुजरात को जीती है। साथ ही विभाजन के बाद हिन्दुस्तानी गुजरात के अनुभवों को पन्नों पर उकेरती है। ये वही लेखिका हैं जिन्होंने 'सिक्का बदल गया', 'मित्रो मरजानी' आदि भी लिखा। साहित्यकार, इतिहासकार, फिल्म निर्माता भी कई बार अपनी रचनात्मक और लेखकीय प्रतिबद्धता से न्याय करने में कहीं चूक जाते हैं। ऐसी चूकों को इतिहास माफ नहीं करता। साहित्य व इतिहास लेखन में तटस्थता की माँग अहम होती है। मसलन यदि हम दोनों देशों में आज़ादी के एक-दो साल पूर्व व पश्चात् जन्मे बच्चों की बात करें तो उन्हें किस प्रकार की छवियों से रूबरू कराया गया व कराया है यह जानना भी बेहद मानीखेज है। प्रसिद्ध शिक्षाविद कथाकार प्रो. कृष्ण कुमार ने कुछ साल पहले पाकिस्तान में स्कूली स्तर पर सामाजिक और इतिहास के पाठ्यक्रमों का अध्ययन किया था जिसमें उन्होंने इतिहासकारों और पाठ्यपुस्तक निर्माताओं की वैचारिक रुझानों को रेखांकित किया था। वहीं गाँधी जी, भगत सिंह, चंद्रशेखर आज़ाद आदि को किस दृष्टि से इतिहास के स्कूलों में पाठ्यपुस्तकों में पढ़ाया जाता है इसकी विहंगम झांकी हमें 'प्रिजुडिस एंड प्राइड' किताब से मिलती है। शैक्षिक पहलकदमियों के चरित्र को समझना हो तो समय-समय पर पाठ्यपुस्तकों में होने वाले फेरबदल को देख कर समझा जा सकता है। जहाँ एक ओर शिक्षा को एक खास मान्यताओं एवं पूर्वग्रहों को पोषित करने के लिए इस्तेमाल किया जाता हैं वही फिल्मों के माध्यम से भी कई राजनीतिक, सामाजिक हित साधने की कोशिशें होती रही हैं। बॉर्डर, एलओसी, कार्गिल, गदर, ट्रेन टू पाकिस्तान, गाँधी, क्या दिल्ली क्या लाहौर, पिंज़र, जनरल बख़्त ख़ान, अर्थ, वीर-ज़ारा, फिल्स्तिान, बजरंगी भाईजान, सरबजीत आदि फिल्मों में साफ तौर पर दिखाई गई वह पूर्वग्रहपूर्ण बर्ताव वाली बातं समझ में आती हैं। इन फिल्मों के साथ निर्देशक, पटकथा लेखक आदि का क्या वैचारिक झुकाव रहा है वह हमें समझने में कोई परहेज नहीं करना होगा लेकिन एक सामान्य दर्शक केवल मौज मस्ती, हँसी ठिठोली करके बाहर जा जाता है। वहीं थोड़ा सा सजग दर्शक उसकी बारीक तहों की बुनावट को पहचान लेता है। यहाँ मसला यह भी अहम हो जाता है कि क्या फिल्म के कंटेंट के साथ जो बरताव हुआ वह समुचित हो पाया या नहीं। दूसरे शब्दों में कहें तो क्या कटेंट के साथ न्याय हो पाया।

साहित्य की दुनिया ने विभाजन को किस प्रकार दस्तावेजित किया इसे जानना भी बेहद रोचक और दरपेश है। साहित्य के बारे में एक और स्थापित मान्यता यह है कि साहित्य तटस्थ होकर अपने समकालीन हकीकतों को दर्ज किया करता है। इस दस्तावेजीकरण की प्रक्रिया में किस प्रकार की चुनौतियों और सावधानियों का ख़्याल रखना उचित होता है इसे भी जानना और समझना जरूरी है। साहित्य की विभिन्न प्रचलित विधाओं

में विभाजन की छटाएँ देखी-पढ़ी जा सकती हैं। साहित्य की विभिन्न विधाओं में भी कहानी, उपन्यास ज्यादा लिखे गए। रिपोर्ताज़, यात्रा वृतान्त, डायरी, व्यंग्य आदि विधाओं में थोड़े कम काम हुए। इसके पीछे के कारणों की पड़ताल करें तो संभव है कहानी एवं उपन्यास ऐसी गली थी जिससे गुजरना दूसरी विधाओं की तुलना में ज़रा सहज प्रतीत होता है, या यूँ कहें कि कहानियां हमारी ज़िंदग़ी के बेहद करीब रही हैं। इस दृष्टि से देखें तो मुज़फ्फर अल जौकी की 'विभाजन की कहानियां' बेहद मौज़ूँ है। इस कहानी संग्रह में उन कहानियों को जगह दी गई है जो कहीं न कहीं किसी न किसी स्तर पर विभाजन की जमीन को छूती हैं।

यहाँ 'मलबे का मालिक' मोहन राकेश लिखित कहानी की चर्चा प्रांसगिक सी लग रही है क्योंकि यह कहानी विभाजन के आसपास की मानवीय संवेदना को उकेरने में सफल रही है। एक संवाद देखिए, 'गिना मियां ने विभाजन के बाद पाकिस्तान को अपनी भूमि कबूल किया। लेकिन सात साल बाद भारत के अमृतसर आने का मौका मिला तो अपने घर, बच्चे, बहू को तलाशते हैं। वहीं घर जहाँ उनका बेटा, पोता पोती रहा करते थे, गलियों में गुज़रते हुए अपने घर की निशां ढूँढते हैं। इस दरमियां एक बच्ची को देखकर दादा के एहसास से भर जाते हैं। उसे प्यार करना चाहते हैं। जेब से पैसे निकाल कर देना चाहते हैं। तभी उस बच्ची की माँ कहती है, ''पुच कर मेरा वीर! रोएगा तो तुझे वह मुसलमान पकड़ कर ले जाएगा, मैं बारी जाऊँ।'' इस अविश्वास से जैसे ही गनी साहब का साबका पड़ता है उनकी जमीन खिसकती नजर आती है। एक और संवाद में उनके अंदर की हलचलों का पता मालूम होता है। जब गली के संवाद में उनके अंदर की हलचलों का पता मालूम होता है। जब गली के एक लड़के ने कहा, ''कहिए मियां जी, यहाँ कैसे खड़े हैं''? बातचीत में रिश्तों की डोर खुलती है और मनोरी पहचान लेता है। कहता है, ''आप तो काफी पहले पाकिस्तान चले गए थे।'' इसका जवाब गनी मियां देते हैं, ''हाँ, बेटे, यह मेरी बदबख्ती थी कि पहले अकेला निकल कर चला गया। यहाँ रहता तो उसके साथ मैं भी...'' दरअसल यह कहानी अपने पुराने घर के मलबे से जुड़ी है। क्योंकि यहीं इसी घर में उनके बेटे, बहू पोते, पोती को सुपुर्द-ए-खाक किया गया था और न जाने किसने इस घर में आग लगा दी थी। वहीं दूसरी ओर एक और कहानी भीष्म साहनी की लिखी 'अमृतसर आ गया' भी पढ़ने योग्य है। यूँ तो कहानियाँ और भी हैं। उपन्यास भी और हैं जो विभाजन के दर्द को पकड़ती हैं।

कथा-कहानियों से होता क्या है? बस इन झरोखों से हम अपने अतीत को झाँक पाते हैं। अतीत में क्या कुछ हुआ। क्यों हुआ? उससे हमारे जीवन पर क्या असर पड़े आदि को समझने का एक अवसर मिल जाता है। लेकिन यहाँ एक दिक्कत आती है कि हम अतीत में चले जाते हैं, लेकिन डर यह होता है कि कहीं हम अतीत में ठहर न जाएँ। कहीं हम उसके दबाव में न आ जाएं। क्योंकि यदि ऐसा होता है तो उससे हमारा, हमारे समाज का वर्तमान प्रभावित होता है। कथा-कहानियां इतिहास के एत्तर हमें मानवीय और संवेदनात्मक समझ देती हैं। यह काम साहित्य ही कर सकता है। और इस दृष्टि से भारतीय साहित्य अटा पड़ा है। वह चाहे उर्दू साहित्य हो, हिन्दी साहित्य हो या फिर अन्य भारतीय भाषाओं का साहित्य, हर जगह विभाजन के छींटे मिलेंगे।

देश और भूगोल का विभाजन मानवीय संवेदना के विभाजन से थोड़ा अलग है। जिन पंक्तियों से यह पूरा विमर्श आरम्भ हुआ था उन्हीं बिंदुओं पर लौटते हुए हम समझने की कोशिश करें कि क्या साहित्य और मनुष्य मात्र दस्तावेज़ का हिस्सा भर होता है या उससे आगे भी यह मसला निकलता है। निश्चित ही मनुष्य की प्रकृति उसके समाज और परिवेश में काफी हद तक गढ़ी और रची जाती है जिसे स्वीकारने में किसी को कोई गुरेज़ नहीं होना चाहिए। लेकिन हम अपने स्वभाव और वर्तमान को अपने तई निर्माण कर सकते हैं। माना कि विभाजन हुआ। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है जिसे नकारा नहीं जा सकता। लेकिन अब जब हमारे पास खिलने, विकसने का अवसर है तो कोई वजह नहीं कि हम अतीत में अटके रहें। हमें आगे निकलना होगा। इसकी झाँकी, साक्ष्य हमारे साहित्य हों। साहित्य हमें आगे की राह दिखाए। दोनों ही देशों में साहित्य के माध्यम से भी मानवीय मूल्यों को संरक्षित और प्रवहमान रखा जा सकता है। इसका प्रयास नागर समाज के कंधों पर है।

साहित्य और समाज के साथ मानवीय विकास की यात्रा को समझना बेहद दिलचस्प होता है। यह तथ्य पूर्व के साहित्यों में पढ़ने को मिला है। साहित्य यदि निरपेक्षभाव से लिखा जाए तो उसमें घटने वाली घटनाएँ पाठक समाज को नई रोशनी प्रदान करती हैं। विभाजन को हमने जीया। एक बड़े वर्ग ने इसे महसूसा और क्षति से भी गुजरे। अब सवाल यह उठता है कि क्या खोए हुए अतीत पर रुदन ही करें या फिर साहित्य में जज़्ब उत्साह और बहुधर्मी और बहुसांस्कृतिक थाती को अपने में स्थान दें। यह हमारी आने वाली पीढ़ी पर काफी हद तक निर्भर करता है।

◆◆◆

योग और यौगिक परम्परा

शशिकांत 'सदैव'

...इस दिवस की नींव मोदी जी ने 27 सितम्बर, 2015 को, संयुक्त राष्ट्र संघ में दिये अपने पहले संबोधन में प्रस्तावित की थी। इस प्रस्ताव के कुछ दिनों बाद भारत सरकार से पूछा गया कि किस दिन अंतरराष्ट्रीय योग दिवस घोषित किया जा सकता है। इस बात का निर्णय स्वामी रामदेव जी के साथ पतंजलि योग पीठ में लिया गया। स्वामी रामदेव ने इस दिन के लिए 21 जून का दिन यह कहकर सुझाया कि ''यह दिन साल का सबसे लंबा दिन होता है और योग भी मनुष्य को दीर्घ जीवन प्रदान करता है।'' रामदेव के सुझाए इस दिन को प्रधानमंत्री और भारत सरकार ने स्वीकृत करते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ को भेजा, जिसे मंजूर कर लिया गया और 21 जून को अंतरराष्ट्रीय योग दिवस घोषित किया गया।...

योग हमारी भारतीय संस्कृति की प्राचीनतम पहचान ही नहीं एक सुखद, संतुलित और स्वास्थ्य जीवन जीने की एक मात्र कुंजी भी है। युगों पुराना यह योग भारत के स्वर्णकाल का आधार रहा है। अधिकतर लोग योग को धर्म-अध्यात्म एवं बुजुर्गों द्वारा किए जाने वाले शारीरिक आसनों से जोड़कर ही देखते हैं; तो कोई सोचता है कि योग स्वयं को निरोगी रखने का अति प्राचीन 'आउट डेटिड' तरीका है। वास्तव में योग है क्या, यह कैसे काम करता है तथ इसका उपयोग कितना कारगर है? आइये जानें।

यही वह विज्ञान है जिसके बलबूते पर न केवल भारत कभी सोने की चिड़िया कहलाता था बल्कि विश्वगुरु बनकर भी उभरा था। भगवान शंकर के बाद वैदिक ऋषि-मुनियों से ही योग का प्रारंभ माना जाता है। बाद में कृष्ण, बुद्ध, महावीर आदि ने भी इसे अपनी तरह से विस्तार प्रदान किया, जिसे आगे चलकर पतंजलि ने सुव्यवस्थित कर लिखित रूप दिया और योग सूत्र की रचना की, जो कि मनुष्य के लिए किसी वरदान से कम नहीं है।

यौगिक परंपरा के मुताबिक आज से 15-20 हज़ार वर्ष पूर्व हिमालय क्षेत्र में यौगिक प्रक्रिया की शुरुआत हुई थी। श्रुति परंपरा के अनुसार भगवान शिव योग विद्या के प्रथम आदि गुरु, योगी या आदि योगी माने जाते हैं।

शिव पुराण में वर्णित है कि उन्होंने अपने ज्ञान के विस्तार के लिए 7 ऋषियों को चुना और उनको योग के अलग-अलग पहलुओं का ज्ञान दिया, जो योग के 7 बुनियादी पहलू बन गए। वक्त के साथ इन 7 रूपों से सैकड़ों शाखाएँ निकल आई। बाद में योग में आई जटिलता को देखकर पतंजलि ने 300 ईसा पूर्व मात्र 200 सूत्रों में पूरे योग शास्त्र को समेट दिया।

महर्षि पतंजलि को योग दर्शन का प्रवर्तक भी कहा जाता है। योग दर्शन का मूल ग्रंथ महर्षि पतंजलि द्वारा रचित 'पातंजल योग सूत्र' या 'योग सूत्र' है। अष्टांग योग दो शब्दों की संधि से बना है— अष्टा + अंग अर्थात् ऐसा योग मार्ग जिसमें 8 अंग व चरण हों।

सम्पर्क: 9/60, गली नं. 12, तुगलकाबाद एक्स., कालकाजी, नई दिल्ली-110019, मो. 9810388549

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ये योग के 8 चरण हैं, देखा जाए तो यह योग का सम्पूर्ण विज्ञान एक ही वाक्य में है। इन 8 अंगों का क्रमबद्ध व सूत्रबद्ध पालन ही योग का विज्ञान कहलाता है।

योग शब्द सुनते ही अधिकतर लोगों के मन-मस्तिष्क में शारीरिक आसन, प्राणायाम इत्यादि आ जाते हैं। लोग सोचते हैं योग यानी योगासन, योग का ही एक हिस्सा है, पर यह योग को सही मायने में परिभाषित नहीं करता। योग क्या है, जब भी इस बात का जिक्र उठता है तो मन-मस्तिष्क के आगे आसन लगाए किसी वृद्ध व्यक्ति या साधु-बाबा की तस्वीर उभर आती है और हम मान बैठते हैं कि योग न केवल शरीर की विभिन्न आड़ी-तिरछी मुद्राओं का नाम है बल्कि यह धार्मिक एवं बुजुर्ग लोगों के ही करने की चीज है। नहीं! योग का संबंध किसी विशेष आयु, धर्म एवं शरीर के आसन से ही नहीं है न ही यह कोई धार्मिक कृत्य या श्रद्धा का विषय है। यह पूर्ण रूप से विज्ञान है जो हमें न केवल बाहर की प्रकृति एवं उसके रहस्य से जोड़ता है बल्कि भीतर छिपी अज्ञात ऊर्जा से भी एक करता है।

योग का अर्थ, शरीर द्वारा किए जाने वाले आसन ही नहीं और भी बहुत कुछ है। योग का अर्थ है जोड़, संधि, एकात्मता। योग संस्कृत भाषा के शब्द 'युज' से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ 'जुड़ना'। योग हमारे शरीर, मन और आत्मा के बीच संयम व संतुलन स्थापित करता है तथा हमारे जीवन को सरल और सकारात्मक बनाता है। क्योंकि भीतर-बाहर के इस जोड़ में शारीरिक आसनों की अहम भूमिका होती है इसीलिए हमें लगता है कि योग का अर्थ व उसकी सीमा सिर्फ योग आसन तक ही है।

आसन दो प्रकार के हैं। प्रथम श्रेणी के आसनों को ध्यानासन और द्वितीय श्रेणी के आसनों को स्वास्थ्यासन कहते हैं। जिस आसन में बैठ कर मन को स्थिर करने का प्रयत्न किया जाता है, उसको ध्यानासन कहते हैं और जो आसन व्यायाम निमित्त किये जाते हैं, उनको स्वास्थ्यासन कहते हैं।

पतंजलि योग सूत्र के अनुसार—''*योगश्चित वृत्तिनिरोध:*'' अर्थात् चित्तवृत्तियों को रोकना ही योग है। चित्त में उठने वाली विचार तरंगों को वृत्ति (भँवर) कहते हैं। इन वृत्तियों को रोकना योग कहलाता है। वैसे 'योग' का शाब्दिक अर्थ है—जोड़। वास्तव में यह योग भी जोड़ना ही है पर किसे जोड़ना है? यह प्रश्न उठने स्वाभाविक हैं।

योग का परिणाम होता है—'आत्मा' और 'परमात्मा' का सम्बन्ध हो जाना। अत: यह आत्मा का परमात्मा से योग या जुड़ना है।

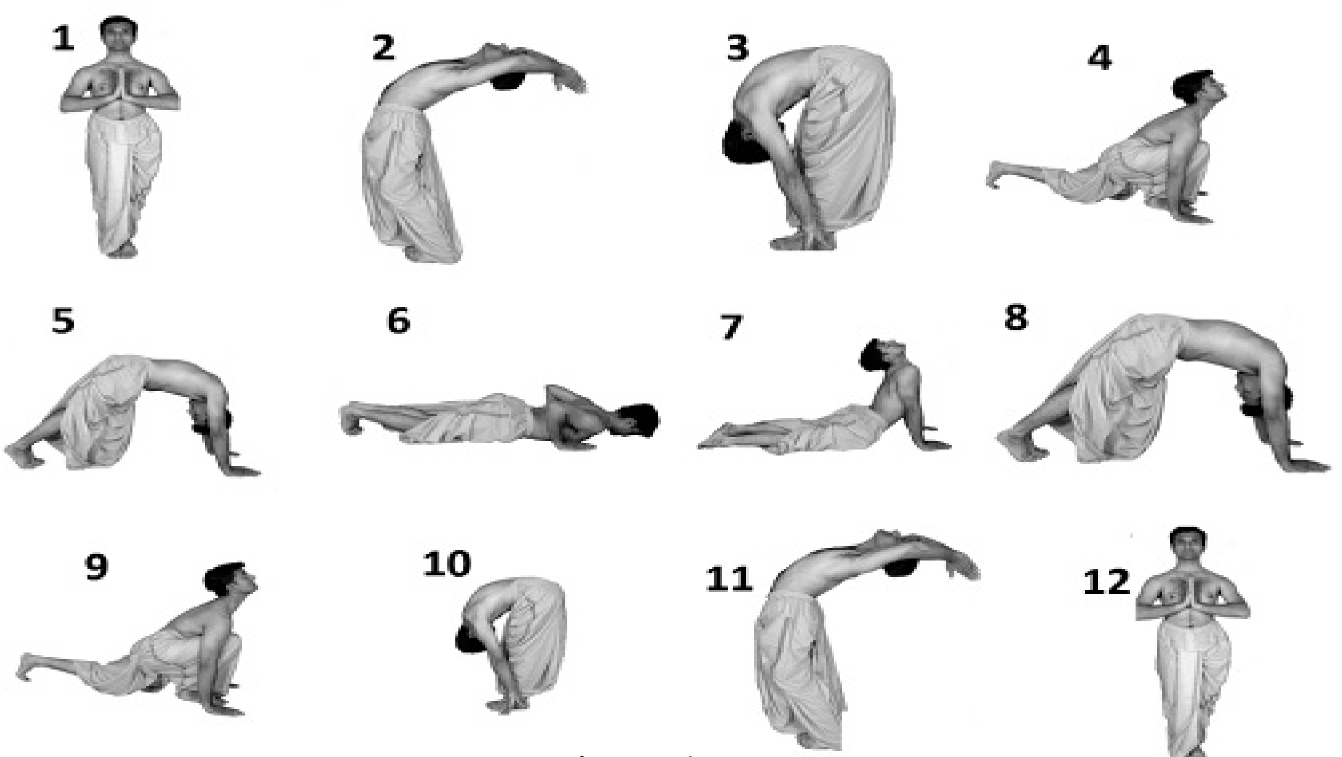

सूर्य नमस्कार के 12 चरण

योग श्रद्धा या धर्म का विषय नहीं विज्ञान का विषय है। इसे हिन्दू करें या मुसलमान, अमीर करें या गरीब यह सबको लाभ देता है। इसको करने के लिए व लाभ पाने के लिए किसी श्रद्धा की या कर्मकाण्ड की आवश्यकता नहीं, बस करना भर जरूरी है। यह ऐसे ही जैसे बुखार में 'क्रोसिन'। क्या क्रोसिन तभी असर दिखाएगी जब हमारा उसमें अटूट विश्वास होगा? नहीं आप बुखार में इसे बिना श्रद्धा के खाएं या बिना इच्छा के, भले ही आप इसे नफरत भरे मन से ही क्यों न खाएँ, यह काम फिर भी करेगी। इस प्रकार योग भी वही विज्ञान है जिसे किया जाए तो लाभ होगा ही, भले ही आपकी इसमें श्रद्धा हो न हो। वो बात अलग है कि किसी काम को यदि पूरे मन व स्वीकार भाव के साथ किया जाए तो वह शीघ्र और दुगुना फल देता है।

बहरहाल यह कहना काफी है कि योग सबके लिए है और सबसे सही है।

योग का सबसे बड़ा फायदा यह है कि यदि इसे ठीक ढंग से किया जाए तो इससे कोई नुकसान नहीं होता, यह पूर्ण रूप से प्राकृतिक है। इसे वैज्ञानिक चिकित्सकों ने लाखों लोगों के रोगों पर शोध करके पूर्ण रूप से स्वीकारा है तथा पाया है कि यह असाध्य एवं जटिल रोगों में भी कारगर है। सच तो यह है कि योग केवल रोगों को दूर करने की ही विधि या प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह शरीर के समस्त रोगों को दूर कर मस्तिष्क को तनाव मुक्त करता है तथा आत्मा का ईश्वर से संबंध स्थापित करता है, जिसके जरिए शरीर और मन दिव्य ऊर्जा के घेरे में आता है और हमारा पूर्ण रूपांतरण होने लग जाता है।

यहाँ एक और बात समझ लेना जरूरी है कि शरीर और मन कहने की दो अलग-अलग चीजें हैं। सच तो यह है कि यह दो होते हुए भी एक-दूसरे से जुड़े हैं, दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। यदि हम गहराई से चिंतन करें तो हम अनुभव करेंगे कि हम शरीर और मन के अलावा भी कुछ हैं। कुछ तो है जो हमारे शरीर और मन को नियंत्रित करता है, फिर उसे हम शक्ति कहें य चेतना या फिर आत्मा। योग शरीर और मन दोनों के साथ-साथ हमारी आत्मा को भी स्वस्थ रखता है। देखा जाए तो हमारा शरीर व मन रोगों से घिरता ही तब है जब इनका संबंध आत्मा से कमजोर होने लग जाता है। योग, मन औ शरीर का अंतरआत्मा से संबंध बनाने व बनाए रखने में हमारी मदद करता है। योग मनुष्य को शरीर, मन और आत्मा तीनों के स्तर पर स्वस्थ और समृद्ध करता है। योग हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता

बढ़ता है तथा हमें सकारात्मक ऊर्जा प्रदान करता है। इसीलिए योग एक संपूर्ण पद्धति है।

योग के प्रकार

हर मनुष्य एक-दूसरे से भिन्न है। सबका स्वभाव व प्रकृति भी अलग-अलग है। यही कारण है कि सबके विचार, मार्ग, उद्देश्य, सिद्धांत व मान्यताएँ आदि भी भिन्न हैं। शायद यही कारण है कि मानव की विभिन्न प्रकृति को ध्यान में रखकर ही उस 'परम' तक पहुँचने के कई मार्ग निर्मित किए गए हैं, जिन्हें विभिन्न योगों से जाना जाता है। फिर उसे मंत्र योग कहो या हठ योग, राज योग कहो या ज्ञान योग, भक्ति योग कहो या कर्म योग या फिर ध्यान योग। नाम और मार्ग ही भिन्न है, परिणाम सबका एक है। किस तरह व कितने भिन्न हैं आपस में यह योग, यह जानना जरूरी है, जो इस प्रकार है—

मंत्र योग— जप द्वारा चेतना को अंतरमुखी करना ही मंत्र योग है। मंत्र के स्वरों में असीम शक्ति होती है। मंत्र जाप के माध्यम से साधक अपने संकल्प एवं इच्छानुसार अपने इष्ट-देवता या

उसकी शक्ति को प्राप्त करने की कोशिश करता है। इसमें मंत्रों का उच्चारण, आसन, मुद्रा, समय, अवधि, जाप, संख्या एवं उसकी नियमितता अहम भूमिका निभाती है।

हठ योग— हठ का शाब्दिक अर्थ है 'संकल्प शक्ति' या किसी काम को करने की या किसी पदार्थ को पाने की अदम्य इच्छा, फिर चाहे वह कितना ही असाधारण क्यों न हो। हठ योग में साधक मन को शांत करने के लिए शरीर के क्रियाकलापों तथा विभिन्न प्रकार के तप, त्याग, संयम, व्रत, मौन, उपवास आदि के द्वारा नियंत्रित करता है। हठ योगी का साधक मानता है कि वह अपने शरीर को जितना विभिन्न यातनाओं, कष्टों एवं व्रतों आदि से मजबूत बनाएगा उतना ही अधिक ऊर्जावान और शक्तिशाली बनेगा तथा देवताओं का प्रिय बनेगा।

राज योग— आत्मा ही परमात्मा का अंश है, यह कभी नहीं मरती न ही पैदा होती है, ऐसा मानकर या अनुभव में लेकर जो साधक स्वयं को जानने यानी ''मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहा जाऊँगा'' में लगता है तथा शरीर में रह रही आत्मा को परमात्मा से जोड़ने के अभ्यास में लगता है वह 'राज योग' कहलाता है। आंतरिक एवं वैज्ञानिक तथा व्यावहारिक दृष्टिकोण रखने वालों के लिए यह सबसे उत्तम साधन है। आत्मा का परमात्मा में मिल जाना ही इस मार्ग का उद्देश्य है। यह मन को साधने और उसकी अलौकिक शक्तियों से संबंध रखता है। इस योग के माध्यम से आत्म ज्योति का अनुभव किया जा सकता है।

ज्ञान योग— आध्यात्मिक मुक्ति के लिए यूँ कहें परम शक्ति, परम सत्ता, परम सत्य या परम तत्त्व को जानने के लिए विवेकपूर्ण बुद्धि के उपयोग पर बल देना तथा उसके तर्कसंगत निर्णय से ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचना 'ज्ञान योग' कहलाता है। देखा जाए तो यह योग का बौद्धिक और दार्शनिक पक्ष है। इसका साधक किसी बात को मानने पर नहीं जानने पर बल देता है। ज्ञान योग, संसार को छोड़ने या त्यागने का मार्ग नहीं बल्कि संसार में रहकर संसार से निर्लिप्त रहने का मार्ग है। ज्ञान योग, सभी तरह के नाम— रूपों, नियमों और शास्त्रों आदि से परे होना व उनसे छुटकारा पाना है।

भक्ति योग— भक्ति योग यानी अपने से भिन्न परमात्मा के अस्तित्व को मानकर उसकी पूजा-अर्चना करना। न केवल यह मानना कि भगवान बाहर है बल्कि एकमात्र वही सर्वगुण सम्पन्न श्रेष्ठ व सर्व शक्तिशाली है। भावना प्रधान एवं संवेदनशील व्यक्तियों के लिए सर्वाधिक अनुकुल योग व मार्ग है। भक्तियोग में साधक श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन, इन नौ ढंगों से अपने इष्ट को रिझाता व उसकी कृपा को प्राप्त करता है। देखा जाए तो भक्ति योग उच्चतम प्रेम का विज्ञान है। इसमें साधक जीवन की हर तकलीफ को भगवान का नाम लेकर उस पर छोड़ देता है तथा अटूट विश्वास रखता है कि यदि तकलीफ उसने दी है तो इन तकलीफों से बाहर भी वही निकालेगा।

कर्म योग— जीवन में अपने हर कार्य, जिम्मेदारी एवं कर्तव्य का पूरी ईमानदारी के साथ यह सोचकर पालन करना कि कर्म ही जीवन है, कर्म ही पूजा है और कर्म ही प्रसाद। कर्म से सर्वोच्च कुछ भी नहीं, हम जैसे कर्म करते हैं वैसा ही फल पाते हैं, यहीं 'कर्म योग' है। कर्मयोगी हर कार्य को उसी का आदेश समझकर करता है तथा अपनी कर्मठता के द्वारा साधक जगत के साथ तादात्म्य स्थापित करके अपने असली स्वरूप को ढूँढ़ लेता है। देखा जाए तो कर्म योग इस बात का प्रतीक है कि हमें किसी भाग्य या चमत्कार के भरोसे नहीं बैठना चाहिए, हमें अपने कर्म पर अपने भाग्य का निर्माण करना चाहिए।

ध्यान योग— अपने मन को किसी कार्य या उद्देश्य में इतना तल्लीन कर लेना कि मन भी न बचे, 'ध्यान योग' कहलाता है। अपने से अधिक शक्तिसम्पन्न विचार में या प्रबल इच्छा में स्वयं को बिसरा देना, विलीन कर देना ध्यान है। परंतु जिसे हम विशेष तौर पर ध्यान कहते हैं, वह परमात्मा में मिल जाने की है जो साधक को शरीराभ्यास से ऊपर ले जाता है।

योग के अंग— पतंजलि ने योग की समस्त विद्याओं को आठ अंगों में बाँट कर श्रेणीबद्ध किया था जिसे अष्टांग योग के नाम से जाना जाता है। अष्टांग योग का अर्थ है 'योग के आठ अंग'। वो आठ अंग निम्नलिखित हैं—

1. **यम**— यम के अंतर्गत कायिक, वाचिक तथा मानसिक संयम के लिए अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य तथा अस्त्रेय जैसे पाँच आधार बताए हैं। जिनका पालन करने से व्यक्ति के जीवन तथा समाज दोनों में व्यवस्था बनी रहती है। यम के द्वारा विभिन्न रोगों से मुक्ति पा कर पवित्रता की प्राप्ति होती है तथा व्यावहारिक जीवन भी पवित्र होता है।
2. **नियम**— मनुष्य के जीवन को व्यवस्थित तथा सुचारू बनाने के लिए कुछ नियमों का प्रतिपादन किया गया है जैसे शौच (बाह्य तथा आंतरिक शुद्धि), संतोष, तप, स्वाध्याय औ

ईश्वर प्रणिधान इसके अंतर्गत आते हैं। नियम के माध्यम से इंद्रियों व सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त तामसिक तथा राजसिक गुणों का नाश होता है और पवित्रता की प्राप्ति होती है।

3. **आसन** — आसन से महर्षि पतंजलि का तात्पर्य स्थिर तथा सुखपूर्वक बैठने से है। योग में आसन का महत्व बहुत अधिक है। आसन के माध्यम से चंचलता तथा आलस्य रूपी विकार दूर होता है तथा दिव्यता की प्राप्ति होती है।

4. **प्राणायाम** — श्वास तथा प्रश्वास के नियमन की क्रिया प्राणायाम कहलाती है। यह मनुष्य के शरीर को तो निरोगी रखता ही है साथ ही इससे मन की चंचलता पर भी विजय प्राप्त कर सकते हैं। प्राणायाम के माध्यम से स्वस्थ शरीर व मन की प्राप्ति तो होती है साथ ही इसके माध्यम से मन पर नियंत्रण करना भी सरल हो सकता है।

5. **प्रत्याहार** — यदि हम सामान्य शब्दों में कहें तो अपनी इन्द्रियों को विषयों से हटाने का नाम ही प्रत्याहार है। प्रत्याहार के अभ्यास से इन्द्रियों पर संयम रखकर मनुष्य अन्तरमुखिता की स्थिति को प्राप्त करता है जो कि योग के लिए बहुत आवश्यक है। इसके माध्यम से इन्द्रियों में व्याप्त आलस्य का शमन होता है।

6. **धारणा** — धारणा से तात्पर्य है चित्त को किसी एक स्थान पर एकाग्र या केन्द्रित करना। यह बहुत आवश्यक है, क्योंकि चित्त की अत्यधिक चंचलता मनुष्य के लिए घातक होती है। यह अष्टांग का बहुत महत्त्वपूर्ण अंग है। इससे चित्त में व्याप्त अज्ञानता का शमन होता है तथा मन किसी एक सात्त्विक विषय पर केन्द्रित होता है।

7. **ध्यान** — ध्यान का तात्पर्य है पूरी चेतना व मन का किसी एक वस्तु या बिंदु पर इस प्रकार केन्द्रित हो जाना कि उसके भटकने या किसी अन्य दिशा में जाने की कोई गुंजाइश ही न हो।

8. **समाधि** — यह अष्टांग योग का आठवां तथा अंतिम अंग है। इसका तात्पर्य है चित्त की वैसी अवस्था जिसमें चित्त अपनी ध्येय वस्तु या इष्ट के चिंतन में इस प्रकार लीन हो जाता है कि उसे इस संसार की कोई सुध ही नहीं रह जाती है तथा यह महाचेतना की स्थिति होती है। दर्शन के अंतर्गत समाधि को मोक्ष का साधन माना जाता है।

फिर लहराया योग का परचम — 21 जून, अंतरराष्ट्रीय योग दिवस

वक्त की तह में भले ही यह कुछ धुँधला सा गया था परंतु 21 जून, अंतरराष्ट्रीय योग दिवस की अपार सफलता ने फिर से योग के शिखर छूने की संभावना जताई है। राजपथ, जिसे इंडिया गेट तथा 26 जनवरी के गणतंत्र दिवस समारोह के रूप में लोगों द्वारा अधिक पहचाना व जाना जाता है, 21 जून, 2015 को अंतरराष्ट्रीय योग दिवस से इस स्थान को अपनी नई तस्वीर ही नहीं बल्कि गिनीज वर्ल्ड रिकॉर्ड बनाकर भारत को विश्व के पैमाने पर नई पहचान भी हासिल हुई है। जिसका श्रेय जाता है भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी को।

इस दिन राजपथ पर 35,985 लोगों ने प्रधानमंत्री सहित सामूहिक योग करके न केवल एक विश्व कीर्तिमान स्थापित किया बल्कि दुनिया भर में, भारत की संस्कृति के प्रतीक 'योग' को विश्व के कोने-कोने में पहुँचाने का सफल प्रयास भी किया। इस दिन दुनिया भर के 192 देशों के 251 शहरों में योग के सामूहिक कार्यक्रम आयोजित हुए। इनमें 46 मुस्लिम देश भी थे। 21 जून को दुनिया भर में कुल मिलाकर दो करोड़ लोगों ने योगासन किया। एक साथ योग की ऐसी धमक कभी नहीं सुनी गई, जैसी 21 जून 2015 को सुनायी दी।

इस दिवस की नींव मोदी जी ने 27 सितम्बर, 2017 को, संयुक्त राष्ट्र संघ में दिये अपने पहले संबोधन में प्रस्तावित की थी। इस प्रस्ताव के कुछ दिनों बाद भारत सरकार से पूछा गया कि किस दिन अंतरराष्ट्रीय योग दिवस घोषित किया जा सकता है। इस बात का निर्णय स्वामी रामदेव जी के साथ पतंजलि योग पीठ में लिया गया। स्वामी रामदेव ने इस दिन के लिए 21 जून का दिन यह कहकर सुझाया कि ''यह दिन साल का सबसे लंबा दिन होता है और योग भी मनुष्य को दीर्घ जीवन प्रदान करता है।'' रामदेव के सुझाए इस दिन को प्रधानमंत्री और भारत सरकार ने स्वीकृत करते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ को भेजा, जिसे मंजूर कर लिया गया और 21 जून को अंतरराष्ट्रीय योग दिवस घोषित किया गया।

◆◆◆

किसान समस्या : 'गोदान' से 'आखिरी छलाँग'

डॉ. हरीन्द्र कुमार

... प्रेमचंद जिस समय गोदान की रचना कर रहे थे उस समय भारतीय जनमानस स्वाधीनता आंदोलन में शिरकत कर रहा था। सभी वर्ग अपनी सामाजिक-आर्थिक विषमताओं, जो औपनिवेशिक साम्राज्यवाद की देन थी, से जूझ रहे थे। औपनिवेशिक व्यवस्था ने लूट और शोषण की जो दास्तान लिखी उसके प्रभाव ने भारतीय सामाजिक-आर्थिक ढाँचे को जर्जर कर दिया। साम्राज्यवादी, व्यापारिक एवं आर्थिक नीतियों ने कृषि ढाँचे एवं 'होरी' जैसे कृषक समुदाय को जिस रौरव नरक एवं गुरबत की दलदल की ओर ढकेला, 'पहलवान' उससे बाहर निकलने की 'आखिरी छलाँग' लगाने का प्रयास करता है। किसान की जो बदहाली 'गोदान' में प्रेमचंद ने 'होरी' के माध्यम से प्रस्तुत की है, शिवमूर्ति के 'आखिरी छलाँग' का 'पहलवान' उसी बदहाली का वर्तमान सी.टी. स्कैन है।...

सम्पर्कः एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, हिन्दू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, 133, गाँव व डाकखाना पल्ला, दिल्ली-110036

'गोदान' प्रेमचंद का महाकाव्यात्मक उपन्यास कहा जाता है। यह मुख्यतः ऋण की समस्या और किसान-जीवन पर आधारित है। तब से अब तक ऋण का बोझ किसान पर कम नहीं हुआ है, हाँ कहीं-कहीं उसका रूप बदल गया है। महाजन से बैंक तक का विकास कर्म 'ऋण' की उन्मुक्तता ही विवेचित करता है। गोदान के सत्तर-पिचहत्तर वर्ष बाद शिवमूर्ति का उपन्यास 'आखिरी छलाँग' भी उसी ऋण की हत्यारी छलाँग का सच पेश कर रहा है। किसान-समस्या का पुनर्पाठ आज 'गोदान' के अभियान से 'आखिरी छलाँग' तक पहुँचाना महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है।

प्रेमचंद के साहित्य में ब्रिटिश शासन काल में किसानों की निर्धनता, दयनीय सामाजिक जीवन तथा कार्यक्षेत्र में अमानवीय उत्पीड़न का चित्रण मिलता है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि प्रेमचंद के समय तक ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीतियों के कारण भारत एक निर्धन और परावलम्बी राष्ट्र बन चुका था। पारम्परिक व्यवसायों को बढ़ावा न देने के कारण देश के परम्परागत उद्योग-धंधे नष्ट हो चुके थे, फलतः साधारण जनता जीवनयापन के लिए एकमात्र 'कृषि' पर आश्रित थी।

प्रेमचंद जिस समय गोदान की रचना कर रहे थे उस समय भारतीय जनमानस स्वाधीनता आंदोलन में शिरकत कर रहा था। सभी वर्ग अपनी सामाजिक-आर्थिक विषमताओं, जो औपनिवेशिक साम्राज्यवाद की देन थी, से जूझ रहे थे। औपनिवेशिक व्यवस्था ने लूट और शोषण की जो दास्तान लिखी उसके प्रभाव ने भारतीय सामाजिक-आर्थिक ढाँचे को जर्जर कर दिया। साम्राज्यवादी, व्यापारिक एवं आर्थिक नीतियों ने कृषि ढाँचे एवं 'होरी' जैसे कृषक समुदाय को जिस रौरव नरक एवं गुरबत की दलदल की ओर ढकेला, 'पहलवान' उससे बाहर निकलने की 'आखिरी छलाँग' लगाने का प्रयास करता है। किसान की जो बदहाली 'गोदान' में प्रेमचंद ने 'होरी' के माध्यम से प्रस्तुत की है, शिवमूर्ति के 'आखिरी छलाँग' का 'पहलवान' उसी बदहाली का वर्तमान सी.टी. स्कैन है।

भारत आज वैश्वीकरण के दौर में निजीकरण और उदारवादी नीतियाँ अपनाकर विश्व से जुड़ने का जो उपक्रम कर रहा है उसने कृषक समुदाय को 'लूटने के लिए' बहुराष्ट्रीय निगमों के हवाले कर दिया है, जिसकी पीड़ा 'आखिरी छलाँग' (लेखक शिवमूर्ति) के पहलवान के इस कथन में, ''इस लुटन्त जुग में किसान कैसे जिन्दा रहे इसका रास्ता खोजना है'' में दिखाई पड़ता है। नई आर्थिक नीति ने किसानों के शोषण का रूप बदल दिया। 'नया ज्ञानोदय' पत्रिका के जनवरी 2008 अंक में छपे शिवमूर्ति के उपन्यास 'आखिरी छलाँग' में सरकार की चुप्पी और किसानों के उत्पीड़न की गाथा को नए आलोक में चित्रित किया गया है। 'पहलवान' उन बुनियादी सवालों को उठाता है जो किसान के जीवन को बर्बाद कर रहे हैं। सबसे अहम और बुनियादी सवाल प्रेमचंद और शिवमूर्ति का है— ऋण की समस्या। इस समस्या पर विचार करना इस आलेख का मुख्य उद्देश्य है।

इस ऋण समस्या से दोनों उपन्यासों के नायक होरी की पत्नी धनिया व पहलवान की पत्नी अपने भविष्य को लेकर चिन्तित दिखाई पड़ती हैं। धनिया कहती है, ''तुम्हारी दशा देख-देख कर तो मैं और भी सूखी जाती हूँ कि भगवान यह बुढ़ापा कैसे कटेगा? किसके द्वार पर भीख मांगेगे?'' पहलवान की पत्नी स्वगत चिंतन करती है, ''पति के लिए पहलवान सम्बोधन याद करके अब उन्हें थोड़ा अजीब लगता है। कहाँ तब के वे पहलवान और आज 'ए'। दिनोंदिन सिकुड़ते-सिमटते जाने वाले पहलवान की परछाई?'' बीघा भर की दूरी से सुनाई देने वाली पहलवान की हँसी अब 'बेआवाज' हो गई है। यह बेआवाज हँसी उस आम भारतीय किसान की हँसी है जो शोषण की चक्की में पिसने के लिए मजबूर है।

होरी की पूरी कहानी भारतीय किसान के दिनोंदिन दयनीय और असहाय होते जाने का चित्र प्रस्तुत करती है। आजादी से पूर्व भीषण आर्थिक संकट के बावजूद 'होरी' जैसे किसान की जीने की इच्छा नष्ट नहीं हुई थी। परन्तु आजादी के बाद वही 'ऋण समस्या' आर्थिक नीतियाँ किसान को आत्महत्या करने के लिए विवश कर देती हैं। 'आखिरी छलाँग' के एक किसान पाण्डे बाबा इस ऋण समस्या से ऐसे ग्रसित होते हैं कि फाँसी पर झूल जाते हैं। वर्तमान में सरकार की कृषक नीति (ऋण) महाजनों की ऋण नीति से भी अधिक जटिल है। वहाँ महाजन की चिरौरी कर कुछ समय के लिए 'मुक्ति' मिल जाती थी किन्तु अब तो 'जीवन-मुक्ति' ही मिलती हैं। शिवमूर्ति ने वर्तमान में 'खाते-पीते' किसान की विपन्नता का कारण इसी ऋण समस्या को माना है।

यह स्थिति प्रेमचंद के होरी से भी अधिक बदतर है जो किसानों की दुर्व्यवस्था के विषय में प्रश्न खड़े करती है। पाण्डे बाबा द्वारा आत्महत्या करने के बाद महीनों बड़ा हड़कम्प रहा। अखबारों में और टी.वी. चैनलों पर पाण्डे बाबा की आत्महत्या का मामला छाया रहा। मांग उठी कि किसानों की ऋण नीति की पड़ताल होनी चाहिए। जो ऋण किसान की भलाई के लिए दिया जाता है वही उसके गले का फंदा कैसे बन जाता है? सरकार की आर्थिक नीति में आज किसान का कर्ज माफ तो कर दिया जाता है किन्तु 'कर्ज-मुक्ति' नहीं मिलती। आम बजट 'खास वर्ग' तक सिमट जाता है और लुभावने वायदे क्रेडिट कार्ड जैसी नीति के छलछद्म में छला जाता है— 'आम किसान'।

प्रेमचंद किसानों के शोषण में उनकी अशिक्षा, धर्मभीरूता, सामन्ती मूल्यों मे विश्वास और संगठन के अभाव को जिम्मेदार मानते हैं। रामसेवक 'गोदान' में अपने एक अनुभव का उल्लेख करता है कि किस प्रकार किसानों के संगठित हो जाने पर शोषण करने वालों की एक नहीं चलती। पर किसानों में इस प्रकार के संगठन की नितान्त कमी है। होरी जैसे किसानों के परम्परागत विश्वास और धारणाएँ भी इस शोषण को बनाए रखने में सहायक होती हैं। होरी की धारणा है, ''जब दूसरे के पाँवों तले अपनी गर्दन दबी हुई हो तो उन पाँवों के सहलाने में ही कुशल है।''

'आखिरी छलाँग' का 'पहलवान' किसानों की इस कायरता को चुनौती देता है। उसका दृष्टिकोण प्रेमचंद के रामसेवक जैसा किन्तु उसकी समस्याएँ और अधिक विकराल रूप धारण कर चुकी हैं। उसके लिए शोषक केवल महाजन और जमींदार ही नहीं अपितु मुख्यतः पूरी सरकारी मशीनरी। रामखेलावन जब पहलवान से कहता है, ''आदमी खेती किसानी देखे कि लड़ाई करने निकले? किस किससे लड़े?'' पहलवान रामसेवक को आगे बढ़कर समय सापेक्ष चिंतन करता है, ''नहीं लड़ेगा तो मरेगा, मर तो रहा ही है और जल्दी मरेगा। देश-दुनिया के नक्शे से गायब हो जायेगा। कोई रोक नहीं सकता। बहुत सारे मुद्दे हैं जिनसे लड़ना जरूरी है। जैसे सरकार की नीतियाँ। गेहूँ पैदा करने में लागत बारह रुपये किलो आती है लेकिन गेहूँ बिकता है सात रुपये किलो, आलू और प्याज किसान के घर पैदा होता है तो दो रुपये किलो बिकने लगता है। दो महीने बाद जैसे

किसान के घर से बाहर निकला दस रुपये किलो हो जाता है।.. सारी मन्दी किसानों के लिए ही है।'' प्रेमचंद के 'गोदान' में स्वतंत्रतापूर्वक किसानों के शोषण के लिए उत्तरदायी अंग्रेजी सरकार की नीति से कहीं अधिक वर्तमान सरकार की आर्थिक नीति जिम्मेदार दिखाई पड़ती है।

प्रेमचंद का होरी जन्मान्तरवाद, कर्मफलवाद, भाग्यवाद आदि में भी पूरी आस्था व्यक्त करता है जिसके कारण उसके मन में व्यवस्था के प्रति विद्रोह की चेतना नहीं जगती। परन्तु होरी का बेटा 'गोबर' किसानों के उस वर्ग का, विशेषकर नयी पीढ़ी के किसानों का प्रतिनिधित्व करता है जो शोषण और अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह की चेतना से भरे हुए हैं। गोबर उन सारे सामन्ती मूल्यों को नकारता है जो किसानों के शोषण को सैद्धान्तिक आधार प्रदान करते हैं।

'आखिरी छलाँग' का राजेश्वर उर्फ पी.सी.एस., जिसने फिलासॉफी में टॉप किया और पिता के अरमान के विरुद्ध पी.सी.एस. बनने के बजाय 'छात्र-राजनीति' के 'रोग से ग्रसित' होकर स्वतंत्र भारत के किसानों की आवाज को बुलन्द करने का प्रयास करता है। राधेश्याम कहते हैं, ''कितनी तरह के खतरों से आगाह किया पी.सी.एस. ने। कोई समझ पाया? कितनी आँख खोल देने वाली बात बतायी कि दूसरों के उत्पाद के लिए एम.आर.पी. तय होता है यानि मैक्सिमम रिटेल प्राइस। जबकि किसान के उत्पाद के लिए मिनिमम सपोर्टिंग प्राइस न्यूनतम समर्थन मूल्य। बाकी के हिस्से में मैक्सिमम और किसान के हिस्से में मिनिमम। प्रेमचंद का 'गोबर' अपने परिवेश में किसानों का शोषण और अत्याचार के विरुद्ध खड़ा करने का प्रयास करता है और पी.सी.एस. किसानों को नई समस्याओं को समझाने और सरकारी नीतियों के विरुद्ध विद्रोह का बिगुल बजाने का प्रयास करता है।

आजादी के बाद जमींदारी उन्मूलन के फलस्वरूप गाँवों में जमींदार तथा उसके कारिन्दों का दमन चक्र अब नहीं हैं, कानूनगो और पटवारियों की मिलीभगत से किसानों की तकदीर का फैसला करने वाले ज़ायज़-नाज़ायज़ हथकण्डे भी अब अतीत हो चुके है। किसान अब अपनी ज़मीन का मालिक है और कानून उसके हक में अपनी-उसकी ज़मीन को किसी के द्वारा नाज़ायज़ तरीके से बेदखल किए जाने के ख़िलाफ़ है। सहकारी बैंकों का एक जाल बिछा हुआ है, जहाँ से किसानों को अपनी जरूरत के लिए आसान शर्तों पर ऋण उपलब्ध हो जाता है। गाँवों में जागृति और शिक्षा के नए अवसर हैं। खेत मज़दूरों का शोषण समाप्त हो चुका है और उसकी मजदूरी बाँध दी गई है। व्यक्तिगत सूदखोरी को कानूनन अमान्य ठहरा दिया गया है। राजनीतिक हलचल भी तेज हो गई है और विभिन्न राजनीतिक दलों की गतिविधियां किसान को संगठित करने एवं उनके हक़ की लड़ाई लड़ते दिखाई देते हैं। प्रेमचंद के बेलारी को अतीत के खाते में डाल देने के लिए ये सभी सूचनाएँ पर्याप्त हैं।

वस्तुत: जो दिखाई देता है, वही यथार्थ नहीं होता या हुआ करता है। सूचना विभाग के पोस्टरों का अपना यथार्थपद हो तो हो, सामाजिक यथार्थ नहीं होता। यथार्थ का सार तत्त्व इन सतह के परिवर्तनों, भिन्नताओं और सरकारी सूचनाओं की सात पर्तों के भीतर कहीं अलग छिपा होता है और उसे कुरेद-कुरेद कर ऊपर लाना और पहचानना होता है। जरूरत उसे ऊपर लाने और पहचानने की है। आज़ादी के बाद गाँवों में जो नया नेतृत्व उभरा है वह उन्हीं गत जमींदारों और उनके सुरक्षितों द्वारा निर्मित है जो विभिन्न राजनीतिक दलों के मेम्बर बनकर पंचायत, विधान सभा तथा संसद तक पहुँचते हुए पुराने रोबदार के बूते पर नये सिरे से गाँवों और ग्रामीण जनों के भाग्य विधाता बन बैठे हैं। यही नहीं पहले सूदखोर और महाजन गाँव की सतह पर दिखाई पड़ते थे, अब उनकी जगह को-आपरेटिव बैंकों से गरीब तथा अशिक्षित किसानों को ऋण दिलाने वाले बिचौलियों तथा ऋण पास करने वाले बाबुओं ने ले ली है। व्यक्तिगत सूदखोरी कागज पर और कानूनन भले ही समाप्त हो गई हो, वह अभी भी जारी है। अब कागज नहीं लिखे जाते, अँगूठे नहीं लगवाए जाते, पर ऋण दिया जाता है और ब्याज के साथ वसूला भी जाता है। सरकारी पुलिस, कचहरी हाकिमों और दारोगाओं का आतंक पहले जैसा ही है। धर्म के प्रभु अपना रोजगार पहले जैसी प्रभुता के साथ ही चला रहे हैं। कहने का तात्पर्य है कि आतंक, अन्याय और शोषण के पुराने प्रभुओं की जगह नए प्रभु आ गए हैं। पुराने देवताओं को अपदस्थ कर नए देवताओं ने उनका स्थान ले लिया है। पहले जो कुछ खुलेआम होता था, दया धर्म के नाम पर होता था, आज वह सब दबे-ढके हो रहा है।

गोदान जैसी 'क्लासिक' कृति आजादी के सत्तर साल पूरे होने पर भी प्रासंगिक लगती है, यह दुखद विषय है। यदि किसानों की वर्तमान समस्या विकराल न होती तो 'आखिरी छलाँग' जैसी कृति उतने सवाल नहीं खड़े करती। इसलिए 'आखिरी छलाँग' के बहाने किसान जन समस्या का पुनर्पाठ अपेक्षित है।

◆◆◆

नादब्रह्म के साधकों की शती

प्रो. राम मोहन पाठक

"...सुब्बुलक्ष्मी के खनकते सुरों में आज भी विष्णु सहस्रनाम, गाँधी जी का प्रिय भजन—वैष्णव जन तो तेणे रे कहिये, जे पीर पराई जाणे रे..., भजन—हरि तुम हरो जन की पीर, पग घुँघरू बाँध मीरा नाची रे, वेंकटेश सुप्रभातम, वेंकटेश स्तुति, क्षीरसागर शयन की प्रस्तुतियाँ जहाँ एक ओर भाषाओं की दीवारें तोड़ती हैं, वहीं फिल्मों में उनके गीत जीवन में रागतत्त्व की सृष्टि करते हैं। उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ का संगीत तो धर्म, सम्प्रदाय, जाति, संकीर्णता की सभी दीवारें तोड़कर सभी के मर्म को छूता है।..."

पूरा देश इस समय जिन महान संस्कृति व्यक्तित्वों की शती मना रहा है, उनमें दो ऐसे विश्वविख्यात भारतीय संगीतज्ञ भी हैं, जिनके लिए संगीत प्रार्थना और इबादत रहा। भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय ने इन शती समारोहों के लिए दस करोड़ की धनराशि स्वीकृति कर इसकी साधना को नमन किया है।

वे सचमुच रत्न थे। स्वर कोकिला एम.एस. सुब्बुलक्ष्मी और 'शहनाई के जादूगर' उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ सामान्य परिवार में जन्में और कामयाबी के वैश्विक शिखर तक पहुँचे। देश का सर्वोच्च सम्मान 'भारतरत्न' पहली बार किसी संगीतज्ञ को दिया गया। तब सुब्बुलक्ष्मी ने कहा था, "संगीत साधना ईश्वर की आराधना का प्रसाद है।" उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ को जब भारतरत्न सम्मान मिला, तब उन्होंने 15 अगस्त, 1947 को भारत के पहले स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर लालकिले से अपनी शहनाई की धुन से नवोदित राष्ट्र के नमन के मौके को याद करते हुए कहा, "राष्ट्र का यह सुर के प्रति सम्मान है। सुर हिन्दू-मुसलमान नहीं होता। सुर तो इबादत है, उसकी इबादत जो सबको सब कुछ देता है। हमारे देश का जीवन सुरीला हो, बेसुरा नहीं, यही कामना है और मुझे दिए गए भारतरत्न सम्मान का यही संदेश है।"

संयोग ही है कि संगीत को आध्यात्म और ईश्वर की आराधना का जरिया मानने वाले दोनों नादब्रह्म के उपासक साधकों की एक साथ मनाई जा रही शती के संदेश स्पष्ट हैं। "समर्पण, निष्ठा और कठिनाइयों की परवाह किए बिना निःस्वार्थ साधना से सफलता का संदेश देता इनकी शती का यह अवसर नई पीढ़ी के सुर साधकों के लिए एक आदर्श और जीवन में ऊर्जा प्रदान करने का पल है।"

आजादी के बाद जिन पाँच संगीतज्ञों को 'भारतरत्न' से अलंकृत किया गया, उनमें सुब्बुलक्ष्मी, बिस्मिल्ला खाँ, पंडित रविशंकर, पंडित भीमसेन जोशी और सुर-साम्राज्ञी लता मंगेशकर हैं। सभी का जीवन साधना और समर्पण का जीवन रहा है। कर्नाटक संगीत की परम्परागत गायकी विधा की शीर्ष साधिका

सम्पर्कः 11, कबीर मत, सी-23/5, कबीर चौरा
वाराणसी-221001 (उत्तर प्रदेश), मोबाइलः 9415201333

सुब्बुलक्ष्मी की लगभग छः दशक लंबी संगीत यात्रा और उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ की आठ दशक लंबी संगीत यात्रा की आत्मा आस्था-भक्ति और ईश्वरीय समर्पण का भाव है। सुब्बुलक्ष्मी के खनकते सुरों में आज भी विष्णु सहस्रनाम, गाँधी जी का प्रिय भजन—*वैष्णव जन तो तेणे रे कहिये, जे पीर पराई जाणे रे...*, भजन—हरि तुम हरो जन की पीर, पग घुँघरू बाँ मीरा नाची रे, वेंकटेश सुप्रभातम, वेंकटेश स्तुति, क्षीरसागर शयन की प्रस्तुतियाँ जहाँ एक ओर भाषाओं की दीवारें तोड़ती हैं, वहीं फिल्मों में उनके गीत जीवन में रागतत्त्व की सृष्टि करते हैं। उस्ताद बिस्मिल्लिाह खाँ का संगीत तो धर्म, सम्प्रदाय, जाति, संकीर्णता की सभी दीवारें तोड़कर सभी के मर्म को छूता है।

कहते हैं बिस्मिल्लाह खाँ की शहनाई सुरों में गाती है। शहनाई पर गायकी अंश की प्रस्तुति उनकी विशेषता थी। मदुराई षण्मुखादिवू (एम.एस.) सुब्बुलक्ष्मी और बिस्मिल्ला खाँ दोनों ही सात्विक-आध्यात्मिक वृत्ति के संगीतज्ञ थे। बिस्मिल्ला खाँ की संगीत साधना बनारस में गंगा तट पर बालाजी मंदिर से शुरू हुई। सुब्बुलक्ष्मी की माँ देवदासी सम्प्रदाय परम्परा में मंदिरों में मंच प्रस्तुत करती थीं। दादी वायलिन वादक कलाकार थीं। माँ से उन्होंने संगीत सीखा। 11 साल की उम्र में 1923 में मद्रास (अब तमिलनाडु) के प्रसिद्ध तिरुचिरापलली राकफोर्ट मंदिर के भीतर निर्मित 100 खंभों वाले प्रसिद्ध मंडपम् में पहली प्रस्तुति से प्रारम्भ उनकी संगीत यात्रा में रायल अल्बर्ट हॉल, लंदन, मास्को में भारत महोत्सव तथा यू.एन.ओ. असेम्बली में 1966 में अमेरिका के कार्नेगी हॉल की प्रस्तुतियाँ ऐतिहासिक रहीं। भाषाओं की सीमाएँ तोड़ उन्होंने तमिल, हिन्दी, संस्कृत, तेलुगू में अपनी मोहक प्रस्तुतियाँ दीं।

सुब्बुलक्ष्मी को देश-दुनिया के बड़े-से-बड़े सम्मान—भारतरत्न (1998), पद्मविभूषण, पद्मभूषण अलंकरण, मेगसेसे सम्मान (1974), संगीत नाटक अकादमी सम्मान सहित सैकड़ों सम्मान-पुरस्कार प्रदान किए गए। उन्होंने हिन्दी उपन्यासकार प्रेमचंद की रचना—बाजर-ए-हुस्न पर आधारित सुधारवादी तमिल फिल्म 'सेवासदन' एवं शकुंतलाई, सावित्री, मीरा, मीराबाई आदि फिल्मों में अभिनय किया। तमिल फिल्म 'मीरा' के हिन्दी रूपान्तर को सरोजिनी नायडू ने रिलीज किया। समारोह में उपस्थित पंडित जवाहरलाल नेहरू ने उनकी विलक्षण प्रतिभा और समर्पण को नमन करते हुए कहा, ''मैं क्या हूँ, मैं तो एक साम्राज्ञी, संगीत साम्राज्ञी के सामने सिर्फ एक अदना सा 'प्राइममिनिस्टर' ही तो हूँ।'' 88 वर्ष की अवस्था के सामने में दिवंगत हुई एम.एस. सुब्बुलक्ष्मी की लोकप्रियता ऐसी है कि उनके नाम से आज भी पूरे दक्षिण भारत में 'एम.एस. ब्लू) और 'एव.एस. कलर' (पीला) नाम की साड़ियाँ धार्मिक अवसरों की शोभा और सगुन मानी जाती है।

23 अक्टूबर, 1966 को सुब्बुलक्ष्मी ने यू.एन.ओ. दिवस के मौके पर अमेरिका स्थित मुख्यालय में ऐतिहासिक प्रस्तुति दी थी। 1500 यू.एन.ओ. प्रतिनिधियों ने खड़े होकर सुब्बुलक्ष्मी का, उनके सुरों का अभिवादन किया था। इस कार्यक्रम के 50 साल पूरे होने पर अपनी परनानी (ग्रेट ग्रैण्डमदर की उस समय की वेशभूषा जैसे ड्रेस में) को उनकी नतिनीद्वय ऐश्वर्या और सौन्दर्या ने पिछले 26 मार्च, 2016 को अमेरिका के 'क्लीवलैण्ड त्यागराज महोत्सव' में उनके उस समय गाये गये भजनों की प्रस्तुति कर अवसर को ऐतिहासिक बना दिया।

बिस्मिल्ला खाँ की शताब्दी एक ऐसे शख्स की शताब्दी है, जिसने संगीत को इन्सानी रिश्तों और एकात्मता का माध्यम बनाया। सादा जीवन ऐसा कि बनारस की तंग गलियों में पुराने मकान में पूरी जिन्दगी बिता दी। उनकी सादगी दिलों को छू जाती थी। पश्चिमी देशों के ऑफर इसलिए ठुकरा दिये कि वहाँ गंगा कहाँ, बनारस कहाँ और मौजमस्ती? भारतरत्न पद्मभूषण, पद्मविभूषण, पद्मश्री सभी सर्वोच्च नागरिक सम्मान मिले पर सिर अल्लाह की इबादत में हमेशा झुका रहा। मृत्यु के समय भी पास थी, सिर्फ उनकी शहनाई। शहनाई ही उनके जीवन की धुरी थी।

बिस्मिल्लिा खाँ लोकवाद्य शहनाई को ग्लोबल मान्यता एवं बुलंदी दिलाने और इसे विश्वमंच पर स्थापित करने वाले नेक कलाकार थे। शहनाई, बनारस और शराफत की पहचान बन चुके खाँ साहब बेहद सम्मान और प्यार पाने के बाद भी एक विनम्र इन्सान बने रहे। यह विनम्रता सभी को गहरे तक छूती थी। साधना उनकी सबसे बड़ी ताकत थी। अंतिम क्षणों तक साधना के जरिये अपनी फूंक की जान बरकरार रखने के लिए वे जीये। इससे बड़ी सीख ली जा सकती है। उनका 'ठेठ' बनारसीपन अब सिर्फ याद बनकर रह गया। बनारस और बनारसीपन ने अपना एक मजबूत वक्ता खो दिया।

बिस्मिल्ला खाँ और सुब्बुलक्ष्मी दोनों ही भारतीय संस्कृति, काशी की संगीत परम्परा और ऊर्जा के जीवन भर कायल रहे। काशी में सुब्बुलक्ष्मी का 'ठिकाना' देश की विख्यात गिटारवादक कमला शंकर और उनके चिकित्सक संगीतज्ञ पिता

आर. शंकर का आशियाना 'रूपकमल' हुआ करता था। अनेक बार मुझे अपने संरक्षण विख्यात संपादक विद्याभाष्कर जी के साथ उनसे मिलने और लम्बे साक्षात्कार का अवसर मिला। हर बार लगा जैसे संगीत ही उनकी साँस है, उनका जीवन है। अपने पति टी. सदाशिवम् के साथ दक्षिण से काशी आती रहीं और काशी विश्वनाथ मंदिर तथा प्रयाग कुंभ में 'सुप्रभातम्' के लिए अपना स्वर ही नहीं दिया बल्कि एचएमवी रिकॉर्ड की सारी रॉयल्टी सुप्रभातम् को समर्पित कर दी। वर्षों से काशी में गंगा की तरह बिस्मिल्ला खाँ और एम.एस. सुब्बुलक्ष्मी के सुरों की सरिता निरन्तर प्रवहमान है। दक्षिण-उत्तर का यह संगीत समागम राष्ट्रीय एकात्मता का अद्भुत उदाहरण है।

एक कसक और टीस काशी ही नहीं पूरे देश के संगीत प्रेमियों की है कि बिस्मिल्ला खाँ का एक भव्य मकबरा और शहनाई अकादमी की बात उनके जाते ही आई गई हो गई। दूसरी टीस यह कि उनके परिवार में उनके जीवित दो पुत्रों में से एक शहनाई वादक हैं, दूसरे तबलावादक। पर प्रोत्साहन, संरक्षण के अभाव में बिस्मिल्ला खाँ के आशियाने में ही शहनाई दम तोड़ रही है। सुब्बुलक्ष्मी की खनकती हुई, सुरों में पिरोई जादुई आवाज और उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ के जीवन में कभी उल्लास और खुशी तो कभी गम का रंग बिखेरती, कभी गाती हुई, कभी रोती-रुलाती-सहलाती हुई शहनाई का असर अब भी बरकरार है क्योंकि वह आजीवन और दीर्घ साधना की प्रतिश्रुति है।

◆◆◆

भारतभूमि नृत्यमय है: गोपिका वर्मा

दीपक कुमार सिन्हा

भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैलियों में शुमार 'मोहिनी अट्टम' मन को मोह लेनेवाला कोमल भावों का स्त्री प्रधान नृत्य है। यह नृत्य भगवान विष्णु को समर्पित है। इसकी उत्पत्ति केरल से मानी जाती है। 'मोहिनीअट्टम' का प्रथम उल्लेख 17वीं शताब्दी में लिखित व्यवहारमाला में मिलता है। ओट्टम तुल्लाल के मुख्य रचनाकार कुंजन नाम्बियार ने राज दरबार के वर्णन में भी 'मोहिनीअट्टम' का उल्लेख किया है। दक्षिण भारत के महान कवि वल्लतोल द्वारा उसे पुनर्जीवित करने के लिए अथक परिश्रम किया गया। त्रावणकोर (त्रिवेंद्रम) के राजा स्वाति तिरूनाल द्वारा भी इसका संरक्षण-संवर्द्धन किया गया। वर्तमान में इसी राज परिवार की अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त नृत्यांगना हैं—विदुषी गोपिका वर्मा। नृत्य प्रदर्शन के दौरान इनके मोहन भाव-भंगिमायें न केवल शुद्ध एवं चित्ताकर्षक दिखते हैं, बल्कि दर्शन समुदाय पर जादुई असर भी डालते हैं। प्रस्तुत है प्रख्यात नृत्यांगना से दीपक कुमार सिन्हा के साथ हुई बातचीत।

—सम्पादक

सम्पर्क: मंसाराम का अखाड़ा, पटना सिटी, पटना-800008

ई-मेल: deepakddk11970@gmail.com

प्रश्न: मनुष्य की पहली भाषा मानी जाती है—नृत्य। मान्यता है कि जब वह बोलना भी नहीं जानता था, उस वक्त भी वह नृत्य करना जानता था। हमारा आशय आपसे यह है कि नृत्य की दुनिया में आपका पदार्पण कैसे हुआ?

उत्तर: मैं आपके विचार से बिल्कुल सहमत हूँ। यह भावनाओं को प्रकट करनेवाली प्रथम भाषा है। आदिम संस्कृति में इसके प्रमाण मिलते हैं। मैं जब ढाई-तीन साल की थी, तभी से नृत्य करने लगी थी। ऐसा मैं अपनी माँ को नृत्य करते देख, किया करती थी। चूँकि इस ओर हमारी अभिरुचि थी, इसलिए मुझे विधिवत सिखलाने की व्यवस्था की गई। पहले मुझे भरतनाट्यम सिखलाया गया। कुछ ही दिनों बाद इसे छोड़कर मैं मोहिनीअट्टम सीखने लगी। ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि मेरी दादीजी की इच्छा थी कि मैं मोहिनीअट्टम सीखूँ और इसी में अपना कैरियर बनाऊँ। वह इस नृत्य विधा को जानती थीं। उन्हीं की प्रेरणा से मैंने श्रीमती गिरिजा एवं चन्द्रिका कुरूप जी से अपनी दादी जी के मार्गदर्शन में इसे सीखना आरम्भ किया।

प्रश्न: अपनी पहली प्रस्तुति के विषय में कुछ बतलाना चाहेंगी?

उत्तर: बस इतना ही कि उस वक्त मेरी माँ और मेरी गुरु माँ दोनों ने मिलकर मुझे सजाया और बार-बार यही बता रही थी कि घबराना नहीं। त्रिवेंद्रम में यह प्रस्तुति हुई थी। मन में कुछ घबराहट थी, बावजूद इसके उन्होंने मुझे जैसा सिखलाया था, मैं उसी तरह का नृत्य किया। हॉल में मेरा उत्साहवर्द्धन के लिए परिवार के सभी लोग मौजूद थे। मेरे नृत्य की बहुत प्रशंसा हुई। मेरी गुरु माँ ने भी बहुत तारीफ की। इसके बाद मैंने मन-ही-मन ईश्वर को धन्यवाद देते हुए, वहाँ उपस्थित सभी लोगों का चरण स्पर्श कर आशीर्वाद लिया।

प्रश्न: प्राय: सांस्कृतिक कार्यक्रमों का शुभारंभ कलाकार सरस्वती वंदना से करते हैं। लेकिन आप अपने कार्यक्रम का शुभारंभ श्रीगणेश वंदना से करती हैं। ऐसा क्यों?

उत्तर: श्री गणपति प्रत्यक्ष तत्त्व हैं। ये कर्त्ता, धर्ता और हर्ता भी हैं। ये आनन्दमय, ब्रह्ममय, वाङ्मय और चिन्मय हैं। ये ज्ञानमय और विज्ञानमय भी हैं। ये ही वाक् के चार स्थान हैं। ये ही तीनों गुण से और तीनों काल से बाहर हैं। इन्हें ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र का एकाकार रूप भी माना जाता है। इनका एक रूप नटेश का भी है। कला की भाषा में इसे विश्वात्मा का नृत्य भी कहा जाता है। इसलिए मैं अपने नृत्य का शुभारम्भ श्री गणेश वन्दना से करती हूँ।

प्रश्न: केरल के कथकलि और मोहिनीअट्टम दो शास्त्रीय नृत्य शैलियों की उत्पत्ति मानी जाती है। दोनों में यदि कुछ समानता है, तो बतलाने की कृपा कीजिए।

उत्तर: मेरी दृष्टि में कोई समानता नहीं है। कथकलि अभिनय प्रधान नृत्य है। उसमें वीर रस का भाव और नाटकीयता अधिक है। मोहिनीअट्टम भावपूर्ण वैष्णव नृत्य है। यह शुद्ध रूप से लास्य नृत्य है। इसमें श्रृंगार रस का भाव होता है। हालाँकि इस विद्या के कुछ विद्वानों का मानना है कि इसमें भरतनाट्यम का चटकीलापन और कथकलि की गहरी भावधारा का समन्वय है।

प्रश्न: आपकी दृष्टि में भारतीय शास्त्रीय नृत्य के कितने भेद हैं?

उत्तर: मुख्य रूप से इसके दो भेद हैं— उद्धत और मृदु। ताण्डव उद्धत नृत्य है जबकि मृदु लास्य नृत्य है। मोहिनीअट्टम लास्य नृत्य है। यह स्त्रियों द्वारा भाव, गान और ताल के साथ किया जाता है।

प्रश्न: क्या बिना ताल के नृत्य की कल्पना की जा सकती है?

उत्तर: नहीं, शास्त्रीय नृत्य में तो बिल्कुल नहीं। यह नृत्य का प्राण आधार है। मैं यह भी बतलाना चाहती हूँ कि ताल शब्द दो अक्षरों के योग से बना है। इसका तात्पर्य यह भी है कि 'ता' से ताण्डव और 'ल' से लास्य। मेरी दृष्टि में सभी प्रकार के नृत्यों का प्राण ताल ही है।

प्रश्न: क्या मोहिनीअट्टम की उत्पत्ति केरल के लोकनृत्य 'कुटियाट्टम' से हुई है?

उत्तर: कुटिट्याटट्म से नहीं, ककोटि्टकलि और कंस नाटकम जैसी केरल की स्थानीय कलाओं के कुछ तत्त्वों का समावेश इसमें हुआ है। यह देवदासी परम्परा का प्राचीन नृत्य रूप है, जो भगवान विष्णु को समर्पित है।

प्रश्न: इसका नाम मोहिनीअट्टम कैसे पड़ा?

उत्तर: मोहिनीअट्टम दो शब्दों के योग से बना है। मोहिनी और अट्टम। मोहिनी मन को मोह लेनेवाली महिला को कहते हैं। अट्टम नृत्य को कहा जाता है। अर्थात् महिलाओं द्वारा मोहक ढंग से प्रस्तुत किया जानेवाला नृत्य है— मोहिनीअट्टम।

प्रश्न: जैसाकि आपने बताया कि मोहिनीअट्टम का सम्बंध भगवान विष्णु से है। क्या कोई कथा अथवा पूजा परम्परा का इससे सम्बंध है?

उत्तर: भगवान विष्णु का एक रूप 'मोहिनी' का भी है। इसी मोहिनी रूप पर आधारित यह नृत्य शैली है। विष्णु शब्द विष् धातु से बना है। इसका अर्थ है—व्याप्त होना। जो विश्व में सर्वत्र परिव्याप्त है, वह विष्णु है। भगवान के मोहिनी रूप की दो कथाएँ प्रचलित हैं। एक है—भस्मासुर की, जो भगवान शिव से वरदान पाकर उन्हें ही भस्म करने को आतुर हो गया, तब उसे रोकने हेतु भगवान विष्णु मोहिनी रूप धारण कर उसके साथ नृत्य करने की कथा है। इसी प्रकार दूसरी कथा है—सागर मंथन के उपरान्त मोहिनी रूप धारण कर दैत्यों से अमृत कलश लेकर देवताओं को अमृत पान कराने वाली।

प्रश्न: पद्मनाभ स्वामी के सम्बंध में कुछ बतलाना चाहेंगी?

उत्तर: भगवान विष्णु का एक नाम पद्मनाभ भी है। इस सम्बंध में एक श्लोक है—'पद्मं विश्वं करे स्थितम्'। भगवान विष्णु के हाथ में पद्म (कमल) के रूप से विश्व है। प्रकृति इसके पत्ते हैं, परिवर्तन केसर और चेतना इसका नाल है। इसे विश्वव्यापी और अविनाशी तत्त्व माना गया है।

प्रश्न: मोहिनीअट्टम और गुरु कल्याणी कुटि्टअम्मा एक-दूसरे के पर्याय माने जाते हैं। क्या आपको भी उनसे सीखने का अवसर मिला?

उत्तर: हाँ, यह सौभाग्य मुझे मिला है। प्रातः स्मरणीय नृत्यमाता कल्याणी कुटि्टअम्मा जी से केरल कलामंडलम् में

रहकर उनसे गुरु-शिष्य परम्परा के अंतर्गत इस नृत्य की बारीकियों को सीखी हूँ। मोहिनीअट्टम के संरक्षण संवर्द्धन में उनका जो योगदान है, वह वंदनीय है। मैं उनकी सदैव ऋणी रहूँगी, जिनके संरक्षण में प्रवीणता हासिल की और यहाँ तक पहुँच सकी हूँ।

प्रश्न: क्या अन्य शास्त्रीय नृत्य शैलियों जैसे भरतनाट्यम, ओडिशी, कुचिपुडि और कथक की तरह इसमें भी पद संचालन किया जाता है?

उत्तर: देखिए, यह मोहन नृत्य है। इसलिये इसमें बहुत ही सलीके से पद संचालन किया जाता है, बिल्कुल मणिपुरी नृत्य की तरह।

प्रश्न: इसकी वेशभूषा बहुत ही आकर्षक होती है। इसकी विशेषता के सम्बंध में बतलाना चाहेंगी?

उत्तर: इसमें केरल की पूरी शृंगार परम्परा निहित है। नृत्यांगना मोहक दिखे इसके लिए सफेद कसाम्बू साड़ी, पुष्पहार तथा आभूषण से सजाती है। मेक-अप भी इस प्रकार किया जाता है कि भाव का संप्रेषण दर्शक पर प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया जा सके।

प्रश्न: शृंगार रस पर आधारित भारतीय शास्त्रीय नृत्य और महाकवि जयदेव की कालजयी रचना 'गीत गोविन्दम्' का अन्योन्याश्रय सम्बंध है। क्या मोहिनीअट्टम में भी गीत गोविन्द के पदों पर नृत्य किया जाता है?

उत्तर: बिल्कुल, इस कालजयी कृति के अनेक पदों पर मोहिनीअट्टम किया जाता है। इसका मूल कारण इसके पद गेय हैं और नृत्य प्रस्तुति के अनुकूल हैं। इसे अष्टपदी भी कहा जाता है। इस नृत्य शैली का साहित्य पक्ष धार्मिक और पौराणिक कथाओं की मिश्रित रचना है। महाकवि वल्लतोल द्वारा इस नृत्य कला को पुनर्जीवित कर इसकी लोकप्रियता तथा प्रसार के लिए अथक परिश्रम किया गया। उनकी रचनायें उच्च श्रेणी की हैं।

प्रश्न: अन्य रचना जो इस नृत्य के लिए महत्त्वपूर्ण हो?

उत्तर: त्रावणकोर के राजा और महान कवि स्वाति तिरूनाल की रचनाओं पर इसे प्रस्तुत किया जाता है। उन्होंने एक से बढ़कर एक गेय पदों की रचना की है। वे अनेक भाषाओं के जानकार थे। उनकी एक लोकप्रिय रचना इस प्रकार है—

''विश्वेश्वर दर्शन कर चल मन तुम काशी
पद्मनाभ कमल नयन त्रिशम्भू महेश
भजले इन दो स्वरूप रखे अविलासी
विश्वेश्वर दर्शन कर चल मन तुम काशी''

इसी प्रकार संस्कृत और मलयाली के जिन कवियों ने भगवान पद्मनाभ से संबंधित गेय पदों की रचना की है, उन पदों के साथ ही रामायण, महाभारत, भागवत और ललिता सहस्रनाम के अनेक पदों पर भी इसकी प्रस्तुति की जाती है।

प्रश्न: आपका संबंध त्रावणकोर राजपरिवार से है। क्या आपके पूर्व भी नृत्य-संगीत की परम्परा रही है। यदि हाँ, तो कौन-कौन सी विधा के कलाकार हुए हैं, बतलाना चाहेंगी?

उत्तर: भारतवर्ष में राजपरिवारों द्वारा कला-संस्कृति का संरक्षण-संवर्द्धन किए जाने की परम्परा रही है। यहाँ बच्चों की अभिरुचि के अनुसार गायन, वादन, नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला या हस्तशिल्प विधि के शिक्षण-प्रशिक्षण की भी परम्परा रही है। यही वजह है कि राजपरिवार के सदस्य भी कला, संगीत अथवा साहित्य में निपुण होते हैं। इसी परम्परा के अंतर्गत राजा स्वाति तिरूनाल हुए जो मूलत: कवि-साहित्यकार थे। उन्होंने संस्कृत और मलयाली सहित अठारह भाषाओं में पद्य और गद्य तो रचा ही संगीत और नृत्य-शैलियों का संरक्षण-संवर्द्धन भी किया। उनकी कालजयी रचना 'पद्मनाभ-प्रेयसी' पर इसे प्रस्तुत करने में अद्भुत आनन्द का अनुभव होता है। इसी परम्परा मे राजा रवि वर्मा हुए, जिनके चित्र पूरे विश्व में लोकप्रिय हुए। उन्होंने चाक्षुष कला को नई गति प्रदान की। तब, यह भी सत्य है, कि कला, संगीत और साहित्य में निपुण होते हुए भी राज परिवार के अधिकांश सदस्य सार्वजनिक रूप से इसका प्रदर्शन नहीं करते हैं, और न ही इसे व्यावसायिक तौर पर मंचीय प्रस्तुति का माध्यम ही बनाते हैं।

प्रश्न: आप तो अंतरराष्ट्रीय स्तर की कलाकार हैं। आपकी दृष्टि में अभी मोहिनीअट्टम की क्या स्थिति है?

उत्तर: बहुत अच्छी। आज मोहिनीअट्टम के कलाकार बड़ी

संख्या में हैं, जो राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इसे सार्वजनिक रूप से प्रस्तुत कर रहे हैं। इनमें प्रमुख हैं—डॉ. कनक रेले, डॉ. नीना प्रसाद, विदुषी सुनन्दा नायर, साजी मेनन, रम्या जगदीश, जयप्रभा मेनन, पललवी कृष्णनन, विजय लक्ष्मी, राधा दत्त, स्मिता नायर आदि... आदि...। इसी प्रकार फ्रांस की ब्रिजिट शैटनेर भी इसकी लोकप्रिय नृत्यांगना हैं। इन सभी के निर्देशन में सैंकड़ों लड़कियाँ इसे सीखकर अपना करियर बना रही हैं।

प्रश्न: भारत के कई प्राचीन मंदिरों में नृत्य-भंगिमाओं की मूर्तियाँ हैं। क्या मोहिनीअट्टम की भंगिमा भी किसी मंदिर में है। यदि है तो कहाँ?

उत्तर: मेरी दृष्टि में केरल का विश्व प्रसिद्ध पद्मनाभ स्वामी मंदिर में कुछ भंगिमायें हैं जो इस नृत्य से मिलती-जुलती हैं।

प्रश्न: क्या आपने मोहिनीअट्टम के माध्यम से भगवान बुद्ध, भगवान महावीर और गुरु गोविन्द सिंह जी, आम्रपालि और कोशा पर आधारित नृत्य-नाटिका प्रस्तुत की है?

उत्तर: मोहिनीअट्टम में दशावतार की प्रस्तुति की जाती है, जिसमें एक अवतार बुद्ध का भी आता है। मैं दशावतार या किसी ऐतिहासिक घटनाक्रम पर आधारित नृत्य-नाटिका की प्रस्तुति नहीं कर सकी हूँ।

प्रश्न: यह शुद्ध रूप से वैष्णव नृत्य है। इसे ईश्वर भक्ति का माध्यम माना जाता है। कैसे बतलाना चाहेंगी।

उत्तर: भारतीय संस्कार में तत्त्वज्ञान और ईश भक्ति का एक मनोहर और कलापूर्ण रूप है—नृत्य। ईश्वर भक्ति के रूप में जिस प्रकार हम फूल, फल, चन्दन, प्रतिमा, चित्र, शतनाम, कीर्तन आदि करते हैं, उसी प्रकार हम नृत्य के माध्यम से ईश्वर की आराधना करते हैं। भारतीय संस्कृति में नृत्य को देवी-देवताओं का प्रत्यक्ष और शान्त यज्ञ माना गया है।

प्रश्न: इसके गायक और अन्य संगत कलाकारों के विषय में जानकारी देने की कृपा करें कि उनकी भूमिका इसमें किस प्रकार की है?

उत्तर: इसमें एक गायक (नटूवंगम) होते हैं। उनकी आवाज सुरीली होने के साथ ही कर्णप्रिय भी होनी चाहिए। इसमें गेय पदों को अत्यन्त मधुरता के साथ सोपानम् शैली में गाया जाता है। इसमें मुख्य रूप से पाँच प्रकार के वाद्य यंत्रों का उपयोग किया जाता है। मृदंगम् ताल के लिये तथा इदक्का, बाँसुरी, वीणा और किञ्हितलम पर सिद्धहस्त कलाकार नृत्य में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। कुछ कलाकार अब वायलिन का भी प्रयोग करने लगे हैं।

प्रश्न: वर्तमान में इसके संरक्षण-संवर्द्धन के लिये क्या-क्या प्रयास किए जा रहे हैं?

उत्तर: मोहिनीअट्टम के वरिष्ठ कलाकारों द्वारा दक्षिण भारत के सभी राज्यों में स्कूल, कॉलेज और कला संस्थान खोल कर नृत्य प्रशिक्षण का कार्य किया जा रहा है। इस माध्यम से बड़ी संख्या में बच्चे इसे सीख रहे हैं। दूसरा प्रयास सरकारी स्तर पर भी किया जा रहा है। इस माध्यम से प्रतिभावान कलाकारों को मंच उपलब्ध कराया जा रहा है, छात्रवृत्ति दी जा रही है। इस कार्य में राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कम्पनियाँ भी महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही हैं, जिनके माध्यम से कलाकारों को फेलोशिप एवं डाक्युमेंटेशन आदि का कार्य किया जा रहा है। इसी प्रकार मीडिया की भूमिका भी उल्लेखनीय है, जो इन सभी कार्यों का सदैव पूरी तत्परता के साथ प्रचार-प्रसार करती है।

प्रश्न: नृत्य-नाटिकाओं में भी अपनी भागीदारी होती रहती है। आप 'स्त्री-स्पन्दन' शीर्षक नृत्य-नाटिका में शामिल रहती हैं। इस संबंध में कुछ बतलाना चाहेंगी?

उत्तर: स्त्री-स्पन्दन महाभारत की तीन प्रमुख महिलाओं कुन्ती, गांधारी और द्रौपदी पर आधारित नृत्य नाटिका है। ये तीनों नारियाँ भारती परम्परा में आदर्श की पर्याय हैं। इस नृत्य नाटिका में कथक नृत्यांगना शोभना नारायण-कुन्ती, ओडिशी की शेरॉन लावेन—गांधारी और मैं द्रौपदी के चरित्र को मंच पर प्रस्तुत करती हूँ। मनमोहक नृत्य नाटिका है यह।

प्रश्न: भारतीय संस्कृति का मूल आधार विविधता में एकता को माना जाता है। क्या इस आधार को मजबूत बनाने में नृत्य शैलियों की भी भूमिका है?

उत्तर: बिल्कुल। भारतभूमि नृत्यमय है। हिमालय की बर्फीली चोटियों से लेकर समुद्री लहरों से पखारा हुआ दक्षिण,

पूर्वोत्तर से लेकर पश्चिम तक के भारतवर्ष के सौन्दर्य का पर्याय यहाँ के पारम्परिक, लोक और शास्त्रीय नृत्य ही हैं। चाहे मणिपुरी हो या कथक, ओडिशी, कुचिपुडि, भरतनाट्यम, कथकलि हो या फिर मोहिनीअट्टम। इनका मनोरम स्वरूप अद्भुत है। इनकी समृद्ध परम्परा रही है। इसी प्रकार लोक नृत्यों के कम-से-कम एक सौ प्रकार तो हैं ही। इतनी विविधता किसी दूसरे देश में नहीं मिलती है। प्रेम, शान्ति, एकता एवं सद्भावना इसका मूल ध्येय एवं आधार है। यही भारतीय संस्कृति की जड़ है।

प्रश्न: आज फ्युजन संगीत हर जगह देखने-सुनने को मिलता है। क्या शास्त्रीय नृत्य शैलियों के लिए इस प्रकार के प्रयोग उचित हैं?

उत्तर: शास्त्रीय नृत्य शैलियों का अपना विधान है। उसी के अंतर्गत प्रदर्शन किया जाता है। परम्परा और शास्त्रीयता को ध्यान में रखकर यदि प्रयोगात्मक प्रदर्शन किया जाए तो उचित है। अनेक अवसरों पर मैंने भी कथक, मणिपुरी, ओडिशी और भरतनाट्यम के कलाकारों के साथ प्रयोगात्मक कार्यक्रमों में प्रस्तुति दी है, लेकिन सभी कलाकार परम्परा और शास्त्रीयता की मर्यादा में रहकर प्रदर्शन करते हैं।

प्रश्न: नयी पीढ़ी के कलाकारों के लिए आप कोई संदेश या सुझाव देना चाहेंगी?

उत्तर: परम्परा को ध्यान में रखकर सीखें और इसकी शास्त्रीयता से बिना छेड़छाड़ किए कड़ी मेहनत कर बेहतर कलाकार बनें। आप ही के द्वारा इस नृत्य की परम्परा को आगे बढ़ना है। इसलिए श्रेष्ठ कलाकार बनेंगे, तभी इस पर आनेवाली पीढ़ी गर्व करेगी।

◆◆◆

जब हुआ लोकतंत्र का अपहरण

मनोहर पुरी

...प्रातः एक अन्य मित्र से पता चला था कि रात्रि विश्वविद्यालय के लगभग सभी छात्रावासों पर छापे मारे गए। कई छात्रों को नाइट सूट में ही उठा कर थाने ले जाया गया है। कईयों को बड़ी बेरहमी से पीटा भी गया है। गर्ल्स हॉस्टल को भी पुलिस वालों ने रौंदा डाला था। अनेक दर्दनाक और शर्मनाक किस्से हवा में तैरने लगे थे, पुलिस को भी खुलकर खेलने का अवसर मिल गया था...

प्रस्तुत है आपात स्थिति पर लिखे गए प्रथम उपन्यास 'उन्नीस महीने का एक अंश-सं.

सम्पर्क: 82, साक्षर अपार्टमेंट्स, ए-3, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063

मैं प्रातः ही तैयार होकर घर से चल पड़ा। मैंने सोचा कि ऑफिस में जाने से पूर्व यह अच्छा रहेगा कि मैं नैयर साहब से उनके घर पर मिल लूँ ताकि ऑफिस की सारी गतिविधियों की जानकारी मिल सके। नैयर साब दरियागंज में रहते थे, फलतः मैंने उचित समझा कि मैं रिंग रोड पकड़ूँ और राजघाट से पहले वाले मोड़ से अंदर मुड़ जाऊँ, जहाँ से एक छोटी सड़क अंसारी क्षेत्र से मिलती थी; उसी के किनारे पर नैयर साहब का मकान था।

राजनाथ नैयर स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व ही दिल्ली में आ बसे थे और जहाँ पर उनकी गृहस्थी पूरी तरह से जम गई थी। दो बड़े बेटे नरेंद्र और सुरेंद्र अमरीका में जा बसे थे और यदा-कदा ही भारत आ पाते थे। सबसे छोटा लड़ा था महेश जो इस समय राजनीति विज्ञान में एम.ए. (प्रीवियस) का छात्र था दिल्ली विश्वविद्यालय में। बहुत ही कोमल स्वभाव का था महेश, पर जितना उसका दिल कोमल था, उतनी ही दृढ़ थी उसकी इच्छाशक्ति। राजनीति विज्ञान का छात्र होने के कारण लोकतांत्रिक मूल्यों, मानवीय अधिकारों एवं नागरिक स्वतंत्रताओं के महत्व को वह भली-भाँति जानता था। वह दिल्ली विश्वविद्यालय का सर्वश्रेष्ठ वक्ता था। छात्रों और अध्यापकों के मन में उसने एक विशेष स्थान बना रखा था अपने लिए। उसके सुलझे विचारों के कारण प्राध्यापक भी उससे विचार-विमर्श करने में रुचि लेते थे।

जब इलाहाबाद हाईकोर्ट का निर्णय आया एवं इंदिरा गाँधी को चुनाव में भ्रष्ट साधन अपनाने का दोषी पाया गया तो जनता में हर्ष की लहर दौड़ गई। इसी आधार पर उनका चुनाव रद्द किया गया, इसके साथ ही उन्हें 6 वर्षो तक चुनाव लड़ने के अधिकार से भी वंचित किया गया। महेश न्यायपालिका के इस निर्णय को पढ़कर बहुत प्रसन्न हुआ था, उसे लगा कि इससे भारत में न्यायपालिका की प्रतिष्ठा बढ़ेगी और कार्यपालिका का जो अनावश्यक प्रभुत्व सारे देश पर बढ़ता जा रहा था, उसमें कमी आएगी; परंतु ऐसा कुछ नहीं हुआ, बल्कि इसके विपरीत एक बहुत बड़े नाटक का आयोजन किया गया। सरकारी खर्चे पर दिल्ली के सीमांत प्रदेशों से ग्रामीणों को वाहनों में भर-भरकर दिल्ली लाया गया और इस तरह का ढोंग किया गया जैसे सारा

राष्ट्र एक स्वर से इंदिरा गाँधी की तानाशाही स्वीकार करने को तैयार है। कितनी बड़ी विडंबना थी—लोकतंत्रीय साधनों से राजतंत्र की स्थापना। किराए के इन हजारों लोगों के समूह को इंदिराजी ने संबोधित करते हुए कहा कि ऐसी अड़चनों से वह घबराने वाली नहीं, और अब जनता साथ है तो फिर कमी किस बात की। सुनकर उबल उठा था महेश। यह कैसा लोकतंत्र है। यदि न्यायपालिका के निर्णय का कोई अर्थ नहीं तो न्यायपालिका के प्रभुत्व का ढोंग क्यों।

पर ढोंग तो चल ही रहा था चारों ओर। ढोंग की विरासत मिली थी कांग्रेस को अंग्रेजों से। अंग्रेज भी हर बात को न्यायपूर्वक ढंग से करने का दिखावा शुरू से करते आए थे। उनका इस देश में व्यापारी के रूप में आना, यहाँ पर राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करना, पोषण की आड़ में शोषण, उन्नति की आड़ में लूट, धर्म के प्रति आस्था के रूप में धार्मिक वैमनस्यता, अल्पसंख्यकों के हित-साधनों के द्वारा देश विभाजन—सभी ढोंग ही तो थे। ढोंग और ढोंग की राजनीति सीखी थी कांग्रेस ने विदेशी शासकों से। पर अंग्रेज तो विदेशी थे; इस देश को लूटने के पीछे उनके कुछ निहित स्वार्थ थे। उन स्वार्थों को पूरा करने के लिए उन्हें जो भी करना पड़ा उन्होंने किया।

कांग्रेस के नेता तो यहाँ के निवासी हैं, यहीं की मिट्टी में पैदा हुए हैं। उनके हित इसी देश और इसकी मिट्टी से जुड़े हैं। उनके सामने दरिद्र, शोषित एवं पीड़ित भारत की तस्वीर है फिर कोई ठोस सृजनात्मक कार्यक्रम क्यों नहीं अपनाया गया इन दिनों। तीस वर्षों में निरंतर कांग्रेस ने ढोंग की राजनीति का सहारा क्यों लिया? उज्ज्वल भविष्य की आड़ में बड़ी-बड़ी योजनाओं का ढोंग, अधिक स्वायत्तता के नाम पर राज्यों का पुनर्गठन और सत्ता के केन्द्रीयकरण को बढ़ावा देने के रूप में भाषाई एवं प्रांतीय दंगे। न जाने क्या-क्या ढोंग होते रहे हैं इस देश में। सबसे बड़ा ढोंग जो यहाँ होता है, वह है प्रजातंत्र की आड़ में व्यक्तिवाद की स्थापना। सत्ता के विकेन्द्रीयकरण के नाम पर सत्ता का केन्द्रीयकरण। जब तक लोकतंत्र के नाम पर यह सब चलता रहा, चलने दिया गया और आज जब लोकतंत्र कुरसी बचाए रखने में आड़े आया तो इस तरह के हथियारों का सहारा लेकर लोकतंत्र की हत्या कर दी गई। पराकाष्ठा है यह सब इस ढोंग की, और इस नीति की चरम परिणति, जिसका प्रारंभ श्री नेहरू बहुत पहले कर गए थे।

एक बहुत बड़ा जुलूस ले गया था महेश पार्लियामेंट स्ट्रीट तक। छात्रों के उस जुलूस को आगे बढ़ने से पुलिस द्वारा रोक दिया गया था। लोकतंत्र की रक्षा की उनकी माँग का उत्तर दिया गया था लाठियों के प्रहारों से। सैकड़ों छात्र गिरफ्तार कर लिये गए। इससे पहले कि जुलूस छिन्न-भिन्न होता और वह गिरफ्तार कर लिया जाता, वहाँ से निकल आया था महेश। श्रीमती गाँधी ने जयप्रकाश नारायण पर जिस पुलिस को भड़काने का आरोप लगाया था, वह किस कदर सत्ता की स्वामिभक्त थी, स्वयं देख चुका था वह। कितनी निर्ममता से छात्रों को पीटा गया था, जैसे वे इस देश के नागरिक न होकर किसी शत्रु देश के आक्रामक बंदे हों। पुलिसकर्मियों ने शायद यह भी भुला दिया था कि उनके अपने लड़के-लड़कियाँ भी इस जुलूस में हो सकते हैं। जैसे अंग्रेजों ने कुछ थोड़े से हिन्दुस्तानियों की पुलिस और सेना बनाकर उनकी सहायता से वर्षों भारत को गुलाम रखा, वैसे श्रीमती गाँधी पुलिस दमन के दम पर प्रजातंत्र की हत्या कर अपना राजतंत्र स्थापित करने पर आमादा थीं शायद।

अपने घर लौटना उसने उचित नहीं समझा और वह श्रीराम कॉलेज ऑफ कॉमर्स के छात्रावास में जाकर सोने की योजना बना विश्वविद्यालय की ओर बढ़ चला। मौरिस नगर के चौराहे पर उसे ऐसे अपरिचित चेहरे दिखाई देने लगे जो उसके मन में शंका उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त थे। उसने टहलते-टहलते एक चक्कर लगाया था विश्वविद्यालय का और लगभग सभी 'पाइंट्स' पर उसे संदिग्ध चेहरे तैनात दिखाई दिए थे। महेश समझ गया कि किसी बहुत बड़े अभियान की भूमिका बन रही है, और लौट पड़ा था वह वहाँ से भी।

ज्यों ही वह रोशनारा रोड के थाने के सामने से गुजरा, उसे एक सबइंस्पेक्टर ने रोक लिया। अपने आपको पुलिस ही हिरासत में समझकर ठिठक गया और स्वयं को निर्भीक दिखाता हुआ उसकी ओर बढ़ा ही था कि इंस्पेक्टर ने हलो कहते हुए अत्यंत आत्मीयता से उसका हाथ थाम लिया था। उसे अचंभा हुआ था, जैसे कोई जल्लाद फाँसी पाने वाले से कहे कि यहाँ से भाग जाओ। वह सब इंस्पेक्टर बोला, "तुम कमाल के आदमी हो, कितने ही लोग तुम्हें पहचानते हैं। जितनी जल्दी हो सके, यहाँ से निकल जाओ; और फिर जब तक स्थिति सामान्य न हो, इस ओर मत आना।" पास आते स्कूटर को हाथ देकर उसने रुकवा लिया था। महेश तत्काल बिना सोचे-समझे ही बैठ गया उसमें। रात उसने एक परिचित के घर जाकर काटी थी।

प्रात: एक अन्य मित्र से पता चला था कि रात्रि विश्वविद्यालय

के लगभग सभी छात्रावासों पर छापे मारे गए। कई छात्रों को नाइट सूट में ही उठाकर थाने ले जाया गया है। कईयों को बड़ी बेरहमी से पीटा भी गया है। गर्ल्स हॉस्टल को भी पुलिस वालों ने रौंद डाला था। अनेक दर्दनाक और शर्मनाक किस्से हवा में तैरने लगे थे। पुलिस को खुलकर खेलने का अवसर मिल रहा था, जिसका वह पूरा-पूरा फायदा उठा रही थी।

थोड़ी देर बाद यह भी पता लग गया था कि कई छात्र नेताओं को उनके घरों से भी पकडा गया है और महेश की खोज जोर-शोर से की जा रही है। रात को उसके घर पर भी पुलिस पहुँची थी परंतु उसे वहाँ न पाकर उसे वापस लौटना पड़ा था। उसके पिता का उच्च अधिकारी होना भी उन्हें अपमान के घूँट पीने से नहीं बचा पाया था। पुलिस ने नैयर साहब के स्पष्ट इनकार के बाद भी घर की पूरी तलाशी ली थी। सारा फर्नीचर तथा घर अस्त-व्यस्त कर डाला था पुलिस ने। लगा किसी सरकारी अधिकारी के घर की बजाय किसी तस्कर अथवा अपराधी के अड्डे पर छापा मारा गया हो। पुलिस ने जाते समय धमकी भी दी थी कि यदि महेश को शीघ्र ही थाने में उपस्थित नहीं किया गया तो उसके गंभीर परिणाम होंगे। संकेत रूप में पुलिस इंस्पेक्टर यहाँ तक कह गया था कि आप तो सरकारी कर्मचारी हैं, यदि आपको अपनी नौकरी बचानी है तो महेश को इस प्रकार के 'देशद्रोही' कार्यों से बाज आना ही होगा।

नौकरी ही तो नहीं बचानी थी राजनाथ नैयर को, उसको बचाना था अपना स्वाभिमान, नागरिक अधिकार एवं लोकतांत्रिक मूल्य। यही तो सिखाते रहे हैं वह आज तक अपने बच्चों को। इसी के दम पर ही तो वह सदैव कहते रहे हैं कि भले ही पाकिस्तान बन गया है और हजारों व्यक्तियों को जान से हाथ धोना पड़ा, लाखों को घरबार छोड़कर आना पड़ा पर स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए यह मूल्य देने में हमें गर्व है। क्या इसीलिए यह मूल्य चुकाया गया था कि देश में तानाशाही की स्थापना हो? नहीं, ऐसा कैसे संभव है।

नैयर साहब जानते थे कि महेश की रगो में गरम खून दौड़ रहा है, जो मार्ग उसे चुनना चाहिए था, वह उसने स्वयं चुन लिया है। मेरा क्या है पका फल हूँ किसी भी दिन टपक पड़ूँगा। नौकरी रहे या जाए, मुझे तो वही करना है जो आज तक करता आया हूँ। हाँ, आगे बढ़कर इस्तीफा दे दूँ तो क्यों? क्या मुझे नौकरी देना किसी व्यक्ति विशेष की कृपा दृष्टि पर निर्भर रहा है? मैंने अपने पद पर रहते हुए सदैव राष्ट्र की सेवा की है। जैसे भी बन पड़ा, अब भी करूँगा। जो भी मूल्य चुकाना पड़े, चुकाऊँगा। मेरा उद्देश्य देश की सेवा है, किसी नेता अथवा अफसर की चापलूसी करके रोटी कमाना नहीं।

नैयर साहब ने ऑफिस में आपातकाल का कभी विरोध नहीं किया। अपने से उच्च अधिकारियों के आदेशों को भी चुनौती नहीं दी परंतु उनके किसी भी अन्यायपूर्ण आदेश को क्रियान्वित भी नहीं होने दिया। धरे-के-धरे रह जाते थे सारे-के-सारे आदेश उनके पास। कोई-न-कोई ऐसा सरकारी अडंगा अड़ाते कि या तो उच्च अधिकारियों को मौन हो जाना पड़ता अथवा काफी समय हो जाने के कारण उस आदेश की उपयोगिता ही समाप्त हो जाती। कितने ही आदेश नैयर साहब की 'पॉकेट वीटो' के कारण ही समाप्त हो गए। इस पर तुर्रा यह कि नैयर साहब अपने अधिकारियों की नजर से कभी नहीं गिरे। वह पहले की तरह ही निरंतर उन्हें सबसे अधिक कुशल अफसर मानते रहे। प्रत्येक बैठक में नैयर साहब अपने अधिकारियों के आदेशों एवं प्रस्तावों का खुलकर समर्थन करते और जब फाइल उनके पास आती तो कोई ऐसी घुंडी फँसाते कि जिसे काटने में अधिकारी तो अधिकारी, स्वयं मंत्री भी हिचकिचाते।

कार्यालय में फैले गुप्तचरी के तंत्र को भी उन्होंने इस तरह छिन्न-भिन्न कर रखा था कि एक ही विषय पर भिन्न-भिन्न रिपोर्ट ऊपर पहुँचती, फलत: किसी पर भी अमल न हो पाता। जब से आपात स्थिति की घोषणा हुई नैयर साहब ने हरसंभव प्रयत्न द्वारा न केवल अनुचित आदेशों को क्रियान्वित होने से रोकने का प्रयास किया बल्कि प्रत्येक आवश्यक समाचार आंदोलनकारियों तक भी पहुँचे, इसकी व्यवस्था भी की। अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के अधिकारों की रक्षा वह जैसे-तैसे कर रहे थे, यह तो मैं स्वयं भी जानता था। हमारे सैक्शन के कितने ही लोग उनके कारण भूमिगत आंदोलन से जुड़ गए थे और नैयर साहब थे कि पूरी तरह निर्लिप्त, जैसे किसी से कुछ लेना-देना ही नहीं।

महेश को लेकर वह कभी उद्विग्न नहीं हुए। जिन दिनों उन्होंने महेश को मेरे पास भेजा था, उसकी गिरफ्तारी की जी-तोड़ कोशिश की जा रही थी। महेश का इस प्रकार मेरे यहाँ आना अत्यंत जोखिम का काम था। परंतु नैयर साहब ने इसमें तनिक भी हिचकिचाहट नहीं दिखाई थी, बल्कि दृढ़ता से काम करने का आदेश दिया था। मुझे भी जिस विषम स्थिति में बचा लिया था उन्होंने, वह उन्हीं बूते का काम था। वास्तव में वह जिस धीरज एवं गंभीरता से काम करते थे वह अविश्वसनीय था,

परंतु शायद आयु एवं अनुभव की परिपक्वता ने उन्हें यह सब सिखा दिया था।

अंडरग्राउंड होने के बाद भी महेश का उनके साथ निरंतर संपर्क रहा, परंतु किसी को कानों कान खबर नहीं हुई जब तक वह गिरफ्तार नहीं हुआ। उसका मेरे साथ भी निरंतर संपर्क रहा। तानाशाही की जड़ें उखाड़ फेंकने के लिए जो कुछ भी वह कर पाया, उससे पीछे नहीं हटा। मुझे आज भी आश्चर्य होता है कि मेरे लिखे समाचारों की छपी हुई प्रति वह मात्र 12 घंटे में लाकर मुझे सौंप देता था। कितना सक्रिय संगठन खड़ा कर लिया था उसने छात्रों का। एक बार मैंने उससे पूछा था, ''तुम नेता नहीं हो फिर यह सब संगठन-क्षमता कहाँ से आई है तुममें?''

''क्या आप समझते हैं कि केवल नेता लोग ही काम कर सकते हैं, हम नहीं।'' उसने धीमे लेकिन दृढ़ स्वर से कहा था। ''काम तो उत्साह और लगन से होता है। नेता तो निमित्त मात्र होता है। यह बात ठीक है कि नेता के चारों ओर इकट्ठे होने की प्रवृत्ति होती है लोगों में। इस कारण ऐसा लगने लगता है कि सब नेता के इशारे पर हो रहा है। छात्रों में जो उत्साह है, मैंने उसे मात्र दिशा दी है। दिशा न दी जाती तो संभव है कि कोई छात्र हिंसक हो उठता तो कोई निराश।''

''जो संत्रास छात्र वर्ग में व्याप्त था उसकी परिणति पागलपन में भी हो सकती थी और राजनीतिक हत्याओं के दानवपन में भी। मैंने मात्र यह प्रयत्न किया है कि तानाशाही शक्तियों को मात दी जाए तो वह भी लोकतांत्रिक साधनों के द्वारा। गाँधी जी के रास्ते पर चलने में भले ही अधिक कष्ट सहने पड़े, परंतु जीत अवश्य ही सुनिश्चित रहती है।''

''मेरे कितने ही मित्रों ने कहा कि वह पुराना तरीका अब नहीं चल पाएगा। इसके लिए उन्होंने तर्क दिया कि अंग्रेज लोकतांत्रिक मूल्यों के महत्त्व को स्वीकार करते थे और विदेशी होने के कारण वे सर्वत्र घृणा के पात्र भी थे। जबकि इंदिरा सरकार का एकमात्र उद्देश्य सत्ता में रहना है और उसके लिए लोकतांत्रिक मूल्यों का हनन किसी भी सीमा तक करने के वह तैयार हैं। इसके अतिरिक्त एक बहुत बड़ा वर्ग सुविधाभोगी वर्ग है। इस वर्ग में ऐसे लोग सम्मिलित हैं जिनके सीधे स्वार्थ सत्ता से के साथ जुड़े हैं और वे लोग किसी भी हालत में इंदिरा शासन को डोलने देना नहीं चाहते।'' उसने पुनः कहा था, ''यद्यपि इन तर्कों को झुठलाया नहीं जा सकता फिर भी हमारी जनता अभी भी इतनी शिक्षित नहीं है कि उसे वर्तमान सत्ता के विरुद्ध हिंसक रूप से भड़का कर पुनः संयत कर लिया जाए। अराजकता के माध्यम से लोकतंत्र की स्थापना कभी भी संभव नहीं हुई और यदि कभी इस प्रकार लोकतंत्र आया भी है तो वह समूचा न होकर कहीं-न-कहीं से अपंग अवश्य हुआ है।'' उसकी दूरदृष्टि और राजनीतिक सूझबूझ का मैं कायल हो गया था। वह जिस उत्साह, तीव्रता और निर्भीकता से इस कार्य में लगा था, उसे देखकर विस्मय होता था।

अपने विचारों में खोया जब मैं नैयर साहब के घर पहुँचा तो वह ऑफिस जाने के लिए तैयार ही थे। मुझे देखते ही बोले-''अरे नरेंद्र, तुम्हें तो ऑफिस में बुलाया था। खैर, ठीक है। आओ, मेरे साथ चलो। स्कूटर यहीं छोड़ दो। रास्ते में एक काम भी है, तुम्हारी शायद जरूरत ही पड़ जाए।'' यद्यपि मैं समझ नहीं पाया, फिर भी स्कूटर को एक साइड में खड़ा करके ताला लगा दिया और उनके साथ कार मैं बैठ गया।

कार स्टार्ट करते हुए उन्होंने बताया, ''ऐसा लगता है कि शीघ्र ही मुझे भी नौकरी से अलग कर दिया जाएगा। कुछ-कुछ भनक मेरे विषय में मंत्री जी तक पहुँच गई है। महेश को लेकर भी वह बहुत बिगड़े हुए हैं। वास्तव में महेश के पास से कुछ ऐसे पेपर्स प्राप्त हो गए हैं जिनसे यह सिद्ध हो सकता है कि मैं कहीं-न-कहीं 'इनवॉल्व्ड' रहा हूँ इन मामलों में। इसी बात को ध्यान में रखते हुए मैंने तुम्हें बुलाया था। तुम्हारी छुट्टी भी दो बार बढ़ा चुका हूँ, शायद तीसरी बार मुमकिन न हो। अच्छा हो, तुम ड्यूटी जॉइन कर लो ताकि यदि मुझको अलग भी कर दिया जाए तो बिगड़ी हुई हालत तो तुम थोड़ा सँभाल सको। मैंने देखा कि नैयर साहब की आँखों में एक विचित्र प्रकार की चमक है जैसे वह मन-ही-मन कोई निश्चय कर रहे हो।''

मैंने पूछा महेश कैसे गिरफ्तार हो गया तो वह बोले एक प्रेस में वह कुछ लिट्रेचर छपवाने गया था, वहीं पकड़ा गया। असल में पंजाबी बाग में एक प्रेस है। उसका मालिक छात्र जीवन से ही एक सक्रिय राजनैतिक कार्यकर्ता था और लोकतंत्रीय तथा राष्ट्रभक्त शक्तियों का समर्थक भी। गत दिनों वह मुख्य कार्यकारी पार्षद का दुमछल्ला बन गया था और उसने कई स्वचालित मशीनें सरकार की मदद से लगा ली थीं। जब से इमरजेंसी लगी वह एक मुखबिर का रोल अदा कर रहा था, क्योंकि उसके जनसंघ के कुछ नेताओं से अच्छे ताल्लुकात थे, चुनाँचे जनसंघ के काफी आदमियों को गिरफ्तार करवाने में

कामयाब हो चुका था वह और हम सबके बदले में ईनाम भी खूब मिला था उसे। न जाने क्यों महेश को इस सबकी खबर नहीं थी। एक दिन जब कई प्रेसवालों ने उसे निराश कर दिया तो वह पंजाबी बाग जा पहुँचा। प्रेस का मालिक तो उसे जानता था ही, कॉलेज में उससे दो साल सीनियर रहा था। उसने सबकी बहुत आवभगत की और तुरंत ही काम करके देने को तैयार हो गया। रेगुलर काम करते रहने का वादा भी किया। आंदोलन से हमदर्दी दिखाते हुए काम के बदले में कुछ लेने को भी तैयार नहीं हुआ। उसका पूरा विश्वास जम गया महेश पर। महेश के साथ उसका एक साथी और था, वह भी बहुत प्रभावित हुआ था उससे। प्रेस के मालिक का नाम मैं भूल रहा हूँ। बहरहाल उसने तुरंत मैटर प्रैस में दे दिया और महेश एवं उसके साथी को आराम करने की सलाह दी। शायद बेचारे सप्ताहों से सोए नहीं थे। बाहर चिल्लाती धूप थी और प्रैस के ऑफिस में चल रहा कूलर उन्हें आलस में घेर रहा था। उन्होंने वहीं थोड़ी देर आराम करने की बात मान ली और थोड़ा नाश्ता करके लेट गए। लेटते ही उन्हें नींद आनी ही थी परंतु जब वे उठे तो सारे मैटर सहित पुलिस हिरासत में थे। उन्हें जेल में जाकर ही यह पता लग पाया कि उस व्यक्ति के कारण कितने ही लोग पहले भी गिरफ्तार हो चुके हैं।

नैयर साहब ने बताया कि पुलिस ने गिरफ्तार करने के बाद तीन दिन तक उन्हें अदालत में पेश नहीं किया और हमें ज्ञात नहीं हो सका कि पुलिस ने उन्हें थाने में बंद कर रखा है। चौथे दिन उन्हें अदालत में पेश किया गया और पूछताछ के लिए उन्हें पुलिस की हिरासत में ही रखने की आज्ञा दे दी गई। सात दिन तक वे पुलिस रिमांड में रहे। पुलिस ने उन पर क्या-क्या जुल्म किए यह बात विस्तार में महेश ने तो नहीं बताई। शायद उसने समझा हो कि घरवालों को दु:खी करने से क्या फायदा, परंतु दूसरे लड़के सुरेश ने कुछ बातें मुझे अदालत में बताई थीं। पुलिस ने उन्हें पहले तीन दिन तो बिलकुल भूखा-प्यासा रखा और बीच-बीच में उनकी हल्की पिटाई की जाती रही ताकि वे पूरे स्रोत उन्हें बता दें। वह निरंतर यही पूछते रहे कि कौन व्यक्ति इस आंदोलन को चला रहा है। वह कहाँ है और पैसा कहाँ से मिलता है? कहाँ-कहाँ से वे सामग्री छपवाते हैं और कौन-कौन उसे बाँटता है? उन्होंने जैसा कि तय था, निरंतर यही उत्तर दिया कि जयप्रकाश नारायण हमारे नेता हैं। पैसा जनता स्वयं देती है और सामग्री कहाँ छपती है, उन्हें पता नहीं। जिस भी व्यक्ति को पर्चे मिलते हैं, वह बाँट देता है। बहुत संख्या है ऐसे व्यक्तियों की। उनके नाम न तो उन्हें पता है और न ही संभव है। महेश तो इस मामले में और भी जिद्दी था; वह निरंतर यही कहता रहा मैं कुछ नहीं जानता और यदि जानता भी हूँ तो आपको बताऊँगा नहीं, आप चाहे मुझे पीटते-पीटते मार डालें।

सुरेश ने बताया था कि महेश जितनी जिद्द करता उतने ही अधिक सिपाही उस पर पिल पड़ते। जितनी अधिक मार उस पर पड़ती, उतनी ही सख्ती से उसके होंठ बंद हो जाते। यद्यपि सुरेश मार से बहुत डरता था पर न जाने अंदर से क्या मनोबल आ गया था कि उसने कुछ उगला नहीं। उसे हर घड़ी यही डर लग रहता कि कहीं वह कुछ बोल न दे। जब मार खाते-खाते वह बेहोश हो जाता तो उसे होश में लाने के लिए पानी के लोटे सिर पर डाले जाते। होश में आते ही वह अपने चारों ओर खड़े जल्लादों के चेहरों को पढ़ने की कोशिश करता और शीघ्र ही आश्वस्त हो जाता कि बेहोशी की हालत में भी वह कुछ बुदबुदाया नहीं।

सुरेश ने बताया था कि महेश का हाल ठीक इससे उलटा था। उस पर अमानुषिक अत्याचार किए जाते थे, परंतु अधिकांशतया वह होश में रहता था और जब तक होश में रहता था उसकी जुबान चलती रहती थी। वह या तो पुलिस को खरी-खोटी सुनाता अथवा 'इंदिरा सरकार मुर्दाबाद' के नारे लगाता। कभी-कभी वह बरदाश्त नहीं कर पा रहा होता तो किसी-न-किसी मंत्र का जाप शुरू कर देता। सुरेश जानता था कि किस सीमा तक पिटाई की जा रही है, फलत: जब भी महेश की तरफ देखता उसका मनोबल कुछ और बढ़ जाता। कभी-कभी वह भावुक होकर रो पड़ता। उसे लगता कि महेश की आयु तो उससे काफी छोटी है इसलिए अधिक मार उस पर पड़नी चाहिए। साथ ही यह भी सोचता कि क्या वह उस सीमा तक सहन कर पाता जिस तक महेश सहन कर रहा है। शक होने लगता था उसे अपने आप पर। उन दोनों के व्यवहार से पुलिस को यह अनुमान हो गया था कि पूछताछ के सिलसिले में महेश ही अधिक महत्वपूर्ण है, फलत: उनका ध्यान अधिकतर उसी की तरफ रहता।

दस दिन तक उन्होंने जिस नारकीय यातनाओं को सहा है, आज भी उसकी कल्पना से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। पुलिस की हिरासत में उन्हें निरंतर दीवार के साथ हाथ ऊपर बाँधकर खड़े रखा गया था। उनके गुप्त अंगों पर पुलिस द्वारा बूटों के प्रहार किए जाते रहे। महेश की नाक में निरंतर मिर्चों का पानी डाला जाता था। एक बार किसी पुलिसवाले ने मिर्चों की चुटकी ही डाल दी थी उसकी आँखों में। उन्हें खड़े-खड़े ही शौच क्रिया से निवृत्त होना होता था और जान-बूझकर उसकी सफाई की व्यवस्था नहीं की

जाती थी। नैयर साहब ने बताया कि कुछ बोलने के कारण सुरेश तो कुछ हलका भी 'फील' कर रहा था परंतु महेश ने पूरी तरह चुप्पी साधी हुई थी। मुझे लगा था कि कुछ बहुत भयानक घट रहा है उसके मन में। मैंने जेल में कुछ लोगों से संदेश भिजवा दिए थे कि उसका खास ख्याल रखें और धीरे-धीरे उससे सारी जानकारी ले लें ताकि उसका मन भी हल्का हो जाए।

नैयर साहब का गला रुँध गया था यह सुनाते-सुनो। मेरे भी रोंगटे खड़े हो गए थे। जहाँ दुःख और विवशता से आँखों में आँसू उमड़ आए थे, वही क्रोध से मेरी नसें फड़कने लगी थीं। मुँह खिड़की की तरफ करके नैयर साहब ने रुमाल से आँसुओं को सुखा दिया था। कुछ संयत होकर बोले, ''मुझे खुद की इतनी परवाह नहीं पर जब महेश की माँ को रोते देखता हूँ तो हौसला छूटने लगता है। वैसे तो वह भी शेर बेटे की माँ है, फिर भी माँ तो है न। अंग्रेजों से लड़ाई करते हुए मैं जितनी बार जेल गया, उसने हँसते-हँसते विदा किया मुझे। घर-गृहस्थी उसने कैसे चलाई; मुझे भनक तक नहीं लगने दी, पर तब उसमें जवानी का जोश था और लगता था कि हम एक विदेशी ताकत से अपने देश को स्वतंत्र कराने के लिए लड़ रहे हैं। पर अब क्या है-कुरसी, केवल अपनी कुरसी को बचाने के लिए एक जननी दूसरों की जान ले ले। अपने बच्चों की ममता में दूसरी माँओं की कोख उजाड़ दे। अपने परिवार का सिक्का चलाने के लिए बाकी सारे सिक्कों को खोटा करार दे दिया जाए, वह भी देश की सुरक्षा के नाम पर। मातृभूमि का कौन सा टुकड़ा तोड़कर दे रहा था मेरा बेटा किसी दुश्मन को। वह तो अपनी मातृभूमि की पूजा करते हुए उसकी गोद में खेलना भर चाहता है। वह चाहता है कि जिस हवा में वह साँस ले, वह गुलामी की दुर्गंध से दूषित न हो। जहाँ वह खड़ा हो, वह जमीन भ्रष्टाचार एवं अन्याय के खून से रंगी हुई न हो। जब वह शिक्षा ग्रहण करके समाज में आए तो उसका वांछित स्थान उसे मिल जाए।'' नैयर साहब मेरी ओर देखकर रुँधे गले से बोले, ''नरेंद्र, क्या गलत कहती है महेश की माँ? क्या केवल इंदिरा गाँधी ही एक माँ है जिसे अपने बेटे के लिए पूरा देश और उसकी आजादी चाहिए। दूसरी माँओ की कोख से क्या इनसानों ने जन्म नहीं लिया। एक औरत इतना गिर सकती है, वह भी कुरसी के लिए। कभी ख्वाब में भी नहीं सोचा था और आज सबकुछ अपनी आँखों से देखना पड़ रहा है; और देखना ही क्यों भुगतना पड़ रहा है। कितने निर्दोष व्यक्तियों की आह झेल पाएगी यह जालिम सरकार? यह स्याही मुल्क से खत्म तो होगी ही, आज न सही कल; पर इतना तय है कि स्याही इतिहास के पन्ने काले कर देगी और इंदिरा गांधी और उसकी संतानों के मुँह पर यह कालिख पुती रह जाएगी युगों-युगों तक।''

हम एक लम्बा चक्कर लगाकर नई दिल्ली रेलवे स्टेशन तक पहुँच गए थे। यहाँ पर पंक्चर लगाने वाली एक दुकान के सामने गाड़ी रोक दी थी नैयर साहब ने। उनका इशारा पाकर एक छोकरा जल्दी से आया और चाबी लेकर डिक्की से उसने स्टेपनी निकाल ली। मुझे इस संबंध में विशेष कुछ पता नहीं था, फलतः मैं चुप ही बैठा था। नैयर साहब ने उस व्यक्ति को बुलाकर कहा, ''इस्माइल, इसमें सारे-के-सारे माइक्रो प्रिंट्स हैं, किसी भी तरह आज ही यह टायर बी.बी.सी. के रिपोर्टर तक पहुँचना चाहिए। वैसे उस तक यह खबर पहुँच चुकी है कि वह तुम्हारे यहाँ कार का पंक्चर लगवाने आए। उसकी गाड़ी का नंबर तुम्हें मालूम ही है। यदि वह न भी आए तो वह किसी को भेजेगा अवश्य अपनी गाड़ी में। उसकी गाड़ी की स्टेपनी उतारकर रख लेना और जब वह वापस लौटे तो यह स्टेपनी उसकी डिक्की में रखना तुम्हारा खुद का जिम्मा है। किसी तरह की गलती हमें मुसीबत में डाल देगी।'' नैयर साहब ने हिदायत देते हुए कहा। इस्माइल ने आश्वासन दिया कि चिंता न करें सारी बातें वह ठीक से समझ गया है। वहाँ से मैं नैयर साहब के साथ ऑफिस पहुँच गया। रास्ते में उन्होंने मुझे बताया कि कितनी कठिनाई से उन्होंने लगभग सारे समाचारों, संदेशों और पत्रों के फोटो-प्रिंट्स बना लिये हैं, यदि सब ठीक-ठाक हो गया तो कल से हमरी सब खबरें बी.बी.सी. से ब्रॉडकास्ट होने लगेंगी।

नैयर साहब ने बताया, ''शुरू में वह इस बात पर सहमत नहीं थे कि हम किसी विदेशी संचार एजेंसी का इस प्रकार सहारा लें परंतु जब हमारी सरकार ने दमन के सारे रास्ते अपनाने शुरू कर दिए तो मैंने भी तय किया कि सरकार के यंत्रों का सरकार के खिलाफ इस्तेमाल किया जाए। तुम्हें ताज्जुब होगा कि यह सारा काम अपनी ही मिनिस्ट्री में हमारे स्टाफ ने किया है। अब अगर मुझे नौकरी से अलग कर भी दिया जाए तो तुम उन तमाम लोगों को एक-दूसरे से बाँधे रहोगे जो मुसीबत की इस घड़ी मे हमारे साथ आ जुड़े हैं या जिन्हें यह विश्वास हो गया है कि बिना कुछ किए भाग्य के सहारे यह संकट की घड़ी टल नहीं सकती। मैंने ऐसा भी इंतजाम कर दिया है कि मेरे बाद मेरी सीट पर टेंपरेरी तौर पर तुम्हें ही बिठाया जाए। इस प्रकार बने बनाए कॉण्टैक्ट्स को तुम ठीक से चला पाओगे, ऐसी मुझे उम्मीद है।'' मैंने नैयर

साहब को आश्वासन दिया कि वह चिंता न करें और जब सब लोग इतना कह रहे हैं तो क्या मैं यह छोटा सा काम भी नहीं कर पाऊँगा। मैं तो वैसे ही यह मान बैठा हूँ कि यह नौकरी छोड़ चुका हूँ। आप न होते तो मैंने अपना त्यागपत्र किसी और को दे ही दिया होता। मैं किसी भी कीमत पर पीछे नहीं हटूँगा। इस बात का आप भरोसा रखें। मैं तो यह नौकरी बोनस के रूप में कर रहा हूँ।

कार्यालय पहुँचकर मैंने अपनी बाकी बची छुट्टियां उसी समय 'कैंसिल' करवा लीं और कल से ऑफिस आने का वायदा करके लौटने लगा तो नैयर साहब ने कहा, ''चाहो तो मेरी कार ले जाओ पर रास्ते में इस्माइल से मिलते जाना।'' मैंने थ्री व्हीलर पर जाना ही उचित समझा और इस्माइल से प्राप्त सूचना उन तक पहुँचाने का वायदा करके चल पड़ा।

थ्री व्हीलर मैंने कनॉट प्लेस में ही छोड़ दिया और पैदल नई दिल्ली रेलवे स्टेशन की ओर बढ़ा। अभी मैं इस्माइल की दुकान के पास पहुँचा भी नहीं था कि मुझे हरे रंग की एक अंबेसेडर कार वहाँ रुकती दिखाई दी। इस्माइल की दुकान के साथ ही जूस की एक दुकान थी, मैं वहाँ खड़ा होकर जूस लेने का उपक्रम करने लगा। इतने में उस ड्राइवर से इस्माइल को कहा, ''क्यों मियाँ, हमारी स्टेपनी बनी या नहीं ?'', ''हाँ साहब, अभी लीजिए।'' यह कहकर वह जिस स्टेपनी के ऊपर बैठा था, उसे उठाकर कार की ओर ले जाने लगा। यही वह स्टेपनी थी हमने प्रातः इस्माइल को दी थी। अब मुझे इस्माइल से बात करने की आवश्यकता नहीं थी, फलतः मैं स्कूटर पकड़कर दरियागंज चल पड़ा। यहाँ भी मैंने गोलचा सिनेमा के पास स्कूटर छोड़ दिया और पैदल चल पड़ा अंसारी रोड की ओर।

महेश की माँ द्वार पर ही मिल गई। मेरी हिम्मत नहीं हुई कि मैं भीतर जाकर उनसे कुछ बातचीत करूँ। मुझे डर था कि यदि अंदर चला गया तो बातों का सिलसिला चल निकलेगा और यह महिला खुद को रोक नहीं पाएगी। मेरी स्थिति उस समय क्या होगी, इसका अनुमान मैं सहज ही लगा पा रहा था। उस स्थिति को टालने के लिए मैंने स्कूटर का ताला खोलते हुए उन्हें कहा, ''बाबूजी से कह देना कि उनकी स्टेपनी कोई माँग ले गया है।'' हालाँकि वह मेरी बात नहीं समझीं पर फिर भी स्वीकृति में सिर हिलाकर बोलीं, ''चाय नहीं पियोगे बेटा? सुबह भी ऐसे ही चले गए थे और अब बाहर ही से जा रहे हो। हाँ, कोई हो तब न आओ घर में। इस बुढ़िया से क्या बात करोगे।'' मुझे लगा कि यदि बुढ़िया रो पड़ी तो मैं भी अपने आँसू रोक नहीं पाऊँगा, फलतः शीघ्रता से स्कूटर स्टार्ट कर मैं वहाँ से चल दिया और जान-बूझकर उनकी तरफ देखा तक नहीं।

•••

इर्विन अस्पताल के सामने से निकलकर ज्यों ही मैं रणजीत होटल की तरफ स्कूटर घुमाने लगा तो मुझे बुलडोजरों की घड़घड़ाहट सुनाई दी। तुर्कमान गेट की तरफ दृष्टि घुमाई तो देखा कितने ही तिमंजिले मकान धराशायी हो चुके थे। सैकड़ों की तादाद में पुलिस के जवान यहाँ-वहाँ छितराए हुए थे। आसपास आते-जाते व्यक्ति यदि उत्सुकतावश रुकते तो भी अधिक समीप नहीं जाते थे। एक-दो मिनट बाद ही अपना रास्ता नापने में ही उन्हें भलाई दिखती थी। कौन जाने किस पर किसी पुलिस वाले की नजर अटक जाए और वह धर लिया जाए।

तुर्कमान गेट के बहुत अंदर तक धँसकर बुलडोजर काम कर रहे थे। इस गेट का नाम सूफी संत हजरत शाह तुर्कमान बयावानी के नाम पर रखा गया था। मुझे ज्ञात था कि वहाँ पर वर्षों से अनेक मुसलमान परिवार रहते हैं बल्कि अब तो रहते थे ही कहना होगा और छोटे-मोटे रोजगार से अपना गुजारा चलाते थे। मुस्लिम संप्रदाय की सहज एवं सीधी झलक इस क्षेत्र में प्रवेश करते ही मिल जाती थी। अपने आप में पूरी तरह मस्त थे यहाँ के लोग। दिल्ली की जो अपनी खास सभ्यता है उसे अक्षुण्ण बनाए रखने में इस क्षेत्र के निवासियों का विशेष योगदान रहा है। न जाने कब इनके दादा-परदादा यहाँ आकर बसे होंगे। इन लोगों ने कभी सपने में भी सोचा नहीं होगा कि कयामत से पहले ही इन पर कयामत टूट पड़ेगी। अपनी छोटी सी दुनिया में ये लोग इतने रमे थे कि कनॉट प्लेस के एकदम निकट होते हुए भी इनको वहाँ की विलायती सभ्यता छू तक नहीं पाई थी। यहाँ की नन्हीं-नन्हीं लड़कियाँ रामलीला मैदान के सामने बने कॉरपोरेशन के विद्यालय में पढ़ने जातीं और ज्यों ही वे पाँचवीं-छठी कक्षा तक पहुँचतीं उन्हें बुर्का पहना दिया जाता।

यहाँ के युवक भी अभी क्रिकेट की अपेक्षा गुल्ली-डंडा खेलने में ज्यादा रस लेते थे और दिनभर इन लड़कों की टोलियाँ रामलीला मैदान की रौनक बनी रहती थीं। हाँ, जब कभी कोई बड़ा कार्यक्रम होता और रामलीला का ऐतिहासिक मैदान सैकड़ों लाउडस्पीकर से सजाया जाने लगता तो यह लड़के मैदान के बाहर खड़े-खड़े अंदर हो रहे नजारों का आनंद लेते। इसी प्रकार प्रतिवर्ष होने वाली रामलीला की भी यहाँ के निवासी बड़ी

उत्सुकता से प्रतीक्षा करते। उन दिनों तो यहाँ की चहल-पहल देखने लायक होती, जैसे रोशनी का समुद्र उमड़ पड़ा हो। आने-जाने वाले स्त्री-पुरुष एवं बच्चों का निरंतर प्रवाह भी केवल इन्हीं दिनों देखने को मिलता। यहाँ के निवासी इन दिनों यहाँ छोटी-मोटी दुकानें जमा लेते पटरी पर और देर रात गए तक उनकी बिक्री का कार्यक्रम चलता। इन दिनों इतनी आमदनी हो जाती थी कि आने वाले जाड़ों के मुकाबले के लिए भी ये लोग तैयार हो जाते।

वैसे मैंने जब भी तुर्कमान गेट के आसपास फैली हुई सभ्यता को देखा है, मुझे एक पृथक् सी झलक मिली है उसमें। अधिकांश लोगों को आसफ अली रोड पर खड़ी विशालकाय इमारतों के मध्य यह छोटा सा टुकड़ा दागनुमा लगता था। परंतु मैं हमेशा यह कहा करता था कि जैसे आसफ अली रोड नई दिल्ली और पुरानी दिल्ली की सीमा रेखा है वैसे ही तुर्कमान गेट की यह आबादी विशाल गगनचुंबी भवनों की आधुनिकता को अपनी ऐतिहासिकता की पुरातनता की निरंतर याद कराती रहती है। लोग इसे नई दिल्ली की सभ्यता पर दाग समझते थे तो मैं इसे पुरानी दिल्ली की सभ्यता की धरोहर। यह धरोहर कभी यूँ ही एकाएक मिट्टी में मिला दी जाएगी, ऐसा कभी ध्यान में आया ही नहीं था।

वास्तविकता यह थी कि आसफ अली रोड स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पूरी तरह व्यावसायिक क्षेत्र बनकर दिन-रात उन्नति कर रहा था। यहाँ पर छोटे-से-छोटे स्थान के भाव आसमान छू रहे थे। ऐसी परिस्थिति में तुर्कमान गेट की आबादी बड़े-बड़े धन्नासेठों की आँखों में गड़कर रह जाती थी। सोने के से मोल की जमीन भुखमरे लोगों के अधिकार में? उनका कहना था कि यहाँ के लोगों तो तो भूखे-नंगे रहना ही है तो कहीं भी रहें। चाहे यहाँ रहें अथवा दस-बीस मील इधर-उधर क्या अंतर पड़ता है? अंतर तो उन्हें पड़ेगा जो यहाँ की सोना उगलने वाली जमीन से रत्न उगाना शुरू करेंगे। एक-एक वर्ग फीट अपने ऊपर खड़े किए गए ढाँचे का मनमाना दाम दिलवा सकती है।

कुछ लोगों का विचार था कि इंदिरा गाँधी के कुछ विशेष सलाहकार जामा मस्जिद क्षेत्र को सीधा कनॉट प्लेस के साथ जोड़ने की योजना पर वर्षो से विचार-विमर्श करते रहे थे। उनका विचार था कि पर्यटकों के लिए नई दिल्ली तक का सबसे अच्छा और सीधा रास्ता तुर्कमान गेट से ही बनाया जा सकता है। दिल्ली को एक खूबसूरत शहर बनाने के लिए भी यह अनिवार्य माना जा रहा था कि कनॉट प्लेस से जामा मस्जिद ठीक उसी तरह से दिखाई देनी चाहिए जैसे इंडिया गेट से राष्ट्रपति भवन। इसके लिए जरूरी था कि न केवल तुर्कमान गेट से राजपथ सरीखी सीधी और चौड़ी सड़क जामा मस्जिद तक बनाई जाए बल्कि उसके आसपास की आबादी को वहाँ से हटाकर बोट क्लब जैसे परिदृश्य का निर्माण भी किया जाए। इतने महत्वपूर्ण निर्णय को कार्य रूप देने के लिए जरूरी था कि वहाँ की भूमि को बुलडोजरों द्वारा समतल कर दिया जाए।

सत्ता के मद में चूर वे लोग यह भी मानते थे कि खरगोश का क्या है? उसे तो कोई-न-कोई खाएगा ही, चाहे भेड़िया खाए या शेर। वह तो बना ही खाए जाने के लिए है। इसी तरह यहाँ की जमीन पर समृद्ध लोग अपना पूरा-पूरा आधिपत्य समझते थे और इस बात के लिए अपने पुरखों को कोसते थे कि उन्होंने इस जगह को किसलिए यूँ ही छोड़ दिया था। इस वर्ग की आँखें इस क्षेत्र पर उसी तरह लगी थीं जैसे गिद्ध की अपने शिकार पर। और जिस प्रकार वह अपने शिकार पर झपटने से पहले उसके ऊपर मँडराती है, उसी प्रकार ये लोग भी यहाँ का पूरा लेखा-जोखा रखते थे।

बड़े-बड़े अधिकारियों से मिलकर साँठ-गाँठ करके अनेक योजनाएँ बनतीं परंतु कोई-न-कोई कानून हमेशा आड़े आ ही जाता। अनेक नए-नए धन्ना सेठों एवं नेताओं को भी यह जगह निरंतर खटकती रहती थी। उनका कहना था कि रामलीला मैदान में तो देश-विदेश के बड़े-बड़े नेता आकर भाषण देते हैं; उस समय जब उनकी दृष्टि इस क्षेत्र में पड़ती है तो हमारी आँखें शर्म से झुक जाती हैं। इस क्षेत्र की सुंदरता बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति हमेशा लालायित रहता था परंतु अवसर था कि आता ही नहीं था। इतनी घनी आबादी का इलाका था यह कि जरा-सी बात पर लाखों वोट इधर-से-उधर हो जाएँ तो सब किया-कराया धरा-का-धरा रह जाएगा। फिर इस क्षेत्र के जामा मस्जिद के साथ जुड़े हुए होने के कारण इसका न केवल राष्ट्रीय बल्कि अंतरराष्ट्रीय महत्व भी था।

आपातकाल का सुनहरा अवसर भला क्या रोज-रोज आता है? इस अवसर से पूरा-पूरा लाभ उठाने की योजना बन गई और आज पूरी सजधज के साथ बुलडोजर इस स्थान की 'सुंदरता' बढ़ाने के लिए सक्रिय हो गए। इन नए बनने वाले उद्यान के माली चारों ओर हथियारों से लैस खड़े थे ताकि बुलडोजरों की शान में कहीं कोई गुस्ताखी न हो जाए। बाद में पता लगा था मुझे

कि इस मुहिम पर तो स्वयं युवराज तक अपने मुसाहिबों सहित पधारे थे। युवराज से लोगों का अभिप्राय संजय गाँधी से था जो आपातकाल में बेताज बादशाह बना हुआ था। प्रधानमंत्री का पुत्र होने के कारण कुछ लोग उसे युवराज कहते थे। जब इस क्षेत्र में तोड़-फोड़ प्रारंभ हुई तो लोगों के अनुसार संजय गाँधी वहाँ स्वयं उपस्थित रहा। अभी मैं घर पहुँचा ही था कि मुझे सूचना मिली की तुर्कमान गेट पर गोली चल गई हैं और पुलिस ने कई लोगों को भूनकर रख दिया है। वहाँ के निवासियों ने पत्थरों की वर्षा करके पुलिस का मुकाबला किया परंतु पत्थर और गोली का क्या मुकाबला। बाद में पता लगा कि उस क्षेत्र में इतने अत्याचार पुलिस प्रशासन के बड़े-बड़े अधिकारियों की उपस्थिति में किए गए कि नादिरशाह की याद ताजा हो आई। दिल्ली शायद केवल विदेशी नादिरशाहों के कत्लेआम और अत्याचार देखने के लिए ही अभिशप्त नहीं थी बल्कि अपने बंधु-बांधवों के जुल्म देखना भी उसकी किस्मत में लिखा था।

उस क्षेत्र में जाने का पता लगा कि जो भी घर बुलडोजर की चपेट में आया उसका साजो-सामान पुलिस वालों की व्यक्तिगत संपदा बन गया। सामान के साथ-साथ यदि कियी के हाथ सामान की रक्षा कर रही बहू-बेटी लग गई तो उस व्यक्ति का भाग्य माना गया जो अनायास ही अबला की इज्जत-आबरू का मालिक बन बैठा। जितनी खुलकर बेशर्मी, दरिंदगी, लूट-खसोट एवं मारपीट इस क्षेत्र में हुई, उतनी संभवतः कहीं भी नहीं हुई। इस क्षेत्र के समस्त नवयुवकों को बंदी बनाकर जेलों में ठूँस दिया गया था, जिनमें कईयों का तो बाद में भी पता नहीं मिला। बहू-बेटियों की इज्जत-आबरू लूट ली गई और बूढे-बुढ़ियों को कुछ कूड़े-कचरे सहित ट्रकों में ठूँसकर दूरदराज के इलाकों में फेंक दिया गया। भारत विभाजन के समय भी इस तरह के दृश्य देखने में कम ही आए थे। अपने ही शहर के लोगों को विस्थापित कर दिया गया था। कैसा स्वराज था और कैसी गरीबों की हितैषी सरकार थी! हर भले पुरुष का सिर शर्म से झुका जा रहा था।

इस संदर्भ में मैं एक-दो संसद सदस्यों से मिला तो वे भी अपना-अपना माथा ठोंक कर चुप रह गए थे। बोले थे, ''भाई, जो न हो वही अच्छा। हम अभी तक संसद के सदस्य हैं, ऐसा हम नहीं मानते। यह तो मात्र मैडम की कृपा है कि अभी तक शहर में घूमघाम सकते हैं; शायद कांग्रेस की सेवा का ही यह प्रताप है जो आज भी शरीर से जीवित हैं, आत्मा तो वास्तव में मर गई है; और यदि नहीं भी मरी तो इतनी छलनी अवश्य हो गई है कि उससे कुछ करते ही नहीं बनता।''

''यह सबकुछ करने के लिए तो कांग्रेस नहीं बनी थी। क्या इस सबके लिए कांग्रेस ने अंग्रेजों से संघर्ष किया था। ब्रिटिश शासन काल में भी ऐसे अत्याचारों के विषय में कभी नहीं सुना था। इस तरह के बेईमान, भ्रष्ट प्रचार एवं झूठ की कल्पना भी नहीं की थी। आज जो कुछ हो रहा है सब-का-सब अवैधानिक है परंतु कहा यह जा रहा है कि यह सब अवैधानिक, संवैधानिक रूप में राष्ट्रीत हितों की रक्षा करने को किया जा रहा है। सुरक्षा और स्वतंत्रता के नाम पर ही इनका हनन हो रहा है-न जाने यह कैसा चमत्कार है!''

''आपातकाल की घोषणा हुई। चलो ठीक था यदि कुछ राष्ट्र-विरोधी तत्व थे भी तो निपट लो। संसद तक को विश्वास में नहीं लिया गया। अरे भाई हम किस गिनती में हैं, मंत्रियों तक को नहीं पूछा गया। एक व्यक्ति की ही तानाशाही चलनी है तो संसद की आवश्यकता क्या है? आपको क्या बताएँ कि व्यक्तिवाद कहाँ तक सिर उठा चुका है, संसद और यहाँ तक कि मंत्रिमंडल को भी नकारा जाने लगा है। प्रधानमंत्री के घर में ही प्रत्येक मंत्रालय से संबंधित निर्णय दिए जा रहे हैं और संबद्ध मंत्री को ऐसे निर्णयों की सूचना अगले दिन समाचार-पत्रों द्वारा ही मिलती है कि उसने अपने मंत्रालय से संबंधित अमुक-अमुक निर्णय किए हैं। कैसा मजाक बनाया जा रहा है संसदीय प्रजातंत्र का?''

''हम तो यह कहते हैं कि जब संसद में ही सांसद को बोलने का अधिकार न हो तो उसमें और जेल में बंद व्यक्ति में अंतर क्या है। विशेष रूप से उस समय जब कि सरकार द्वारा स्वीकृत विषयों पर की गई उसकी टीका-टिप्पणी समाचार पत्रों में छप न सके तो संसद का अस्तित्व एवं महत्व किस काम का?''

उन संसद सदस्यों ने संविधान में संशोधन करने की तत्परता पर भी आश्चर्य व्यक्त किया था। उनके अनुसार जब एक व्यक्ति का मौखिक आदेश संविधान की किसी भी धारा से अधिक प्रभावशाली है तो ऐसे संशोधन लाने का क्या लाभ है, यह सब उनकी समझ में नहीं आ रहा था। परंतु मैं जानता था कि यह सब मंजिल पर पहुँचने के सोपान मात्र थे, मंजिल तो अभी दूर थी।

◆◆◆

वे पाँच दिन

रुचि भल्ला

...फलटन आज पूरे शबाब पर आ गया है... । कहीं ईद का त्यौहार मनाया जा रहा है इस कस्बे में, कहीं पालकी का अभिनंदन हो रहा है... । फलटन दोनों हाथों से दोनों त्यौहारों के स्वागत में जुटा हुआ है। मुसलमाँ शफ़्फ़ाक कपड़ों में क्रोशिया बुनी टोपी लगाए फलटन की सैर में इस मेले के बीच चले आए हैं तो पंढरपुर पालकी के इर्द-गिर्द पुरुष सफेद कुर्ते-पायजामे और टोपी में हिल-मिल कर घूम रहे हैं... । महिलाएँ और बच्चे रंग-बिरंगी वेश-भूषाओं में हैं... । फलटन में लगे गुलमोहर के पेड़ दोनों त्यौहारों की खुशी में उल्लास से लहरा रहे हैं... । झूमते हुए पेड़ के हरे पत्ते और अग्नि फूल आपस में गले मिल रहे हैं... । केसरी रंग पर हरा... हरे रंग पर केसरी रंग चढ़ गया है।...

''*मोरा गोरा अंग लई ले, मोहे श्याम रंग दई दे छुप जाऊँगी रात ही में, मोहे पी का संग दई दे।।*''

कोकिला की कुहुक जब सुनती हूँ तो लगता है... 'बंदिनी' फिल्म का यह गीत कोकिला के कंठ में बसा हुआ है... जिसने चाँद के आइने में देख कर चाहा है रात के रंग में रंग जाना...। जीवन में वैसे भी दो ही रंग होते है अँधेरा और उजाला...। धरती शतरंज की चाल है और हम बिसात पर बिछे मोहरे हैं...।

चाँद और सूरज प्रकृति के हाथों में थमी श्वेत-श्याम गेंद की मानिंद हैं... जो अगर पूरब की ओर लुढ़क जाए तो उजाला छा जाता है... जब पश्चिम की ओर चली जाए तो चाँद उग जाता है... जीवन जैसे इन दो गेंदों के आर-पार बीच में झूलता हुआ-सा झूला है। कभी-कभी तो ऐसा लगता है जैसे आसमान में कोई अदृश्य टिम्बर ट्रेन चल रही है जिसके रोपवे पर चाँद और सूरज यात्रा करते हैं...।

मैं चाँद को देखती हूँ तो सोचती हूँ चंदा एक नायिका है जो रात के प्रेम में है...। कोकिला की तरह अपने निज़ाम के रंग में रंग जाना चाहती है...। सदियों पुरानी उसकी यह ख्वाहिश उसे रोज़ रात के करीब ले जाती है। इतने करीब जैसे जूली फिल्म का यह गीत है—

> ''*इतना भी दूर मत जाओ कि पास आना मुश्किल हो।*
> *इतना भी पास मत आओ कि दूर जाना मुश्किल हो।।*''

इस गीत की पंक्तियों की तरह वह चाँद के पास जाती रहती है लौट कर उस तक आने की लिए...।

यह लौटना ही चलते जाना है...। धरती से आसमान... आसमान से धरती की यात्रा ही जीवन कहलाती है...। एक सूर्य जिसे हम साथ लेकर जी रहे हैं... गंतव्य वह नहीं जहाँ चाँद है... अंधकार के पास फिर प्रकाश है और हमें नट की तरह इस तनी हुई रस्सी पर चल कर आना-जाना है... जिस रस्सी का एक छोर सूर्य की कील से बँधा है तो दूसरा सिरा चाँद की कील से टिका होता है...।

सम्पर्क : 'श्रीमन्त', प्लॉट नं. 51, स्वामी विवेकानंद नगर, फल्टन, जिला-सतारा-415523 (महाराष्ट्र), फोन: 9560180202, ई-मेल: ruchibhalla72@gmail.com

यात्रा का अगर जिक्र चला है तो इस मौसम में पंढरपुर पालकी यात्रा का नाम भी जुबाँ पर आएगा ही...। पंढरपुर फलटन से सौ किलोमीटर दूर का रास्ता है...। फलटन एक रात की सराय है विट्ठल प्रमियों के लिए...। पचास हज़ार की संख्या वाले इस छोटे से कस्बे का दिल बहुत बड़ा है...। खुले दिल से विमानतल की ज़मीन स्वागत करती है दो लाख तीर्थयात्रियों का... उनके रहने और खाने-पीने की व्यवस्था भी...।

यात्रा का यह दृश्य बहुत मनोरम लगता है...। सड़कों पर तिल रखने की भी जगह नहीं दिखती... सिर्फ पाँव ही पाँव बढ़ते जाते हैं विट्ठल की ओर...। केसरी ध्वज सबसे आगे लिए... पालकी के साथ-साथ पुरुष मंजीरा और मृदंग बजाते... भजने गाते हुए चलते हैं...। महिलाएँ तुलसी पौधे को चमचमाती पीतल की कुंड़ी में ससम्मान सिर पर धरे कदम-से-कदम बढ़ाती जाती हैं...।

ऐसी यात्रा में फलटन के भी दिल का कदम बढ़ जाता है अगले पड़ाव बरड़ की ओर...। सत्रह किलोमीटर उनके संग-संग पैदल इस यात्रा में शिवाँजलि निम्बालकर भी जाती हैं रजवाड़े से निकल कर बरड़ तक...।

उनका परिचय आपसे करवा दूँ... वह कोल्हापुर के राजा की पुत्री और फलटन राजघराने की बहू हैं...। उन्हें यात्रा में चलते जाते देख कर सड़क किनारे लगे गुलमोहर के पेड़ भी पुकार उठते हैं... हमें भी अपने साथ ले चलो विट्ठल के द्वार...। उस वक्त ये पेड़ भूरे बदन पर लिपटी पैठणी लाल साड़ियों में उनकी सखियाँ लगती हैं... जिनकी टहनियों पर झूमते हरे पत्ते जैसे कलाई में खनकती हरे काँच की दर्जन भर चूड़ियाँ हों जो संगत दे रही हों विट्ठल की बाँसुरी की पुकार में...।

प्रेम ऐसा ही होता है उसके हाथ में मुट्ठी में चुम्बक जो छिपा होता है... कौन है जो श्याम के रंग में रंगा हुआ नहीं है...। घर पर लगे आम के पेड़ पर बैठी एक चिड़िया को देखा है मैंने पालकी आने से कुछ दिन पहले...। वह कृष्णा रंग में रंगी हुई थी... उसके बदन पर पीले पंखों वाला मखमली दुशाला था... वह चिड़िया मुझे विट्ठल-सी लगी... इससे पहले वह मुझे अपना परिचय देती, उसे देखते ही मैं पीताम्बरधारी कह कर पुकार उठी... फिर तो यह हाल था... कि वह नज़र भर के लिए मेरे सामने टहनी पर जा बैठती, अगले ही पल वह पत्तों के झुरमुट के बीच जाकर छिप जाती...।

उसका रंग सूर्य किरणों की चमक में आम के सुनहरे पत्तों-सा हो आता था... एक रंग में एकाकार...। बाल कृष्ण जैसी नटखट लीलाएँ थीं उसकी... और मैं उसके आगे-पीछे... आम के दरख्त के नीचे...। जब तक वह रही, पेड़ पर हलचल ही होती रही... बिना बोले अपनी उपस्थिति मुझे जतलाती रही... उस समय वह ईश्वर का रूप लगती थी कि वह आँखों के सामने भी है और नहीं भी...

''छुपते नहीं हो, सामने आते नहीं हो तुम
जलवा दिखा के जलवा दिखाते नहीं हो तुम।''

नाज़ खिअलावी के लिखे अशआर ही मुझे तब याद आते रहे...

पालकी आने से पहले ही वह पंढरपुरी चिड़िया फलटन का फेरा लगा चुकी थी...। वह रंगरेज रंगने चली आई थी धरती-आसामन को अपने रंग में... तब से फलटन पर काले मेघों का राज हो आया है। बारिश की बरसती बूँदें जैसे मेघ के पाँव में बँधे काँच के घुँघरू हों जो मृदंग और मंजीरा की जुगलबंदी के बीच जाकर बजते हैं विट्ठल के भजन में ताल देने...।

इस यात्रा में चलते जाते तीर्थयात्रियों पर श्यामल मेघों से गिरती हुई बरखा की बूँदें ऐसी लग रही है जैसे काली मिट्टी के मटके से जलधारा गिर रही हो... जिसमें भीग कर तृप्त होते जा रहे हैं तीर्थयात्रियों के तन-मन...। बरखा की ये बूँदें पालकी पर भी गिरती जा रही हैं... विट्ठल के गले में जाकर मोतियों का हार बनती जा रही हैं...।

फलटन आज पूरे शबाब पर आ गया है...। कहीं ईद का त्यौहार मनाया जा रहा है इस कस्बे में, कहीं पालकी का अभिनंदन हो रहा है...। फलटन दोनों हाथों से दोनों त्यौहारों के स्वागत में जुटा हुआ है। मुसलमाँ शफ़्फ़ाक कपड़ों में क्रोशिया बुनी टोपी लगाए फलटन की सैर में इस मेले के बीच चले आए हैं तो पंढरपुर पालकी के इर्द-गिर्द पुरुष सफेद कुर्ते-पायजामे और टोपी में हिल-मिल कर घूम रहे हैं...। महिलाएँ और बच्चे रंग-बिरंगी वेश-भूषाओं में हैं...। फलटन में लगे गुलमोहर के पेड़ दोनों त्यौहारों की खुशी में उल्लास से लहरा रहे हैं...। झूमते हुए पेड़ के हरे पत्ते और अग्नि फूल आपस में गले मिल रहे हैं...। केसरी रंग पर हरा... हरे रंग पर केसरी रंग चढ़ गया है।

वर्षा की अमृत बूँदों में मीठी सिवई की चाशनी के कतरे भी ऐसे घुल-मिल रहे हैं... जैसे आपस में एक-दूसरे के गले मिल रहे

हों अल्लाह और ईश्वर...। मैं घर की छत पर खड़ी इस प्रेम की बरसात में भीगती चली आ रही हूँ... गुनगुना रही हूँ नुसरत फतेह अली खाँ के गाए इस कलाम को—

''रात क्या शय है, सवेरा क्या है?
ये उजाला, ये अँधेरा क्या है?
मैं भी नायिब हूँ तुम्हारा आखिर
क्यों कहते हो के 'तेरा क्या है?''

(डायरी का पन्ना... 26 जून, 2017)

●●●

मौसम कोई भी हो... धरती को आता है हुनर हर हाल में खुद को सँवार कर रखने का... मई के तपते महीने में गुलमोहर के फूलों को गूँथ लेती है धरती अपनी वेणी में, जुलाई के मौसम में बारिश की बूँदों वाले मोतियों का नौ लखा हार पहन लेती है तो दिसम्बर में घूमती दिखेगी वह गर बादलों की रुई वाले पश्मीने की शॉल ओढ़ कर...।

जेठ के मौसम का अपना सौन्दर्य होता है। धरती ओढ़ लेती है तब गुलमोहर के फूलों की कढ़ाई वाली पंजाबी फुलकारी चुन्नी। फूलों पर धूप की चमक जो पड़ती है, वह लगती है चुन्नी के किनारे टंकी लखनवी कलाबततू की सुनहरी किरन हो...। इससे पहले मैंने इस मौसम को कैलेंडर पर ही देखा था... फलटन में आकर धरती के फूल के मुखड़े को देखा है...।

कौन न मोहित हो जाए उसके रूप-रंग पर... सूरज तो खुद आसमान से उतर कर उसकी डालियों वाली बाँह में कैद हो जाता है और जब चूमता है कली जैसे अधरों को चटक कर खिल जाते हैं गुलमोहर के फूल...। मैं सुर्ख फूलों को देखती हूँ, ख्याल आता है कि ऐसा लाल रंग तो बंगाल से सजे माथे का है...।

बंगाल के पास काला जादू ही नहीं लाल जादू भी होता है उसके हाथ में... जाने कहाँ से पा लिया है उसने सिन्दूर का वह लाल रंग जो किसी और के हाथ कभी नहीं लग सका... न वह रंग गुलाब के पास है... न मेहंदी न पान के पास। टमाटर तक नहीं पा सका छटाँक भर भी वैसा रंग...।

मैं सोचती रही... ख्याल हवा के संग बहते रहे... हवा के संग-संग उतरते रहे गुलमोहर के फूल पेड़ की सीढ़ियों से और जा बिछे धरती पर लाल फूलों वाला कालीन बन कर... मैं उस कालीन को देखती रही... मुझे याद आता रहा ताजमहल फिल्म का वह गीत जहाँ फूल-ही-फूल बिखरे हुए थे संगमरमरी फर्श पर— *''पाँव छू लेने दो फूलों को इनायत होगी/वरना हमको ही नहीं इनको भी शिकायत होगी।''* फूल शाखों से झर कर भी कितना कुछ दे जाते हैं... कालीन बन जाते हैं और रंग-सुगंध सब सौंप जाते हैं मिट्टी के हाथों में... यही तो जीवन की कला है... तेरा तुझको अर्पण...।

जेठ के इस तपते मौसम में गुलमोहर ही नहीं... नीम के पेड़ पर भी अंगूरी निबौरियाँ झूल रही हैं...। नीम की भी खूब कोशिश होती है अपने पास खींच लेने की...। प्रेम का भूत पीपल और बरगद पर ही नहीं चढ़ा रहता... सबसे ज्यादा आम के पेड़ पर बैठा मिलता है इस मौसम में। उसके तपते बदन को छाया... अतृप्त मन को राहत आम का पेड़ ही दे सकता है...। कौन है जो आमों के मौसम में इस पेड़ के वश में न आ जाए। सबसे ज्यादा महकती वासंती बयार ही नहीं होती है... जेठ के मौसम की हथेली में भी बंद रहता है आम के मीठे रस से सुवासित इत्र। इन दिनों जब हवा चलती है, फ़िज़ाओं में रच-बस जाती है आम की महकती हुई सुगंध...।

फलटन की तश्तरी में इस वक्त आम की फ्रूट मीनार सज रही है... हाँ! मैं फलटन को तश्तरी ही कहूँगी...। आज सुबह विमान तल के खुले मैदान में टहलते हुए देखा... फलटन चारों ओर पठार से घिरा हुआ रहता है...। जबकि शिवाजी जयंती बीत चुकी है, अब भी दो-दो हाथ की दूरी पर सड़कों पर लगे खम्भे... लैंप पोस्ट... पेड़ की शाखों के सहारे... दुकानों के ऊपर... घर की छतों पर केसरी ध्वज लहरा रहा है... और उसके रंग में रंगने फलटन की धरती पर शोलों के फूल गुलमोहर उग आए हैं...। केसी आमों का भी हाल कुछ ऐसा हो रखा है कि उनके गाल भी सूरज की आँच में दहक रहे हैं...। इस समय फलटन काँस्य का चमकता हुआ थाल लग रहा है... और पठार की शृंखला थाल के ऊँचे उठे हुए किनारे...।

धरती को देखते-देखते निगाह आसमान की ओर उठ गई...। पंछियों का एक समूह उड़ा चला आ रहा था नील गगन में...! मैं उन्हें गिन ही रही थी कि तीन पंछी विपरीत दिशा से उड़ते हुए चले आए और पंछियों के उस झुंड से हाथ मिलाकर आगे बढ़ गए। आज फिर पंछियों ने बिना कुछ बोले समझाया कि वे

किसी भी दिशा से पूरब पश्चिम उत्तर दक्षिण से उड़ते चले आते हैं और जब भी मिलते हैं एक-दूसरे पंछी से, उनके गले जाकर लग जाते हैं...।

मैं पंछियों को उड़ते जाते हुए देखती रही... वह वक्त सुबह के छ: बजे का था... सूरज के जाग जाने का। सुनहरी किरणों को पंखों की तरह फैला कर आसमान में उड़ान भरने के लिए तैयार होकर बैठा था विशाल डैनों वाला सूरज... सूरज भी तो पंछी ही है...। नदी में डुबकी लगा कर रोज तैयार हो जाता है दिहाड़ी मज़दूरी के लिए... दिन भर उड़ता रहता है अपने सुनहरी पंखों को फैलाकर...।

सृष्टि के कण-कण में उजियारा और ऊर्जा सौंपता जाता है... साँझ ढलने तक अनवरत उड़ता है आसमान के चारों कोनों तक घूमते हुए...। प्रत्येक जीव और वस्तु के हाथ में दे जाता है अँधेरे से लड़ने की ताकत। जाते-जाते भी थमा जाता है सृष्टि के हाथों में चाँद और तारे... जब विदा लेता है धरती से, पश्चिम दिशा में छोड़ जाता है अपने कदमों के गुलाबी निशाँ... उसके जाने के बाद फैली रहती है आसमान के चेहरे पर लालिमा...।

जीवन ऐसा ही होना चाहिए कि जाने के बाद भी रह जाएँ शेष स्मृति चिन्ह। मैं कल साँझ सूरज को विदा होते देखती रही... याद आता रहा मुझे 'श्री 420' फिल्म का यह गीत... *''मैं न रहूँगी तुम न रहोगे फिर भी रहेंगी निशानियाँ...''* और याद आते रहे राजकपूर... वाकई यह एक शो मैन थे... उनकी बनायी हुई फिल्में जीवन-दर्शन से भरी हुई थीं...। मेरा अपना मानना है कि दर्शन को समझने के लिए किताबों का सहारा नहीं राजकपूर की फिल्में ही देख ली जाएँ... जीवन जीने का हुनर आ जाता है...।

'अनाड़ी' फिल्म के इस गीत को वह गाते हैं—

> *''किसी की मुस्कुराहटों पे हो निसार*
> *किसी का दर्द मिल सके तो ले उधार*
> *किसी के वास्ते हो तेरे दिल में प्यार...*
> *जीना इसी का नाम है...।''*

चंद शब्दों में जीवन की परिभाषा बता जाते हैं। वह अपनी फिल्मों के माध्यम से जीवन जीने की कला सिखाते रहे...।

'मेरा नाम जोकर' फिल्म में राजू जोकर बन कर अपनी टीचर से कहते रहे—''आई विल मेक जीसस लॉफ...'' जबकि जानते थे रोना आसान और हँसना सबसे कठिन काम है जीवन की चुनौतियों का सामना करते हुए...। वह तब भी हँसते रहे मेरा नाम जोकर में सर्कस का खेल करते हुए जब उनकी माँ उनके सामने संसार से विदा ले चुकी थी...। शो मस्ट गो ऑन... स्टेज पर चलता रहा...। शेक्सपियर भी तो यही कह गए हैं... दुनिया एक रंगमंच और हम सब यहाँ कठपुतलियाँ हैं...।

मैं राजकपूर को शो मैन के रूप में देखती हूँ तो लगता है... वह बाइस्कोप दिखला रहे हैं जनता को डुगडुगी बजा कर... साथ-साथ पढ़ा रहे हैं जीवन के तमाम पाठ...। मैं बाइस्कोप के आगे बैठ कर उसके आई होल से फिल्म की चलती हुई रील देखती हूँ...। फिल्म समाप्त होने पर देखती हूँ राजकपूर की ओर... दिखती हैं उनकी तरल नीली आँखें... खुलने लगता है मेरे आगे उनकी नीली आँखों का राज...। वहाँ वहीं रंग होता है जो रंग है आसमान का...। दुनिया के लिए बहुत ज़रूरी है इस नीले रंग को बचाए रखना... बचाए रखना... उनकी शिक्षाप्रद बातों का...।

नीली छतरी ने ही तो बचायी रखी है धरती की सारी हरियाली...। हरे रंग पर नीले रंग का बहुत एहसान है। आसान नहीं होता है मिट्टी में बीज डाल कर हरे रंग को उगाना पर उससे भी कठिन होता है जीवन के सुख-दु:ख को जब्त कर नीलकंठ हो जाना...। नीलकंठ भी वही नहीं होता जो विष का प्याला पी जाए... वह नीली आँखों वाला राजकपूर भी होता है जो सलीब पर टँगे उदास जीसस को भी जाते-जाते हँसा जाए... और दुनिया से विदा हो जाए इस गीत को गाते हुए—

> *कल खेल में हम हों न हो*
> *गर्दिश में तारे रहेंगे सदा।*
> *भूलोगे तुम, भूलेंगे वो*
> *पर हम तुम्हारे रहेंगे सदा।*
> *रहेंगे यहीं, अपने निशाँ*
> *इसके सिवा जाना कहाँ...*
> *जी चाहे जब हमको आवाज़ दो*
> *हम हैं वहीं हम थे जहाँ*
> *अपने यही दोनों जहाँ*

इसके सिवा जाना कहाँ
जीना यहाँ मरना यहाँ...।''

(डायरी का पन्ना... 2 जून, 2017)

●●●

वक्त होगा रात के साढ़े आठ बजे... मस्जिद में हो रही नमाज़-ए-अशा...। दिन की अंतिम नमाज़ के पहले ही रात की चारपाई बिछा कर सो गया सूरज...। उसे देखते हुए मैंने आसमान की ओर देखा... वहाँ सज रही थी तारों की बारात...। रात के राजकुमार ने चाँद के श्वेत घोड़े पर सवार होकर थाम ली थी अपने हाथों में लगाम और चाँदनी सबके स्वागत में बैठी बजा रही थी तारों की शहनाई...।

तारे बुंदकियों से छिटके हुए थे आसमान की क्यारी में...। प्रकृति का एक रूप किसान का भी है... जैसे किसान बीज डालता है खेत में वैसे ही तारों के बीज भी छिटके हुए थे वहाँ...। रुपहले उन फूलों को देखते हुए निगाह पड़ी सप्तर्षि तारों की तरफ... जैसे आसमान की तश्तरी पर किसी ने धर दिया हो आकर चाँदी का चम्मच... तो यह है वह चम्मच जिससे चंदू के चाचा ने चंदू की चाची को, चाँदनी रात में चाँदी के चम्मच से चटनी चटाई थी...। छुटपन में इस बाल गीत को खूब गाया करते थे... उम्र के चवालीसवें साल में जाकर मुझे यह चाँदी का चम्मच दिखा जो चंदू के चाचा के पास होता था...

ऐसी बहुत-सी छुटपन की बातें याद आने लगीं फिर... जैसे—झूठ बरेजे कौआ काटे... कभी सुना होगा इसे बचपन में... और फिर डर के मारे झूठ भी ठीक से बोल नहीं पाए कि वह कौआ कहीं से उड़ता चला आएगा कान काटने के लिए... जबकि बड़े होकर जाना भी कि जब भी झूठ बोला कोई कौआ तो आया ही नहीं था...

याद आती रही ऐसी और भी बातें... झूठ बोलना पाप है नदी किनारे साँप है... आज तक मुझे वह नदी के किनारे वाला साँप भी नहीं दिखाई दिया जो झूठ बोलने पर आकर काट जाता हो... एक बार एक साँप को मैंने हाथ में पकड़ कर देखा भी था... वह प्यार से मेरे हाथ में माला की तरह ही झूलता रहा... उसने भी नहीं काटा मुझे जबकि उस दिन मैं उसके सामने सच और झूठ के तराजू में खड़ी खुद को तौल रही थी...। बातों-बातों में बच्चों को बहुत से पाठ पढ़ा दिए जाते हैं और उनके संग खेल-खेल में, दरअसल वह संस्कार देने की ही कोशिश होती है... बालमन में फिर वह बात गहरे जाकर बैठ जाती है जड़ की तरह...। मैं छत पर टहलते हुए स्मृति के गलियारों में जा पहुँची थी...।

यह तपते जेठ की ठंडी रात थी... हवा में उड़ रहे थे आसमानी परी के खुले हुए केश...। जी में आया उसके बालों को समेट कर मैं लंबी एक चोटी गूँथ दूँ और चोटी के हर बाल पर टाँकती जाऊँ चुन-चुनकर तारों के फूल... पर तारे अब भी बहुत दूर थे मेरे हाथ ही पहुँच से...। हवा की रफ्तार बढ़ती ही जा रही थी... आँगन में लगा नारियल का पेड़ हवा में लहरा कर झूलते लगता था...। उसे झूलने हुए पत्ते ऐसे लग रहे थे जैसे वे कव्वाली गाते हुए हवा में ताली बजा रहे हों, उसे देखते हुए मुझे याद आने लगी यह कव्वाली, *''काली घटा है मस्त फ़ज़ा है/जाम उठा कर झूम झूम झूम/झूम बराबर झूम शराबी...''*

हवा भी पेड़ के संग मस्त चाल-सी चल रही थी...। आम का घना पेड़ भी नारियल के पेड़ को देख कर लहराने लगा था... उसके एक-एक पत्ते पर सुरूर का नशातारी थी...। उसे इस तरह झूलते देख कर लगा यह कहीं लहराते हुए गिर न पड़े, मैं आगे बढ़ कर उसे थाम लूँ...। उसे थामने के लिए मैं छत के किनारे तक जा पहुँची... अभी पेड़ को हाथ लगाने ही जा रही थी कि फिर याद आ गई छुटपन में सुनी एक बात—रात में सोते हुए पेड़ को हाथ नहीं लगाया करते... और याद आते ही मैंने अपना हाथ खींच लिया वापस...।

जबकि जानती हूँ पेड़ कभी सोते नहीं और अब भी लहरा रहे हैं जागती आँखों के साथ पर बचपन का इतना गहरा असर होता है मन पर... उन सुनी-सुनाई बातों का... कि आज उम्र के इस दौर पर खड़ी सोच रही हूँ... कि वे कितनी झूठी कहानियाँ होती थीं जो कितने सच्चे लोगों ने सुनाई थीं...। जीवन को जीवन की तरह जीने का पाठ सिखाती थीं वे कहानियाँ...। उन्हें सुनाने का अद्भुत कौशल होता था उनके पास...। यही तो है वो आर्ट ऑफ लिविंग... जिसे हम उम्र के पायदान पर चढ़ते जाते अपनी पीढ़ी के हाथ सौंपते जाते हैं...। उसे सौंपते हुए बच्चों के चेहरे में खुद की छवि खोजते रहते हैं...।

उम्र बढ़ती जाती है और मन बच्चों-सा होने लगता है कोमल और निष्पाप...। यह तो चक्र है जन्म से मृत्यु तक जाने का...।

सोने-सा खरा मन होता है एक शिशु का जन्म लेते हुए... जीवन चक्र के आखिरी पड़ाव तक जाते-जाते मन फिर उस खरे सोने-सा होने लगता है... तप-तप कर कुंदन होने लगता है समय की आँच में...। ठीक ही तो कहा है किसी ने — बच्चा और बूढ़ा एक समान जो होता है...। चौबीस केरेट गोल्ड की तरह खालिस सोने की गारंटी वाला...।

(डायरी का पन्ना, 21 मई, 2017)

●●●

बीती रात स्याह आकाश को बैठी देख रही थी और शेक्सपियर याद आने लगे तभी... याद आती रही उनकी कही पंक्तियाँ, ''ऑल द वर्ल्ड इज़ ए स्टेज़।'' धरती मुझे फिर स्टेज़-सी ही लगती रही और स्याह आकाश जैसे मंच पर गिरा हुआ रेशमी पर्दा हो...। पर्दे के पीछे छनकते घुँघरुओं की आवाज़ आ रही थी...। देखते-देखते पर्दा हटने लग गया... चाँद का गोलाकार वृत्त स्पॉट लाइट-सा अब चमक रहा था...। उस वृत्त पर पाँव धरने उड़ी चली आ रही थी सितारों की पाजेब पहने रात की कोयल... और अब नृत्य कर रही थी... पंकज उधास के गाए गीत पर संगत देते हुए, *''मोहे आयी न जग से लाज/मैं इतना जोर से नाची आज कि घुँघरू टूट गए...''*

रात फिर यूँ ही ढलती रही तारों के छनकते घुँघरुओं की आवाज़ के साथ...। सारी रात आसमान की बैठक में चाँद और तारों की महफिल सजी रही...। रात की कोयल चाँदनी के कालीन पर नृत्य करती रही...। वक्त चाँद के गावतकिये पर अपनी कोहनी टिका कर बैठा रहा सारी रात... और उन्हें देखते हुए मुझे याद आता रहा 'साहब, बीबी और गुलाम' का वह गीत, *''साकिया! आज मुझे नींद नहीं आएगी/सुना है तेरी महफिल में रतजगा है...''*

सारी-सारी रात भोर को भी बैठे देखा है मैंने सूरज के इंतजार में...। आँखों में काट देती है वह रात...। पूरब दिशा की ओर देखती रहती है एकटक पलकों को खोले हुए...। एक करवट उसे चैन नहीं पड़ता है...। सूरज जब आता है, भोर के चेहरे को मैंने गुलमोहर-सा खिलते देखा है... प्रेम में ऐसा ही होता है... यह धरती और गगन के प्रेम का किस्सा है...। मैं इस प्रेम की साक्षी बनने सुबह की सैर पर निकल पड़ती हूँ...।

आज भी वक्त सुबह के छः बजे का था...। आसमान में अब भी बचा हुआ था एक टुकड़ा चाँद... चाँद जैसे कि फाँक हो आम के अचार की जो आसमान की रोटी पर धरी हुई है। भोर सूरज के स्वागत में उस रोटी और अचार को लिए हुए बैठी थी...। सूरज इस बात से बेखबर बादलों के संग लुका-छिपी के खेल में व्यस्त था...। मैं उसे खेलते हुए देखती रही और विमानतल की पठारी जमीन पर चलती रही... हालाँकि यहाँ ट्रैक बना हुआ है चलने के लिए पर यह रास्ता कंकड़-पत्थरों से भरा हुआ है...। एक निगाह आसमान पर, एक धरती पर रख कर चलना पड़ता है...।

चलते-चलते मुझे रास्ते में स्फटिक जैसे रंगहीन... पारदर्शी पत्थर नज़र आए...। उन्हें देख कर याद आने लगी मुझे पत्थर की वे गोटियाँ जिनसे बचपन में खेला करती थी मैं...। मेरे पास पाँच चौकोर गोटियाँ होती थीं हरे रंग की जिन पर लाल-पीली धारियाँ बनी हुई थीं... उन्हें याद करते हुए मैं झुक कर पत्थर उठाने लग गई...। छोटे-छोटे पत्थरों से मुट्ठी भर आयी थी...। ऐसा लग रहा था जैसे मैं सागर के किनारे चल रही हूँ सीप और शंख बटोरते हुए...।

जहाँ-जहाँ निगाह जाती रही मेरी, प्रकृति के हाथों में बिखरा हुआ खजाना दिखता रहा...। भरी हुई मुट्ठी देख कर ख्याल आता रहा कि प्रकृति का दिल जितना बड़ा है, उसकी झोली भी उतनी बड़ी है...। दोनों हाथों से अपार सम्पदा लुटाती है सब पर...। यह तो ऐसा खजाना है जिसे प्रेम से लूटना चाहो तो लूट लो...। बदले में स्नेह के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहती है यह उदारमना प्रकृति...।

आसमान में अब भी सूरज बादलों के संग आँख-मिचौली का खेल खेल रहा था...। रात भर की जागी हुई भोर की आँखों में अब भी जग रही थी प्रतीक्षा की लौ...। उसके जलते नयन देख कर याद आने लगा मुझे नुसरत फ़तेह अली के स्वर में गाया हुआ, *''दो नयनों में दीप जलाए/करूँ इंतजार तेरा.../किसी से कहा जाए न साँवरे! तेरे बिन जिया जाए न...''* भोर को अपने इंतजार में इस तरह बैठे देख कर सूरज अब उतरने लगा था आसमान की अटारी से...। थोड़ी देर बाद मैंने देखा वे दोनों मिल-बाँट कर रोटी-अचार खा रहे थे। वक्त अब मेरा भी घर लौटने का हो रहा था...।

मैं मुट्ठी में उन पत्थरों को लिए घर लौटने लगी...। रास्ते भर याद करती रही रंग-बिरंगी अपनी गोटियों को...। याद आते रहे मुझे बचपन के अपने खेल... सारे खिलौने भी याद आए मुझे... गुलाबी एक रेडियो होता था मेरे पास, सफेद रंग का फ्रिज, प्लास्टिक की हरे रंग की एक गुड़िया जोकि गुल्लक होती थी... लोहे का पलंग भी था मेरे पास... लकड़ी की मेज और कुर्सी भी... धारीदार हरे लिहाफ वाला गद्दा और शनील की रजाई भी होती थी... एक गुड्डा होता था क्रीम रंग के बूट वाला... मिच-मिच करती आँखों वाली सात गुड़िया भी थीं मेरे पास...। एक-एक करके सभी खिलौनों की याद चल कर आने लगी... मैं आज ही पूछूँगी माँ से फोन करके... कहाँ रखे हैं माँ आपने मेरे वे सारे खिलौने... खिलौनों के संग-संग मुझे याद आने लगीं मेरी छुटपन की सहेलियाँ लिपिका और रजनी भी जिनके साथ मैं खेला करती थी।

खेल-खेल में याद आ गया मेरा इलाहाबाद भी... उससे मिले हुए... उसका चेहरा देखे मुद्दत हो गई है मुझे...। मेरे और इलाहाबाद के बीच अब सतारा के ऊँचे पठार चले आए हैं...। इलाहाबाद को एक नज़र देखने की खातिर मैं सौ हाथ ऊपर उठा कर पठार का पर्दा हटाने लग गई... तलाशने लगी इलाहाबाद को...। खोजते-खोजते मुझे आखिर दिख ही गया वह बेमुरव्वत इलाहाबाद...। पत्थर के बुत-सा खड़ा हुआ था खुसरोबाग में बरगद के पेड़ के नीचे। कितने बरस हो गए हैं मुझे इलाहाबाद की देहरी से बाहर पाँव रखे हुए, वह तबसे ऐसे ही खड़ा है... अपलक पत्थर का बुत बन कर...। आज उसे देखते ही मैंने चाहा कि जेठ के इस तपते मौसम में वह पत्थर का बुत मोम-सा पिघल जाए, अपनी दोनों बाँहें फैला दे मेरी ओर... खोल ले अपने पत्थर के लब... एक बार बस पुकार ले मेरा नाम... छू ले मेरे नाम को वह अपने होठों से...

(डायरी का पन्ना, 19 मई, 2017)

•••

यह बात परसों साँझ की है, घड़ी की सुइयाँ सात बजा रही थीं. .. हवा की सरसराहट दरवाज़े पर दस्तक देने लगी... आहट पाते ही मैंने घर का दरवाज़ा खोल दिया, आँगन में आकर देखा... यह तपती बैसाख की सुहानी शाम थी... नारियल के पेड़ के पत्ते आसमान में झूमते हुए ऐसे लहरा रहे थे जैसे फलटन को हाथ पंखा कर रहे हों, यह बहुत जरूरी भी था... फलटन के तपते माथे पर चालीस डिग्री का पसीना था... लाज़िमी भी है जब हिन्दोस्तान में जुबाँ-जुबाँ पर गरमी की चर्चा चल रही है तो इस बात का फलटन की पेशानी पर पसीना आएगा ही...।

हवा का स्पर्श पाते ही पलकें आसमान की ओर उठ गईं मेरी... चाँद फूल-सा उग आया था आसमानी क्यारी में... चाँद के ठीक नीचे एक तारा भी था... आसमानी परी के माथे सजा हुआ चाँद सितारा। प्रकृति ने सधे हाथों से बड़ी बिंदी के ठीक नीचे छोटी एक बिंदी लगा रखी थी। सदियों से चला आ रहा दो बिंदी लगाने का तरीका जितना पुराना उतना नया लगता है।

बिंदी वाले चाँद को देखते-देखते निगाह पश्चिम दिशा की ओर जाकर ठहर गई। प्यास से बेहाल सूरज तेज-तेज कदमों से नहर की ओर बढ़ रहा था। पीछे छूटते जा रहे थे उसके पाँव में पहनी तिल्लेदार गुलाबी गुरगाबी के निशान। मैं कभी चाँद कभी सूरज को देखती रही... देखती रही दौलतमंद धरती माँ के भरे दोनों हाथ... एक हाथ में जहाँ चाँदी की रुपहली अशर्फियां खनखना रही थीं दूसरे हाथ में भरी हुई सोने की गिन्नियाँ...।

इन सिक्कों को गिनते-गिनते साँझ ढल आयी थी। अब आसमान में चाँद का एकछत्र राज्य था। वह हुक्मरान सितारों सजा रेशमी कुर्ता पहन कर अब टहल रहा था आकाश गंगा के किनारे। सुबह होने में अभी कई घंटों का सफर बाकी था। वक्त की घड़ियाँ जैसे-जैसे बीतती जा रही थीं... हवा की चाल उतनी ही तेज होती जाती थी। उसकी पदचाप का कोलाहल आसमान के सीने में बढ़ता ही जा रहा था। आँगन में लगे आम के पेड़ की पत्तियाँ हवा के एक इशारे पर ऐसे झूमने लगीं जैसे सँपेरे की बीन पर नृत्य कर उठता है साँप।

देखते-देखते आम का पेड़ भी हवा के संग गुनगुना उठा... मुझे यह पंजाबी गायक हनी सिंह की तरह लगने लगा था और टहनी पर टँगे एक-एक आम हवा में झूलते ऐसे लग रहे थे जैसे हनी सिंह के हाथों की उँगलियों में बँधे हुए धागे से लटके अनगिनत यो-यो हों... बैसाख की हवा अब उनके संग गीत गाने लग गई थी... यो यो हनी सिंह...। गीत का स्वर हवा की चाल के संग जुगलबंदी करने लगा था...। इस गीत-संगीत की महफिल में दो आम धरती पर आ गिरे... जैसे दो घुँघरू टूट कर बिखर गए हों।

ऐसे समय में भी मैं सोचने लगी कि इस बहती हवा का आनन्द

लिया जाए या आम को बचाने की खातिर पेड़ को कस कर थाम लिया जाए। कभी मुझे आमों का ख्याल आता कभी मैं आसमान को देखती तो लगता कि सारा आकाश एक दरख़्त में तब्दील होता जा रहा है और तारे उसके रुपहले फूल हों। मुझे लगा मैं धरती पर खड़ी दोनों हाथों से इस बहती हवा में आकाश को थाम लूँ... कि कहीं झर न जाएँ आसमान के दामन से फूल...।

फूलों के इस ख़्याल में रात तमाम होती रही। सुबह नींद खुली पंछियों के कोरस को सुन कर... हालाँकि घर के आँगन में नारियल, नीम, चीकू, अमरूद, शरीफा और आम का पेड़ लगा हुआ है पर सबसे ज्यादा पंछी प्रियंका के घर में लगे सहजन के पेड़ पर आते हैं। इस समय इस पेड़ पर पत्तियों के संग फूल, फूल के संग सहजन की फलियाँ, फलियों के संग झूलते पंछी मिल जाएँगे आपको...।

बुलबुल, मैना, बया, कौआ, कबूतर, कोयल, गौरेया, तोता... इसके अलावा सतारा के तमाम रंग-बिरंगे पंछी जिनके नाम नहीं जानती सुबह-सवेरे इस पेड़ पर आकर बैठक जमा लेते हैं अपनी। फूलों के रस का स्वाद अपनी चोंच में ऐसे भरते हैं जैसे ले रहे हों हर्बल-टी...। उनकी चहचहाहट सुनते ही मैं छत पर चली आती हूँ... देखने लगती हूँ पंछियों को... हालाँकि पेड़ तो होते ही हैं पंछियों की आरामगाह पर प्रियंका के घर में लगा सहजन का पेड़ फलटन का चिड़ियाघर है...।

एक चिड़िया ऐसी भी आती है यहाँ जो मुझे जापानी लगती है... बारीक सलाइयों जैसी उसकी आँखें और उसके पंख मोर के फैले पंख की तरह होते हैं जैसे हाथ का पंखा झुलाते हुए जापान से सीधे चली आ रही हो। पतली चोंच वाली चिड़िया भी आती हैं हर रोज... उसे देखती हूँ तो अश्क जी का काव्य संग्रह "पीली चोंच वाली चिड़िया के नाम" याद आ जाता है मुझे... इस बहाने फिर चली आती है फलटन में इलाहाबाद की याद...।

एक चिड़िया ऐसी भी आती जिसे आप चुनमुन कह सकते हैं अनामिका उंगली जितनी... नींबू की रंगत जैसे उसके पंख... सर और चेहरे पर काला नकाब ओढ़े हुए... जिसमें से जब आँखें दिखती हैं उन गोल आँखों के इर्द-गिर्द पीला आईलाइनर सजा दिखता है... ऐसी नफ़ासत की सजावट पर कौन न मुरीद हो जाए और चोंच इतनी कँटीली और बारीक कि जैसे लोहे की कील हो... जहाँ अपने होंठ रखे... अमिट निशान ठोंक दे मोहब्बत के...।

मैं चिड़िया की आँख देखती हूँ और सोचती हूँ कहानी-कविता लिखने से ज्यादा बेहतर है जीवन में चिड़िया को देखा जाए... उसकी आँखों से दुनिया को देखा जाए... छोटी-सी आँख में जहाँ आसमान का विस्तार है... उतर आती है जहाँ नदियाँ और सागर... छोटी-सी आँख की कितनी बड़ी दृष्टि है... सहजन के पेड़ की ऊँची डाल पर बैठी चिड़िया की आँख को देख कर मुग्ध हुई जाती हूँ... कि तभी दिखता है उसकी आँखों में सूरज का चेहरा...। सोचती हूँ और अचम्भित होती हूँ कि एक सूरज की पहुँच कहाँ-कहाँ तक होती है...। चिड़िया की छोटी-सी आँख में इतना बड़ा सूरज कैद हो जाता है।

मेरी इन बातों से बेखबर ये पंछी सहजन से चीकू पर चीकू से आम के पेड़ पर चढ़ते-उतरते रहते हैं... फूलों और फलों को चखते रहते हैं... सोचती हूँ कि लोग ईश्वर को ताजा फूल... स्वच्छ फल अर्पित करते हैं पर इन फूल-फल को तो सबसे पहले पंछी ही भोग लगा लेते हैं... जिसे हम सुच्चा समझते हैं वह दरअसल पंछियों का मुँहलगा फल होता है...। हर पंछी में जैसे शबरी की आत्मा बसी हो...। ईश्वर को भी तो यही पसंद है शबरी के हाथ से मिला जूठा फल खाना...। यही जूठा ही तो सुच्चा होता है...। यह पेड़ के नीचे खड़े होकर जाना... यह बात मुझे पंछियों ने बतलाई...। जरूरी नहीं होता है कि जिसके पास आवाज़ हो, वही बोल सकता है। पंछियों का मौन स्वर कितना मुखर होता है यह पंछियों के गले से लग कर मैंने जाना...।

वक्त अब सुबह के छः बज रहे थे... मैंने घर की छत को देखा... पूरब में खिल रहा था गुलमोहर का चटक लाल फूल... खिलते ही केसरी ध्वज-सा लहराने लगा था वह भोर के स्वागत में...। उसकी रौशनी में देखा सूरज एक गली में खड़ा हुआ दिखा मुझे... उस गली के आगे ही था फलटन का फौजदारी न्यायालय...। मेरे देखते-देखते सूरज गली पार करने लग गया और आ पहुँचा कोर्ट के अहाते में...। यह वक्त उसकी पेशी का था... तभी मैंने देखा... एक कोयल न्यायालय के गुम्बद पर बैठी हुई वकील का काला कोट पहने गुहार लगा रही थी सप्तम स्वर में— सूरज हाज़िर हो...

(डायरी का पन्ना, 15 मई, 2017)

◆◆◆

पुनर्जन्म

विकेश निझावन

...क्या हो गया है उसकी सेहत को? सच में, चेहरा कितना पीला पड़ आया है। आँखें कैसे भीतर को धँस गई हैं। उसे लगा था, पिताजी के प्रति अपने प्यार को वह उनके बाद ही जान सका है। सामने खूँटी से टाई उतारते-उतारते रुक गया वह। पिछले तीन माह से यही सब तो हो रहा है। वह टाई उठाता है, फिर रख देता है। उसका मन ही नहीं यह सब पहनने को। पिताजी को गुज़रे दिन ही कितने हुए हैं। अभी से 'अप-टु-डेट' होकर बाहर निकलेगा तो लोग क्या सोचेंगे। परन्तु उसे पिताजी का वाक्या याद आ जाता है-ए मैन इज़ नोन बाई हिज़ परसनैलिटी।...

इस वक्त कोई उससे पूछ बैठे कि ज़िंदग़ी की सबसे बड़ी सच्चाई क्या है, तो वह शायद यही कहेगा कि मौत ही ज़िंदग़ी की सबसे बड़ी सच्चाई है। दरअसल, पिछले दिनों हुई पिताजी की मौत ने उसे बुरी तरह से तोड़ दिया है। उसे लगता है, ज़िंदग़ी का यही एक सबसे बड़ा सच है, जिसके आगे इन्सान का कोई बस नहीं।

यों काफी दिन तक उसे यही लगता था कि पिताजी मरे नहीं, ज़िंदा ही है। यहीं-कहीं गए होंगे, लौटे आएँगे। आगरा बुआ के पास जाते थे, तो रात की गाड़ी से यहाँ पहुँचते थे। हो सकता है वहीं चले गए हों। शायद आज रात ही गाड़ी से लौट आएँ...।

यही सब सोचता हुआ वह रात देर तक छत की ओर टकटकी लगाए चारपाई पर पड़ा रहता था। कई बार उसे इस बात का भी आभास हुआ है कि दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी है। वह हड़बड़ा कर उठ बैठता है। दरवाज़ा खोल कर देखता है, परन्तु वहाँ कोई नहीं होता।

वह अपने आप को समझाता है कि अब पिताजी नहीं आएंगे—कभी नहीं! अपने हाथों से उसने उनका दाह-संस्कार किया, फिर भी वे वापिस कैसे आ सकते हैं।

कभी-कभी उसे यह भ्रम भी सताता रहता है कि जिस व्यक्ति का उसने दाह-संस्कार किया, वह पिताजी नहीं, कोई और व्यक्ति था। उनकी शक्ल पिताजी से कुछ-कुछ मिलती थी। यह बात किसी भावुक क्षण में उसने शान्ता से भी कह दी थी, तो वह चौंक-सी पड़ी थी—''कैसी बातें करते है आप! अस्तपाल में डॉक्टरों ने चीर-फाड़ करके उनकी कैसी दशा कर दी थी।'' वह रोने लगी थी।

उसे ऐसा भी कभी-कभी लगता है कि कहीं इस आघात को न सह पाने के कारण, वह विक्षिप्त तो नहीं हो रहा.. ?

सम्पर्क: पुलिस ग्राउण्ड के सामने, अम्बाला शहर-134003, हरियाणा
मोबाइल: 9896100557, ई-मेल: vikeshnijhan@rediffmail.com

पिताजी को अस्पताल तक ले जाने का तो याद है उसे, लेकिन वह उन्हें वहाँ से कब और कैसे वापिस लाया था, यह उसके ध्यान में नहीं आता। एक हल्का-सा स्वर उसके कानों में पड़ा था, ''योर फादर इज़ नो मोर!''

वह चिल्ला पड़ा था, ''नहीं...!''

''तुम्हें खुद को सँभालना होगा। यह तो प्रकृति का दस्तूर है, जो आया है— वह एक-न-एक दिन तो जाएगा ही।'' दाह-संस्कार के बाद हवन के वक्त पण्डितजी उसे समझा रहे थे, ''यह तो शरीर है जो खत्म हो जाता है। आत्मा तो ज़िंदा रहती है। किसी दूसरे के शरीर में प्रवेश कर जाती है।'' पण्डित जी की इन बातों से उसे थोड़ी शान्ति मिली थी। पिताजी ने भी दूसरा जन्म अवश्य ले लिया होगा। निश्चय ही कोई अच्छा रूप धारण किया होगा उन्होंने। इन्सान कर्मों के अनुसार ही जन्म पाता है, विद्वान लोग यही कहते आए हैं।

अक्सर उसे लगता है, पिताजी अपने नए रूप में किसी-न-किसी दिन अवश्य ही उसके सामने आ खड़े होंगे। लेकिन पिताजी कभी सपने में भी उसके सामने नहीं आए। कितने जाने-अनजाने लोगों की आकृतियाँ सपने में उसकी आँखों के आगे उभरती हैं, परन्तु पिताजी का धुँधल-सा अक्स भी उसके सामने नहीं बनता। यही सोच-सोच कर वह परेशान हो जाता है। सुबह उठता है तो सिर पत्थर की तरह भारी हुआ होता है। आँखें अंगारे की तरह तप रही होती हैं।

''क्या बात है रात भर सोए नहीं?'' शान्ता चाय का कप आगे बढ़ाती हुई पूछ बैठी थी आज।

''नींद तो बहुत आई, पर सारी बात अजीब-अजीब सपने आते रहे।''

''क्या पिताजी आए सपने में।''

''नहीं! यही सोच कर तो परेशान हूँ। पिताजी क्यों नहीं आते सपने में?''

''आप परेशान क्यों होते हैं जी। कल मेरे मन में यही बात आई थी और मैंने पण्डित जी से पूछा था।''

''फिर? क्या कहा पण्डितजी ने?'' वह उतावला-सा हो आया था।

''पण्डित जी कह रहे थे, पिताजी साधु बन गए। उन्हें मुक्ति मिल गई।''

''हाँ-हाँ! उन्हें मुक्ति मिल गई। पिताजी मर गए तो उन्हें मुक्ति मिल गई। मुक्ति उन्हें मिल गई या हमें?'' वह सिर पकड़ कर फफक पड़ा था।

शान्ता काँप कर रह गई थी। करीब आकर उसके बालों को सहलाने लगी थी, ''आप धीरज रखिए। होनी को कौन टाल सकता है।''

शान्ता के सहलाने से उसे राहत मिली थी। पर उसका मन हुआ था, एक बार खूब रो ले। जी भर कर रो ले। शान्ता कह रही थी, ''देखिए, आप खुद को नहीं संभालेंगे तो हमारा क्या होगा। बच्चे आपको सारा दिन उदास देखते हैं, भीतर-ही-भीतर घुलते रहते हैं। हमें अपने लिए नहीं, इसके लिए जीना है।

हमें इनके लिए जीना है? नहीं-नहीं, यह सब बकवास है। जीने के लिए आदमी कोई न कोई बहाना ढूँढ लेता है।

इस वक्त शान्ता उसे बिल्कुल पराई लगने लगी थी। शान्ता उसके दर्द को जरा भी समझ पाती तो यह बात कदापि न कहती। सहसा उसकी नज़र चारपाई पर बैठे बिट्टू की ओर उठ गई थी। निरीह-सा बिट्टू उसकी ओर ताक रहा था। पता नहीं बिट्टू कब से उसकी ओर देख रहा था। वह बिट्टू के सामने खुद को छोटा महसूस करने लगा। उसे लगा, वह सच में भावुक हो आया था।

अब शान्ता की बातें उसे बिल्कुल सही लगने लगी थीं। उसने एक नज़र भर के शान्ता की ओर देखा, फिर आगे बढ़ कर बिट्टू को उठा लिया। हाँ, हमें इन्हीं के लिए जीना है— वह सोचने लगा था।

उसके एकाएक बदले व्यवहार पर शान्ता हैरान हुई, प्रसन्न भी। चारपाई से उठती हुई बोली, ''ऑफिस के लिए तैयार हो जाइये, मैं नाश्ता लगाती हूँ।''

वह बिट्टू को आँगन में छोड़ खुद गुसलखाने में चला गया। नहा-धोकर बरामदे में आईने के सामने आ खड़ा हुआ था। इतने दिनों बाद उसे आईने में अपना चेहरा एकदम से साफ नज़र आया, उसे यही लगता, आईने के सामने वह खुद खड़ा होने के बावजूद, कोई और खड़ा है।

आईने के और पास सट गया था वह। गौर से अपने चेहरे को देखने लगा था। शान्ता कल ही कह रही थी, ''अपनी सेहत का जरा ध्यान रखिए।''

क्या हो गया है उसकी सेहत को? सच में, चेहरा कितना पीला पड़ आया है। आँखे कैसे भीतर को धँस गई है। उसे लगा था, पिताजी के प्रति अपने प्यार को वह उसके बाद ही जान सका है। सामने खूँटी से टाई उतारते-उतारते रुक गया वह। पिछले तीन माह से यही सब तो हो रहा है। वह टाई उठाता है, फिर रख देता है। उसका मन ही नहीं करता यह सब पहनने को। पिताजी को गुज़रे दिन ही कितने हुए हैं। अभी से 'अप-टु-डेट' होकर बाहर निकलेगा तो लोग क्या सोचेंगे। परन्तु उसे पिताजी का वाकया याद आ जाता है—ए मैन इज़ नोन बाई हिज़ परसनैलिटी।

उसने एक झटके से टाई खींची और गले के चारों ओर ले जाकर बाँधने लगा था।

आईने से चेहरा हटाया तो शान्ता से आँखें दो-चार हो गयीं। शान्ता उसकी टाई की ओर ही देखने लगी थी।

शान्ता को शायद अच्छा नहीं लगा है। ख्वामाखाह टाई के चक्कर में पड़ गया। न भी बाँधता तो कौन-सी आफत टूट पड़ी थी भला। शान्ता को बुरा तो लगा ही, साथ ही शिकायत सुननी पड़ेगी सो अलग।

परन्तु शान्ता कुछ नहीं बोली थी। न ही उसके चेहरे पर उदासी या शिकायत जैसा कोई भाव था। मुड़ते हुए बोली, ''नाश्ता लगा दिया है, टेबल पर आ जाइये।'' जूतों पर ब्रश फेर वह डाइनिंग-रूम में आ गया। टेबल पर एक गिलास दूध, प्लेट में दो परांठे और बड़ी कटोरी में हलवा रखा था।

हलवा उसकी कमजोरी है। पिछले एक माह से शान्ता उससे कई बार हलवा बनाने को पूछ चुकी थी, परन्तु उसने मना कर दिया था। हलवा खाना तो दूर, उसे देखना मुश्किल लग रहा था। पर आज ऐसा कोई भी एहसास उसके मन में नहीं आया। बड़े आराम से हलवा खाया उसने।

''मौण्टू अभी तक नीचे नहीं आया?'' अलमारी में से बैग निकालते हुए उसने शान्ता से पूछा।

''कल इम्तिहान है उसका, पढ़ रहा होगा।''

''कल इम्तिहान है, तुमने पहले नहीं बतलाया! ऊपर जाकर देख तो लेती, किसी चीज़ की जरूरत हो उसे।'' शान्ता के भीतर ही हँसी का फव्वारा छूटा था। आज इन्हें बच्चों का ख्याल कैसे आ गया। दस दफा बच्चों की शिकायत करती थी, फिर भी सुनवायी नहीं होती थी। हर बार एक ही जवाब मिलता था, ''पिताजी से बोल दो जाकर। मैं बिज़ी हूँ। प्लीज़ डोंट डिस्टर्ब मी।''

पिताजी के दम से ही मौण्टू पिछले वर्ष कक्षा में प्रथम आ गया था। वरना उसके होते हुए तो शायद पास भी न हो पाता।

पिताजी के चले जाने का जितना दु:ख उसे हुआ था, उतना ही शान्ता को। अब कैसे चलेगा यह घर? शान्ता सोच-सोच कर परेशान थी। मौण्टू की पढ़ाई, घर-भर का राशन-पानी, बगीचे की देखभाल... कौन करेगा यह सब?

उसे तो इन कामों में शुरू से ही रुचि नहीं थी। पिताजी लाख समझाते थे, ''घर के कामों में भी थोड़ा ध्यान रखा करो। आठ घंटे दफ्तर में जाकर कुर्सी तोड़ ली और दोस्तों के साथ घूम-फिर लिया, यही तो ज़िंदग़ी नहीं।''

पिताजी की इन बातों पर मन-ही-मन खीज़ उठता था वह। परन्तु अब ये बातें रह-रहकर उसे याद आती हैं और पिताजी को सामने पाने के लिए वह तड़प-तड़प उठता है।

ऑफिस पहुँचा तो वर्मा, हरिकृष्ण, सैनी, सभी रजिस्टर खोले

अपने-अपने काम में लगे थे। क्या बात, ये लोग आज जल्दी कैसे आ गए? उसने घड़ी की और नज़र डाली, पूरे बीस मिनट लेट हो चुका था वह। रास्ते भर जाने कैसे-कैसे विचारों में उलझा रहा था कि साइकिल की गति इतनी धीमी हो गई थी, जिसका उसे आभास तक नहीं हुआ था। ऑफिस में देरी से पहुँचने के कारण वह काफी शर्मिन्दगी महसूस कर रहा था। अपनी सीट पर जाने की बजाय वह सीधा मैनेजर साहब के कमरे में गया, ''सर, मैं बीस मिनट लेट हो गया हूँ। ऑय एम रियली सॉरी फार दैट''। मैनेजर अवाक् उसे सर से पाँव तक देखने लगा था। ज़रा आगे को झुकता हुआ बोला, ''क्या पहले ऐसा कभी नहीं हुआ।?''

''सॉरी सर! आगे से ऐसा नहीं होगा।''

मैनेजर मन-ही-मन मुस्कराते हुए बोला, ''दैट्स ऑल राईट!''

गर्दन झुकाए वह चैम्बर से बाहर आ गया। उसे लगा था, अब सभी उससे मैनेजर के पास जाने का कारण पूछेंगे। उसके कुर्सी पर बैठते ही वर्मा बोला, ''क्यों धीरेन, तुम पुनर्जन्म में विश्वास रखते हो?''

सुबह-सुबह ऑफिस में कैसा विषय चल रहा है, यह जानकर उसे आश्चर्य हुआ। यों पिछले तीन माह से इसी सवाल को लेकर उसके भीतर द्वंद्व मचा हुआ था। पुनर्जन्म होता तो पिताजी अब तक किसी-न-किसी रूप में उसके सामने अवश्य आ गए होते।

''पुनर्जन्म सब झूठ है!'' वह एकदम से आवेश में आ गया।

''तुम क्या सोचते हो पुनर्जन्म के बारे में?'' यह सैनी था।

''खुद को झूठी तसल्ली देने की कोशिश।'' उसके इतना कहने पर सब ओर खामोशी थी।

दोपहर लंच के बाद वह अपनी सीट पर आया, तो वर्मा ने चुटकी ली, ''क्यों भई, सुना है आज सुबह तुम मैनेजर साहब को सलाम करने गए थे?''

वर्मा की बात का आशय वह समझ गया। तो मैनेजर साहब भी बात को पचा नहीं पाए। बिना कोई उत्तर दिए वह अपनी कुर्सी पर जा बैठा।

''अब तो तुम्हारी प्रमोशन पक्की प्यारे!'' एक सम्मिलित ठहाका सारे दफ्तर में गूँज गया।

शाम को बाजार का चक्कर लगाते हुए वह घर पहुँचा था। घर पहुँचते ही उसे एक अजीब-सी टूटन का अहसास होने लगता है। थैले को शैल्फ पर रख, वह बरामदे में पड़ी चारपाई पर आकर लेट गया।

''क्या लाए हैं?'' शान्ता पास आकर थैले को उठाती हुई बोली।

उसके उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही शान्ता ने थैला चारपाई पर उलट दिया।

तीन-चार सब्जियाँ और बीजों के छोटे-छोटे पैकेट थे।

''इनमें क्या है?'' शान्ता ने पूछा था।

''मौसम जा रहा है, पालक और सरसों के बीज लाया था।''

शान्ता की आँखों के आगे बगीचे की सूखी क्यारियाँ एकदम से लहलहा उठीं। मन-ही-मन प्रफुल्लित हो उठी थी वह। तेज़ी से किचन की ओर मुड़ती हुई बोली, ''मैं अभी चाय लाती हूँ।''

चाय की काफी तलब महसूस हो रही थी उसे। शान्ता के चाय लाते ही उसने लपक कर प्याला पकड़ लिया।

''मौण्टू की तैयारी हो गई?'' चाय सुड़कते हुए बोला वह।

''गणित में कुछ कमी महसूस कर रहा है। सालाना इम्तिहान के लिए कुछ सोचना पड़ेगा। आप कहें तो ट्यूशन के लिए... ?'' शान्ता कुछ डरती-डरती बोली थी।

''नहीं, मैं ही उसे रात को एक-दो घण्टा दे दिया करूँगा।'' शान्ता का मन हुआ खुलकर हँस दे। यह पढ़ा पाएँगे भला। पिताजी लाख कहते रह गए, तुम्हारा गणित अच्छा है, मौण्टू को पढ़ा दिया करो। पर इन्हें पुस्तकों और पत्रिकाओं से फुर्सत मिलती तब न।

चाय का खाली कप उठाकर शान्ता किचन में चली गई थी। थोड़ी देर बाद वह भी किचन में आ गया। फ्रिज में से मूली और टमाटर निकाल कर वह सलाद बनाने लगा था।

आज भूख कुछ जल्दी ही लग आई थी उसे। शान्ता ने भी खाना पहले से कुछ जल्दी ही तैयार कर लिया था। वह खाना खा कर बिस्तर में आ गया।

शान्ता ने सोचा था, वह आज थका हुआ है शायद। नींद आ रही होगी। परन्तु किचन समेट कर शान्ता कमरे में आई तो वह जाग रहा था। चारपाई पर अधलेटा-सा पड़ा कहीं शून्य में ताक रहा था। इस वक्त वह काफी आहत-सा लग रहा था।

शान्ता असमंजस में पड़ गई। अभी थोड़ी देर पहले तो चेहरे पर ऐसे भाव नहीं थे।'' आपकी तबीयत तो ठीक है न जी?'' शान्ता साथ वाली चारपाई पर लेटती हुई बोली।

वह सोते से जगा था जैसे। दरअसल कमरे में आते ही उसे सुबह ऑफिस में चला विषय 'पुनर्जन्म' वाली बात याद आ गई थी। और उस विषय के याद आते ही पिताजी का चेहरा उसके सामने आ खड़ा हुआ था।

बिना शान्ता की ओर देखे हुए वह बोला, ''एक बात पूछूँ?'' उसकी आवाज़ इस तरह से घुटी-घुटी थी मानो किसी गहरी खाई के भीतर से बोल रहा हो। या फिर जो कहना चाहता था, बड़ी मुश्किल से कह पा रहा था।

''पूछिए।'' शान्ता ने खुद को सहज बनाए रखा।

''तुम्हें पिताजी के चले जाने पर कैसा लगता है?'' वह उसी रौ में बोला।

शान्ता फटी-फटी आँखों से उसकी ओर देखने लगी। यह भी कोई सवाल हुआ। किसी एक के चले जाने पर दूसरे को कैसा लग सकता है। घर का पक्षी भी चला जाए तो आदमी को दुःख होता है। फिर इन्सान तो इन्सान ही है।

शान्ता चुप रही तो वह ही बोला, ''तुम्हें नहीं लगता कि पिताजी के चले जाने पर हमारा जीवन कितना आसान हो गया है।''

शान्ता एकदम से जड़-सी हो आई थी। वह ही बोला, ''कितनी भाग-दौड़ हो आई थी हमारे जीवन में। पिताजी के लिए कभी ये कर कभी वो कर...'' जरा रुक कर बोला, ''हम कुछ करते थे, तब भी पिताजी को सन्तुष्टि कहाँ होती थी।... उन सब तकलीफों से मुक्ति मिल गई हमें।''

''ऐसा क्यों कहते हो जी!'' शान्ता का डूबता हुआ स्वर था, ''वह तो एक बाहरी दौड़ थी। टूटता तो आदमी भीतर से है। और वह भीतर की दौड़ अब शुरू हुई है।''

उसे आज पहली बार लगा कि शान्ता उसके दर्द में पूरी तरह शरीक है। काफी हल्का महसूस करने लगा था वह खुद को। करवट बदलते हुए बोला, ''सुबह जल्दी जगा देना मुझे।''

''क्यों?''

''आज बीज लाया था न। सुबह क्यारियाँ तैयार करनी हैं।''

शान्ता से रहा ही नहीं गया। बोली, ''एक बात कहूँ जी?''

''कहो!'' शान्ता के एकदम से बदले लहजे पर वह जरा सोच में पड़ गया था।

''आप तो बिल्कुल पिताजी हो गए हो।''

वह पिताजी हो गया है! शान्ता की बात का अर्थ वह पूरी तरह से समझ नहीं पाया। वह पिताजी कैसे हो गया है भला। देर तक इसी बात को लेकर उलझा रहा था।

शान्ता की आँख लग गई, तो वह बिस्तर पर से उठ खड़ा हुआ। भीतर आकर आईने के सामने खड़ा हो गया। आईने पर नज़र पड़ते ही वह अवाक् रह गया...आईने में पिताजी का ही अक्स था।

◆◆◆

जुपिटर में जगन्नाथ

मूल: के.वी.तिरुमलेश
अनुवाद: डी.एन. श्रीनाथ

...''अच्छा! हाँ, अच्छोद सरोवर। जुपिटर में जो मीठे पानी के सरोवर हैं, के बारे में और वहाँ पर घूमने वाली सुंदरियों के बारे में कहता जाऊँ तो इसका अंत ही नहीं है। तुम्हें तकलीफ होती है, तुम ऊब जाते हो। तुम समझते हो कि यह सब काल्पनिक कथा है। फिर भी मुझे वहाँ के पहाड़ियों के बारे में कहना ही चाहिए। जुपिटर की ऊपरी सतह इस प्रकार है मानो खाने की थालियों को फैला दिया गया हो। हर एक प्रदेश, हर एक थाली के जैसा है। उसके आँच के चारों ओर पर्वत की मालाएँ। वहाँ पर पर्वतों पर चढ़ना मामूली शौक है। दूसरे कसरतों की जरूरत ही नहीं है। तुम्हें पता है, मैं इतना स्लिम क्यों हूँ?''...

सम्पर्क: नवनीत, II क्रॉस, अन्नाजी राव लेआऊट, 1 स्टेज, विनोबानगर, शिमोगा-577204 (कर्नाटक), मोबाइल: 09611873310

जगन्नाथ कितने सालों के बाद मिला! मुझे इतनी खुशी हुई कि कह नहीं सकता। यह सहज ही है क्योंकि हम स्कूल-कॉलेजों में जिगरी दोस्त थे। मैं पढ़ने में जगन्नाथ की तरह अकलमंद नहीं था, इसलिए मुझे स्कूल की पढ़ाई खतम करने में दो-दो बार परीक्षा देनी पड़ी। तब वह कॉलेज में भर्ती हो गया था। उसने ज़िद की कि मुझे कोई जल्दी नहीं है, तुम भी पास हो जाओ, बाद में हम दोनों एक साथ कॉलेज में भर्ती होंगे। और उसने कई दिन घर में बिताए। मगर बाद में मैंने ही उसे कॉलेज में भर्ती होने के लिए आग्रह किया। मैंने उससे कहा कि यह कहना कि जब तक जिगरी दोस्त पास नहीं होगा तब तक मैं अपनी आगे की पढ़ाई नहीं करूंगा, यह बात इस युग के लिए लागू नहीं होगी। इसके अलावा मैं पास हो ही जाऊँगा, इसकी गैरंटी भी कहाँ थी? हमारे एक अध्यापक थे, जो बुलडॉग के जैसे थे, मुझे गणित पढ़ाते थे, गणित के बारे में सदा के लिए मेने मन मे भय पैदा किए थे और खुद निवृत्त हो गए थे। किसी ने हँसी-मज़ाक में मुझसे कहा था कि जो जानवरों को पालते हैं, उनको धीरे-धीरे उनके पालतू जानवरों के चेहरे आते हैं। मगर गणित के अध्यापक मुझे बार-बार याद दिलाते रहे कि यह हँसी-मजाक की बात नहीं है। वे भी एक बुलडॉग पालते थे। कभी-कभी स्कूल भी ले आते थे! गणित के बाद वे किसी विषय पर बात करते तो वह बुलडॉग पर ही था। वह किस चीज को खाना चाहता है? घूमने के लिए जाते वक्त उसने क्या-क्या साहस किये? आदि-आदि के बारे में बताते थे। फिर कोई कठिन सवाल पूछते, हा-हा-हा करते हुए पास आ जाते थे मानो काटने के लिए आ रहे हैं। ऐसी भयानक परिस्थिति में गणित मेरी समझ में कैसे आता? गणित के याद आते ही मेरी सभी रसग्रंथियाँ सूख जातीं और मेरा खाना हजम नहीं होता था। जगन्नाथ दूसरे वर्ग में पढ़ता था। उसके अध्यापक गणित तो कहानी की तरह, प्यार से सिखाते थे। यह जानने के बाद मैंने वर्ग बदलने की कई बार कोशिश की। मगर मेरी कोशिशें बेकार रह गई और मुझे कई लोगों की नाराजगी का सामना करना पड़ा। फलस्वरूप मुझे गणित में फेल होकर घर में रहना पड़ा। अगले साल की परीक्षा में यही पुनरावर्तन हुआ। उसके

बाद के सालों में जगन्नाथ से कभी-कभी गणित सीखने लगा और बड़े अंकों को प्राप्त कर पास हुआ। मैं जब कॉलेज में भर्ती हुआ तो जगन्नाथ ने गणित को ही प्रधान विषय के रूप में लेकर अध्ययन किया और वह मुझसे दो साल आगे था। हमें तसल्ली हुई कि आखिर हम कॉलेज में तो एक साथ थे। जगन्नाथ अब भी मुझे उसी आदर और प्यार से चाहता था। मगर मैं गणित के आस-पास भी नहीं घूमा। मैं कला-विभाग में भर्ती हुआ।

आगे चलकर उसने अपनी राह पकड़ ली और मैंने अपनी राह। जगन्नाथ के लिए पूर्वजों से आई हुई बिजनेस थी। यद्यपि वह पढ़ाई में बहुत अकलमंद था मगर उसे एक उम्र में पढ़ाई बन करनी पड़ी और बुजुर्गों के बिजनेस को ही आगे बढ़ाना पड़ा। मगर मुझे ऐसी कोई विवशता नहीं थी। मैंने एक बैंक की नौकरी पकड़ ली। कुछ सालों के बाद बैंक-ऑफिसर हुआ। तब तक सचमुच हमारे जीवन के दो रास्ते हो गए थे। बाद में हम दोनों की मुलाकात ही नहीं हुई। जगन्नाथ अपना बिजनेस का धंधा बढ़ाता गया, दूसरे शहरों में भी शाखाएँ खोल दी, करोड़पति हुआ और सब कुछ खो भी लिया, ऐसी अफवाह भी मैंने सुनी। अगर मुझसे हो सकता तो मैं उसकी मदद करता। मगर तभी मेरी ज़िंदग़ी में एक और दबाव, लहर के जैसे आ जाता और मुझे उठाकर फेंक देता था। मैं जगन्नाथ को भूल गया। यानी वह मेरी याद के पीछे चला गया। जब भी उसकी याद आती, सोचता कि वह भी मेरे बारे में सोचता होगा। क्या उसे भी मुझे देखने की इच्छा नहीं होती? ज़िंदग़ी की जरूरतें उसे भी सताई होंगी। मगर हम दोनों एक-दूसरे का पता भी नहीं मालूम था। मेरा भी यदा-कदा दूसरी जगहों पर तबादला होता रहता था। अब मेरी सेवानिवृत्ति के लिए सिर्फ तीन साल बाकी थे। ऐसी हालत में जगन्नाथ से एक ऐसी जगह में भेंट हुई और वह भी इत्तेफाक से! वह जल्दी-जल्दी फुटपाथ पर जा रहा था और यकायक मुझसे टकराया। दोनों ने मुड़कर देखा। इतने सालों के बाद भी दोनों ने एक-दूसरे को पहचाना। दोनों ने गले लगा ली मानों अब हम नहीं छूटेंगे।

''आओ, वेस्टेंड जाएँगे। वहाँ बैठ कर बातें कर सकते हैं।''

वह मुझे पास ही में स्थित एक होटल में सहजता से खींचते हुए ले गया। हम दोनों एक टेबल के इधर-उधर बैठ गए, जो पास ही था। हम कई सालों के बाद मिले थे, ये मेरे लिए हैरानी की बात थी। मगर जगन्नाथ को इसकी चिंता नहीं थी। लगा कि वह समय के अंतराल को अपने हाथ के मार से दूर कर सकता है। उसने वेटर को बुलाया और नाश्ते के लिए आदेश दिया।

''इस होटल में फर्स्ट क्लास वड़ा मिलता है?''

उसने मुझसे कहा और फिर वेटर से कहा, ''साथ में गेहूँ का हलुवा भी रहे। पहले हलुवा लाओ।''

खिड़की पर नीली पारदर्शी कागज चिपकाया गया था, इसलिए बाहर का दृश्य नीला ही दिखता था। अंदर हल्की रोशनी में बिजली का दीप दिन में भी जल रहा था।

''यहाँ क्या कर रहे हो?'' उसने पूछा।

''यहाँ एक बैंक में नौकरी कर रहा हूँ'' मैंने कहा।

''और तुम?''

मैंने उसके बारे में पूछा। सचमुच उसका जवाब सुनने की हिम्मत मुझमें नहीं थी।

''मैं? मैं कहूँ तो तुम विश्वास नहीं करोगे। अब मैं सचमुच इस गाँव में नहीं हूँ।

''तो फिर?''

''हा-हा!'' उसने कहा और जेब से सिगरेट का पैक निकाल कर लाइटर के लिए इधर-उधर देखा। फिर दूसरे वेटर को बुलाकर लाइटर माँगा।

''सर, यहाँ सिगरेट पीना मना है।''

उस वेटर ने विनम्रता से कहा और एक बोर्ड की ओर इशारा किया जिसपर यह लिखा हुआ था।

''ओह! यह बात यहाँ भी आ गई! तुम्हें पता है, सारे जुपिटर में सिगरेट पीना मना है। फिर भी मैं सिगरेट पी लेता हूँ। जब भी यहाँ आता हूँ अपना फेवरेट ब्रांड का सिगरेट कार्टन ले जाता हूँ।

उसने मेरी ओर देख कर झूठी हँसी हँस दी और सिगरेट को फिर से पैकेट में ठूँस दिया, जिसे उसने बाहर निकाल रखा था। ऐसा करते समय उसके हाथ में उँगलियाँ काँप रही थीं, ऐसा मुझे लगा। पार्किन्सन की बीमारी? मुझे लगा कि शायद जगन्नाथ जर्जरित हुआ है। उसकी बातें भी मेरी समझ में नहीं आ रही थीं।

मगर मेरी चिंता शायद उसकी समझ में आ गई थी। इसलिए उसने कहा—

''मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह तुम्हारी समझ में नहीं आ रहा है। है न? दोस्त, अब मैं जुपिटर में रहता हूँ। मैं तो इस ग्रह को ही छोड़कर चला गया हूँ''

मैंने अपनी आँखें मसल लीं। यह सपना तो नहीं है? इतने सालों के बाद जिगरी दोस्त से भेंट हुई और इसकी बातें ही मेरी समझ में नहीं आ रही हैं।

''मुझे मालूम है कि तुम विश्वास नहीं करोगे। इसलिए मैं खुद किसी से नहीं कहता। यों ही कहकर अपना नाम क्यों बिगाड़ लूँ? मगर पुट्टण्णा, तुम मेरे जिगरी दोस्त हो। तुम्हारे सिवा और किससे कह सकता हूँ? मगर तुम भी विश्वास नहीं करोगे। मालूम है क्यों? यह जुपिटर के बारे में एक बड़ी रहस्य की बात है, यहाँ पर आबादी आरंभ होकर एक पीढ़ी ही गुजर गई। फिर भी लोगों का विश्वास है कि यह अभी मनुष्य के रहने लायक जगह नहीं है। यह एक व्यवस्थित षडयंत्र है। इसके पीछे विदेशी राष्ट्रों की वर्णभेद नीति है, क्योंकि पता चल गया है कि इस पृथ्वी पर उनकी विदेशी नीति नहीं चलने वाली है। अब दूसरे ग्रह जाकर वहाँ अपना ही एक अलग साम्राज्य स्थापित करने की युक्ति चल रही है। तुम पूछ सकते हो कि तुम तो गोरे नहीं हो, वहाँ कैसे पहुँच गए? बताता हूँ।''

''यानी जुपिटर में मनुष्य के रहने योग्य वायु गुण, मिट्टी, पानी, गुरुत्वाकर्षण सब कुछ है?'' मैंने अचरज से पूछा।

''पुट्टण्णा, सब कुछ है। मगर एक अलग रूप से, भिन्न रूप में है। आरंभ में हिल-मिल जाने में उलझनें होती है। यह समस्या कहाँ नहीं रहती, बताओ? मुझे गुरुत्वाकर्षण में झंझट हुई। लगा कि मैंने दो पेग ज्यादा पी ली है। बाद में आदत पड़ गई। तुमने मिट्टी के बारे में पूछा। उसका क्या कहना! हम भावुक होकर पृथ्वी की प्रशंसा करते हैं। मगर जुपिटर की मिट्टी के सामने यहाँ की मिट्टी कुछ भी नहीं है। जुपिटर की मिट्टी मिट्टी नहीं सोना है।

''धूल ही धूल होगी न?'' मैंने अपनी अकल पर जोर देकर पूछा।

जगन्नाथ हँस पड़ा।

''ये सब गलत सोच है। वहाँ पर आँखों में पड़ने के लिए एक कण-भर भी धूल नहीं है। लोग बड़े ही स्वच्छ-जीवी हैं। मैं ही थोड़ा अपवाद हूँ। हाँ, अब तुम्हारी दमे की बीमारी कैसी है?''

ओह, इसे अब भी मेरे दमे की बीमारी की याद है! मुझे बड़ी खुशी हुई। मैंने कहा—

''यह बीमारी कभी-कभी आती है और चली जाती है। कभी-कभी मैं इसे कंट्रोल करता हूँ और कभी-कभी यह मुझे कंट्रोल करती है। ज्यादातर यही मुझे कंट्रोल करती है।'' मैंने दिल्लगी की।

''कोई दवा है!'' जगन्नाथ ने कहा, ''जुपिटर ग्रह की दवा है। मैंने तो वहाँ एक भी दमे के रोगी को नहीं देखा है। वहाँ धूल है ही नहीं। घुन नहीं हैं। कीड़े-मकौड़े नहीं हैं। वहाँ सिर्फ नेचर है। अत्यंत शुद्ध और स्वच्छ हवा है। अगर तुम्हें पानी के बारे में कहूँ तो तुम्हें शायद आश्चर्य होगा। क्योंकि...हमने अच्छोद सरोवर के बारे में सुना है न?''

''पढ़ा है। वह हमारे पाठ में भी था।''

''हाँ, मगर उसे देखा नहीं है। अच्छोद सरोवर मीठे पानी वाला, स्वच्छ और अत्यंत बड़ा सरोवर है। जुपिटर भर में ऐसे सरोवर हैं। स्वच्छ पारदर्शक पानी। छुट्टी के दिनों में लोग इन सरोवरों के आस-पास आराम-कुर्सी लगाकर बैठे रहते हैं और छोटे-लहंगे पहने सुंदरियों के, जो सरोवर के आसपास घूमती रहती हैं, प्रतिबिम्ब सरोवर में देखते हैं।''

उसे शायद सिगरेट पीने की उत्कट इच्छा हुई।

''अभी आया।'' उसने कहा और मेरे जवाब देने से पहले ही उठकर चला गया। मैंने उसकी बात पर, उसकी ज़िंदग़ी के बारे में, और सबसे बढ़कर उस जुपिटर के बारे में सोचते हुए पाँच मिनट बिताये। बाहर की दुनिया उसी प्रकार चल रही थी। मोटर, बस, रिक्शा, लोग...

''सॉरी।'' कहते हुए जगन्नाथ फिर आया। वेटर ने आकर हमारे सामने दो छोटी-छोटी प्लेटों में कराची हलवे के टुकड़े रख दिए। टुकड़े ईट के आकार के, उसी रंग के थे। मैंने हलवे को मुँह में रख लिया और तोड़ने की कोशिश की। वह ऊपर-नीचे दाँतों में एक साथ चिपक गया। मुझे कुछ परेशानी हुई।

''मैं क्या कह रहा था?''

''अच्छोद...''

''अच्छा! हाँ, अच्छोद सरोवर। जुपिटर में जो मीठे पानी के सरोवर हैं, के बारे में और वहाँ पर घूमने वाले सुंदरियों के बारे में कहता जाऊँ तो इसका अंत ही नहीं है। तुम्हें तकलीफ होती है, तुम ऊब जाते हो। तुम समझते हो कि यह सब काल्पनिक कथा है। फिर भी मुझे वहाँ के पहाड़ियों के बारे में कहना ही चाहिए। जुपिटर की ऊपरी सतह इस प्रकार है मानो खाने की थालियों को फैला दिया गया हो। हर एक प्रदेश, हर एक थाली के जैसा है। उसके आँच के चारों ओर पर्वत की मालाएँ। वहाँ पर पर्वतों पर चढ़ना मामूली शौक है। दूसरे कसरतों की जरूरत है। तुम्हें पता है, मैं इतना स्लिम क्यों हूँ?''

मैं मुस्कराया।

''तुम यातायात की व्यवस्था के बारे में पूछताछ कर सकते हो। उसमें जुपिटर सबसे आगे है। बस, कार, ट्रेन, हवाई जहाज, उड़न तश्तरियाँ, नौकाएँ... वहाँ ईंधन बहुत ही सस्ता है। वहाँ गैस, डीजल आदि पेट्रोलियम प्रोडक्ट्स नहीं हैं। वहाँ रोशनी का संस्करण कर निकालने का साधन है जो आँखों को दीखता नहीं है। जलाने पर धुआँ नहीं आता। व्यर्थ और निरर्थक चीज़े बचती ही नहीं है। कारण आसान है। यह वह शक्तिरूप है जो सीधे रूप से इंजिन में तबादला किया जा सकता है। इसलिए यह संसाधन कभी खत्म नहीं होता। यह भी एक रहस्य की बात है। मगर इसके बारे में यूरोप को पता है।

''मगर तुमने प्रमुख बात ही नहीं बताई।'' मैंने कहा।

जगन्नाथ ने पल भर के लिए मुझे देखा और हँस पड़ा।

''हाँ, मैं वहाँ कैसे पहुँच गया... अब यह बात है... बताता हूँ... बताता हूँ।'' जगन्नाथ ने हलवा खाया।

''वड़ा अभी आया नहीं है, आयेगा। वह गरम रहता है, अच्छा रहता है। यह होटल वाले मुझे जानते हैं। मुझसे अच्छी तरह बर्ताव करते हैं।''

वड़ा और चने की चटनी के आने पर जगन्नाथ गरम-गरम वड़ा खाने लगा। मैंने वड़ा पर फूंक मारते हुए ठंडा किया और खाया।

''काफी? चाय?'' जगन्नाथ ने पूछा।

''काफी।''

जगन्नाथ ने कॉफी के लिए आदेश दिया।

वड़ा में जो मीठा नीम मिला कर तला हुआ था, जगन्नाथ को विशेष रूप से आकर्षित कर रहा था। हम दोनों पहले इसी प्रकार एक साथ बैठकर कितने ही होटलों में वड़ा खाये थे, याद आया। जगन्नाथ जो भी खाता, चाव से, अस्वाद से खाता था। उसका जीवन से उत्साह अभी तक उसी प्रकार था, जैसे पहले था, देख कर मुझे आश्चर्य हुआ और खुशी भी हुई क्योंकि ज़िंदगी की झंझटें आदमी को चालीस साल के बाद सताने लगती हैं। मेरे जीवन में भी ऐसा ही हुआ था। मैं अपनी उम्र से ज्यादा उम्र वाला लगता था। मगर जगन्नाथ... अब भी फुर्तीला था। यह सच है कि उम्र ने उसके शरीर को भी कमजोर किया है फिर भी चेहरे पर जो चमक थी, साँझ होने पर सूरज की रोशनी के जैसे अब भी ठहरी हुई है। मैंने दस बार अपने आप में कह लिया कि जगन्नाथ में कोई बदलाव नहीं हुआ है।

''पुट्टण्णा, और एक-दो वड़ा के लिए आर्डर करें?''

''अगर तुम्हें चाहिए तो...'' मैंने कहा।

''यही आधा घंटा पहले मैंने नाश्ता किया था। नहीं तो हाँ कह देता। हाँ, अब असली बात पर आयेंगे।''

मगर मुझे असली बात सुनने की सचमुच इच्छा नहीं थी। वह जो भी कहता है, असली बात बन जाती है, मुख्य विषय हो जाता है। अब यह कहाँ रहता है, क्या कर रहा है, उसकी बीवी-बच्चे और कारोबार के बारे में जानने की इच्छा सचमुच थी। मगर उसने कहना शुरू किया—

''तुम्हें तो मालूम ही है कि मैं जीवन में रिस्क लेने वाला आदमी हूँ? तुम कह सकते हो कि वह क्या बड़ी बात है, तुम्हारे पास बुजुर्गों का कारोबार था। मगर मैं उस कारोबार में रिस्क के साथ ही कूद पड़ा। क्योंकि मेरा पढ़ाई में ज्यादा मन लगता था, यह तुम जानते हो। पढ़ाई छोड़कर मैं बिजिनेस में आ गया। मुझे बिजिनेस के बारे में कुछ भी मालूम नहीं था। फिर भी काम शुरू किया। हमारा तो पैसा का व्यापार था। हम कर्ज देते थे, ब्याज लेते थे, असल की वसूली करते थे। मैंने इससे शेयर का

कारोबार भी शामिल किया। यह बड़ा रिस्क का कारोबार था। जाने दो... आखिर में सब कुछ डुबोकर हाथ साफ कर लिया। इस हालात में बीवी-बच्चे मुझे छोड़कर चले गए। भाई विद्रोही हो गए। मैं अकेला रह गया...''

''एक बार मैं लासवेगास के कैसीनो में घूम रहा था। कार्ड खेल कर थोड़ा-बहुत कमा लेता था। तुम्हें तो मालूम है कि ताश खेलने में माहिर हूँ, मुझे कोई आसानी से हरा नहीं सकता। एक दिन कैसीनो में एक नामी व्यक्ति को दस हजार डालर से हराया। वह दंग रह गया क्योंकि ताश खेलने में वह बड़ा माहिर था। उसने मुझसे पूछा, ''क्या तुम मेरे साथ चलोगे?' मैंने पूछा, 'कहाँ?''

''उसने कहा, 'जुपिटर में।' मैंने सोचा कि जुपिटर अमरीका में या इटली में होगा या इसी धरती पर कहीं रहा होगा। मैंने फिर पूछा, ''क्यों जाना चाहिए?' उसने मुझे नौकरी दिलाने की बात कही। मैंने मान ली। वह ही मुझे जुपिटर में ले गया था। उसने वहाँ पर एक कसीनो खोलने की योजना बनाई थी। उसने मुझे वहाँ का मैनेजर बना दिया...''

''यह सब एक सपने की तरह हो गया। मैंने विश्वास नहीं किया था। अब भी जब मैं नींद से जागता हूँ तो यह बात भूल जाता हूँ कि मैं जूपिटर में हूँ, ऐसा कभी-कभी होता है। जुपिटर में सब कुछ ठीक-ठाक है। कुछ ज्यादा ही ठीक-ठाक है, ऐसा भी कह सकते हैं। इसलिए मैं यहाँ कभी-कभी आता रहता हूँ। यहाँ भी मेरा एक छोटा-सा घर है। घर में कोई-कोई हैं भी। इन संकरी गलियों में तन से तन रगड़ते हुए घूमना, बाज़ारों में सब्जियाँ खरीदना, फल बेचने वालों के साथ कम पैसे में लेने के लिए खींचतानी करना, यह सब मेरे पसंद के काम हैं। मैं यहाँ का ये हलवा, वड़ा, कॉफी, ये शोरगुल जुपिटर में खो रहा हूँ...''

''मगर तुम्हें अगले साल आना ही चाहिए। अगले साल इसलिए कह रहा हूँ कि एक आदमी साल में एक बार ही दूसरे की सिफारिश कर सकता है। यह भी कहा नहीं जा सकता कि वहाँ हर सिफारिशी आदमी को वीसा मिलता ही है। मगर मेरी बात कुछ चलती है। अगर तुम आओगे तो तुम दमे की बीमारी से मुक्त हो सकते हो। ऑफकोर्स, मुझे तुम्हारा स्नेह भी मिलेगा। सो गेट रेडी!''

हम अपना फोन नम्बर आपस में नोट कर रहे थे, तभी कॉफी आ गई। बिल भी आया। बिल के पैसे देने के लिए मैं ही आगे बढ़ा। आमतौर पर हमारी दोस्ती में कभी ऐसा नहीं हुआ था।

जगन्नाथ ने कभी भी मुझे बिल चुकाने का मौका नहीं दिया था। फिलहाल वह कॉफी पीते हुए कुछ सोच रहा था।

मैंने यों ही कहा, ''इधर कहा जाता है कि जुपिटर कोई ग्रह नहीं है? पाठ्यपुस्तकों में से भी उसका नाम निकाल दिया गया है?''

यह सुनते ही जगन्नाथ का चेहर काला पड़ गया। लगा कि वह नाराज हुआ है। आमतौर पर जगन्नाथ शांत स्वभाव का सात्विक व्यक्ति था। न जाने उसने मेरी बात में कौन-सी गलती ढूँढ़ ली। जुपिटर ग्रह नहीं है, मेरी इस बात से वह नाराज हुआ या पाठ्यपुस्तकों में से जुपिटर का नाम निकाल दिया गया है, इस बात से नाराज हुआ, समझ में नहीं आया। मेरे लिए यह अकेडमिक बात थी। किसी को भी यह हो सकता है; जुपिटर से किसी को क्या लेना-देना है? वह एक व्यक्तिगत मामला था जो मेरे लिए अंदाज से बाहर था। मगर लगा कि जगन्नाथ क्रोध से काँप रहा है। पानी पीने के लिए उसने ग्लास उठाया तो वह और भी ज्यादा काँपने लगा। वह पानी भी नहीं पी सका।

''पहली बात है कि यह जुपिटर के बारे में नहीं, प्लूटो के बारे में कहा जा रहा है। दूसरी बात है, जुपिटर या प्लूटो ग्रह नहीं है, यह एक बड़ी इंटरनेशनी स्कैंडल की बात है। एंड आई चैलेंज देम। आकर देखें कि ये ग्रह क्या हैं, यों ही बैठे-बैठे कुछ कहने से सच्चाई होगी? देखो! यह अमरीका का षडयंत्र है। वर्स्ट फार्म ऑफ कैपिटलिज़म! देखो, अमरीका की इच्छा है कि कुछ भी हो जाए, इन ग्रहों को अपना डेरा बनाना चाहिए। उसके लिए एक-एक ग्रह की मान-मर्यादा नष्ट कर रहे हैं। आज प्लूटो तो कल जूपिटर। मगर यह चलता नहीं है, समझे! अब कोसोवो में क्या हो रहा है...''

जगन्नाथ बडबड़ाने लगा।

मैं शर्मिन्दा हुआ। मैंने प्लूटो के बदले जुपिटर कहा था। कोसोवो में अब क्या हो रहा है, इसका पता मुझे नहीं था। कोसोवो कहाँ है, यह स्पष्ट रूप से मालूम नहीं था। मुझे राजनीति में दिलचस्पी नहीं है। अखबार मँगवाता हूँ, सुर्खियाँ पढ़ता हूँ, बाकी जगह सिर्फ देखता हूँ। इससे और कुछ ज्यादा नहीं पढ़ता। पढ़ने के

लिए समय नहीं है। काम निबटाकर घर आने तक थक जाता है। इसलिए मैं राजनीति की बातें कम समझ सकता हूँ। राजनीति की चर्चाओं में भाग नहीं लेता हूँ। ये कोसोवो, यह अमरीका! मुझे ऐसे नेटवर्क नहीं आते।

मगर मुझे लगा कि जगन्नाथ को सब कुछ आता है। उसका मन एक अनोखेपन से तेज हुआ। वह बहुत दुखी मन से बात कर रहा था।

कभी उसने जो कुछ कहा था, याद आया—

''दु:ख तकलीफ चाहिए, जीवन में दु:ख तकलीफ, इन्वाल्वमेंट, दिन में स्वप्न देखना सब अहम हैं, इसके बिना जीवन अर्थहीन है, खोखला है। यह अच्छा है कि मरने के जैसे रहने के बजाय मरना ही बेहतर है।

''जगन्नाथ, तुम्हारी बात मानना मेरे लिए संभव नहीं होगी। मेरी तो आधी ज़िंदग़ी दूसरों के पैसे गिनने में ही खो गयी। मुझे तो स्वप्न भी नहीं आते हैं, सच्चाई भी यहीं है।'' मैंने कहा।

लगता है कि आवाज़ कुछ ऊँची हो गई। हमारे आसपास जो-जो बैठे थे, देखने लगे। वेटर भी चौंक गए। वे भी हमारे पास आए। मैं उठ खड़ा हुआ।

''जगन्नाथ, अब मुझे जाना है। कुछ जरूरी काम है। फिर कभी मिलेंगे...'' मैंने जल्दी-जल्दी में कहा। जगन्नाथ भी उठ खड़ा हुआ। हम होटल से बाहर आए। मैंने फिर से फुटपाथ पर बात आगे बढ़ानी नहीं चाही।

''मैं जाने से पहले तुम्हें सूचित करूंगा।'' जगन्नाथ ने कहा। मैंने सिर हिलाया और उसी दिशा में अपनी छाया रौंदते हुए आगे बढ़ने लगा।

•••

मैं सारे मामलों की रपट अपनी बीवी के हवाले कर देता था, मगर जगन्नाथ की अचानक भेंट की बात का जिक्र नहीं किया। क्या कहूँ? कैसे कहूँ? कहने पर वह नहीं मानेगी। सोचती है कि मज़ाक कर रहा हूँ। या वह विश्वास कर लेगी तो जगन्नाथ के बारे में उसका जो विश्वास था, उसका क्या होगा?

बीवी ने उसे कभी नहीं देखा था। मगर मैं जब भी अपने बचपन की बातें उससे करता, उसका जिक्र हो ही जाता था। जगन्नाथ त्यागी, दानशील, स्नेहप्रिय और साहसी है, ऐसी एक तस्वीर उसके मन में चित्रित हुई थी। उसे क्यों न गंदा करूँ, यह सोचते हुए हमारी अचानक भेंट का जिक्र उससे नहीं किया था। मगर इससे मेरी परेशानी बढ़ गई, कम नहीं हुई।

इस घटना के कुछ ही सप्ताहों में मुझे उस गाँव से दूसरे गाँव जाने का तबादला-पत्र आया। यह तबादला मेरी माँग के अनुसार ही हुआ था। इससे मुझे बुरा नहीं लगा था। खुशी ही हुई थी। मगर तबादला हो जाने के बाद घर-गृहस्थी को समेट कर ले जाना मुश्किल काम है ही। बच्चे दूसरे शहरों में पढ़ते थे। मैं और मेरी बीवी यहाँ रहते थे। पैंकिग करने का निश्चय किया। तभी मुझे लगा कि जगन्नाथ को फोन से हमारे इस गाँव से जाने की बात कहनी चाहिए? हो सके तो उसे खाने पर बुलाना चाहिए। मगर अब की हालत में यह संभव नहीं था। यह जुपिटर में गया होगा। मैंने कई बार उसके बारे में बीवी से कहा था। मगर इस गाँव में उसके साथ जो अचानक भेंट हुई थी, बताया नहीं था। उससे क्या कहना? मगर मेरे मन में वह घटना बार-बार उभर कर आ रही थी।

उसने मुझे जो नम्बर दिया था, मैंने उस पर फोन किया।

''जगन्नाथ है क्या?'' मैंने पूछा।

''वे नहीं हैं। चाहो तो उनके घरवालों को बुलाता हूँ''

''प्लीज।''

कुछ समय के बाद एक महिला की क्षीण आवाज़ सुनाई पड़ी।

''कौन चाहिए?''

''जगन्नाथ। मैं उनका दोस्त पुट्टस्वामी हूँ।''

''वे नहीं हैं... चले गए...''

''अरे! मुझसे कहे बिना चला गया!''

''वे... मर गए...''

मैं दंग रह गया।

''कब?''

''एक महीना हो गया...''

''यह क्या हो गया...इतनी जल्दी...'' मैं बड़बड़ाने लगा।

''मालूम नहीं है, अचानक... रात में सो रहे थे, वैसे ही...''

''मैं और जगन्नाथ जिगरी दोस्त हैं। वह दो महीने पहले मुझे मिला था... आपका घर कहाँ है?''

लगा कि वह कुछ घबरा गई। फिर भी उसने घर का पता बताया।

''मैं आकर मिलूंगा।'' मैंने फोन रख दिया।

मुझे कुछ भी नहीं सूझ रहा था।

दो दिन के बाद उस गली को ढूँढते हुए निकल पड़ा। पता चला कि जगन्नाथ ने जो फोन नम्बर दिया था, एक सार्वजनिक फोन सेंटर था। यह भी पता चला कि उस सेंटर के बाजू में ही उसका घर है। मगर मुझे फिलहाल स्पष्ट नहीं हुआ कि मैं अब उसके घर क्यों जा रहा हूँ। मैं दुविधा में पड़ गया। वह दो कमरों का एक छोटा-सा घर था। यह अंदाजा लगाना मुश्किल था कि यह जगन्नाथ का ही घर है। चबूतरे पर एक बूढ़ी औरत बैठी थी। अंदर एक युवती सिलाई मशीन के आगे बैठ कर काम में तल्लीन थी। सोचा कि युवती इस बूढ़ी की बेटी होगी। शायद बूढ़ी जगन्नाथ की बीवी होगी। युवती के आसपास कपड़ों की ढेर थी, जिन्हें सिलाई करना था। इधर-उधर छोटी उम्र की दो लड़कियाँ खेल रही थीं।

जब युवती ने मुझे देखा तो सिलाई का काम छोड़कर बाहर आई। उसके माथे पर पसीना था। उसने साड़ी के आँचल से उसे पोंछ लिया।

''नमस्कार! मैं पुट्टस्वामी हूँ। फोन किया था, अब बिना बताए आ गया...'' मैंने कहा।

''मालूम हुआ! नमस्कार!'' वह जल्दी से कुर्सी लाने के लिए अंदर गई, उसे रोकते हुए मैंने कहा, ''मैं यही बैठता हूँ। मैंने कहा।''

''नहीं-नहीं, मैं कुर्सी लाती हूँ।'' मैं मना करते हुए चबूतरे के दूसरे कोने में बैठ गया।

वह अपनी माँ के पास दीवार से सटकर खड़ी हुई।

''कौन है?'' बूढ़ी ने पूछा।

''इनके एक दोस्त हैं।''

''मुझे कुछ भी दिखाई नहीं देता। बूढ़ी ने अपनी भौंहों पर हाथ रख लिया।''

बच्चे बाहर आए और मेरे पास आकर खड़े हुए। बच्चे प्यारे थे।

''आपके नाम क्या-क्या है?'' मैंने उनसे बातचीत की।

''मल्लिगे, गुलाबी।'' एक लड़की ने इठलाते हुए कहा।

''मल्लिगे कौन है? गुलाबी कौन है?''

''मैं मल्लिगे हूँ, यह गुलाबी है।'' दूसरी ने कहा

''नहीं-नहीं, आज तुम गुलाबी हो, मैं मल्लिगे हूँ।''

''नहीं-नहीं, आज तुम गुलाबी हो, मैं मल्लिगे हूँ कल तुम मल्लिगे थी।''

''किस दिन कौन मल्लिगे, कौन गुलाबी?'' मैंने पूछा।

''बस करो! मामा का सिर मत खाओ।'' उनकी माता ने कहा।

घर में आगे एक छोटा-सा बगीचा था। चमेली और गुलाब के पौधे थे, एक छोटा कुआँ था। उस छोटे अहाते में दूसरा घर नहीं था। मुझे आश्चर्य हुआ कि इस परिसर में जगन्नाथ क्या करता था।

''जगन्नाथ से कुछ दिन पहले मैंने कुछ कर्ज़ लिया था। उसे अब तक चुका नहीं सका। अब सोचा, ब्याज सहित कर्ज चुका दूँ... हम दोनों स्कूल-कॉलेजों में साथ-साथ थे। जगन्नाथ ने मेरे बारे में बताया होगा।''

''हो सकता है। मुझे याद नहीं है। आप इस शहर में ही हैं।?''

''बैंक में काम करता हूँ सच में मैं उसका बहुत ही आभारी हूँ उस आभार को मैं पैसे से नहीं चुका सकता।''

थैले से नोटों का बंडल निकाल कर उसके सामने रख दिया। उसने घूरकर देखा। मगर लेने का उत्साह उसमें नहीं दिख पड़ा।

''क्या है?'' बूढ़ी ने पूछा।

''कुछ नहीं, कर्ज़ के पैसे हैं।''

''कर्ज़? कौन सा कर्ज़?''

''मैंने लिया था, वापस दे रहा हूँ।''

''कर्ज़ क्यों? कितने हैं?''

''माँ, यह सब क्यों पूछती हो?'' जगन्नाथ की बीवी ने कहा।

''अब वे नहीं है, फिर कर्ज़ के पैसे क्यों?'' बीवी ने फिर कहा।

''बच्चों के काम आएगा।''

''अगर मुझे उन बच्चों के बारे में पता होता तो कुछ चॉकलेट लाता। खाली हाथ आया था, दु:ख हुआ।''

उससे पूछने के लिए मेरे पास हजारों सवाल थे। मगर जब उसके दु:ख-भरे चेहरे को देखा तो पूछना उचित नहीं समझा। चुप ही रह गया। फिर मैंने एक साथ कहा कि मेरा यहाँ से तबादला हुआ है, बहुत काम है, पैकिंग करना है, ज्यादा देर तक बैठ नहीं सकता, मैं कॉफी नहीं पीता।

जब उठ कर जाने लगा तो एक लड़की ने मुझसे पूछा—

''बताइए, मल्लिगे कौन है, गुलाबी कौन है?''

मैंने दोनों को एक बार उठा लिया और कहा, ''फिर कभी फोन करूँगा।'' और वहाँ से बाहर निकल पड़ा।

नए शहर में घर बनाया, वहाँ के परिसर में हिल-मिल गया। एक दिन जगन्नाथ की याद आई तो सोचा कि उसके घर फोन करूँ। मगर सोचते-सोचते एक साल बीत गया। फोन करने पर, संदेश आया कि वह नम्बर नहीं है। बाद में मेरी दमे की बीमारी बढ़ती गई और मैं खुद उस शहर में नहीं जा पाया। मगर मुझ मल्लिगे और गुलाबी की याद बहुत सता रही है। मल्लिगे कौन है? गुलाबी कौन है? बच्चों के ये सवाल मेरे मन से दूर होता ही नहीं है।

•••

एक दिन अचानक लगा कि जगन्नाथ पूछ रहा है।

''पुट्टण्णा, उसने क्या कहा?''

''किसने?''

''मेरी बीवी ने।''

''कुछ नहीं कहा।''

''मुझे मालूम है, वह कुछ नहीं कहेगी। जानते हो, क्यों?''

''क्यों?''

''वह विश्वास नहीं करेगी, तुम भी नहीं करोगे।''

''किस बात के लिए?''

''झूठा सवाल मत पूछो। तुम विश्वास नहीं करोगे, फिर मैंने क्यों बातचीत की, यह पूछो।

''क्यों?''

''मैं दूसरी संभावनाओं को देख रहा था।''

''समझ में नहीं आ रहा है।''

''रहने दो।''

''जगन्नाथ, तुम बहुत ही निर्दयी हो, यह तुम्हें कभी मालूम हुआ है?''

''मेरी बीवी से शादी करोगे?''

''तुम क्या कह रहे हो?''

''शादी करने की इच्छा या दया की भावना तुममें हो सकती है। मगर तुम नहीं करोगे।''

''मेरी अपनी बीवी है।''

''नहीं, कारण यह नहीं है। मैं संभावनाओं के बारे में पूछ रहा हूँ।''

''जगन्नाथ, मैं तुमसे एक सवाल पूछता हूँ, अब तुमने फिर से मेरे जीवन में क्यों प्रवेश किया?''

''तुम्हें ऐसा लगता है? ठीक है। मगर तुम्हें जवाब का पता है। तुम अपने आप से पूछ लो, तुम्हें मेरी जरूरत थी... मैंने प्रवेश नहीं किया, तुम खुद मुझमें प्रवेश कर गए थे... क्या तुम सचमुच बता सकते हो कि ऐसी बात नहीं है?''

◆◆◆

हॉर्स रेस

अंजना वर्मा

...मैं अपराध कर रहा था... अन्याय... सौरभ! पर तब मेरे पास इतनी चेतना ही न थी कि मैं अपने किये का विश्लेषण करता। जिन्दगी जैसे एक हॉर्स रेस थी और मैं उसका घुड़सवार। अपनी महत्वाकांक्षा के घोड़े को बेतहाशा दौड़ा रहा था... दौड़... दौड़... दौड़...! मेरी आँखें फिनिश लाइन पर फिक्स्ड थीं। मुझे किसी तरह यह दौड़ जीतनी थी... बस। वही मेरा गोल था। इधर-उधर कुछ दिखायी नहीं दे रहा था मुझे।...

शिखर बहुराष्ट्रीय कम्पनी के वातानुकूलित कमरे में बैठा हुआ था, उम्र होगी, यही कोई पैंतीस के आसपास। चेहरे पर थकान ने अपना बसेरा बना लिया था, फिर भी गाल और ललाट आत्मविश्वास से दमक रहे थे। अभी वह थोड़ा रिलेक्स्ड महसूस कर रहा था क्योंकि कम्पनी के टारगेट पूरे हो चुके थे। जो बाकी थे उनके भी पूरे होने की पक्की उम्मीद थी।

तभी उसके ऑफिस का एक बंदा सौरभ घबराया हुआ उसके पास आया। बोला, ''सर माई वाइफ इज सफरिंग फ्रॉम हेवी फीवर। आई विल हैव टू गो... राइट नाउ... सर।''

दो पलों के लिए शिखर भी घबराकर उसकी बातें सुनता रहा। फिर बोला, ''श्योर-श्योर। प्लीज गो...। सौरभ! तुम फौरन उन्हें अस्पताल लेकर जाओ और डॉक्टर से मिलने के बाद मुझे फोन करना। किसी चीज की जरूरत हो तो हेज़िटेट मत करना... और पैसे की चिन्ता मत करना।''

''यस सर...।''

''हाँ, अभी कोई है उनके साथ?''

''हाँ, मेरी माँ है। माँ का ही फोन आया था।''

''ओके! प्लीज गो... फास्ट। टेक केयर।''

''थैंक यू सर... थैंक यू...।''

यह कहता हुआ और मन ही मन अपने बॉस को दुआएँ देता हुआ सौरभ जिस तरह घबराया हुआ आया था, उसी तरह घबराया हुआ निकल गया। शिखर का चेहरा थोड़ा गंभीर हुआ जैसे वह कुछ सोच रहा हो।

शेखर ने फोन करके हालचाल पूछा और अस्पताल जाकर सौरभ की पत्नी को देख आया। उसके चले जाने के बाद सौरभ की माँ उसके व्यवहार की इतनी तारीफ करती रहीं और दुआएँ देती

सम्पर्क: कृष्णा टोला, ब्रह्मपुरा, मुजफ्फरपुर-842003
मोबाइल: 9572991995

रहीं। सौरभ तो रात-दिन अपने बॉस की तारीफ करने में लगा पर वह समझ नहीं पा रहा था कि इतने ऊँचे पद पर पहुँचकर भी शिखर को क्यों अभिमान छू तक नहीं पाया है? अपने इम्प्लाइयों के प्रति इतना प्यार? यह कम ही देखने में आया है।

उसके बाद से सौरभ के दिल में शिखर के लिए बड़ी इज्जत हो गयी। अक्सर उसके मुँह से शिखर के लिए तारीफ भरे शब्द निकल ही जाते। ऑफिस में सिर्फ वही अकेला नहीं था तारीफ करने वाला, सभी उसकी तारीफ करते थे। शिखर अपने इम्प्लाइज के बीच अपने रुतबे से नहीं, बल्कि अपने सौम्य व्यवहार के कारण कद्र पा रहा था।

एक दिन ऑफिस की ओर से पार्टी थी। सौरभ अपने दोस्तों विवेक और अयाज के साथ ड्रिंक ले रहा था। तभी शिखर भी अपना ग्लास हाथ में थामे आया और उनके बीच बैठ गया।

शिखर ने सौरभ से पूछा, ''सौरभ! बताओ कैसी है तुम्हारी वाइफ?''

''बिल्कुल ठीक सर! और आपने तो सुनते ही मुझे छुट्‌टी दे दी भी।''

''अरे कैसे नहीं देता?... मैं समझता हूँ कि फैमिली की अहमियत...।''

यह कहने के बाद उसने आँखें बड़ी-बड़ी कर सौरभ को देखा। फिर अपने ग्लास से चुस्की ली। थोड़ी देर तक मौन छा गया। सौरभ और अयाज़ गौर से शिखर को देखते हुए सोचने लगे कि इन शब्दों के पीछे आखिर कुछ तो है।

तभी शिखर बोला, ''एक बार मेरी भी वाइफ बीमार पड़ी थी, पर उस समय मेरी ही बेरुखी ने कोमल को मुझसे दूर कर दिया... कोमल... मेरी वाइफ। वह समय ऐसा था... ऐसा कि मैं कुछ समझता ही न था... आज सोचता हूँ। जो बीत गया उसके लिए क्या कर सकता हूँ?''

फिर वह कुछ देर के लिए चुप हो गया और उसने एक ही बार में अपना ग्लास खाली कर दिया। उसकी आँखें कहीं अदृश्य में खो गयी थीं।

वह बोलने लगा, ''तब मेरी नयी-नयी शादी हुई थी। मैं उसे लेकर अपनी नौकरी पर आया। एक दिन कोमल बीमार थी और बिस्तर से उठ भी नहीं पा रही थी। मैं ऑफिस के लिए जब निकलने लगा उसने कहा, कि आज मत जाओ। मेरी तबीयत ठीक नहीं है। पता नहीं मैं आज वाशरूम तक भी कैसे जाऊँगी। शायद गिर जाऊँगी...। उसकी आवाज़ में कमजोरी साफ घुली हुई थी और वह रुक-रुक कर बोल रही थी। आँखें पूरी तरह सूजी हुई थीं। इस पर मैंने कहा, 'कोमल डार्लिंग! आज जाना बहुत जरूरी है। नहीं गया तो डील चौपट हो जायेगी...। कोई बात होगी तो तुम मुझे फोन कर देना।''

कोमल कुछ बोली नहीं और चुपचाप आँखें बंद कर पड़ी रही और मैं ऑफिस निकल गया। उसी रात जब मैं ऑफिस से लौटा देखा बुखार से उसका बदन तप रहा था और वह बेहोश थी — न जाने कब से। मैंने फिर ऐम्बुलेंस बुलायी। इस घटना के बाद बहुत दिनों तक मैं अफसोस करता रहा कि यदि रुक ही जाता तो क्या होगा?

मैं अब यह समझता हूँ कि जितना समय मुझे अपनी पत्नी को देना चाहिए था, उतना ही मैं नहीं दे पाता था। दफ्तर जाने के बाद अपने निकट अकेलेपन को कोमल कैसे काटती थी वह देख तो नहीं पाता था, परंतु अनुमान न लगा पाता हो ऐसा भी नहीं था। मैं इस अकेलेपन की कल्पना करने से भी डरता था जबकि वह उसे झेल रही थी।

कोमल उस एक कमरे में फ्लैट में बिल्कुल बेचैन हो जाती। यह मैं जानता हूँ कि सन्नाटा अन्नाकौंडा की तरह मुँह फाड़े उसे निगलने की कोशिश में लगा रहता होगा। किसी-किसी तरह वह दिन काटती होगी। सवेरे की चाय वह नौ बजे पीती थी हाथ में कप लिये अपने माहौल से खीझी हुई। उसे लगता था कि वह कैद होकर रह गयी है।

कभी-कभी हम बात करते वह यह सब बताती। कभी ही कभी... ऐसे बात भी कहाँ हो पाती थी? दो बातें करने के लिए फोन मिलाती मेरा फोन बिजी आता। कभी मैं बात करता तो कभी यह कहकर फोन बंद भी कर देता, अच्छा... अभी तुमसे बात करता हूँ। बस, थोड़ी देर में।

और वह थोड़ी देर बाद का समय कभी न आता। वह रात का इंतजार करती रह जाती।

शायद वह अपने खाने के लिए कुछ नहीं बनाती थी। बचा खुचा खा लेती और कभी-कभी तो सारे दिन बिस्तर में ही पड़ी रह जाती थी। किसी-किसी तरह उसका दिन कटता तो शाम होती और फिर शाम रात में बदल जाती। टीवी देखते-देखते आँखें थक जाती तो जाकर सो जाती थी। रात को मैं आता, मेरे साथ ही खाती। अक्सर ऐसा होता कि मैं अपनी डुप्लीकेट चाभी से लॉक खोलकर घर में प्रवेश करता।

मेरी आहट सुनते ही वह जग जाती। उसके चेहरे पर मुस्कुराहट तैर जाती और वह चहकती हुई आवाज़ में पूछती, ''आ गये?''

''हूँ... आज ऑफिस में इतना काम था।'' मैं बोलता।

''छोड़ो... यह ऑफिस गाथा। पेट में खलबली हुई मची है। खाना गरम करती हूँ।''

''पर मैं तो...।'' मुझे कहना ही पड़ता, क्योंकि ऐसा हो जाता था मुझसे।

''क्या मैं तो?'' वह बोलती।

''मैं तो मीटिंग से खाकर आया हूँ।'' एक अपराध भाव लिये मैं बोलता।

''तो तुमने मुझे बता क्यूँ नहीं दिया? एक कॉल तो कर देते?''

''अरे इस कदर बिजी था कि भूल गया। अच्छा, अब से ख्याल रखूँगा। सॉरी...।''

और मैं उसे मनाने की पूरी कोशिश करने लगता। जब ऐसा एक बार नहीं कितनी बार हुआ तब अंत में कोमल ने खाने पर मेरा इंतजार करना छोड़ दिया था।

शुरू-शुरू में मेरे देर से आने का कोमल इंतजार करते-करते थक कर सो जाया करती थी। बाद में यह इंतजार भी खत्म हो गया था। मैं कब जाकर सो जाता था, उसे मालूम नहीं होता। रोज की यही कहानी हो चली थी।

मैं उसे मनाने की पूरी कोशिश करता। पर मैं पूरी तरह जान नहीं पाता था कि उसके दिल पर क्या बीतती होगी? वैसे औरतें अधिक भावुक होती हैं। वह भी थी। ज्यादा तो नहीं कहूँगा, क्योंकि ज्यादती मेरी ओर से उसके प्रति हो रही थी। उसे सिर्फ सहना पड़ रहा था।

उसका रात का खाना मेरी वजह से अनियमित हो गया। अकेलेपन के कारण वह खाने के प्रति अपनी रुचि ही खो बैठी थी। शायद उसे गहरी उदासी घेरने लगी थी। वह भीतर-ही-भीतर बीमार रहने लगी थी... शायद! शायद वह डिप्रेशन की शिकार हो गयी थी। और मैं भी उसकी ओर ध्यान नहीं दे पा रहा था। मुझे चाहिए था कि मैं उसे कहीं घुमाने ले जाता। एक-आध घंटे भी अंतरंगता के साथ उससे बातें करता। उसे भीतर से समझने की कोशिश करता कि वह क्या चाहती है? उसे क्या अच्छा लगता है? एक बड़ी कॉमन-सी बात है कि अपने पति के साथ घूमना, सैर-सपाटा, रेस्तरां में खाना और यदि पैसे न भी हों तो कम से कम साथ में हँस-बोल कर समय बिता लेना सभी औरतों को अच्छा लगता है। पर मैं उसके साथ समय भी तो नहीं दे पा रहा था।

मैं उसके साथ अपराध कर रहा था... अन्याय... सौरभ! पर तब मेरे पास इतनी चेतना ही न थी कि मैं अपने किये का विश्लेषण करता। जिन्दगी जैसे एक हॉर्स रेस थी और मैं उसका घुड़सवार। अपनी महत्वाकांक्षा के घोड़े को बेतहाशा दौड़ा रहा था... दौड़... दौड़...दौड़! मेरी आँखें फिनिश लाइन पर फिक्स्ड थीं। मुझे किसी तरह यह दौड़ जीतनी थी... बस। वही मेरा गोल था। इधर-उधर कुछ दिखायी नहीं दे रहा था मुझे।

जानते हो सौरभ? अब जब तुमसे कह रहा हूँ तो कह ही दूँ। आज तुमसे सब कह देना चाहता हूँ। क्यों रखूँ दिल में? क्यों? मुझे दिल पर इसे झेलना बहुत भारी लगता है।

वह चाहती थी कि हमारे बच्चे हों और हमारे बीच का खालीपन भरे। उसका अकेलापन दूर हो। पर मैं टाल देता था। उसकी यह माँग नाजायज थी क्या? कतई नहीं। वह प्यारे-प्यारे बच्चों के सपने देखने लगी थी। एक दिन अपने सपने मुझे सुनाने लगी तो मैं बोला, नहीं कोमल, अभी नहीं। देखो, अभी हमारे पास क्या

है? न अपना मकान है, न अपनी गाड़ी है। वह इस दुनिया में आएगा तो हम क्या दे सकेंगे उसे? न अच्छे खिलौने, न महंगे स्कूल में एडमिशन—कुछ भी तो नहीं हो सकेगा। यही अगर वह कुछ साल बाद हमारी गोद में आये तो कितना कुछ मिलेगा उसे?... और जानते हो, यह सुनकर उसकी आँखों में आँसू आ गये थे। उसने अपनी बड़ी-बड़ी सजल आँखों से देखते हुए कहा था, ''शिखर! तुम नहीं जानते कि बच्चे अपने माता-पिता से यदि सच में कुछ चाहते हैं तो वो है प्यार-दुलार, उनकी ममता-भरी निगाहें। बाकी चीजें तो दिखावे की होती हैं। और फिर जब तक वह सब समझने लायक होगा तब तक तो हमारे पास सब कुछ हो जायेगा न? फिर चिन्ता क्यों करते हो? फिर देर क्यूँ?''

''तुम नहीं समझती'' मैं कहता, ''उसे समय भी तो देना होगा। कहाँ है हमारे पास समय?''

''तुम्हारे पास नहीं है, मेरे पास तो है ना?''

''क्या अकेले कर लोगी सब? क्या मेरी थोड़ी भी जरूरत नहीं पड़ेगी?'' तक वह चुप हो जाती।

वह सब समझती थी, पर मैं ही नहीं समझता था। मैं नहीं समझ पाया था उसकी भावनाओं को और मैं कितना कठोर बना रहा, वह कितनी बेबस कि मुझसे एक संतान भी न पा सकी।''

यह कहने के बाद शिखर की आँखें भर आयीं। कुछ सोचकर उसने फिर कहना शुरू किया—

''मुझसे वह अक्सर शिकायत करती थी कि मैं उसे घुमाने नहीं ले जाता हूँ। वह ठीक ही तो कहती थी कि ''अगर तुम्हारे पास मेरे लिए समय नहीं है तो तुमने शादी ही क्यूँ की?''

मैं कहता, ''माँ-बाप का दबाव था कि शादी कर लो, इसलिए की।''

तो वह कहती, ''तो आज भुगत तो मैं रही हूँ न? तुम तो चले जाते हो बाहर... ऑफिस... होटल... पार्टी... हँसना-बोलना। और मैं?''

मैं कहता, ''तुम्हें किसी ने मना किया है? तुम भी बाहर जाओ। बाजार में घूमो... कपड़े खरीदो।''

''हाँ-हाँ... मै अकेली घूमती रहूँ बाजार में? कपड़े खरीदूँ और पहनूँ... किसलिए?'' वह कहती।

वह ठीक ही तो कहती थी, कि तुम हफ्ता में एक दिन भी मेरे लिए नहीं निकाल सकते, एक दिन भी मुझे नहीं दे सकते शिखर!... सैटरडे को भी निकल जाते हो।

सच, मैं तो अपने कामों की धुन में शनिवार को भी व्यस्त हो जाता था। फिर उसके दूसरे दिन रविवार को भी उससे बात करने की फुर्सत नहीं होती, क्योंकि उस दिन मुझे अपने कपड़े साफ करने की जरूरत पड़ती और उन्हें प्रेस करने की। सप्ताह-भर की प्लांनिग करता। घर पर रह कर भी लैपटॉप पर व्यस्त रहता। सोचो सौरभ... वह किस टेंशन से गुजर रही होगी?

मुझे याद है हमारे बीच का अन्तिम वाकया। उस दिन शनिवार था और शनिवार के दिन भी मैं तैयार होने लगा कोमल ने कहा था, ''शिखर! याद है आज क्या दिन है?''

''हाँ, शनिवार है। तुम यही न कहोगी कि आज मैं क्यूँ काम के लिए निकल रहा हूँ?''

''नहीं शिखर! आज कुछ और भी है। जरा याद तो करो?''

''क्या है कोमल? लेट हो रही है। पहेलियाँ मत बुझाओ। बहुत बड़ी डील है। मैं इसे ले सका तो मालूम है मेरी सैलेरी में कितना हाईक हो जाएगा और मैं कहाँ पहुँच जाऊँगा?''

''क्या तुम्हारी ज़िंदग़ी में डील और सैलरी हाईक के अलावा किसी और चीज के लिए कोई जगह नहीं?''

''है क्यों नहीं? पर सब तो उसके बाद ही न?''

''उसके बाद?'' उसने दोहराया था।

''हाँ!'' मैंने भी अपनी बात पर जोर दिया।

वह मुझे घूरने लगी। जब मैं उसकी आँखों को बर्दाश्त नहीं कर

पाया तो बोला, ''किसके लिए कर रहा हूँ यह सब? अपने लिए क्या?''

''मुझे नहीं चाहिए यह सब। बस मुझे अपना थोड़ा-सा समय दे दो।'' उसकी आँखों में अब एक सच्ची याचना थी।

तब मैंने कहा, ''कोमल! प्लीज... इमोशनल बातें बंद करो। बताओ आज क्या है?''

''आज हमारी शादी की तीसरी वर्षगांठ है।'' वह बोली।

उसे लगा कि यह सुनकर मैं चौंक जाऊँगा, पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। उल्टे मैं सुनकर भी उदासीन बना रहा।

मैं काम के बोझ से, जो कि मेरा ही अपना ओढ़ा हुआ था— आसमान छूने की मेरी अपनी जिद्द का परिणाम था, इस तरह दबा हुआ था कि उसकी आँखों में प्यार न देख पाया। ऊपरी मन से बोला, ''हाँ, ओह! मैं तो भूल ही गया। आज शाम को जल्दी लौटता हूँ। तुम तैयार रहना। हम टॉप रेस्तरा में डिनर लेने चलेंगे।''

यह कहकर मैंने उसे चूम लिया और ओके... बाय... कहता हुआ निकल गया। मैंने महसूस किया कि मैं नाटक कर रहा हूँ।

फि उसके बाद तो... कौन मुझे बताता कि उसने क्या किया?

मैंने रात के आठ बजे का समय उसे दिया था और ठीक आठ बजे उसका फोन आया, ''कब आ रहे हो?''

''तुम तैयार होओ, मैं निकलूँगा आधे घंटे में।''

फिर उसका फोन नहीं आया। मैं इधर एक क्लायंट के चक्कर में फँस गया था। क्लायंट बोला कि वह एक मीटिंग से निकल कर मुझसे मिलेगा 6 बजे की मीटिंग 7.30 बजे शुरू हुई। वह घंटे भर चली। फिर क्लायंट ने कहा कि मैं मैनेजिंग डायेक्टर शमशाद से मिल लूँ। फिर उनके आने में देर हुई। जब वे आये नौ बजे चुके थे। वे आधे घंटे तक मेरा दिमाग चाटते रहे। इस बीच में सोच रहा था कि कोमल का फोन नहीं आ रहा? तभी आधे-अधूरे दिमाग से सुनता हूँ कि वे मुझसे हाथ मिलाते हुए कह रहे है ''सो कौन्ग्रेचुलेशन! दिस डील गोज टू यू शिखर!'' डील तो मुझे मिल गयी, पर तब तक साढ़े नौ बजे चुके थे और मुझे घर पहुँचते-पहुँचते कम-से-कम साढ़े दस या ग्यारह बज ही जाना था। मुझे डील मिलने की कोई खुशी नहीं थी।

कोमल से मैं बहुत ही प्यार करता था और उसे दुःख देकर मुझे भी दुःख होता था, सौरभ! पर मैंने जानबूझकर यह सब नहीं किया। पर क्या होता जा रहा था?... मुझे? वक्त को? लगता था कभी मेरे साथ ऐसा नहीं हुआ था कि घर पहुँचने के पहले घबराहट हो। पर उस दिन लिफ्ट में कदम रखते ही दिल धक्-धक् करने लगा था। पर उस दिन शायद मेरे दिल को पूर्वानुमान हो गया था—मेरा दिल शायद जान रहा था कि बहुत अजीब घटेगा मेरे साथ।

मैं अन्दर गया और सीधे बेडरूम में चला गया यह सोचते हुए कि वह गुस्सा कर सो गयी होगी। रूठी होगी तो उसे मना लूँगा। पर देख रहा हूँ कि बिछावन पर एक खूबसूरत सलवार सूट निकाल कर रखा हुआ है। उसी के साथ उसी रंग की चूड़ियां, खुले डिब्बे से बाहर झाँकती नयी सुनहली सैंडिलें।

यह सब देखकर अचानक सारा माजरा समझ में आ गया। लगा मुझे बिजली का झटका लगा है। मैं समझ गया वह चली गयी है, वहीं पर डब्बे से दबाकर रखा गया एक कागज था जिस पर लिखा था... ''मैं जा रही हूँ। मैं समझ गयी तुम्हें मेरी कतई जरूरत नहीं है।'' वह अपने मायके चली गयी थी। मैंने उसे बहुत बुलाया मनाया, पर वह नहीं आई।

सौरभ! डील तो मुझ मिली... मैं अपने मकाम पर तो पहुँचा, पर मैंने अपनी वाइफ खो दी, वाइफ क्या अपनी लाइफ ही खो दी। व्हाट आई पेड फॉर इट.... नो बडी विल पे...। मैं जानता हूँ कि इसको पाने के लिए मैंने क्या खोया है। मेरी तरह कोई न खोए। मेरा हॉर्स रेस जीत गया पर मैं हार गया...''

शिखर का चेहरा अजीब हो गया था... रुआँसा और पराजित। सौरभ ने अपने बॉस का ऐसा चेहरा कभी नहीं देखा था उसे घोड़े की टापों के मंदे स्वर सुनाई दे रहे थे...।

◆◆◆

स्वेटर के फंदे

डॉ. पूनम गुजराती

"सहेजना क्या इतना आसान है... ज़िंदगी को सहेजते-सहेजते ज़िंदगी ही हाथों से निकल जाती है। बंद मुट्ठियाँ खुल जाती हैं, शरीर शिथिल हो जाता है और आँखें भावशून्य... चिता पर लेटा हुआ इन्सान कहाँ जानता है कि इस सहेजने की प्रकृत्ति के बावजूद जीवन के महासंग्राम में उसने क्या खोया... क्या पाया...? भूत... भविष्य... वर्तमान... सबकुछ धराशायी हो जाता है। पर जब तक जीवन है सहेजना भी जरूरी है।"

सम्पर्क: 9-ए, मेघ सरमन अपार्टमेंट-1, तेरापंथ भवन रोड, सिटी लाईट, सूरत (गुजरात), फोन: 2221728, 3057609, मोबाइल: 9825473857

सूरज अस्ताचल की ओर धीरे-धीरे सरकते हुए अपनी लालिमा के निशान नीलगगन पर छोड़ रहा था। ऐसा लग रहा था, मानो किसी सुहागन के हाथ से सिंदूर की भरी डिबिया छूट गई हो। पंछियों के झुंड घरों की ओर लौटने लगे थे। कतारबद्ध उड़ते हुए पंछी समाज को एकता, भाईचारा और शांतिपूर्ण सहअस्तित्व का संदेश दे रहे थे। इससे अनभिज्ञ समाज' ऑफिस, स्कूलों, दुकानों में अभी भी अपने-अपने कार्यों में पूरी तरह व्यस्त था। बगीचों में बच्चे जिस मस्ती के साथ खेलने, झूला झूलने व फिसलपट्टियों का आनंद लेने में व्यस्त थे वो देखते ही बनता था। शहर से थोड़ी दूर गाय, बैलों के गले में बजती घंटियाँ वातावरण में मिठास घोल रही थीं। बछड़े अपनी माँ के साथ-साथ चलते हुए बीच-बीच में रँभाने का स्वर करते तो गाय उन्हें चाट-चाट कर अपना ममत्त्व भाव जताती। दूर कहीं कोई चरवाहा मीठे से गीत की धुन ''आ जा ओ राधा रानी तुझको पुकारे कान्हा की प्रीत'' गाकर वातावरण को रसीला बना रहा था।

पर इन सबसे बेखबर सोसायटी के गार्डन में एकाकी बैठी श्यामा के मन में अजीब-सी उथल-पुथल मची थी, पर उसके हाथ स्वेटर बुन रहे थे। उल्टे-सीधे फंदे बुनते-बुनते उसकी कलाइयाँ दु:खने लगी थीं जैसे दिमाग दु:खने लगा था, राधिका के बारे में सोचते-सोचते...।

राधिका तूने ऐसा क्यों किया... श्यामा बुदबुदाई और उसकी आँखों में हल्की-सी नमी उतर आई। उसने स्वेटर एक तरफ रखने के लिए सलाइयों की ओर देखा तो पाया कि स्वेटर के बीच से कुछ फंदे गिर गये थे। उसे खीज-सी होने लगी, अब इन फंदों को फिर से उठाकर स्वेटर के साथ सहेजना होगा।

सहेजना क्या इतना आसान है... ज़िंदगी को सहेजते-सहेजते ज़िंदगी ही हाथों से निकल जाती हैं, शरीर शिथिल हो जाता है और आँखें भावशून्य... चिता पर लेटा हुआ इन्सान कहाँ जानता है कि इस सहेजने की प्रकृत्ति के बावजूद जीवन के महासंग्राम में उसने क्या खोया... क्या पाया...? भूत... भविष्य... वर्तमान... सबकुछ धराशायी हो

जाता है। पर जब तक जीवन है सहेजना भी जरूरी है। कभी रिश्ते-नाते, कभी स्वास्थ्य, कभी पद, पैसा, नाम, शोहरत तो कभी भोगा हुआ अतीत... और इन सबसे अलग भविष्य के नामुराद, शानदार सपने, ख्वाहिशें...।

हालाँकि ज़िंदगी की जरूरतों के आगे किसी की नहीं चलती। इसी में घनचक्कर बना इन्सान पूरा जीवन जरूरतों के हवनकुंड में डाल देता है। इच्छाओं की समिधा जलाते-जलाते कब वो स्वयं राख हो जाता है, उसे पता ही नहीं चलता है। ज़िंदगी को हँसी-खुशी से जी लेना तो बस अपने अपनों के सहारे ही हो पाता है। इन सबसे बेखबर प्रत्येक व्यक्ति सपने देखता है पर सपने पूरे हों या न हों, एक बंद दरवाजे के खुलने की आस में सदैव सपनों की घंटी बजाता ही रहता है।

सपनों का ख्याल आते ही श्यामा ने गरदन झटकी, काश... कोई सपना ही न हो तो ज़िंदगी कितनी सपाट स्थिर हो सकती है...। पर इन सपनों के बिना जीवन ही कहाँ रहेगा। सपने हैं तो रस है, साज है, श्रृंगार है, भावनाएँ हैं, प्यार है और विश्वास है, जीवन का आधार है, जीने की तड़प है, जिजीविषा है, वरना जीवन तपते हुए रेगिस्तान से ज्यादा क्या है?... उसके सोचने का क्रम कुछ और चलता कि तभी तीन-चार हँसती खिलखिलाती हुई आवाजें उसके पास आ गईं।

श्यामा ने गरदन उठाकर देखा, सोसायटी की पाँच-छः महिलाओं की आकृतियाँ अब उसे साफ नजर आने लगी थी। उसने हाथ में पकड़ी सलाइयों को ऊन के गोले में खोंसकर एक तरफ रख दिया और सहज होने की कोशिश में कुछ असहज हो गई।

वो महिलाएँ अब उसके आस-पास जमा हो गई थीं। श्यामा ने देखा सबके चेहरे चंचल, स्मित, अर्थपूर्ण अंदाज में चमक रहे थे। उससे पहले कि वो कुछ बोलती एक ने तीर छोड़ा, ''अरी क्यों री श्यामा, तुझे तो खबर ही होगी कि राधिका घर छोड़कर कहीं भाग गई है?...'' वैसे प्रश्नकर्ता के मुख-मंडल पर कहीं कोई जिज्ञासा का भाव नहीं था, थी तो अर्थपूर्ण, दर्प से चूर एक ऐसी हँसी जो श्यामा को भीतर-ही-भीतर तिरोहित कर रही थी।

राधिका घर छोड़कर चली गई... तो इसमें श्यामा का क्या कसूर है?... क्या जानना व समझना चाहती हैं ये विलक्षण महिलाएँ?... क्या इन्हें राधिका का घर छोड़कर चले जाने का अफसोस है?... या फिर इनके लिए राधिका का घर छोड़कर जाना बातें बनाने का एक नया अनछुआ टॉपिक...। कम-से-कम कुछ दिनों के लिए तो सास-बहू, किट्टी पार्टी, फैशन या बच्चों के बोरिंग टॉपिक से छुटकारा मिलेगा। कैसे चटकारे ले-लेकर बातें कर रही थीं ये सब।

श्यामा को वितृष्णा-सी होने लगी। लगा कि जैसे उबकाई आ जाएगी...। कैसी विचित्र सोच है इनकी...किसी का घर उजड़ गया और इन्हें हँसने से ही फुर्सत नहीं है।

श्यामा के होंठ कुछ कहने के लिए थरथराए पर कंठ से आवाज ही नहीं निकली, उसे लगा कि उसका गला प्यास के मारे सूख रहा है। उसने पास ही रखी बोतल खोलकर ठंडे पानी से गला तर किया तो याद आया उसे ये महँगी बोतल भी तो राधिका ने ही भेंट की थी। हाँ... उन दिनों वह कहीं घूमने गई थी, आते हुए यही गिफ्ट लेकर आई थी।

राधिका जब भी कहीं जाती उसके लिए कुछ-न-कुछ अवश्य लेकर आती। श्यामा लाख माना करती पर वो नाराज होकर श्यामा की हथेलियाँ अपनी हथेलियों में कसकर पकड़ लेती । कहती..... इस भरी दुनिया में एक तुम ही हो जिसे मैंने अपनी सहेली माना है, क्या इतना भी हक नहीं है मेरा... कहते-कहते राधिका के आँखों में नमी उतर आती और श्यामा को न चाहते हुए भी उसका लाया उपहार स्वीकार करना पड़ता।

श्यामा और राधिका की दोस्ती का किस्सा भी निराला ही है। हुआ यूँ कि किसी सामाजिक संस्था ने 'फ्रेन्डशिप-डे' पर एक विशेष सेमिनार का आयोजन किया था जिसमें श्यामा बतौर वक्ता और राधिका विशेष अतिथि के रूप में आमंत्रित थीं। दोनों मंच पर साथ-साथ बैठी थीं। लिहाजा कुछ औपचारिक बातों के दौरान यह पता चला कि श्यामा जिस साधारण-सी बिल्डिंग में छोटे से फ्लैट में रहती है ठीक उससे थोड़ा पहले बने हुए बड़े बड़े से बँगले 'गुरु आशीष' की स्वामिनी है राधिका जहाँ वो अपने नौकर-चाकरों की फौज के साथ रहती थी।

श्यामा, श्याम वर्ण, साधारण रंग-रूप पर उन्नत कद काठी की महिला थी जिसे अपने बौद्धिक व्यक्तित्व पर गर्व था। स्वाभिमान की चमक उसके काले रंग के साथ कस्तूरी की तरह थी जिसमें महकते हुए वो अपनी कमियों को एक ही झटके में नजरअंदाज कर जाती थी। श्यामा के पास न रूप, न सौंदर्य था न ही पैसों से आने वाली सुविधाएँ, हाँ सुंदर सपने अवश्य थे। हालाँकि, वो किसी भ्रमजाल में नहीं थी। उसे पता था कि उसके ज्यादातर सपने बस सपने ही रहने वाले हैं। पर

पता नहीं क्यों उसे कल्पनाओं के आकाश में विचरण करना अच्छा लगता था, क्योंकि इनके सहारे वो जिंदगी की तमाम कड़वाहट भूल जाती थी।

इसके विपरीत राधिका का चाँदनी-सा सफेद रंग, जिसमें तराशा हुआ सुघड़ बदन, काली-काली बड़ी-बड़ी आँखें, ब्यूटी पॉर्लर से तराशी हुई धनुषाकार भौंहें, पतले खूबसूरत होंठ, लम्बी कद-काठी। भगवान ने शायद उसे फुरसत से बनाया था। कीमती साड़ियाँ व महँगे हीरे के लोंग पहने वो इतनी आकर्षक व्यक्तित्व की मल्लिका थी कि जहाँ से भी गुजरती लोग बस पलकें उठाकर देखते रह जाते, पर उसकी आँखें सदैव उदासी से आपूर्त रहती। जब कभी हँसती तो फीकी-सी हँसी उसकी उदासी को और गहरा कर जाती...।

पर इन तमाम विरोधाभासों के बावजूद श्यामा और राधिका में गहरी दोस्ती थी।

श्यामा को वो मुलाकात बराबर याद हो आई जिसमें उसे विशेष संबोधन के लिए आमंत्रित किया था, श्यामा ने फ्रेन्डशिप-डे पर लगभग पैंतालीस मिनट का भाषण दिया। लिखने व बोलने पर श्यामा का नैसर्गिक अधिकार रहा। उसका भाषण प्रभावशाली, रोचक व जागरूकता पैदा करने वाला था। इस बात का साक्षात् प्रमाण प्रस्तुत कर रही थी उसके बैठने पर बजने वाली तालियाँ।

उसके बैठते ही राधिका ने उसके आगे पानी की बोतल सरका दी तो वो मानो कृतकृत्य हो गई। सचमुच लगातार बोलने से कंठ सूख रहा था।

उसने पानी पीया व राधिका को धन्यवाद दिया, राधिका ने उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा, ''क्या आप मुझे अपनी सहेली बनाना पसंद करेंगी?''

फ्रेन्डशिप-डे के मौके पर इतनी भावुकता से पूछे गए सवाल का क्या जवाब देती श्यामा। उसने पूरी गर्मजोशी से कहा, ''अरे, क्यूँ नहीं, मुझे खुशी होगी।''

फिर तो दोनों रोज-रोज मिलने लगीं। श्यामा के पास जहाँ बौद्धिक संपदा थी वहीं राधिका के पास आर्थिक संपदा पर दोनों ने इसे अपनी दोस्ती पर हावी नहीं होने दिया।

दोनों में घंटों बातें होतीं, साथ-साथ शॉपिंग करती पर अपनी-अपनी पॉकेट के अनुसार। श्यामा हमेशा कभी घर के लिए, कभी अपने बेटी दिव्या, कभी बेटे मोहित के लिए तो कभी पति के लिए कुछ-न-कुछ खरीदती, उसके बाद ही स्वयं के लिए सोच पाती थी वो। उसके पति बैंक के ऑफिसर थे पर बँधी-बँधाई इनकम और भविष्य की चिंता में श्यामा बेहद किफायती शॉपिंग करती, जबकि राधिका कोई चिंता नहीं करती थी। सिर्फ खुद के लिए ही खरीदना होता था। उसका पर्स पैसों से ठसाठस भरा होता था। ऊपर से अलग-अलग बैंकों के क्रेडिट, डेबिट कार्ड, कभी राधिका महँगे कपड़े या फिर ज्यूलरी खरीदती तो श्यामा उसे टोकती, राधिका हँसकर कहती, ''श्यामा, तुम कहोगी तो नहीं खरीदूँगी पर मैं क्या करूँ, इसके अलावा मेरे पास है ही क्या, पति सदैव अपने व्यापार में उलझे रहते हैं। उन्होंने तो समय, प्यार, अपनापन सबकी कीमत मुझे दौलत से तोलकर पूरी कर दी है। बेटा हॉस्टल भेज दिया है। अब कहाँ दिल लगाऊँ... मेरी जान.... तुम्हारे पास वक्त नहीं है और मेरे पास वक्त ही वक्त है...।'' राधिका की आँखों में एक गहरी उदासी उतर आती, जिसका सामना कर पाना श्यामा के वश में नहीं था।

धीरे-धीरे श्यामा ने उसे टोकना बंद कर दिया था, क्योंकि वो जान गई थी कि राधिका के पास एक अजीब-से खोखलेपन के सिवाय कुछ नहीं है। उसे न पति का प्यार मिला न ही बेटा पूरी तरह उसका अपना है। पति में कुछ प्रॉब्लम थी राधिका की जुबान में वो लगभग नपुंसक है इसलिए दूर भागता है अपनी पत्नी से, बहाने बनाता है व्यापार के, खैर... टेस्टट्यूब बेबी की मदद से... राधिका ने बेटे को जन्म दिया था किंतु गर्भावस्था के दौरान भी पति की बेरुखी के कारण उसे संतान से भी कुछ खास प्यार नहीं मिला। बस कोख में पाला भर उसे। फिर बड़े घर, बड़ी बातें, पैदा होते ही आया के हाथों में और फिर हॉस्टल.... राधिका अकेली थी और अकेली ही रह गई।

कभी-कभी जब राधिका अपने मन की बखिया श्यामा के सामने उधेड़ने लगती तो श्यामा सचमुच डर जाती। उसे लगता जिस रूप, पैसे, पद, नाम को वो हमेशा पाने के लिए लालायित रहती थी, अब उसे दूर से ही तौबा करती है। ना बाबा ना... ऐसी खोखली ज़िंदगी वो नहीं जी सकती। वो तो अपने छोटे से दड़बे में ही बेहद खुश है। छोटा ही सही, पर सुकून देने वाला घर, प्यार करने वाला पति, जिद्द, फरमाइश करते चंचल, प्यारे, नटखट बच्चे।

श्यामा सोचती, उसके पास तो अपने भी हैं और सपने भी हैं।

पर राधिका के पास न तो अपने हैं और न ही सपने... कैसे जीती होगी राधिका। श्यामा के मुख से बेचारगी भरी आह निकल जाती।

कभी-कभी राधिका हताशा के क्षणों में कहती, ''क्या फायदा ऐसे जीवन का श्यामा... मन तो करता है कहीं भाग जाऊँ... सब कुछ छोड़-छाड़कर। कोई तो ऐसा कंधा हो जहाँ सिर रखकर अपने हृदय का बोझ हल्का कर सकूँ। कहीं तो कोई होगा मुझे प्यार करने वाला, मेरी तारीफ करने वाला, मेरे बनाए खाने को खाने वाला...'' वो शून्य में ताकते, बड़बड़ाते हुए कहती... कोई तो होगा जिसके बच्चे की माँ बन सकूँ... सच्ची माँ और वो भावावेश में रो पड़ती।

श्यामा सांत्वना में कहाँ कुछ कह पाती थी। बस धीरे-धीरे उसे चुप करवाती। ''ऐसा नहीं कहते पगली... क्या कमी है तुझे...'' पर ऐसा कहते हुए उसके शब्द उसके ही गले में अटक जाते थे।

पर तब वो भी कहाँ जानती थी कि राधिका इस तरह एक दिन सचमुच चली जाएगी। काश! वो उसे रोक पाती। उसे समझा पाती... उसके पति से बात करके देखती... सोचते-सोचते उसकी आँखें भीग गई।

राधिका ने भी तो किसी से कुछ नहीं कहा। गहने, कपड़े, पैसे अपने साथ कुछ नहीं ले गई... पति के नाम एक छोटा सा पत्र लिखा था।

'प्रियवर,

मैं जा रही हूँ अपना सुख, अपने सपने तलाशने। मुझे मत ढूँढना, मैं प्यार पाना और देना चाहती हूँ इसलिए जा रही हूँ। शादी के दस वर्ष बाद यह कदम उठाया है पर आश्चर्य मत करना, क्योंकि मैं जीना चाहती हूँ, इस सोने के पिंजरे में मेरा दम घुटता है। आप दूसरी शादी कर लेना, बेटे को प्यार।'

राधिका चली गई, पर बहुत से प्रश्न शहर भर में दोहराये जा रहे थे। कोई कहता कोई पुराना प्रेमी होगा, कोई विदेश भागने का अंदेशा करता, कोई इसे पति की छूट का नतीजा बताता, तो कोई कहता, खाली दिमाग शैतान का घर, कोई जमाने को दोष दे रहा था। पर सत्य से अनभिज्ञ स्वयं श्यामा ही कहाँ जानती थी कि कहाँ गई होगी राधिका, जिसे अपनी सबसे प्यारी सहेली मानती थी उसे ही कहाँ बताया था उसने। अगर बताया होता तो क्या जाने देती श्यामा...। परिवार, समाज, रिश्ते और बेटे की दुहाई देकर उसे रोक न लेती... शायद इसीलिए नहीं बताया राधिका ने। जाने किस हाल में होगी मेरी सखी... श्यामा ने गहरी निःश्वास छोड़ी।

जो गई है उसके लिए भी जाना क्या इतना आसान रहा होगा जितना दुनिया समझती है। श्यामा अपने ही प्रश्नों के भँवरजाल में उलझ रही थी। उसे होश ही नहीं था कि सोसायटी की तमाम औरतें जो इस प्रश्न का उत्तर श्यामा से पूछने आई थीं कि राधिका कहाँ भाग गई, उसके आस-पास ही खड़ी थी। हालाँकि उन्हें भी कहाँ होश था, वे सब भी अपनी-अपनी किस्सागोई करने में मशगूल थीं। उन्हें श्यामा की सोच से कहाँ मतलब था। मतलब था तो बस इतना कि इन्हें सारी कहानी पता चल जाए ताकि वे दो की चार, चार की आठ बनाकर इस चटपटे टॉपिक के चटकारे ले सकें। खुद उनके भी घर में कई कहानियाँ पलती होंगी पर अपने से बेखबर, दूसरों की जिंदगी में ताक-झाँक करती इन औरतों को शायद इस बात का अहसास भी नहीं कि जिसे चोट लगती है उसे नमक की नहीं, मरहम की जरूरत होती है।

श्यामा धीरे से उठी और उस हजूम को छोड़कर गार्डन से बाहर आ गई। दूर अस्ताचल में सूरज सागर की बाँहों में समा गया था।

श्यामा को दूर से अपना घर दिखाई दे रहा था। वो जल्दी-जल्दी उस तरफ बढ़ गई। राधिका का बंगला पीछे छूट रहा था। उसे याद आया, घर जाकर उसे स्वेटर के गिरे हुए फन्दे भी उठाने हैं। उसने अपने हाथ में पकड़े हुए स्वेटर और ऊन के गोले को कसकर पकड़ लिया।

श्यामा की चाल तेज हो गई। वो सब भूलना चाहती है, राधिका को... राधिका के किस्से को। वो अपनी डायरी से राधिका का किस्सा फाड़कर अलग कर देना चाहती थी पर ये इतना आसान नहीं था..., वो बुदबुदाने लगी। राधिका तुम कहाँ हो... तुम, तुम मकान छोड़कर गई हो, ज़िंदगी नहीं... जहाँ भी जाओ... अपना घर बनाना... अपने सपनों का घर... और जी लेना पूरी शिद्दत से...।

श्यामा की चाल अब और तेज हो गई थी। पर पहुँचते-पहुँचते वो हाँफ रही थी पर उसे बड़ी जल्दी थी, उसे स्वेटर के गिरे हुए फन्दे जो उठाने थे।

◆◆◆

गुलफ़िजा

सीमा असीम सक्सेना

> *उसके चहरे के आते-जाते भावों के साथ ही मैं उसकी उन उँगलियों को देखने लगी जो हरे रंग की नेल पॉलिश में बेहद खूबसूरत लग रही थी। उसने अपनी नाजुक पतली छरहरी उँगलियों को मोबाइल पर फिराना शुरू कर दिया था। चेहरे पर हर बार आते-जाते उतार-चढ़ाव। कोई गहरी सोच में डूबी हुई या मुस्कुराहट जैसे भावों से घिरी, वह कभी-कभी कितने सुकून से भरी जा रही थी। उसकी बोलती हुई आँखों में झाँकना मुझे बहुत सुखद लग रहा था। मैं उसे लगातार अपलक निहार रही थी, सच में नवीनता हरेक को अपनी ओर खींचती है फिर चाहे वह अंकुरण में हो या फिर संतति में।*

उपासना सुपर फास्ट ट्रेन अपनी पूरी रफ्तार से दौड़ी जा रही थी। स्टेशन पर स्टेशन, नदी, नाले, पुल सब-कुछ पार करती जा रही थी। बिना कहीं रुके या थमे, हर मंजिल को अपने पहियों से नापते हुए.... वह कहीं नहीं रुकी थी बस निर्धारित स्टेशन पर ही रुकेगी कुछ देर को, फिर कुछ सवारियाँ उसमें चढ़ेंगी, उतरती तो न के बराबर हैं क्योंकि उसमें अधिकांश लम्बी दूरी का सफर तय करने वाले ही बैठे थे।

मैं मुरादाबाद से लखनऊ जा रही थी। मेरी सीट रिज़र्व थी, सो मुझे कोई परेशानी नहीं हुई। आराम से अपनी सीट पर आकर लेट गयी थी। वैसे जनरल बोगी में इतनी भीड़ होती है कि खड़े होने भर को भी जगह न मिले। अगला स्टापेज बरेली जंक्शन था। सुबह के पाँच बजने वाले थे। जैसे ही ट्रेन रुकी एक खूबसूरत-सी कमसिन लड़की उस कोच में चढ़ गयी। उसके लम्बे, घने, काले, लहराते बाल उसके चेहरे की सुन्दरता को और बढ़ा रहे थे। वह मेरी सीट के पास आई और बोली, ''दी, क्या मैं यहाँ आपके पास बैठ सकती हूँ?'' उसकी गहरी काली और चमकती आँखों से झाँकती याचना।

''दी, मैं रिज़र्वेशन नहीं करा सकी। आज मेरा पेपर है और जनरल बोगी में सफर करना बहुत मुश्किल है।'' उसने फिर से कहा।

''ठीक है, बैठ जाओ, कहाँ तक जाना है?''

''लखनऊ तक।''

मुझे लगा कि उसने इस कोच में आकर ठीक ही किया है क्योंकि उस अकेली के लिए जनरल बोगी में जाना निःसंदेह गलत रहता। एक तो खड़े होने तक जगह बड़ी मुश्किल से मिलती, दूसरे हर तरह की नज़रों का सामना करती हुई वह, भीड़ का फायदा उठाकर उन लोगों से अपने शरीर को कैसे बचा पाती, जहाँ हर कोई उसे किसी-न-किसी बहाने छूने का प्रयास करता और वह कुछ कह भी नहीं पाती।

सम्पर्क: 208, डी. कॉलेज रोड़, निकट रोडवेज, बरेली,
मोबाइल: 09458606469, 09557929365,
ई-मेल: seema4094@gmail.com

मैंने उसे अपनी सीट पर बिठा लिया। वैसे भी अब दिन निकलने वाला था और लेटने का कोई औचित्य ही नहीं। अब आगे का सफर बैठकर भी आसानी से पार किया जा सकता था। वह एक किनारे से बैठ गयी थी और पीठ पर टँगे बैग को उसने अपनी गोद में रख लिया था। वह अपने मोबाइल के साथ बतियाने लगी। हाँ, वो व्हाटसप पर किसी से बात कर रही थी। उसके चेहरे पर आते-जाते एक्प्रेशन सब चुगली कर रहे थे। एक मनमोहक मुस्कान उसके चेहरे पर खिल रही थी।

आँखें बोलती हुई-सी, उसने एक बार को नज़रें उठाकर मेरी तरफ देखा फिर मैसेज पढ़ने में लग गयी। यह सिलसिला लगातार चल रहा था। उसकी पतली-पतली लम्बी उँगलियाँ खट-खट कर मैसेज टाइप कर देती, साथ ही एक स्माइली या कोई और स्टिकर, मैसेज के साथ जोड़ देती। लगभग आधे-पौने घंटे तक वह इसी तरह से मैसेज पढ़ने और भेजने में लगी रही। जब मोबाइल ने लो बैटरी का साइन दे दिया तो उसे मजबूरन फोन बंद करना पड़ा। मैं इतनी देर से बराबर उसके चेहरे के आते-जाते भावों को ध्यान से देख रही थी। पल-पल रंग बदलते वे भाव बिना कहे भी सब-कुछ कहे जा रहे थे कि उसी समय मेरे फोन की घंटी बज उठी थी, देखा तो घर से फोन था। वे मेरे आने के बारे में पूछ रहे थे, मैंने उन्हें बताया कि बस दो घंटे में पहुँचने ही वाली हूँ। कुछ बातों के बाद फोन बंद किया और मैं बड़े आराम से सीट से पीठ टिका कर बैठ गयी।

मैंने देखा कि वह लड़की अपनी गोल-गोल चमकती आँखों से मुझे देख रही थी, मुझे भोलेपन से निहारती हुई, उस वक्त वह बड़ी अपनी-सी लगी थी। शायद अब वो मुझसे बात करने की इच्छुक लग रही थी। समय बिताने को, मोबाइल की बैटरी खत्म हो जाने से या फिर मेरी आत्मीयता से भरी बातों के कारण। फिलहाल जो भी हो, मेरा भी मन उससे बात करने को करने लगा था।

''आप भी लखनऊ जा रही हैं।'' उसने मुस्कुराते हुए बातचीत शुरू करने की पहल कर दी थी।

''हाँ।'' मैंने भी उसकी मुस्कुराहट का जवाब मुस्कुराकर देते हुए कहा।

''चलो फिर तो हम दोनों साथ आखिरी स्टेशन तक रहेगा, है न दी।''

''हाँ।'' मैंने फिर मुस्कुराकर संक्षिप्त-सा उत्तर दिया। अभी हम लोगों की ये छोटी-मोटी बात ही शुरू हुई थी कि टीटी ने हमारे कोच में पदार्पण कर लिया।

उस लड़की को देखकर बोला, ''कौन-सी सीट है तुम्हारी?'' क्योंकि वह मुझे मेरी सीट दिखाकर गया था और वह लड़की मेरी सीट पर बैठी हुई थी। उसके कुछ न बोलने पर वह फिर बोला, ''टिकट दिखाओ।''

उस लड़की ने खड़े होकर अपनी जींस की जेब से टिकट निकाला और उसे दे दिया। टीटी टिकट को देखकर बोला, ''ये क्या है? ये तो जनरल टिकट है, क्या तुम्हें पता नहीं ये रिज़र्वेशन कोच है।''

वो भोला-सा मुँह बनाकर उसकी तरफ देखती रह गयी। उसे इस तरह मासूमियत से निहारते देखा, तो मुझसे रहा न गया और मैंने उसका बचाव करते हुए कहा, ''बैठी रहने दीजिए। मेरी सीट पर ही तो बैठी हैं, कहाँ जाएगी अकेली तो है बेचारी।''

मेरी बात सुनकर उसने कृतज्ञता से मुझे देखा और अपनी बोलती हुई काली-काली आँखों से न जाने कितनी ही बातें कर डालीं मानो हर बात पर मेरा शुक्रिया कर रही हो।

''अच्छा चलो ठीक है, 50 रुपये दे दो, मैं सीट दे देता हूँ, कहाँ तक जाना है?''

''लखनऊ तक।'' उसने घबराई हुई आवाज में कहा और मेरी ओर याचना भरी नज़रों से देखा। उसकी बोलती हुई आँखें एक बार फिर मुझसे बतियाने लगी, जैसे वह कहना चाह रही हो, ''दी, अब आप ही मुझे बचाओ, मेरे पास देने के लिए रुपये नहीं हैं। अब मैं कहाँ से इनको 50 रुपये दूँ।''

उसकी आँखों की भाषा पढ़ते हुए मैंने टीटी से फिर कहा, ''मेरी सीट पर बैठी है, बैठी रहने दो। क्या करेगी सीट लेकर? अब लखनऊ दूर ही कितना रह गया है।''

मेरी बात सुनकर वह आश्वस्त तो नहीं हुआ फिर भी बिना

कुछ कहे, शायद गुस्से से भरकर चला गया। वैसे देखा जाये तो उसकी नाराजगी स्वाभाविक थी।

खैर, अब वह लड़की निश्चिन्त होकर आराम से सीट पर बैठ गयी थी। उसके चेहरे को पढ़ते हुए मैंने जाना कि अब वह चिंता मुक्त होकर बैठी थी। उसके चेहरे पर आते-जाते सुकून भरे भावों को पढ़कर मैं भी तसल्ली से भर गयी।

उसने अपने बैग से एक मोबाइल निकाला और उसे खोलने का उपक्रम किया किन्तु वह पूरी तरह से डिस्चार्ज हो चुका था फिर उसकी बैट्री निकाल कर हाथ से रगड़ कर दुबारा से डाली पर मोबाइल ऑन नहीं हुआ। वह उसे अपने बैग की चेन खोलकर उसमें रखने ही जा रही थी कि मैंने कहा, ''इधर प्लग लगा है, चार्ज कर लो।''

मेरे कहने पर वह बोली, ''दी, जल्दी-जल्दी निकलने के कारण चार्जर रखना भूल गयी थी।''

''मेरे पास है, देखो अगर यह लग जाए तो।'' मैंने उसे अपना चार्जर निकाल कर दिया।

उसके मोबाइल में वह लग गया और उसने उसे चार्ज करने को लगा दिया था।

उसने फिर मेरी तरफ देखा। लगा जैसे वह अपनी आँखों से धन्यवाद कर रही हो।

सच में उसकी बोलती हुई-सी आँखें बिना कहे ही सब-कुछ कह देती थी। एक बार झाँक कर देखो, दुनिया-जहाँ की बातें समाई-सी लगती थी, वह मुझसे कुछ बात करना चाह रही थी किन्तु कोई झिझक उसे रोक रही थी। मैंने उसकी आँखों की भाषा को पढ़ते हुए खुद ही बात शुरू कर दी।

''क्या कर रही हो आजकल, मेरा मतलब पढ़ाई।''

''जी, एचआर से एमबीए। फोर्थ सेमेस्टर है, कॉलेज की तरफ से इन्टरव्यू के लिए भेजा जा रहा है और भी बच्चे हैं। वे कल रात निकल गये। आज 9 बजे से एग्जाम शुरू हो जाएगा।

''तो तुम भी रात निकल जाती।''

''लेकिन मेरा कोई जानने वाला या रिश्तेदार वहाँ नहीं रहता है। तो रात में रुकने की मुश्किल हो जाती और घर से भी परमिशन नहीं थी। वैसे भी आज पहली बार अकेली जा रही हूँ। हमेशा भाई साथ जाता है, लेकिन उसका भी कोई काम निकल आया और उसे आज दिल्ली जाना पड़ गया।''

''अच्छा, क्या करता है तुम्हारा भाई?''

''अभी पापा के काम में हाथ बँटा रहा है, पापा की रेडीमेड कपड़ों की दुकान है।''

''चलो कोई बात नहीं आजकल तो लड़कियाँ बहुत स्मार्ट हो गयी हैं और फिर आज के रिसेशन के दौर में जॉब मिलना बहुत ही कठिन है। कॉलेज की तरफ से भेजा जा रहा है, ये अच्छी बात है। आज कितने ही पढ़े-लिखे और होशियार बच्चे बिना जॉब भटक रहे हैं।''

''हाँ दी, इसीलिए पापा ने जाने की परमिशन दे दी क्योंकि मेरा भाई भी अपना मनपसन्द जाँब नहीं पा सका, आज भी सर्च मार रहा है।''

''चलो तुम खूब अच्छे से करके आना और इस जॉब को अपनी झोली में डालकर ही लाना।''

''हाँ! थैंक्स दी।''

मैंने देखा उसकी आँखों में आत्मविश्वास झलक आया था। वाकई उसकी आँखों में जरूर कुछ ऐसा था, जो मुझे उनमें झाँकने को बार-बार आकर्षित कर रहा था। वह बिना कुछ और बोले उठी और उसने चार्जर से मोबाइल निकाल लिया।

उसके चहरे के आते-जाते भावों के साथ ही मैं उसकी उन उँगलियों को देखने लगी जो हरे रंग की नेल पॉलिश में बेहद खूबसूरत लग रही थी। उसने अपनी नाजुक पतली छरहरी उँगलियों को मोबाइल पर फिराना शुरू कर दिया था। चेहरे पर हर बार आते-जाते उतार-चढ़ाव। कोई गहरी सोच में डूबी हुई या मुस्कुराहट जैसे भावों से घिरी, वह कभी-कभी कितने सुकून से भरी जा रही थी। उसकी बोलती हुई आँखों में झाँकना मुझे बहुत सुखद लग रहा था। मैं उसे लगातार अपलक निहार रही थी, सच में नवीनता हरेक को अपनी ओर खींचती है फिर चाहे वह अंकुरण में हो या फिर संतति में।

मुझे इस तरह अपनी ओर ताकते देख वह मेरी तरफ देखने लगी।

''मोबाइल क्यों निकाल लिया, अभी कुछ देर लगा रहने देती।'' मैंने उससे कहा।

''हाँ, अभी लगा देती हूँ।'' उसने हल्की-सी मुस्कुराहट से मुझे देखते हुए कहा।

मैं घर पर फोन कर रही थी और वह मुझे देख रही थी। न जाने कैसा रिश्ता बन गया था हम दोनों के बीच। बिना एक-दूसरे को जाने ही अपने-से लगने लगे थे। वाकई कोई जरूरी तो नहीं कि प्यार या अपनापन सिर्फ अपनों या जान-पहचान वालों से ही हो, ये जुड़ाव तो किसी के साथ भी हो सकता है कहीं भी और कभी भी। वह बच्ची सच में मुझे बिलकुल अपनी-सी लग रही थी।

वह मुझसे बात करना चाह रही थी और मैं फोन पर बात करने में तल्लीन थी। जब मैंने बाय कहकर फोन रख दिया तो देखा वह मुझे टकटकी लगाकर निहार रही है। उसे अपनी ओर एकटक देखते हुए पाया तो एक खूबसूरत-सी स्माइल उसकी तरफ फैंकी। उसने भी मेरी मुस्कुराहट का जवाब मुस्कुरा कर देने में तनिक भी देर नहीं लगायी थी। शायद मोबाइल पास में न होने से वह बोर हो रही थी और मुझसे बात करना चाह रही थी या फिर वह सचमुच मुझे अपना समझ कर कुछ बातें करना चाह रही थी। फिलहाल जो भी हो मुझे उससे बात करने का मन करने लगा था।

''क्या नाम है तुम्हारा?'' इतनी देर से साथ बैठने के बाद भी मैं उसका नाम नहीं जान सकी थी।

''गुलफिजा।'' उसने मुस्कुराते हुए कहा।

''वाह! वैरी प्रिटी नेम।'' क्या यह मुसलमान है, लग तो नहीं रही। मैंने मन-ही-मन सोचा।

''और सुनो, तुम्हारा नाम बिलकुल तुम्हारी तरह से ही प्यारा है।''

यह सुनकर वह थोड़ा-सा शरमा गयी थी।

''दी, आप कहीं जॉब करती हैं?'' उसने पूछा।

''हाँ।''

''कहाँ पर?''

''न्यूज़पेपर में।''

''वेरी एक्साटिंग जॉब! आपको पता है दी, मेरा रुझान हमेशा से ही मीडिया में ही जॉब करने का था। मैं तो मॉस कॉम का कोर्स करने वाली थी, लेकिन घरवालों को यह जॉब पसंद नहीं थी, सो जबरदस्ती से मेरा एडिमिशन एमबीए में करा दिया। यह घरवाले हमारी खुशी क्यों नहीं चाहते? कभी हमारी क्यों नहीं सुनते? हमेशा अपनी ही चलाते हैं, क्यों नहीं जानना चाहते कि आखिर हम चाहते क्या हैं?''

उसकी बातें सुनकर मुझे लगा कि इस जरा-सी लड़की के मन में अपनों के प्रति कितना गुबार भरा हुआ है।

''चलो कोई बात नहीं, जो होता है, अच्छे के लिए होता है।''

''हाँ दी, यह बात तो आप ठीक कह रही हैं। वैसे जो भी होता है उसमें हमारी कुछ-न-कुछ अच्छाई जरूर छिपी होती है।''

''हाँ गुल, और हमारे घरवाले कोई हमारे दुश्मन थोड़े ही होते हैं, वे तो हमारा भला ही सोचते हैं।''

''जी हाँ, दी!'' कहकर वह हौले से मुस्कुराई।

''क्या आप कहानी लिखती है?'' उसने पूछा। ''हाँ, कभी-कभार कोई कहानी भी लिख लेती हूँ।''

''दी, आप तो सभी कुछ लिखती हैं तो यह बताइए कि आपको धर्म व जाति में कितना विश्वास है।''

''मैं सिर्फ इंसानी रिश्तों और मानवता में विश्वास करती हूँ। ये धर्म जाति मुझे नहीं लुभाते। ये सब हम लोगों के द्वारा ही तो बनाये गये है। एक ही शक्ति है और सब एक ही में निहित हैं।''

मेरी इस बात को सुनकर उसके मन में सैकड़ों सवाल थे जो उसकी बोलती आँखों से झाँक कर चुगली करने लगे थे। वह मुझसे बहुत कुछ कहना चाह रही थी। पर कोई झिझक-सी उसे कहने से रोक रही थी।

उसकी झिझक तोड़ते हुए मैंने कहा, ''कुछ कहना चाहती हो,

मुझसे कुछ पूछना चाहती हो, तो बेधड़क मुझसे कह सकती हो।''

''हाँ दी, मुझे बहुत कुछ कहना है? पूछना है? और मुझे पता है कि एक आप ही हो, जो मेरे सवालों के जवाब दे सकती हो।'' उसकी आँखों में मेरे लिए विश्वास का सागर गोते लगा रहा था।

इतना भरोसा मुझ पर। अभी हमें मिले देर ही कितनी हुई है। मैंने उसे आश्वस्त करते हुए कहा, ''अच्छा, चलो पूछो, क्या कहना चाहती हो? दिल खोलकर सब कह डालो।'' लगा कुछ तो है उसके दिल में, शायद बहुत कुछ है। जिसकी झलक उसकी बोलती हुई आँखें दे रही थीं।

''आई एम इन लव।'' वह बेझिझक मुझसे बोल उठी।

सच में प्यार कितनी शक्ति दे देता है। जब प्यार बहुत गहरा हो तो इन को एकदम निडर बना देता है। मैंने उसकी आँखों में झाँका, निर्दोष मासूम कोई छल या झूठ का नामोनिशान नहीं था। हाँ वह सच कह रही थी।

जब वह हमारे कोच में दाखिल हुई तभी मुझे अहसास हुआ था, लेकिन आजकल के बच्चे प्रेम को गलत रूप में परिभाषित करते हैं। जब तक काम है ठीक, फिर दूध से मक्खी की तरह निकाल कर फेंक देते हैं। वे उसकी अहमियत को नहीं समझ पाते हैं। लेकिन उसे सच का ही प्यार हुआ था। तभी देखो कैसे तप कर सोने-सी निखर आई थी।

मैंने उसकी आँखों की सच्चाई को जानकर कहा, ''तो क्या हुआ? ये उम्र ही ऐसी होती है, जब प्यार होना स्वाभाविक है। फिर ये उदासी कैसी और क्यों?''

''क्योंकि मेरा प्यार पूरा नहीं हो सकता! मैं उसे पा नहीं सकती! अधूरा ही रह जायेगा, बस यही सोच कर हर समय उदासी छायी रहती है।''

''क्यों अधूरा रहेगा भला, जब प्यार सच्चा होता है तो वह अपनी राह स्वयं खोज लेता है। मिलन होकर ही रहता है। हाँ ये सच है अगर तुम दिल से मिलन की चाह रखोगी, तो तुम्हें कोई रोक नहीं पायेगा।''

''दी, आपको पता है कि उसका नाम सुमित है और मेरा गुलाफिज़ा! वह हिन्दू, हम मुस्लिम। हमारे धर्म अलग हैं, समाज हमें एक नहीं होने देगा। जब हमारे पापा को पता चलेगा, तो वे मुझे जीते-जी मार देंगे। नहीं मानेंगे, वे कभी भी नहीं मानेंगे।'' यह कहते हुए उसकी आँखों से आँसू छलक आये थे। मासूमियत और भोलेपन से लबरेज उसके आँसू मुझे भीतर तक हिला गये थे। वे बहते हुए आँसू उसके पवित्र प्रेम की निशानी लग रहे थे।

मैंने उसकी पीठ थपथपाते हुए ढाँढस बँधाया।

''गुल, इस तरह रोकर खुद को कमजोर मत करो। अभी तुम्हें बहुत लम्बी लड़ाई लड़नी है। खुद को सँभालो। सब-कुछ ऐसे ही चलने दो, बहने दो नदी-सा जीवन को, देखना एक दिन सब-कुछ बहुत आसान हो जायेगा।'' मेरी बातों से कितनी हिम्मत भर आई थी उसके अंदर, ये उसकी आँखों से झलक रहा था।

''हाँ दी, सुमित भी यही समझाता है। बहुत प्यार करता है वह मुझे! बहुत अच्छा है वह। मैं उसके साथ बहुत खुश रहूँगी। जितना मैं उसके लिए पजेसिव हूँ, वह भी मेरे लिए उतना ही पजेसिव है।''

मैं उसकी बातों को बड़े ध्यान से सुन रही थी। आँखें कैसे चमक उठी थी। चेहरा कुछ और निखरा हुआ लगने लगा था।

''और दी, मैंने सुना है किसी के लिए पजेसिव होना सच्चे प्यार की निशानी है न!'' उसने मेरी तन्द्रा तोड़ते हुए कहा।

ये कहते हुए उसकी आँखों में प्यार की चमक के साथ आत्मविश्वास भर आया था।

''हाँ।'' मैंने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया था। क्योंकि मैं उसके चेहरे पर बढ़ आई रौनक को किसी भी कीमत पर कम नहीं करना चाहती थी।

अनेक प्रश्न जो उसके दिमाग में कुलबुला रहे थे वे काफी हद तक शांत हो चुके थे। अब लखनऊ आने वाला ही था।

उसने मुझे शुक्रिया करते हुए कहा, ''दी, मैं आपको कभी नहीं भूलूँगी, हमेशा याद रखूँगी, लेकिन हम फोन नम्बर का आदान-प्रदान नहीं करेंगे। हम पहले की तरह से अजनबी तो नहीं रहे, लेकिन हाँ मिलेंगे नहीं, क्योंकि हमारा राज आपके

पास तक ही सीमित रहे। आपकी जो जगह मेरे दिल में बनी है, वह ताउम्र बनी रहे।'' उसने मुझसे खूब गर्मजोशी से हाथ मिलाया और कहा, ''हो सकता है दी, हम फिर कभी यूँ ही कहीं मिल जाएँ क्योंकि दुनिया तो गोल है न!''

''हाँ, क्यों नहीं।'' मैंने उसकी आत्मविश्वास से चमकती आँखों में देखते हुए कहा।

''दी, क्या सच में हमारे प्यार के बीच धर्म आड़े नहीं आएगा? क्या पापा मान जाएंगे?'' उसके मन में एक बार फिर आशंका घिर आई थी। किसी अपने को पाने के लिए या उसके करीब रहने के लिए हमारा मन हमेशा आशंकाओं से घिरा रहता है।

''तुम खुद पर विश्वास करना शुरू कर दो, बाकी सब उस ऊपर वाले पर छोड़ दो, बहने दो जीवन को अपनी तरह से।'' मैंने उसे एक बार फिर से समझाया था, ''देखना सब ठीक हो जायेगा। ये आत्मविश्वास जो तुम्हारे मन में आया है न उसे किसी भी कीमत पर कम मत होने देना, यही तुम्हें जीत की राह पर ले जायेगा।''

ट्रेन सरकते हुए रुक गयी थी। हम लोग अपनी मंजिल तक पहुँच कर बाय करके एक-दूसरे से जुदा हो गए थे। वह चली गयी थी और पीछे छोड़ गयी थी अनगिनत सवाल। मैंने उसे तो सांत्वना दे दी थी लेकिन वही सवाल मुझे तंग कर रहे थे। क्या सब कुछ उतना ही आसान है जितना कि कह देना। कितने भी बदलाव हो जाएँ फिर भी समाज वैसा ही रहता है, हर बार वही लड़ाई लड़ी जाती है। हर बार हरेक को अपनी लड़ाई खुद ही लड़नी होती है।

''क्या पापा मान जाएँगे?'' यह सवाल और उसका सशंकित चेहरा व आँखें मेरा पीछा करते रहे थे। फिर जीवन की आपा-धापी में सब भूलने लगी थी।

जीवन इसीका नाम है, जो कर्तव्यों के कारण यादों को धूमिल कर देता है।

जब उस दिन सुबह दरवाजे के पास पड़े अखबार को उठाया तो सबसे पहले नज़र उस न्यूज पर चली गयी थी।

एक और सामूहिक बलात्कार

एक लड़की के साथ एक विजातीय लड़के ने अपने दोस्तों के साथ मिलकर बलात्कार किया। उसको अपने फॉर्म हाउस में बहाने से बुलाया। वह प्यार करती थी उससे लेकिन लड़के ने दगा दे दिया और उसके विश्वास को तोड़ दिया। पहले तो ख्वाब दिखाये फिर उन्हीं ख्वाबों को अपने और दोस्तों के लिए ऐश की सेज़ सजा दी। अब वही कट्टर बाप जो बेटी की दूसरे धर्म में शादी के खिलाफ था, उसे मौका मिल गया था शायद, या सच में एक दुःखी बाप की स्थिति में था जो पुलिस चौकी पर भूख हड़ताल पर बैठ गया था कि जब तक मुजरिम न पकड़े जाएँ वो यहाँ पर ऐसे ही बैठा रहेगा।

वे लड़के कांड करके चले गए थे और पुलिस अपने हिसाब से काम कर रही थी। हालाँकि अभी लड़की होश में नहीं थी जो स्थिति स्पष्ट हो।

मैं चिंता और चिंतन के घेरे में चली गई...

क्या आज जीवन की यही सच्चाई है? क्या सामाजिक मूल्य अब खत्म हो गये हैं, इंसानियत या प्रेम का मतलब नहीं बचा? सब कुछ सेक्स या हवस तक ही सीमित हो गया है? क्या सच्चाई और विश्वास की कोई कीमत ही नहीं बची? उन लड़कों के साथ क्या वो बाप गुनाहगार नहीं जो अपनी बेटी की खुशियों में उसके साथ खड़ा नहीं हो सकता था?

न जाने कितने ही अनगिनत सवाल मेरे मन में उथल-पुथल मचाने लगे। इस घटना को पढ़कर मैं सन्न रह गयी, मुझे काटो तो खून नहीं। इस तरह की न्यूज तो हमेशा ही अखबारों में होती हैं रोज ही पढ़ती हूँ फिर ये आज इतनी बेचैनी क्यों? कहीं ये गुलफिजा तो नहीं, पूरी न्यूज एक श्वास में पढ़ गयी, कहीं किसी का नाम नहीं! सुमित और गुलफिजा को कई-कई बार पढ़कर ढूँढ लिया लेकिन कहीं पर नहीं। न जाने वह किस घर की गुलफिजा होगी? या शायद ये वही तो नहीं, उसकी वे बोलती आँखें सच्चाई और प्रेम से भरी हुई जो मुझसे कह रही थीं, 'वो बहुत प्यार करता है मुझसे! पजेसिव है वो मेरे लिए।' उस दिन से अब हरेक चेहरे में उसी को ढूँढने लगती हूँ, क्योंकि मैं उन आँखों का विश्वास आज भी कायम देखना चाहती थी, जो जिंदगी जीना चाहती थीं, हाँ वो अपने प्यार के साथ जीना चाहती थी।

◆◆◆

मनीजर बाबू

रमेश यादव

"हाल ही में सरकार द्वारा जारी वित्तीय समावेशन योजना को लेकर मैं वहाँ किस कदर जी-जान से लगा था, वह सारा दृश्य मेरी आँखों में तैरने लगा। सरकार इस योजना के तहत ऐसे लोगों को बैंकों से जोड़ना चाहती है जो आज की तमाम आर्थिक सुविधाओं से वंचित रह गए हैं। अब सरकार चाहती हैं कि बैंक विभिन्न माध्यमों द्वारा इन लोगों तक जाए, उन्हें बैंकिंग सुविधाएँ उपलब्ध कराये, क्योंकि आर्थिक असमानता समाज में अभिशाप है। यह कई विकारों को जन्म देती है।"

सम्पर्क : 481/161-विनायक वासुदेव, एन.एम. जोशी मार्ग, चिंचपोकली (पश्चिम), मुंबई-400011, फोन: 9820759088, ई-मेल: rameshyadav0910@yahoo.com

आपाधापी भरा मुम्बई का जीवन और दो घंटे लोकल ट्रेन की नारकीय यात्रा करते हुए रोज की तरह ठीक नौ बजे में बैंक पहुँच गया। गेट पर कुछ देहाती किस्म के लोग दरवान से हुज्ज़त कर रहे थे। दरवान कंधे पर बंदूक लटकाए मूँछों पर ताव दे रहा था। मेहनतकशों की भी अपनी एक शैली होती है, जीवन को जीने की। ये लोग डयूटी बजाने के चक्कर में उन्हें अंदर जाने से रोक रहा था।

मैले-कुचले, फटे-पुराने कपड़े पहने ये लोग भला क्या बैंकिंग करेंगे! इनके पास तो जरूरी कागज़ात भी नहीं होते हैं। बेमतलब वक्त जाया करते हैं, शायद दरवान की यह सोच रही होगी, पर बैंकिंग इंडस्ट्री ने आज जिस तरह से मुनाफा कमाने की आधुनिकता के कल्चर को अपनाया है, उससे दरवान की इस सोच को गलत नहीं ठहराया जा सकता था। इस तरह निगाहों-निगाहों में नाप-तौल किए जाने का मुझे तजुर्बा हो चुका था।

जैसे ही मैं गेट के करीब पहुँचा, ''गुड मार्निंग सर'' कहते हुए उसने सलामी दी और दरवाजा खोलकर मेरे संगत के लिए खड़ा हो गया, ऐसे कि जैसे कुछ हुआ ही न हो।

''रामसिंग क्या बात है? ये लोग क्या चाहते हैं? तुम इन्हें अंदर जाने से क्यों रोक रहे हो?''

''सर..., वो पिछली बार बड़े साहब ने कहा था ना कि...''

वह कुछ और बोलता उसके पहले ही उनमें से एक आदमी आगे बढ़ा और बोला, ''मनीजर साहब, परनाम... हम हैं... रामखेलावन! पहचानित हैं ना हमको! कुछ दिन पहले आये थे ना खाता खुलवाने के लिए अपनी मेहरारू और लड़के के साथ...''

''हाँ-हाँ जानते हैं, कहो आज कैसे आना हुआ? और ये इतने लोग कौन हैं?''

मेरे इस वाक्य से उन सबकी उम्मीदों को छोटी-सी किरण का एक सहारा मिल गया। उनके चेहरों पर इस भाव को मैं साफ-साफ पढ़ रहा था।

''सरकार वु हम कहे था ना कि और परिवार वाले, बिरादरी और गाँव वालन का खाता खुलवाने के खातिर... तो इन सबको हम आपके बारे में बताया कि बैंक में मनीजर बाबू अपने मुलूक के हैं, अउर बड़े ही अच्छे इंसान हैं। ई सबन को खाता खोलवाने ले आया हूँ।''

यह कहते हुए रामखेलावन हाथ जोड़कर मेरी ओर आशा भरी नज़रों से निहारने लगा, मानो कितनी उम्मीदों के साथ वह आया था। बैंक खुलने में अभी आधे घंटे का समय बाकी था, मैंने दरवान को निर्देश दिया, ''बैंक का समय होने पर इन सबको मेरे पास ले आना।'' मैं अंदर जाने लगा।

मेरी आँखों के सामने देश की गरीबी का वह चित्र चलने लगा जो मैंने अपनी गांव की पोस्टिंग के दौरान अनुभव किया था। मुंबई आने से पहले मैं गोरखपुर के बडहलगंज शाखा में तीन साल तक बतौर प्रबंधक पोस्ट था।

गाँव क्या होता है? किसान क्या खाता है? गरीबी किसे कहते हैं? मेहनत-मज़दूरी क्या होती है? यह सब मैंने बड़े करीब से देखा था।

हाल ही में सरकार द्वारा जारी वित्तीय समावेशन योजना को लेकर मैं वहाँ किस कदर जी-जान से लगा था, वह सारा दृश्य मेरी आँखों में तैरने लगा। सरकार इस योजना के तहत ऐसे लोगों को बैंकों से जोड़ना चाहती है जो आज की तमाम आर्थिक सुविधाओं से वंचित रह गए हैं। अब सरकार चाहती हैं कि बैंक विभिन्न माध्यमों द्वारा इन लोगों तक जाए, उन्हें बैंकिंग सुविधाएँ उपलब्ध कराये, क्योंकि आर्थिक असमानता समाज में अभिशाप है। यह कई विकारों को जन्म देती है।

समाज में आज भी ऐसे करोड़ों गरीब मज़दूरों, लघु कृषकों, दस्तकारों, निर्माण कार्य में लगे मज़दूरों, दिहाड़ी मज़दूरों, रिक्शावाले, ठेले वाले, मलिन बस्तियों के निवासी, अल्प अथवा अशिक्षित महिलाओं इत्यादि का विशाल वर्ग है जो देश और बैंक की प्रगति की रफ्तार में काफी पीछे छूट गए हैं। इनको बैंकिंग सेवाओं से जोड़ना ही वित्तीय समावेशन का व्यापक अर्थ है।

कवि नीरज की ये पंक्तियाँ मुझे बरबस याद आ रही हैं—

''अब तो मज़हब कोई ऐसा चलाया जाए
जिसमें इंसान को इंसान बनाया जाए
मेरे दु:ख-दर्द का तुझ पर हो असर कुछ ऐसा
मैं रहूँ भूखा तो तुझसे भी न खाया जाए।''

मैं अपनी पुरानी यादों में खोया था कि अचानक आई 'सर' की आवाज़ ने मुझे जगा दिया। मेरी आँखें नम होने को थी। देखा तो सामने हेड कैशियर चाबी लेकर खड़ा है।

केबिन में प्रवेश करते हुए चारों तरफ एक सरसरी नज़र दौड़ाई, और ब्रीफकेस रखते हुए, चाबी लेकर कैशवॉल्ट की ओर बढ़ गया। यह सोचते हुए कि रामसिंग को दिन में तारे नज़र आ गये होंगे। फटेहालों का भी इस देश में अपना वजूद है, वे भी इस देश के नागरिक हैं इस बात को वह महसूस कर रहा होगा। मैंने देखा उसका रवैया बदल गया था।

रामसिंग अपनी मूँछें ऐंठते हुए ठेठ भोजपुरी में बोला, ''हे बिरादर लोग, हमका माफी दै दो आज हम तुम सबको चाय पिलायेंगे और अब हमरे संग मनेजर के पास चलो।''

आवश्यक कामों को निपटाते हुए जैसे ही मैं केबिन की ओर बढ़ा तो देखा कि रामखेलावन की टीम मेरा इंतजार कर रही थी। मैंने उन सबसे बैठने के लिए कहा। वे लोग जमीन पर बैठने की कोशिश करने लगे। मैंन कुर्सियों पर बैठने के लिए कहा, पहले तो वे लोग संकोच करने लगे पर जब मैंने समझाया और रामखेलावन ने इशारा किया तो वे बैठ गये। कुर्सियाँ कम पड़ रही थीं तो बाहर से मँगवाई। कैंटीन वाले को फोन करके सबके लिए चाय भी मँगवाई।

चाय की चुस्कियाँ लेते हुए मैं रामखेलावन की यादों में खो गया। जब पहली बार वह बैंक में आया तक उसे किसी ने तूल नहीं दिया था। इधर-उधर झाँकते, सहमते वह मेरी केबिन में आया और नमस्कार करते हुए खाता खोलने की बात कहने लगा। मैंने उसे बैठने के लिए कहा।

''ठीक है सरकार'' कहते हुए वह जमीन पर बैठने लगा।

मैंने कहा, ''दादा, जमीन पर नहीं कुर्सी पर बैठो, यह आप ही का बैंक है।''

''नहीं बबुआ, आपके सामने भला हम कैसे कुर्सी पर बैठ सकत हैं! कुर्सी गंदा हो जाई।''

''कोई बात नहीं, हमारी कुर्सी गंदी होती है तो होने दो, हम साफ कर लेंगे।'' मैंने समझाया।

''बाबू आप देवता आदमी हैं। आप जैसे भला इंसान अब ई दुनिया में कहाँ मिलत है।'' उसने कहा, ''ई हमार फोटो, राशन कारड, वोटींग कारड देख लो, हम दसखत करें नहीं जानत, अँगूठा लगाते हैं, हमरा मदद कर दो साहिब।''

मैं पेपर्स देख रहा था, तब वह बड़े संकोच से बोला, ''मालिक बाहर हमरी पत्नी और बेटा भी आए हैं अगर हुकुम हो तो उन लोगों को भी बुला लेवे उनका भी खाता खोलना है।

''हाँ, हाँ उनको भी बुला लो, उन्हें बाहर क्यों खड़ा किया है?''

जैसे ही वह वहाँ से उठा, मैंने केबिन के बाहर एक सरसरी नज़र दौड़ाई। बैंक में अलग सुगबुगाहट थी, लोग-बाग अपने-अपनों कामों में व्यस्त थे। कुछ लोगों के माथे पर चिंता और परेशानी की लकीरें ऐसी उभरी हुई थी मानो सारी दुनिया का भार उन पर ही लाद दिया गया हो कुछ लोग ठिठोली कर रहे थे, तो कुछ काउंटर पर खड़ी महिलाओं को निहार रहे थे। दो महिलाएँ काउंटर से चिपकी आपस में बतियाई जा रही थीं, दुनिया की राग-रंग से दूर वे अपनी ही दुनिया में मशगूल थीं। कुछ बैंककर्मी कम्प्यूटर के की-बोर्ड और स्क्रीन से लड़ रहे थे, तो कुछ गप्प लगा रहे थे। ग्राहक भी अपनी धुन में थे। जिनको ट्रेन पकड़ना था, या ऑफिस जाना था, वे जल्दबाजी में थे। कुछ ग्राहक ऐसे थे जिन्हें कोई जल्दबाजी नहीं थी वे सोफे पर इत्मीनान से बैठे थे। दो लोग तो सो भी रहे थे। जिस काउंटर पर महिलाएँ थीं, वहाँ रेल-चेल अधिक था।

दरवाजे की ओर देखा तो मिस जेनी डिसोजा का प्रवेश हमेशा की तरह 'हाय-हैलो' के साथ हो रहा था।

जेनी हमारे एक कापोरेट क्लाइंट की पर्सनल सेक्रेटरी है जो माडर्न है, चुलबुली और लटके-झटके वाली हैं। वह बैंक में अक्सर आती रहती है। उसकी पहचान सबसे है। लोगों को भी उससे मिलने में आनंद आता है। उनकी तबीयत हरी हो जाती है। उसकी अदा उन तितलियों जैसी होती है जो उड़ती कम फड़फड़ाती ज्यादा है।

शेयर मार्केट में अचानक बिकवाली के चलते कुछ शेयरों के भाव जैसे गिर जाते हैं, वैसे ही जेनी के आने के बाद बैंक में महिलाओं की स्थिति हो जाती है। वे उससे खासी खफा रहती हैं। मगर जेनी अक्सर नब्ज़ पकड़ते पुरुषों के आस-पास ज्यादा मँडराती है। सुंदर महिला ग्राहक को देखते ही हमारी शाखा के अधिकारी देशपांडे जी जवान हो जाते हैं, जैसे किसी बूढ़े का गठिया रोग ठीक हो जाता है, उसी तरह वे फुर्ती से फुदकने लगते हैं। वैसे यह जवाँदिली की निशानी है ओर दिल से सबको जवान होना भी चाहिए। दुःख तो इस बात का हो रहा है कि जब रामखेलावन आया तो उसे अटेंड करने के लिए कोई आगे नहीं बढ़ा था, मगर इस तितली के इर्द-गिर्द भौंरों की भीड़ लग गई थी।

अचानक आयी 'बाबूजी' की आवाज़ ने मेरी तन्द्रा को भंग किया। देखा तो सामने रामखेलावन अपनी पत्नी और बेटे के साथ खड़ा था। मैंने उन्हें बैठने के लिए कहा, वे बैठ गये।

''बाबूजी! देर इसलिए हो गई कि दरवान की डर से ये लोग अपनी जगह छोड़कर सड़क के उस पार खड़े हो गये थे। इनको खोजने में समय लग गया। अब हम सबका खाता खोल देवें सरकार, टीन के डिब्बे में रुपया रखते-रखते अब खतरा महसूस होने लगा है। रात-भर नींद नहीं आती, बहुत परेशानी में बाँटी हम लोग।''

कुल मिलाकर दो सेविंग, दो फिक्स डिपाजिट और उनके बेटे का स्टुडेंट एकाउंट खोला। पासबुक और खाते की रसीद पाते ही वह परिवार बेहद खुश हो गया। जाते-जाते वे लोग दुहाई देने लगे, मेरे पाँव छूने को लपक रहे थे कि मैंने उन्हें ऐसा करने से रोका।

''अरे भाई ये क्या कर रहे हैं आप लोग! ग्राहकों की सेवा करने के लिए ही तो हमें यहाँ रखा गया है, यह तो हमारा फर्ज़ है।''

''नहीं बबुआ सब लोग ऐसन नहीं होत है। आप भलमनई हैं, हमरे लिए तो देवता हैं, पिछले कई सालों से खाता खोलने के लिए हम तरस रहे थे। इहाँ से दुइ बार और दूसरे बैंक से तीन बार हमें लौटा दिया गया। आज हिम्मत करके जब हम आपके पास पहुँचे तो तब जाकर काम हुआ। जानो गंगा नहा लिया हम आज, जय हो बम्बा मईया की। अब हम अपने गाँववालन को भी बताएँगे और उनको खाता खोलने के लिए कहेंगे। वु लोग भी बड़े परेशान हैं बबुआ।''

''कोई बात नहीं अब आप लोग जाइये, दो दिन बाद आकर डिपाजिट रसीद ले जाना और आगे जब भी कोई जरूरत हो तो मेरे पास बेधड़क चले आना।'' वे लोग मुड़ने को थे कि मुझे याद आया, मेरे लिए कभी किसी ने मेरे पिता से कहा था,

''सुनो! आपका लड़का बड़ा होनहार है, जब तक इसकी इच्छा है तब तक इसे पढ़ाना, एक दिन यह भी साहब बन जायेगा। पैसों की चिंता मत करना अब ऊँची पढ़ाई के लिए बैंक से शिक्षा लोन मिलता है।''

किसी जरूरतमंद की मदद करने के बाद की अनुभूति को मैं महसूस कर रहा था। मेरे अंदर अजीब-सी संतुष्टि का भाव जाग रहा था। इस परिवार की मदद करते हुए मैंने एक नई ज़मीन तलाशने की कोशिश की थी।

''सर सेविंग खाता खोलने के कुछ फार्म्स हैं।'' इस आवाज़ के साथ मैं जाग गया। भूतकाल से वर्तमान में लौट आया। देखा तो मेरे सामने टीम रामखेलावन बड़ी आशा के साथ बैठी थी। उनकी चाय खत्म हो गई थी।

मैंने बैंक के एक युवा अधिकारी किशोर कदम से कहा, ''आप दो लोगों को अपनी मदद के लिए ले लें और इन सबका इनकी जरूरत के अनुसार खाता खोल दें।''

कदम ने बेमन से हामी भरी पर मेरे निर्देशानुसार काम को उसने अंजाम दिया। वे लोग बड़े सुकून और सुखद अनुभूति के साथ मुझे और रामखेलावन के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए अपने-अपने रोजी-रोटी की ओर चल दिए। जीवन में कोई बड़ी बात हो गयी हो, यह एहसास उन लोगों के चेहरों पर साफ पढ़ा जा सकता था।

मैंने कदम और उसके सहयोगी कर्मियों की हौसला आफ़ज़ाई की। तब कदम ने बताया कि कुल 15 खाता खुले तथा और 20-25 लोगों के खाते खुलवाने के लिए ये लोग अपनी सुविधानुसार बाद में आएंगे, क्योंकि आज उनके पास जरूरी कागजात नहीं हैं।

मैंने कदम को संकेत दिया कि कुछ और लगन से काम वह करेगा, तो इन लोगों के जरिये हम कम से कम 150-200 खाते खोल सकते हैं, जो हमारे टारगेट को पूरा करने में बेहद सहायक सिद्ध होगा। मैंने उसे वित्तीय समावेशन और 'नो फ्रील' (जीरो बैलेंस) खातों के बारे में और टारगेट के बारे में बताया।

''आय थिंक इट्स ए चैलजिंग जॉब, बट आय विल ट्राय सर।'' कदम ने कहा।

कदम की अगुआई में तीन कर्मियों को मैंने इस काम में लगाया। कुछ ही दिनों में रामखेलावन एवं उनकी टीम के जरिए हमने कुल 250 अकाउंट्स खोले और दस 'स्वयं सहायता ग्रुप' की स्थापना की। इन खातों के साथ ही मेरी शाखा को दिया गया वित्तीय समावेशन खातों का टारगेट पूरा हो गया।

सारे बैंक अपने-अपने ढंग से इस योजना पर काम कर रहे थे। मैं सोच रहा था कि आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन तथा राष्ट्र का विकास कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे हम मनचाहे ढंग से बाजार से प्राप्त कर लें, या कम्प्यूटर पर बटन दबाकर रिज़ल्ट प्राप्त कर लें। यह कोई नट-बोल्ट नहीं, जिसे हम गरीबों के जीवन में कारखाने में फिट कर दें और प्रगति नाप लें। इसके कार्यान्वयन के लिए हमें अपने आस-पास के स्रोतों को ही तलाशना होगा। अपने कार्यालय के पद, प्रतिष्ठा के अनुसार टारगेट ग्रुप को खोजना होगा, उनकी मदद करनी होगी। पिछड़े हुए लोगों को विकास की मुख्य धारा में लाना होगा। मेरे मन में यह विचार घूम रहा था।

मेरी इस भावना को मेरे सहयोगी कर्मचारी समझ रहे थे और जो ग्राहकों की सेवा के लिए मेरे साथ तत्पर खड़े थे। अंततः वह दिन भी आया जब इस कार्य के लिए कदम को प्रशंसा पत्र देते हुए महाप्रबंधक जी ने पुरस्कृत किया। मैं गद्-गद् हो गया। मन ही मन मैं बड़ा प्रसन्न हो रहा था। कदम की आँखों में खुशी के आँसू छलकने के लिए बेताब थे, मैंने उसे गले से लगा लिया। इस वर्ष उसका प्रमोशन ड्यू था।

मेरी आँखों के सामने बचपन का वह दृश्य दौड़ गया—मेरे पिताजी जो गरीब किसान थे। मुंबई आने के बाद बैंक में खाता खुलवाने के लिए इसी तरह परेशान थे। उनकी भी मदद उस समय किसी बैंक अधिकारी ने की थी तब से उनका सपना था कि मैं बड़ा होकर बैंक में बड़ा साहब बनूँ। आज वे हमारे बीच नहीं हैं, पर उनकी यादें जेहन में सदा मौजूद हैं...। वे अक्सर एक किस्सा सुनाया करते थे...

किसी व्यापारी ने भगवान से पूछा, ''आप क्या-क्या बेचते हैं?''

भगवान ने कहा, ''तुम्हारा मन जो चाहता है वो सब-कुछ''

व्यापारी ने कहा, ''क्या आप मुझे सुख, शांति, खुशी और सफलता देंगे?''

भगवान मुस्कराए और बोले, ''वत्स! मैं सिर्फ बीज बेचता हूँ, फल नहीं।''

◆◆◆

चतुर्भुज

सुदर्शन वशिष्ठ

...हिमबाला, हिमबाला ही थी... गोरी चिट्टी, किसी पहाड़ से झरने की तरह उतरी हुई। बर्फ-सी सफेद और नर्म हाथ लगाते ही पिघल जाए। पहाड़ में लहराते बादलों की तरह कंधों तक फैले खुले बाल। वैसी सुंदर भी नहीं थी कि आदमी एकदम फ्लैट हो जाए। सुंदर होना ही सब-कुछ नहीं होता। सुंदर तो पत्नी भी कम नहीं है। सुंदर होने से ज्यादा महत्वपूर्ण है, सुंदर दिखना। सुंदरता एक सलीका होती है। ढंग से कपड़े पहनना, शालीनता से उठना-बैठना, अदा से बात करना आदि कुछ ऐसी बातें हैं जो साधारण आदमी को भी असाधारण बना देती है।

सम्पर्क : 'अभिनन्दन', कृष्ण निवास, लोअर पंथा घाटी, शिमला-171009
मोबाइल: 9418089995, फोन: 0177-2620858 (आवास),
ई-मेल: vashishthasudarshan@yahoo.com

लगा, जैसे मैं जा रहा हूँ... वही कद, वही काठी, चालढाल, सब वही। टेढ़ी गर्दन, उलझे बाल, लटके गाल, खुली पैंट, ढीला कोट, बढ़ा पेट, कंधे पर लटका खाली झोला, चाल वही मस्तमौला। उँगलियों पर कुछ गिनना, गर्दन का पैण्डुलम की तरह हिलना, उचक-उचक कर चलना, बार-बार हाथ मलना।... अरे! मैं ही तो हूँ।

कई बार वह अपने को राह में चलते हुए इमेजिन करता है। कैसे आ रहा है... अब रुका, अब किसी से मिला, हाथ मिलाया, आगे बढ़ा। किसी समारोह या आयोजन में जाने से पहले अपने को देखता... ऐसे उठ रहा है, धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा है। अब स्टेज पर चढ़ा है, उपस्थित लोगो को दोनों हाथ जोड़ कर नमस्कार की मुद्रा बनाई। एकाउंटेंट जनरल को नमस्कार किया, हाथ मिलाया...। ऑडिट पार्टी का मुखिया बना है। सभी उसे रिसीव कर रहे हैं। किसी से हाथ न मिलाकर सीधा आगे बढ़ता हुआ फाइलें बिल्ली की तरह दबोच रहा है, किसी बिल पर पेंसिल से बड़ा-सा लाल गोला बना कर घूर रहा है... अरे! वह तो हिमबाला के साथ चला जा रहा है, एकदम मस्त। देखो तो सही... आदि... आदि... आदि।

अपने को, अपने से देखने में उसे बड़ा मजा आता। सोचता, कोई उसका चलचित्र न सही, वीडियो ही बनाए तो अपनी सब भाव-भंगिमाएँ, मुद्राएँ देखे। सम्भव हो तो अपने पोस्चर और पोज़ सुधार करे। जब कभी राह में चला हो, अपने को जैसे देखता हुआ चलता।

बिना आईने के कोई अपने को देखता है!... हाँ, वह देखता है। बाहर से भी देखता है, भीतर से भी देखता है। आईना साफ-साफ नहीं दिखा पाता। आईना जैसा है, वैसा ही दिखाएगा। कभी एकदम तेजस्वी, कभी मटमैला। बहुत बार आईना सच नहीं बोलता। यह आईने की मैल और देखने वाले की दृष्टि पर भी निर्भर करता है।

आगे जाने वाला अपने में मगन जा रहा था कि सामने से एक

सज्जन ने उसे रोक कर हाथ मिलाया, ''अरे! चतुर्भुज जी आप! बहुत दिनों बाद दिखे... कहीं गए थे क्या!''

अरे! ये तो मैं ही हूँ!... मेरा ही नाम है चतुर्भुज। मति भ्रष्ट हो गई है मेरी। अपने को ही नहीं पहचाना... शायद इसीलिए संत लोग बार-बार कहते हैं... अपने को जानो, अपने को पहचानो...। एकाएक जोर से हँस दिया चतुर्भुज।

चलते-चलते थोड़ी चढ़ाई के बाद हिमाचल निर्माता डॉ. परमार के बुत के पास आ गया। जिस पार्क में यह बुत लगा था उसके दोनों ओर चिनार के पेड़ थे। इस ओर का पेड़ ऊँचा और पुराना था। दूसरी ओर भी दो नए पेड़ उगाए गए थे।

डॉ. परमार के बुत के साथ कलाकार एम.सी सक्सेना द्वारा निर्मित 'हिमबाला' हाल ही में स्थापित की गई थी। इससे पहले, भले दिनों में वह आशियाना रेस्तरां के दूसरी ओर खड़ी रहती थी। वहाँ से हटा दिए जाने पर कुछ दिन गायब रही। अब यहाँ पुनः साक्षात् प्रकट हुई। हिमबाला के घड़े से जब चाहो पानी पी लो, जब चाहो फोटो खिंचवा लो। सैलानी पैर से हैण्डल दबाते और पानी का फुहारा-सा निकल पड़ता। मूर्तिकार सक्सेना दूर खड़े मुसकाते। रोज शाम वे मूर्ति को देखते हुए वहाँ से गुजरते।

अचानक हिमबाला मूर्ति से बाहर निकली। डॉक्टर परमार बुत बने खड़े रहे। मूर्तिकार सक्सेना आशियाना रेस्तरां से निकल कर सामने खड़े थे। हिमबाला ने उनकी तरफ नहीं देखा। चतुर्भुज भी अवाक् खड़ा था। हिमबाला ने उसकी तरफ भी नहीं देखा। 'आरजू' का 'बेदर्दी बालमा...' गाना बैक ग्राउंड में बजता रहा और देखते-देखते हिमबाला साधना की तरह आँखों में आँसू लिए सीरियस और उदास पोज़ में जाखू के जंगल की ओर चल गई।

तभी जोर से हवा चली और चिनार के कई सूखे पत्ते सड़क के दूर-दूर तक बिखर गए।

यह दृश्य वैसा ही था जैसे कई बार चतुर्भुज को लगता, उसके शरीर से चतुर्भुज निकल कर आगे-आगे चला जा रहा है और जिसे वह आगे जाते देख भी रहा है।

हिमबाला चली गई। जंगल में किस की खोज में या पता नहीं कहाँ। जिसने जाने की ठान ली है, वह तो जाएगा ही। जाने वाले को कौन रोक सकता है! आगे आ कर रेलिंग के सहारे खड़ा हो गया चतुर्भुज।

लिफ्ट के पास देवदार की चोटी पर दो बड़े जानवर बैठे थे। पहले बंदर से दिखे। इतनी ऊँचाई पर बंदर कैसे पहुँच सकते है! वे काफी देर बिना हिले-डुले बैठे रहे। एकाएक उनमें से एक उड़ा और अपने लम्बे-चौड़े डैने फैलाए लिफ्ट के नीचे गहरे नाले में मँडराने लगा। इतने बड़े आकार के पक्षी पर उसकी नज़र पहली बार पड़ी। ये बाज नहीं थे। बाज तो बहुत स्मार्ट होता है। बड़ी फुर्ती से उड़ता है। ज़िंदा पक्षी को एकदम दबोच लेता है। ये गिद्ध भी नहीं है। गिद्ध नीचे-नीचे नहीं उड़ते। वे तो मरे हुए जानवर को खाकर एकदम गोलाकार घूमते हुए आकाश में बहुत ऊपर उड़ जाते हैं और अंत में दिखना बंद हो जाते हैं।

अब दोनों पक्षी नाले में नीचे-नीचे मँडराने लगे थे। कभी ऊपर आ जाते। कभी नीचे चले जाते। इन पर दुर्गन्ध भरी हवा का कोई असर नहीं था। ये गंदगी पर ही बैठते हैं।

लिफ्ट के नीचे नाले के ऊपर लेंटर डाल कर पार्किंग बनाई हुई थी। सड़क और पार्किंग के बीच खाली जगह छूट गयी थी जिससे कई लोग नीचे गिर गए। कुछ समय तक यह स्थान आत्महत्या के लिए भी प्रयोग में लाया जाता रहा। ज्यादा हादसे होने पर और हो-हल्ला मचने पर इस खाली जगह को बंद किया गया। सड़क के दूसरी ओर ऊँचा जंगला लगाया गया ताकि वहाँ से कोई कूद न सके।

इस गहरे नाले को देख उसे याद आता वह रेलवे स्टेशन जो दो पहाड़ियों के बीच गहरी खंदक में बना था। ऊपर से कोई अंदाजा नहीं लगा सकता था कि नीचे कोई स्टेशन भी रहा होगा। रेल भी इन पहाड़ियों से छिप-छिप कर निकलती। हालाँकि पहाड़ी के ऊपर जा रही सड़क पर एक जगह ऐरो की शेप में पट्टी लगवाई गई थी, ''बड़ोग रेलवे स्टेशन''।

जिस आदमी ने होणा जीणा हो, वह गहन घाटियों के भीतर से भी जी उठेगा। जिसने मरणा खपणा हो, वह शिखर से भी लुढ़क जाएगा... वह विचारता।

कभी एक जगह खड़े-खड़े सोचता, वह धीरे-धीरे चला जा रहा है। इतना धीरे कि लगता उसे कहीं जाना नहीं है, कही पहुँचना

नहीं है। बस टहलते हुए सरकना है, खिसकना है धीरे-धीरे, सशरीर। हाँ, बिना शरीर के तो...।

हिमबाला तक पहुँचने के लिए इसी सोच-विचार में बस के इंतजार में खड़ा था कि लगा वह धस्स से गिर गया। जोर की आवाज़ भी नहीं हुई जैसे कोई सूखा लट्ठ या ठूँठ गिरता है जंगल में। तूफानों में जड़ से उखड़ने पर पुराने ठेले या ठूँठ पानी में, धूप में भीगते-सूखते खोखले हो जाते हैं। इन्हें न तो जंगलात महकमे वाले उठाते हैं और न ही ग्रामवासी। जो तने कभी लोहे से मजबूत होते थे, गल जाने पर न तो उनका शहतीर बनता है, न ही जलाने के काम आते हैं। यदि इन्हें उठा कर गिराया जाए तो धस्स-सी आवाज़ होती है, अजीब-सी।

ठीक ऐसी ही आवाज़ हुई। उसके गिरते ही बस के इंतजार में खड़े लोग दौड़े। एक नेगी ने उसकी बाँह को सहारा दिया, ''क्या हुआ जी! कैसे गिर गए!''

धीरे-धीरे लगभग घसीटते हुए उसे किनारे तक ले आए।

अभी-अभी एक बाईक गुजरी थी। लगा, बाईक ने धक्के से गिरा दिया बीच सड़क में। पहाड़ी सड़क में भी बाईक वाले लड़के बिना कुछ देखे तेजी से आगे निकलना चाहते थे। बस स्टॉप पर दोनों ओर विपरीत दिशा में सवारियों के इंतजार में बसें खड़ी थीं। बाईक ठीक से बीच से तीर-सी गुजरी थी।

पता चला, वह बाईक के धक्के से नहीं, सड़क पार करते हुए अचानक खुद ही गिर गया।

अक्सर बच्चे गिरने पर कहते हैं... मैं खुद ही गिरा। चाहे चोट लगी हो तब भी सबके सामने तुरंत खड़े हो जाएँगे और दौड़ने लगेंगे या एक बार पुनः वैसे ही गिर कर दिखाएँगें। बड़े भी गिरने पर एक बार तो तुरंत खड़े हो जाते हैं। सहने योग्य चोट लगी हो तो ऐसा शो करते हैं कि लगी ही नहीं। बाद में चाहे रात भर कराहते रहें। ज्यादा लगी हो तो भी एक बार तो खड़े हो ही जाएँगे, फिर चाहे निढाल हो जाएँ।

उसे लगा, यह और कोई नहीं, वही गिरा है। उसे कॉलेज के समारोहों में पुरस्कार देने के समय या किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति को स्टेज पर बुलाते हुए एनाउंसर के रटे-रटाए शब्द याद हो आए... ''नन अदर दैन...''

उसे लगा, यह ''नन अदर दैन'' चतुर्भुज ही है।

पता नहीं चला, वह सड़क के बीचोंबीच गिर कैसे गया! सड़क में कोई ठोकर नहीं, कोई गतिरोध नहीं, अवरोध नहीं। यह तो गनीमत थी कि शहर में अभी तक उतना ट्रैफिक नहीं है कि गिरे हुए को उठाया नहीं जा सके। जब उसे किनारे जा कर सीधा खड़ा करने की कोशिश की गई तो पीठ में कड़ाके के साथ असहनीय पीड़ा हुई... लगता है कि रीढ़ की हड्डी टूट गई या स्पाइन में कोई एल वन या एल टू खिसक गई... वह निढाल हो धस्स से पुनः नीचे गिर गया।

होश आया तो लगा, सरकारी अस्पताल के सख्त बेड पर सीधा लेटा है। डॉक्टर कह रहे हैं... स्पाइनल इंजरी है। एक्सरे करवा लीजिए। ठीक होने में वक्त लग सकता है। ओल्ड एज़ में ज्यादा वक्त लगता है।

घर से पत्नी जैसी आ गाई है। उसकी सूरत रोने जैसी है। बेटा जैसा आ गया है। वह एक्सरे फार्म लिए पैसे जमा करवाने जा रहा है। सभी मायूस हैं। माहौल ग़मग़ीन है।... ये तो बुरा हुआ, किसी की रीढ़ की हड्डी न टूटे, कोई बोला।

...अरे! वह तो ठीक है। यह क्या ऊटपटाँग सोचने लगा। वह जो गिरा था बीच सड़क में, वह कोई और होगा साला। वह तो रिज पर हिमबाला के ठीक सामने खड़ा है। कई लोग गिरते रहते हैं। घर में चैन से नहीं बैठते, बस चलते रहते हैं, चलते रहते हैं। अब किस-किस की गिरावट वह अपने सिर पर ले।

ऐसे ही गिरे थे भाई! वे ठेले पर जाया करते थे, रेलवे लाइन की मरम्मत करने। तब नहीं गिरे। एक आदमी लाल झंडी लगे ठेले को धकेलता हुआ पटरी पर दौड़ता, बाकी आराम से बैठ जाते। वह चढ़ जाते। चलती रेल से उतर जाते, चलती रेल पर चढ़ जाते। तब भी नहीं गिरे।

लाइन में रोड़ी बिछाने, हथौड़े से लाइन में ठोक-पीट करने के कुछ समय बाद वे रेलवे फाटक पर सिगनल मैन लग गए। डयूटी खत्म होने पर वे फाटक से ही लपक कर ट्रेन पर सवार हो जाते और सुरंग के ठीक बाद बने क्वार्टरों पर उतर जाते।

भाई मोरध्वज जब जामुन के पेड़ से गिरे थे, तब भी धस्स की आवाज़ हुई थी खेत में।

घर के साथ नीचे को ढलानदार खेत थे जिनमें आम, बेर, जामुन, कचनार के पेड़ थे। माँ और भाभी सुबह-सुबह रसोई में थीं। वह बरामदे में बैठा था। किसी को पता नहीं चला हालाँकि जामुन का पेड़ बरामदे से दिखता था। देर बाद माँ रसोई से निकली तो उसने नीचे देखा। पेड़ पर किसी टहनी के कटने की आवाज़ नहीं आ रही थी। मोरध्वज को गए काफी समय बीत चुका था। माँ और वह आँगन में आ खड़े हुए और नीचे देखने लगे। पेड़ के नीचे कुछ टहनियाँ बिखरी पड़ी थीं। थोड़ी देर बाद बहुत गहरे में किसी के कराहने की आवाज़ आई तो माँ के चीखने के साथ ही वह नीचे भागा।

भाई बड़ी ऊँचाई से गिरे थे। शायद गिरते ही बेहोश हो गए थे। तीन दिन तक हाथ-पाँव मारते रहे, सुध नहीं लौटी। सिर में या कहीं और अंदरूनी चोट लगी थी। अंततः चौथे दिन सदा के लिए बेसुध हो गए।

मोरध्वज और चतुर्भुज जुड़वां थे। मोरध्वज कुछ क्षण पहले आया था इसलिए बड़ा माना जाता था। थे दोनों एक से। जैसे रामायण के बाली और सुग्रीव। भगवान भी न पहचान सके कि कौन मोरध्वज है और कौन चतुर्भुज। मोरध्वज का विवाह हुआ तो सभी हँसते कि भाभी के पास न चले जाना, वह पहचान नहीं पाएगी।

बड़े भाई का फर्ज निभाते हुए मोरध्वज रेलवे में दिहाड़ीदार हो गया। चतुर्भुज की पढ़ाई में लगन को देखते हुए उसे सीनियर सैकेण्डरी के बाद बी.ए. में दाखिला करवा दिया।

सिगनल मैन बनने पर मोरध्वज को घर से दूर शहर में जाना पड़ा। अभी हफ्ते भर की छुट्टी ले कर आया था कि दूसरे ही दिन यह हादसा पेश आ गया।

भाई के क्रिया-कर्म पर सब रिश्तेदार आए। चतुर्भुज की बदकिस्मती और मोरध्वज की पत्नी के भाग्य को कोसने के साथ कुल तेरह दिन गुजरे। इसी बीच किसी ने दबे स्वर में मज़ाक किया कि क्यों न चतुर्भुज भाई की जगह नौकरी पर चला जाए, कोई पहचान तो पाएगा नहीं। मज़ाक में की गई यह बात हकीकत बन गई।... अभी भाई की जगह लगने में ही भलाई है, आगे तुम्हारी मेहनत और किस्मत।

भाई के पुराने कपड़े पहन कर वह डयूटी पर गया तो बहुत बुरा लगा। कहाँ कॉलेज का मस्त माहौल और कहाँ सिग्नल मैन की नौकरी। घर के सामने खेतों से साल का गुजारा नहीं हो पाता था। छः महीने में ही अनाज चुक जाता। अब कम से कम परिवार का खर्चा तो निकलता रहेगा।

तब अच्छा जमाना था। भले लोग थे। कुछ को पता भी चल गया कि यह मोरध्वज नहीं है, किसी ने आवाज़ नहीं उठाई...। हमें क्या है, दो रोटी कमा कर खा रहा है तो खाता रहे। ठगीठोरी या चोरीचकारी तो नहीं कर रहा।

छोटा-सा वह रेलवे स्टेशन दो पहाड़ियों के बीच जैसे किसी खोह में बना था। इसी स्टेशन पर सिगनल देने की डयूटी थी। सिगनल से पहले एक लम्बी सुरंग थी। वहाँ से रेल निकलती तो लगता पहाड़ी से सुराख से कोई घोंघा निकल रहा धीरे-धीरे नासिकाओं में धुआँ निकालता हुआ।

स्टेशन में न कोई सवारी चढ़ती थी न उतरती थी। वैसे भी सीजन को छोड़ रेल में सवारियाँ बहुत कम होतीं। सीजन में शौकीन सैलानी शौकिया रेल में बैठ पहाड़ जाते। नीचे जाने वाली शाम की रेल तो पूरी की पूरी खाली होती। इक्का-दुक्का सवारी किसी डिब्बे में नजर आती वरना शाम को मद्धम रोशनी में डिब्बे खटर-पटर करते सरकते जाते। रेल के जाने के बाद स्टेशन एकदम सुनसान हो जाता। न चाय वाला, न पकौड़े वाला, न कुली न कबाड़ी। सर्दियों में तो स्टेशन जैसे धुँध में डूबा रहता। पहाड़ की चोटी बर्फ ओढ़ लेती। बर्फ के फाहे ऊपर से उड़ते हुए स्टेशन में ठहरने के लिए मचल उठते। नीचे उन्हें ज़िंदा रहने के लिए उपयुक्त तापमान नहीं मिल पाता, इसलिए टिक नहीं पाते। पहाड़ की धुँध जैसे भारी होकर स्टेशन पर पसर जाती तो रेल की लाइट भी मद्धम-सी नजर आती।

रेल की सूचना आते ही वह तुरंत सिग्नल डाउन कर देता। यह काम कभी कोई दूसरा कर देता तो वह लालटेन लिए स्टेशन के मुहाने पर इंजिन ड्राईवर को रोशनी दिखाता। स्टेशन में कुल जमा तीन कर्मचारी थे। आस-पास दूर तक कोई आबादी नहीं। ऊपर, घने जंगल ओढ़े पहाड़ियाँ। अँधेरी पहाड़ियों पर जोर लगाकर रेंगती बसों और ट्रकों की आवाज़ें दूर होती सुनाई

पड़ती। इनकी रोशनियाँ जंगल में काँपती हुई लहरातीं जैसे कोई टॉर्च से किसी को अँधेरे में खोज रहा हो।

ऐसे में, जब भी मौका मिलता, वह शहर की ओर आने वाली रोज की रेल से क्वार्टर आ जाता। भाई ने यह अक्लमंदी की थी कि क्वार्टर शहर के स्टेशन के पास ले रखा था। मुख्य स्टेशन के पास एक दो-मंजिली धज्जी दीवार की पुरानी बैरक-सी थी जिसकी निचली मंजिल में भाई का कमरा था। भाई ने जरूरत की सारी चीजें सँजोई हुई थी। पहली रात भाई के बिस्तर में सोने पर उसे सारी रात नींद नहीं आई। लगता, भाई ठेले को धकियाते हुए लोहे की सख़्त पटरी पर गिर गए। ठेला दूर निकल गया और वे वहीं पटरी के बीच पत्थरों पर पड़े रहे। या चलती रेल पर चढ़ते हुए पाँव फिसला और रेल के नीचे आ गए। कभी लगता, भाई गुमसुम से बाहर खड़े धीमे से दरवाजा खटखटा रहे हैं। जब रेल गुजरती तो लगता एक दरवाजे को फाड़ घुसेगी और दूसरे से निकल जाएगी।

उस समय भाप के इंजन हाँफते-हाँफते चलते थे। रेल गुजरती तो कमरे में धुआँ भर जाता। छुक-छुक की आवाज़ बहुत दूर से आनी शुरू हो जाती। यह फायदा तो था कि कहीं भी चलती रेल से उतर जाओ और कहीं भी आराम से चढ़ जाओ। वह अपने क्वार्टर के पास उतर जाता। खाना पकाने व सेंकने के लिए इंजन के बुझे कोयले काम आते। हाँ, रात को सोने से पहले खिड़की व दरवाजे एक बार जरूर खोलने पड़ते।

भाई के कमरे में रहते हुए, भाई का अवतार बनते हुए महीना भर ही बीता था कि घर जाने पर माँ ने उसे भाभी की वेदना सुनाई... अब यह क्या करेगी। जवान औरत, हर समय डर रहता है। आजकल तो पड़ौसी और रिश्तेदारों का भी भरोसा नहीं। इसे मायके भी नहीं भेज सकते। हमारे पास कुछ दाना-पानी तो है उनके पास तो वह भी नहीं। हूँ हाँ की उसने, कुछ समझा नहीं।

दूसरी बार घर गया तो दूर के रिश्ते की बहन आई हुई थी। उसने जरा खुलकर बात की... अभी बाली उमर है इसकी, क्या पता इधर-उधर मुँह मारे। तेरे से आठ साल छोटी तो होगी ही। चार-पाँच जमात पढ़ी भी है। तू इसे 'चादर' डाल दे। ऐसा तो होता रहा है। घर की इज़्ज़त घर में ही रहेगी। इसे और क्या चाहिए, रोटी के दो टिक्कड़ और मोटा-सोटा कपड़ा बस्स! पूरा घर और बाहर का काम सँभाल रखा है इसने।

अब उसकी समझ में बात आई। उसने भाभी को भाई के पुराने कपड़ों की तरह ओढ़ा, बिछाया। कभी उसे ग्लानि होती, कभी घिन आती तो कभी दया। वह पेट से थी। भाई की मौत के सात महीने बाद उसने एक लड़के को जन्म दिया। वह किसका है, यह कोई खुलकर पूछ नहीं पाया। सभी उसकी शक्ल चतुर्भुज से मिलाने लगे। चतुर्भुज को लगता, भाई की आत्मा जो कभी उसकी देह में घुसी थी, अब इस बच्चे में आ गई है।

गहरी घाटी में वास करते हुए, मोरध्वज बनते हुए लग रहा था कि वह निरंतर डूबता जा रहा है। उसे वहाँ से निकल भागने की, अपना नाम पाने की चाह थी। स्टेशन में कुछ काम तो था नहीं, सिवाय दिन में चार-छः बार सिगनल खैंचने के। पत्राचार से दाखिला ले कर उसने बी.ए. पूरा करने की ठान ली।

अपने बूते पर बुलंदियाँ छूना चाहता था चतुर्भुज। मन में पढ़ने की, कुछ बनने की चाह थी। काम करने की लगन थी। स्टेशन में आने वाले अखबार में रिक्त स्थान का कॉलम पढ़ने की, कुछ बनने की चाह थी। काम की अर्जी भेज देता। बी.ए. पूरा होने से पहले ही वह ए.जी. ऑफिस में क्लर्क सेलेक्ट हो गया।

ए.जी. ऑफिस में आने पर उसे अपना काम मिला, अपना नाम मिला। उसने भाई की आत्मा को अपने में सहेजते हुए भाई का चोला उतार फैंका। वह मोरध्वज से चतुर्भुज बन गया।

नयी नौकरी मिलने के तुरंत बाद उसने घर में विवाह का प्रस्ताव रखा। वह अपना, खुद का विवाह करेगा। अच्छी सरकारी नौकरी होने से तुरंत विवाह भी हो गया।

बिमला भाभी से हमेशा दूध और गोबर की गंध आती रहती। वह पशुओं के काम में जुटी रहती। खेतों का काम भी उसने सँभाल रखा था, नई बहू सुलेखा को रोटी-रसोई का, भीतर का काम दिया हुआ था। वैसे भी बिमला भाभी तगड़ी थी और काम में जट्टी। बिल्ली की तरह पेड़ पर चढ़ जाती और पशुओं के चारे का भारी भार उठा लाती। वह न बारिश से डरती थी, न रीछ से, न बाघ से। माँ के साथ रहने से उसकी आदतें माँ-सी हो गई थी। चतुर्भुज से भी वह माँ की तरह व्यवहार करती। नई बहू

दसवीं पास थी। उसने अंदर का, चौके-चूल्हे का काम सँभाल लिया। माँ को आराम मिला और वह घर की ओर से बिल्कुल फ्री हो गया।

बिमला घर में गोबर लिपे फर्श की तरह थी, गेरू लिपे गवाक्ष की तरह थी तो सुलेखा सफेदी की दीवार या शीशे लगी खिड़की। बिमला में स्नेह था तो सुलेखा में दुलार।

भाई की ब्याहता से उसने दुलार किया एक बच्चे की तरह, डर-डर कर। अपनी ब्याहता से लाड़ किया, सँभल-सँभल कर एक बड़े की तरह।

प्यार-व्यार का पता उसे पैंतीस की बाद चला। प्यार-व्यार कुछ तो होता भई। यह बिल्कुल बेकार की चीज नहीं। आदमी खुल कर जीना चाहता है, जब प्यार हो। एक अजब स्फूर्ति से भर जाता है, एकाएक एक्टिव और रिएक्टिव हो जाता है। रोज नहा कर अच्छे कपड़े पहनना चाहता है, यदि प्यार हो। बनना-सँवरना चाहता है, यदि प्यार हो। इत्र-फुलले, सेंट और डियो तक लगाना चाहता है, यदि प्यार हो। उसके मन में स्फूर्ति और प्रसन्नता रहती है, चहक-चहक कर बात करता है, यदि प्यार हो। कई कुछ ऊटपटाँग भी करता है, यदि प्यार हो और जो कभी नहीं करना चाहिए, करता है वह भी, यदि प्यार हो।

उसे पता चला क्यों चतुर्भुज होने की कल्पना की जाती है। आज उसे महसूस हुआ उसकी दो भुजाएँ कम हैं। उसके पास तो चार से ज्यादा भुजाएँ होनी चाहिए। जैसे एक योद्धा की हज़ार भुजाएँ होने पर उसे सहस्रबाहु कहा गया। वह अपनी हज़ार भुजाओं से लड़ता था। बाणासुर की भी तो अनेक भुजाएँ थीं। विष्णु की चार भुजाएँ हैं तो वे जिसे मारना चाहें, उसका मरना तय है और जिसे जिलाना चाहें, उसका जीना तय है। कई काम एक साथ करने हैं तो बहुत-सी भुजाएँ चाहिए। केवल चतुर्भुज नाम होने से काम नहीं चलता। लोग उसे चतुर्भुज न कह कर चत्तरभुज पुकारते हैं।

चतुर्भुज हो कर वह तीन साल में ऑडिटर हो गया। फिर एस.ए. एस. की परीक्षा भी पास कर ली और ए.जी. ऑफिस में अनुभाग अधिकारी (ऑडिट) हो गया। कमरे के बाहर नेम प्लेट लग गई — सी. वर्मा, अनुभाग अधिकारी। कई परीक्षाएँ पास कर इस नेट प्लेट में वह हर साल कुछ और जोड़ना चाहता था। चाहता था कि रिटायरमेंट तक कम-से-कम डिप्टी एकाउंटेंट जनरल तो बन ही जाए।

जीवन स्तर बदला, साथ बदले। इस उम्र में इतना मैच्योर हो जाने पर भी उसे पता नहीं चला कि कब वह ऑफिस की स्टेनो हिमबाला के साथ उठने-बैठने लग गया और इतना ज्यादा कि किसी दूसरे का साथ उसे बुरा लगने लगा। कब वे ऑफिस एक साथ आने-जाने लगे, कब वे पहाड़ की सुनसान सड़कों में अकेले घूमने लगे, कब रेस्तरां में पर्दे लगा कर बैठने लग गए, उसे पता ही नहीं चला। हिमबाला के साथ मिलने पर ही उसे लगा कि उसकी दो भुजाएँ कम हैं। ऑफिस में वह अपने काम के साथ उसका काम भी निपटा देता। अब उसे पता चला कि अच्छा साथी होने के लिए स्टेटस के साथ मेंटल लेवल भी एक-सा होना चाहिए।

प्यार में गहरे उतरने में उसे वक्त तो लगा, वक्त का पता नहीं चला। यह गँवई अल्हड़ मूर्खता की तरह नहीं, शहरी और संभ्रांत बुद्धिमत्ता की तरह था। यह दिल से तो था, दिमाग से भी था।

इस पहाड़ी शहर में बहुतेरे ऐसे शख्स थे जिन्हें 'सेल्फ मेड मैन' के नाम से जाना जाता था। इन की प्रसिद्धि शहर तथा गाँव में बराबर थी। बल्कि गाँव में ज्यादा थी। चतुर्भुज भी अब उनमें एक था। ये लोग अपने बूते पर बुलंदियाँ छुए हुए थे। इन सबके गाँव में, बचपन में ही अनपढ़ गँवार लड़कियों से ब्याह हो गए थे और एकाध या अधिक संतानें भी थीं। अच्छी नौकरियाँ पाने पर और ओहदों पर पहुँचने के बाद इन्होंने गाँव से घरवालियों सहित नाता तोड़ दिया और शहरों में नए घर बसाने में पीछे नहीं रहे। गाँव में तो प्यार-व्यार होता नहीं। सीधे ब्याह होता है जिसमें ब्याह के बाद कर्ज चुकाने होते हैं। इसे एक ढोए हुए दायित्व की तरह लिया जाता है जिसे कम अधिक पूरा करने के बाद वे अपना स्वतंत्र जीवन जीना चाहते हैं। गाँव से कोई अपवाद नहीं करता और शहर में कोई माइंड नहीं करता।

हिमबाला, हिमबाला ही थी... गोरी चिट्टी, किसी पहाड़ से झरने की तरह उतरी हुई। बर्फ-सी सफेद और नर्म हाथ लगाते ही पिघल जाए। पहाड़ में लहराते बादलों की तरह कंधों तक फैले खुले बाल। वैसी सुंदर भी नहीं थी कि आदमी एकदम फ्लैट

हो जाए। सुंदर होना ही सब–कुछ नहीं होता। सुंदर तो पत्नी भी कम नहीं है। सुंदर होने से ज्यादा महत्वपूर्ण है, सुंदर दिखना। सुंदरता एक सलीका होती है। ढंग से कपड़े पहनना, शालीनता से उठना–बैठना, अदा से बात करना आदि कुछ ऐसी बातें हैं जो साधारण आदमी को भी असाधारण बना देती है। शहर में लड़कियाँ सुंदर नहीं है, अपने बालों को सैट करवा कर, फेशियल करवा कर, नाप के कपड़े पहन कर बेहद आकर्षक हो गई हैं। वे चब्बर–चब्बर कर मुँह चलाते हुए नहीं खातीं, बड़े–से–बड़ा कौर डालने पर भी उनकी मुख मुद्रा नहीं बिगड़ती। सुड़प–सुड़प कर आवाज़ करती हुई नहीं पीतीं। पता नहीं चलता कब गिलास मुँह से लगाया और खाली भी कर दिया। वे चलती हैं तो जैसे चिनार का रंगीन पत्ता हवा में तैरता है धीरे... धीरे... धीरे...। बोलती हैं तो हवा गुनगुनाती है। पास से गुजरती हैं तो वातावरण में नरगिस महकती रहती है देर तक।

ऐसे ही धीमे–धीमे कब आकर्षित हुआ सी. वर्मा, कब उसके इर्द–गिर्द भँवरे–सा चक्कर काटने लगा, उसे खुद पता नहीं चला। एक समय ऐसा भी आ गया कि वे साथ–साथ रहने लगे। वर्मा ने एक फ्लैट बुक करवाया था जो रिटायरमेंट के पहले ही उसे अलॉट हो गया। फ्लैट में गृह–प्रवेश पर हिमबाला जो एक बार आई, वहीं की होकर रह गयी। उसका पति कभी था या नहीं, यह कभी नहीं पूछा वर्मा ने। वह कब उसके साथ आकर रहने लगी और वहीं रच–बस गयी, ये पता ही नहीं चला। कभी–कभी हिमबाला का एक भाई आता और किसी–न–किसी रूप में विरोध जता जाता। इस बीच चतुर्भुज ने गाँव रुपये–पैसे भेजने बंद नहीं किए। बीच–बीच में चोरी–छिपे गाँव जा भी आता। भाभी का लड़का जवान हो गया था और कॉलेज में पढ़ रहा था। वही बेटा, जिसमें उसकी आत्मा भाई से होती हुई घुसी थी।

रिटायरमेंट के बाद बीमार रहने लगा वर्मा। पहले शुगर हो गई। फिर बीपी बढ़ने–घटने लगा। एकाएक टाँगें जवाब दे गईं। एक बार उसे अस्पताल में एडमिट होना पड़ा। हिमबाला रोज देखने आती रही। धीरे–धीरे उसका आना कम होते–होते बंद हो गया। वह जैसे पहाड़ों में गायब हो गई।

शुगर लेबल गिर जाने से एक बार अस्पताल में बेहोश–सा हो गया तो लगा, सिरहाने माँ या भाभी जैसी बैठी हैं। माँ तो बहुत पहले ही गुजर गई है, यह भाभी जैसी ही है। स्टूल पर पत्नी जैसी बैठी है। पायताने बेटा जैसा खड़ा है। वह अपनी बैंक की कापियाँ, एफ.डी. और जमापूँजी के बारे में बताना चाहता है। बताना चाहता है कि अपनी ब्याहता पत्नी को उसने पेंशन में नॉमिनी बनाया है... तुम लोगों का दायित्व मैं नहीं निभा पाया... मेरे लिए तुम सब एक न हटने वाली ऑडिट आपत्ति की तरह ही रहे... बैंक लोन की तरह तुम्हारा बकाया मेरे ऊपर रह गया... वह कहना चाहता है।

आज फिर कोई बीच सड़क में खाली लिफाफे–सा छड़प्प से गिरा हुआ था। चारों ओर लोगों की भीड़ जमा थी।

''अरे! यह तो वही है जो हिमबाला के साथ रहता था।'' एक बोला

''कौन!'' दूसरा चौंका।

''अरे! जो ए.जी. ऑफिस में काम करता था।'' एक बोला।

''हिमबाला को तो उसका ज़िद्दी भाई ले गया। इसका सारा सामान भी लेता गया।''

''ए.जी. ऑफिस वाला चतुर्भुज!''

''अच्छा!''

''हाँ, हाँ वही, चतुर्भुज!''

चतुर्भुज के नाम पर वह चौंका। उसे लगा, वह देवदार की ऊँची शाखा पर बैठा है, उस बड़े आकार के पक्षी की तरह... नहीं वह पक्षी ही है। दूसरा पक्षी कहीं उड़ कर दूर चला गया है। उसने उचक कर नीचे देखा। एक आदमी सड़क के बीचों बीच गिरा पड़ा था। उसके चारों ओर भीड़ जमा थी। किसी ने... शायद हिमबाला ने जंगल से उतर कर उस पर सफेद चादर ओढ़ा दी है।

वह जैसे ही भीड़ के ऊपर उड़ा और पुनः शाख पर बैठ गया। देवदार की शाख पकड़ते हुए उसने नीचे देखा और बोला, ''अरे! ये चतुर्भुज नहीं है।... ये कोई और होगा साला!''

वह उड़ा और लिफ्ट वाले नाले के ऊपर चक्कर लगाता हुआ बहुत नीचे उतर गया।

◆◆◆

राधेश्याम बंधु की दो लघु कथाएँ

वह मसीहा

विमला को आज अचानक अपनी बेटी संगीता को देखकर बीस साल पहले मंदसौर प्लेटफार्म पर घटी घटना याद आ गयी और उसका सारा शरीर थरथर कांपने लगा। विमला अपनी बेटी को सीने से लगाती हुई बोली ''बेटी संगीता, मैं जब भी तुमको देखती हूं तो मुझे उस मसीहा की याद आ जाती है, जो तुझे मौत के मुंह से बचा लाया था! वह कितना अच्छा था! उसने अपना नाम तक नहीं बताया!''

विमला ने एक गहरी सांस लेते हुए संगीता से वह सारी घटना एक बार फिर सुना दी! एक बार वह अपने पति और अपनी बेटी संगीता को लेकर रतलाम वाली ट्रेन इंतजार में थी, ट्रेन के आने में अभी दो घंटे की देरी थी। विमला अपना सामान क्लासरूम में रखकर पति और बेटी के साथ प्लेटफार्म पर टहलने लगी। नन्ही संगीता भी साथ में टहल रही थी तथा वह टहलते हुए पटरी पर पहुंच गयी और दूसरे सवारियों की तरह पटरी पार करने लगी। अभी वह पटरी के बीच ही पहुंची थी कि उसे उसी पटरी पर शंटिंग करता हुआ इंजन आता हुआ दिखाई दिया। संगीता घबड़ाकर उसी पटरी पर आगे की ओर भागने लगी। यह देखकर डर के कारण विमला के हाथ-पैर फूल गये। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि वह क्या करें? इंजन नजदीक आता जा रहा था और संगीता भाग रही थी। अचानक चीख-पुकार शुरू हो गयी। विमला का शरीर घबड़ाहट के कारण थरथर कांपने लगा। तभी प्लेटफार्म पर बैठा एक नवयुवक फुर्ती से कूदा और संगीता को पकड़कर तेजी से प्लेटफार्म पर खींच लाया। इंजन धड़धड़ाता हुआ आगे निकल गया। यह तीस सेकण्ड का मार्मिक दृश्य इतना भयानक था कि विमला रो पड़ी और नवयुवक के पैरों पर गिरकर बोली, ''भैया, तुम जो चाहों इनाम मांग लो, मैं देने के लिए तैयार हूं। मैं तुम्हारा यह अहसान कभी नहीं भूल सकती।''

उस निर्भीक और शांत नवयुवक ने जवाब दिया ''बहन जी, लोग लाखों कमाते हैं और गंवा देते हैं। आप भी जो रूपये देगीं, कुछ दिनों में खर्च हो जायेंगे। लेकिन आप सबने जो अपनी दुआओं से मेरी झोली भर दी है वह कभी खाली नहीं होगी।''

विमला नवयुवक की बात सुनकर गद्‌गद्‌ हो गयी और उसकी आंखें खुशी के आंसुओं से छलछला आयी। उसे लगने लगा कि जैसे उसके सामने एक नवयुवक नहीं बल्कि कोई मसीहा उसके सामने खड़ा हो गया हो।

सम्पर्कः बी-3/163, यमुना विहार, दिल्ली-110053

हृदय परिवर्तन

मगध नगर में एक धनी व्यापारी करोड़ीमल रहता था। उसने एक बार बहुत धन कमाया। उसे अपनी सम्पन्नता पर इतना गर्व हुआ कि वह अपने घर के लोगों पर रोब दिखाने लगा और ऐंठने लगा। इनका परिणाम यह हुआ कि उसके लड़के भी उद्‌दण्ड और अहंकारी हो गये। पिता और पुत्रों में भी अब ठनने लगी। घर नरक बन गया।

जब करोड़ीमल परेशान हो गया तो वह अन्त में बुद्ध की शरण में पहुँच गया और बोला, ''भगवन्, मुझे इस नरक से मुक्ति दिलाइये। मैं भिक्षु होना चाहता हूँ।''

बुद्ध ने कुछ सोचकर उत्तर दिया, ''तात्, तुम्हारे लिए भिक्षु बनने का समय अभी नहीं आया है। वैसे जैसा चाहते हो, वैसा तुम स्वयं भिक्षु जैसा आचरण करके घर में ही स्वर्ग के दर्शन कर सकते हो।''

व्यापारी बोला, ''भगवन्, यह कैसे हो सकता है? आप ही कोई रास्ता बताइये।''

बुद्ध ने व्यापारी को ध्यान से देखते हुए कहा, ''तात्, क्या ऐसा नहीं हो सकता कि तुम अपने घरवालों के साथ अहंकार के बजाय विनम्रता का व्यवहार शुरू कर दो। जाओ तुम्हारी मनोकामना पूरी हो।''

करोड़ीमल घर लौट आया और अपने घरवालों से विनम्रता का व्यवहार करने लगा। इससे घर के लोगों का हृदय भी परिवर्तित हो गया और उसे घर में ही सुख-शान्ति तथा स्वर्ग के दर्शन होने लगे।

◆◆◆

मॉरीशस से तीन लघु कथाएँ

रामदेव धुरंधर

कुछ मूल्य शाश्वत

विश्व कवि हेरॉल्ड ने अपने एक महाकाव्य की भूमिका में लिखा है, 'उसने अपने हृदय के एक कोने से सर्वथा अनकहा, अनछुआ कथ्य अपनी कृति के लिए उगाया। हृदय ने उसे झूठ नहीं दिया। सत्य की शक्ति इतनी प्रबल रही कि बिना लिखे निस्तार नहीं था।'

लगता है हेरॉल्ड ने सत्य का नाम इसलिए लिया कि धारणा सत्य की ही हो अन्यथा हवाई कवि कहलाने से कवि भय खाते हैं।

फिलहाल हेरॉल्ड को छोड़कर मैं अपनी कहानी पर आता हूँ। मेरे भी हृदय में यह कहानी है। मेरा पात्र आदिम है। उसे यायावर कहूँगा। वह पेड़ों की छालों से अपना तन ढँकता था। वह चलता जाता कि रात हो जाती थी। उसे धरती पर सोने की आदत थी। बिछावन स्वयं धरती होती थी। ठंड लगे तो आकाश स्वयं चादर बन कर उस पर तनता था। हिंसक जानवर चिंघाड़ते थे। प्राण जाने के खतरे होते थे उसने अनेक बार मृत्यु को प्रत्यक्ष देखा। पर मृत्यु टल जाती थी और वह अपने जीवन से आबाद रह जाता था। वह जान न पाया था कि यायावरी की धुन उसे कब चढ़ी थी। पर यायावरी उसे बहुत प्यारी थी। वह विशाल नदियों के पार गया। पर वह जान न पाता था यह कैसे होता होगा। बस शरीर भीगा होने से उसे अनुभूति होती थी, नदियों का सुवास अपना सौभाग्य बना है। उसने नदियों का उपकार माना पार लगाया तो कहा तक नहीं मेरे सौजन्य से आगे भी यायावरी का तुम्हारा लक्ष्य निश्चित है।

यह उस समय की बात है जब ज्ञान ऋषियों के अधीन होता था। भगवान ने ज्ञान को विश्वव्यापी बनाने के लिए ऋषियों से प्रतिज्ञा करवायी थी। ऋषि यह प्रतिज्ञा निभाते। ऋषियों ने हवा के कंधे पर संदेश का यह भार सौंपा था। पूरे संसार से कह दो ज्ञान से सबका अभिषेक होने ही वाला है। उस आदिम यायावर तक भी तो यह संदेश पहुँचा था। वह सोचता था यह ज्ञान क्या होता है? उत्तर तो उसे न मिलता था, लेकिन जिस ज्ञान से वह अनजान था वह ज्ञान उसमें गहरा समाता चला जा रहा था। संसार के जो प्रारंभिक कवि हुए होंगे आश्चर्य नहीं वह यायावर भी उन कवियों में से एक हो। तभी तो यायावरी के हर उठते कदम से उसे लगता था उसके सोचने, उसके देखने और सुनने के सारे तंतु न जाने कैसी-कैसी अनुभूतियाँ करते थे। यदि वह कवि हो ही गया हो तो एक युगीन पेड़ ने उसे कवि जान कर ही कहा था — मैंने पहली बार एक कवि का साक्षात्कार किया।

युगीन पेड़ ने आगे कहा था — मेरे सीने पर कविता लिख दो मेरे कवि।

यायावर ने अपनी अंगुली से लिखा — मुझे इतना सहेज लो कि जा कर भी रह जाऊँ।

युग बीते।

एक यात्री उस वादी में पहुँचा। उसका नाम भी हेरॉल्ड था। उसने एक युगीन पेड़ पर लिखा देखा — मुझे इतना सहेज लो कि जा कर भी रह जाऊँ।

यह पढ़ने पर उसे आश्चर्यमिश्रित प्रसन्नता हुई। उसने स्वयं में तय कर लिया उसका अगला महाकाव्य इसी पर आधारित होगा। पर यह और बात है कि एक पत्थर पर फिसलने से वहीं उसकी मृत्यु हो गई।

सम्पर्क: रॉयल रोड़, कारोलाइन, बेलएयर, मौरिशस,
ई-मेल: rdhoorundhur@gmail.com

दादी का कंगन

स्कूल जाने वाली छोटी-सी मधुरिमा को माँ-बाप की ओर से जो पैसा मिलता था वह उसे बहुत कम लगता था। उसने एक-दो बार अपने माँ-बाप से कहा भी, लेकिन वे उसे झिड़क कर बोले गरीब घर की बेटी हो जितना मिलता है उन पर सब्र करना सीखो। उसने सब्र तो किया, लेकिन उसे क्रोध आता था। विशेषकर पैसे की ही उसे तृष्णा लगी रहती थी।

वह दस साल की हुई तो मानो उसके भीतर पैसा बढ़-चढ़कर बोलने लगा था। उसने एक दिन साहस करके अपनी दादी का एक कंगन चुराया। उसने लोगों से जो सुना था उसके आधार पर अपना निर्धारण किया गाँव की वृद्ध बासो के यहाँ गहने लेकर जाओ तो इसके बदले वह पैसा देती है। कंगन के बदले पैसा पाने के इरादे से बासो के यहाँ पहुँचने पर उसे पता चला यह तो एक व्यापार है। गहना बंधक हो जाता है और उसे छुड़ाने के लिए सूद देना पड़ता है। मूल औ सूद की परिभाषा समझ जाने पर उसने सौदा स्वीकार कर लिया। पर वह न ही सूद दे पायी और न ही मूल देने में समर्थ हुई। उसे आश्चर्य भी होता था दादी के कंगन का प्रसंग घर में उठता नहीं था।

बड़ी होने पर उसे अच्छे वेतन की नौकरी मिली। वह जान बूझ कर जो भूलती थी अब तीव्रता से उसे याद आया, कंगन तो अब तक छुड़ाया ही नहीं। पहला वेतन मिलते ही वह कंगन छुड़वाने के लिए तत्पर हुई। बासो सूद का जितना तक़ाजा करती वह देने के लिए तैयार हो जाती। उसने बासो के यहाँ जाकर बात की तो उसे विस्यमकारी उत्तर मिला। बासो ने उसी दिन उसकी दादी से कह दिया था। उसे दो सौ दिया था तो उतना ही उसकी दादी से लेकर कंगन उसे लौटा दिया था। आज जब उसकी शादी की बात हो रही है तो उसकी दादी ने वह कंगन तुड़वा कर उसके लिए हार बनवाया है। बासो की यह बात झूठ नहीं थी। दादी ने वाकई उसका हार बनवाया था।

इतने दिनों वह अपनी दादी की गुनहगार रही, लेकिन दादी कभी कुछ नहीं बोली। क्या अब अपनी दादी से कुछ बोलने में कोई तुक रह पायी? उसने घर लौटने पर दादी से अपनी शादी का वह हार दिखाने के लिए कहा। दिखाना क्या, दादी तो उसे हार अपने पास रखने के लिए देती थी, लेकिन वह लेती नहीं थी। आज दादी ने शर्त रखी वह हार अपने पास रखेगी तभी निकाल कर लाएगी। वह हाँ बोली। पर दादी हार लाई तो उसने इतना ही किया, हार को चूम कर दादी से कहा वही रखे। शादी के दिन ही उसे थमाए।

हिम सरोवर

हिम सरोवर में स्नान करने से पापों से निवृत्ति का विश्वास युगों से अक्षुण्ण चला आ रहा था। हिम सरोवर का महात्म्य इसलिए भी बढ़ता था कि उसके तट पर साधु भर्तृहरि की कुटिया थी। साधु भर्तृहरि की उम्र कितनी थी यह किसी को ज्ञात नहीं था। स्वयं साधु भर्तृहरि अपनी उम्र न जानते थे। यहाँ पहाड़ की तराई पर किसी पहले आदमी ने रहने के लिए अपना मकान बनाया हो तब साधु भर्तृहरि यहाँ तपस्वी हुआ करते थे। तब न जाने यहाँ कितनी पीढ़ियों ने मृत्यु को प्राप्त किया और कितनों ने जन्म पाया, पर साधु भर्तृहरि संसार से न गए और लगता था वे जाने वाले नहीं हैं। अब तो साधु भर्तृहरि 'अमर' शब्द से अभिहित होते थे। माना जाता था वे धर्म के कल्पवृक्ष थे। उनके होने से धर्म का साम्राज्य स्वत: विस्तार पाता जाता है। वे न हों तो धर्म का कल्पवृक्ष अपने आप सूख जाएगा।

पर जो न सोचा जाता था वह घटित हुआ। हिम सरोवर में न जाने कैसा असंतुलन आया कि साधु भर्तृहरि की कुटिया का एक कोना दरक गया। अब तो कुटिया में पानी भरता गया और पूरी कुटिया पानी में समा गयी। लोगों ने सोचा साधु भर्तृहरि साधना में लीन न भी हों और उनकी आँखें खुली हों तो भी उन्होंने मृत्यु को स्वीकार कर लिया होगा। कौन अनश्वर होता है जो वे होते। पर लोग कहाँ पतियाते, जिसे अनश्वर जाना उसके मिटने की बेला आ सकती है। जिस हिम सरोवर ने लोगों के साधु भर्तृहरि को लील लिया उस सरोवर की परिभाषा अब ऐसी हुई मानो आदिम युग का कोई बर्बर कोना शेष हो जिसे ठोकरों से निष्कासित करने में लोगों को प्राणपण से लग जाना हो। साधु भर्तृहरि न रहे तो धर्म भी कहाँ रहा। बस एक उजाड़ शेष हो, जहाँ धर्म स्वयं रहने से इन्कार करते हुए बगावत पर उतर आए।

पर साधु भर्तृहरि का शव शमशान में जलाने के बाद लोग वापस लौटे तो हिम सरोवर ने फिर से अपना महात्मय पा लिया। लोगों ने हिम सरोवर में स्नान किया और धर्म से अपने को संपृक्त पाया।

◆◆◆

दो लघु कथाएँ

आत्मा की यात्रा

आभा नौलखा

...आज पंद्रहवाँ दिन है यानि आखिरी दिन, आत्मा को पंद्रह दिन का समय दिया गया था अपने लिए कोख ढूँढने के लिए... पिछली बार की यादों से सतर्क आत्मा अपने लिए ऐसी कोख की तलाश में थी जहाँ कुछ साल आराम से वास कर सके, क्योंकि पिछली बार वह जिस कोख में गयी थी... उस स्त्री की एक दुर्घटना में मृत्यु हो गई और वह जन्म ही न ले सकी और भटकाव पुन: प्रारंभ हो गया... उसे आदेश दिया गया है कि पंद्रह दिन के अंदर कन्या योनि के लिए अपनी मनपसंद कोख की खोज कर ले अन्यथा उसे कहीं भी भेजा जा सकता है... अत: वह इसी खोज में भटक रही पंद्रह दिनों से...।

उसने अपनी सूची में तीनों कोखों को निहित कर रखा था। पर उसमें से एक कोख को एक दूसरी आत्मा ने हथिया लिया, बची दो तो आज दोपहर तक सारी जानकारी ले कर शाम तक प्रवेश ले लेगी...।

सब-कुछ ठीक है... महिला संभ्रांत परिवार की है, कई वर्षों से संतान की आस लगाए हुए है पर गर्भवती होने पर भी उसका गर्भ ढाई-तीन महीने से अधिक रुकता ही न था। आत्मा ने सोचा यह और इसका परिवार वाले खूब ध्यान रखेंगे...

पर हाय री किस्मत... आत्मा ने जैसे ही कोख में प्रवेश लिया तो पता चला कि उस औरत की सास और पति को लड़के की तमन्ना है अत: उसका लिंग परीक्षण कराना चाहते हैं...

''क्या इस बार भी लड़की है... नहीं डॉक्टर, हमें नहीं चाहिए लड़की इसका गर्भपात कर दो।''

... और आत्मा का भटकाव समाप्त नहीं हुआ।

सम्पर्क : 193, द्वितीय तल, पॉकेट 14, सेक्टर 24, रोहिणी, नई दिल्ली-110085, मोबाइल: 8447454255

आश्वस्ति

जया आर्य

श्रद्धा अस्पताल में क्रिस्टोफर की गोद में सिर रखकर लेटी हुई सोच रही थी, ''वाह री किस्मत, जब तक जीने की हिम्मत थी, स्फूर्ति से परिपूर्ण थी, खूबसूरत थी, तब संघर्ष मिला, वियोग मिला, तलाक मिला''

मानसिक द्वंद्व को शांत करने के लिए न्यूयार्क में रहते हुए काउंसिलिंग सेंटर में जाती थी। वहाँ इस तरह के अन्य लोग भी आते थे, वहीं क्रिस्टोफर भी मिले। 15 साल से तलाक की प्रताड़ना से गुजरे। काउंसिलिंग के बाद दोनों को साथ साथ घूमना अच्छा लगता था।

तभी क्रिस्टोफर की ओर से शादी का प्रस्ताव मिला, शादी हुई। श्रद्धा मानो धन्य हो गई। चेहरे पर रौनक आई, हंसी आई खुशी आई।

वक्त ने करवट बदली, श्रद्धा बीमार हो गई, सेहत गिरने लगी। डॉक्टर ने कहा कैंसर है। क्रिस्टोफर ने तन मन धन लगा दिया। श्रद्धा ने अपनी निरीह हालात में कहा ''मेरी इतनी अच्छी तकदीर है, पर प्यार की उम्र इतनी कम क्यों? तुम इतनी देर से क्यों मिले?''

क्रिस्टोफर ने गले लगाते हुए कहा ''देर से कहाँ मिले श्रद्धा, हमारा हर पल अनमोल है। एक एक पल कई-कई वर्ष के बराबर होगा। तुम आत्म विश्वास बनाए रखो।''

श्रद्धा मुस्कराई और अपने प्यार पर नाज़ करते हुए बोली, ''तुम्हारी वाणी में सच है,'' और आश्वस्त होकर क्रिस्टोफर की बांहों में सदा के लिए गुम हो गई।

सम्पर्क : डी-4, शालीमार गार्डन, कोलार रोड, भोपाल (म.प्र.)-462042, मो. 9826066904, ई-मेल: aryajaya@yahoo.com

अंकुश्री की दो लघुकथाएँ

अश्लीलता का सच

''शरीर पर इतने कम कपड़ों में इस तरह सड़क पर चलना कितना शर्मनाक है?''

''..................''

''बेशर्मी की हद तो देखिये! खुली-खुली दोनों बाँहें किस तरह नागिन जैसी लटकी हुई हैं?''

''..................''

''उसके ऊपरी अंग तो आधे से अधिक दिख रहे हैं। और तो और, कमर के नीचे सिर्फ एक बित्ता सा कपड़ा दिखाई दे रहा है। सुडौल जाँघें... कैसी कैसी दिख रही हैं।''

''..................''

सामने से आती एक लड़की के अंग-अंग को वे बारीकी से निहार रहे थे। थोड़ी देर में जब वह पास से गुजर गयी तो एक ने दूजे से कहा, ''छि:-छि:'', ऐसा नंगापन, जिसे देखने वाले की नजर शर्म से गड़ जाये! मुझसे यह नहीं देखा जाता।''

दूसरे ने कहा, ''हाँ बेशर्मी की हद है...''

दोनों जानते थे कि उस लड़की को देखना दोनों का बहुत अच्छा लग रहा था। लेकिन उन्हें निहारते हुए कोई देख न ले... यह सोच कर वे शरमा रहे थे और अपनी शर्म छिपाने के लिए बुदबुदाए जा रहे थे साथ ही चोर निगाहों से कमर मटका कर जाती हुई उस लड़की को पीछे से घूरे जा रहे थे।

◆◆◆

सम्पर्क : सिदरौल, प्रेस कॉलोनी, नामकुम, राँची-834040 (झारखण्ड)
मोबाइल:8809972549,ई-मेल:ankushreehindiwriter@gmail.com

कहानी का सच

कहानी लिखने का शौक अनिल जी को शुरू से था, जो सेवानिवृत्ति के बाद बढ़ गया था। कहानियाँ उन्होंने बहुत लिखीं, मगर डाक विभाग और संपादक के यहाँ फैली कुव्यवस्था के कारण उन्होंने अपनी कहानियाँ कहीं छपने के लिए नहीं भेजी। इसलिए उनकी कोई कहानी छप नहीं पायी थी।

उनके यहाँ जब साहित्य या भाषा में रुचि रखने वाला कोई आता तो मौका देखकर उसे वे अपनी कहानियाँ सुनाते थे। उनकी एक भाभी आयी हुई थीं, वह हिन्दी में स्नातकोत्तर थीं। अनिल जी ने उन्हें अपनी एक कहानी सुनाई, जिसका सारांश था–

''मेरी छोटी सुकन्या जब छत पर कपड़ा पसारने जाती थी तो बगल के लौज से लड़के सीटी बजाने लगते थे। एक दिन दरवाजे पर उसी लौज के एक लड़के ने आकर कहा, मैं आपको बाबूजी बनाना चाहता हूँ, पत्नी ने उसकी जाति जानना चाहा तो पति ने झिड़क दिया, देवताओं की जाति नहीं होती।''

कहानी लंबी थी। जैसे खत्म हुई, अनिल जी की भाभी तेजी से छत पर चली गयीं और जल्दी ही नीचे आ गयीं, ''यहाँ तो कोई लौज दिखाई नहीं दे रहा है?'' उन्होंने आगे पूछा, ''आपकी छोटी बेटी की शादी किस जाति में हुई है?''

''अपनी जाति में।'' अनिल जी ने कहा, ''मैंने दोनों बेटियों की शादी अपनी जाति में की है और इसके लिये मुझे काफी मशक्कत करनी पड़ी है।''

सच और झूठ के पाखण्ड को समझने वाली भाभी कहानी सुनने के बाद उनके यहाँ फिर कभी नहीं आयीं।

◆◆◆

आज़ादी के बाद भी

नीलोत्पल रमेश

एक ऐसा गाँव
जो पलामू के घने जंगलों
और नक्सलियों के गढ़ के बीच
बसा हुआ है
जिसे मनातू कहते हैं?
यह गाँव अस्सी के दशक में
'मैन इटर ऑफ मनातू' के नाम से
चर्चा में आया था
जहाँ रहते थे—
मौआर जगदीश्वर जीत सिंह
जिनका एक सौ पैंसठ गाँवों पर
कभी राज्य था
इन्हीं के महल में
सरकारी रिकार्ड के मुताबिक
छियानवे बंधुआ मजदूर
जो आज़ादी के बहुत दिनों बाद तक
रहा करते थे कभी
जिस मजदूर ने भी काम करने में
किया ना-नुकुर
उसे मौआर ने
चीता के आगे फेंकवा दी
मौआर जगदीश्वर जीत सिंह
जो इस क्षेत्र के मालिक थे
जिनकी धौंस
पूरे क्षेत्र में फैली हुई थी
किसी के मुँह से भी
विरोध के एक भी शब्द निकले
कि उनकी मौत निश्चित थी
उन्होंने पाल रखा था एक चीता
जिसके सामने
विरोधियों को फेंकवा देते थे
'मनातू का आदमखोर' के नाम से
कई पत्रकारों ने
जब इनसे संपर्क किया
सच्चाई जानने के लिए
तो यह अक्सर कहा करते—
'मैं आदमखोर नहीं'
फिर भी
उस क्षेत्र की जनता
इन्हें आदमखोर के रूप में ही
आज भी जानती है
जो पीढ़ियों तक
जानती रहेगी
जिसमें सच्चाई तो है
नहीं तो 'मौआर'
इतने बदनाम नहीं होते
इस इलाके में
कई ऐसे राज्य भी थे
जहाँ यातना के
अजीब-अजीब तरीके
प्रचलन में थे
जिसमें से एक यह थी
कि मज़दूर को नंगा करके
शरीर में गुड़ लपेटवा
कमरे में बंद करवा देते
ताकि वह मज़दूर
तड़प-तड़प कर मर सके
जमींदारों के यंत्रणा के
कई ऐसे किस्से हैं
जो रूह को कँपा देने के लिए
काफी हैं।

◆◆◆

सम्पर्क: पुराना शिव मंदिर, बुध बाजार, गिद्दी-ए जिला-झारीबाग,
झारखण्ड-829108, मोबाइल: 09931117537
ई-मेल: neelotpalramesh@gmail.com

आज़ादी साकार करें

कुसुम वीर

उन वीरों के नाम आज हम
धरती पर जाकर लिख दें
जिनके शोणित से मिली हमें
वह आज़ादी साकार करें

आज़ादी की सालगिरह पर
मन मेरा यह सोच रहा
सत्तर सालों की अवधि में
क्या पाया, क्या बिसर गया

संस्कारों के पात झड़े
मूल्यों की जड़ भी ठूँठी है
संवेदन का घट रीत गया
मानवता सिसकी लेती है

भ्रष्टाचारी आग लगी
और दुराचार की फाँस चुभी
मार-काट निज स्वार्थ द्वेष में
पैसों की बस होड़ मची

जात-पाँत के टुकड़ों में
कब तक हम देश को बाँटेंगे
मानवता के परम धर्म को
कब फिर हम अपनाएंगे

यह मातभूमि है स्वर्ग धरा
आओ इसका सम्मान करें
देश बढ़े आगे अपना
हम आज़ादी साकर करें।

◆◆◆

सम्पर्क: पूर्व निदेशक, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार,
मोबाईल: 9899571158 ई-मेल: kusumvir@gmail.com

जय भारत माता

हरीलाल मिलन

जयति जयति जय भारत माता
चरणों में सागर लहराता

दर्शन, कला, संस्कृति पावन,
विविध नृत्य, कत्थक मनभावन,
वीणा, वंशी औ सितार का,
जन-जन में संगीत प्यार का

जग आदर्शों के गुण गाता,
जयति जयति जन भारत माता।

असम, बंग, गुजरात, हिमाचल,
गंगा-यमुना शुचि श्वेतांचल,
गीता, ग्रन्थ, कुरान, बाइबिल,
पथ अनेक पर एक हैं मंजिल,

सबका मानवता से नाता,
जयति जयति जय भारत माता।

राज्य-राज्य धन-धान्य सुयोजित,
हर प्रदेश कृषि-उद्यम पोषित,
जनपद, ग्राम, नगर, सुषमामय,
खेत-बाग, उपवन उपमामय,

भाग्यवान शुभ दर्शन पाता,
जयति जयति जय भारत माता।

जनती 'आर्यभट्ट'-सा ज्ञाता,
शून्य-दशमलव के सन्धाता,
'जय अखण्डता' मधुर-सन्धि-स्वर,
'सत्यमेव जयते' अधरों पर,

तीन रंग में ध्वज फहराता,
जयति जयति जय भारत माता।

◆◆◆

सम्पर्क: 300ए/2 (प्लाट-16 बी), दुर्गावती सदन, हनुमन्त नगर,
नौबस्ता, कानपुर-208021, मोबाइल: 9935299939

हम भरत-भूमि के सुता, सुवन

डॉ. रामवृक्ष सिंह

हम भरत-भूमि के सुता, सुवन
हमसे धरती, आकाश, गगन
हमसे रक्षित है भरत-भूमि
हमसे पोषित इसका तन-मन।

यूँ हमें शान्ति से स्नेह बड़ा
हो किंतु शत्रु जब द्वार खड़ा
ललकार रहा हो युद्धोन्मत्त
हमने तब-तब है युद्ध लड़ा
जब चढ़े देश पर तुर्क-यवन
अफगान रहे या रहे मुगल
हम लड़े सदा मरते दम तक
मैला न किया माँ का आँचल
उन्नत मस्तक, सीने विशाल
ले खड्ग हाथ या हल-कुदाल
हम जुटे रहे निर्माण-निरत
हम भारत की मिट्टी के लाल
इतिहास पूर्वजों का महान
है किंतु म्लान क्यों वर्तमान
क्या कमी छोड़ दी है हमने
आओ इस पर दें तनिक ध्यान
हम भरत-भूमि के सब सपूत
हों उन्नति के हम अग्रदूत
आओ मिलकर संकल्प करें
वापस पाएँ गौरव प्रभूत
निज गौरव का पथ हो प्रशस्त
जब बढ़ें साथ हम सब समस्त
आओ, साथी, सब भेद भुला
बढ़ चलें परस्पर गहे हस्त।

◆◆◆

सम्पर्क : उप-महाप्रबंधक (हिन्दी), भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक, प्रधान कार्यालय, 15, अशोक मार्ग, लखनऊ-226001, मोबाइल: 7905952129, 9454712299

आज की रात फिर

राजकुमार कुम्भज

आज की रात फिर मैं लिखूँगा क्या?
आज की रात क्यों लिखना चाहिए मुझे?
जबकि आज की रात का अनुवाद नहीं है कोई
जैसे कि किसी भी दु:ख का अनुवाद नहीं होता है
और अगर तकनीकी तौर पर अनुवाद हो भी जाए तो
हर शख्स जिंदगी भर रोता है
यह सच जानते हुए भी
कि दु:ख हाँकता है और सुख खोता है
मैं जाता हूँ उस रात में
जहाँ मुझे कुछ लिखना है जो बेहद जरूरी
आज की रात मुझे क्या लिखना है?
मेरी कोशिश में कीचड़ बहुत है
मेरी कोशिश में अभिव्यक्ति के खतरे बहुत हैं
मेरी कोशिश में प्रलोभन बहुत है
माना कि वक्त हुआ जाता है
कि करूँ कोशिश
और उठाऊँ खतरे भी तमाम
तमाम-तमाम प्रलोभनों को ठुकराते हुए
किंतु सवाल फिर-फिर वही रोटी का
जिसे भूलना चाहता हूँ मैं आज की रात
आज की रात फिर क्या लिखना चाहिए मुझे?
आज की रात फिर मैं लिखूँगा क्या?

◆◆◆

सम्पर्क : 331, जवाहर मार्ग, इन्दौर-452002 (मध्य प्रदेश), फोन: 0731-2543380

मैं गगन पर

विनय सिंघल

मैं गगन पर हेम के पल्लव उछालूँ

तुम पलाशी पर्ण से झूमो सखे

मैं वासंती कोंपलें चुनता रहूँ

तूलिका, केसर की थामो तुम सखे

मैं शिराओं में, तृषा के बीज रोपूँ

गंध के, बादल से सींचो, तुम सखे

मैं, ऋतु की, ताल पर, मोर सा नाचूँ

और सघन, वन्या से बरसो, तुम सखे

मैं तुम्हारे, गात पर, वृन्दा उकेरूँ

ऋतुसौरभ के रंग घोलो, तुम सखे

मैं ललाटों पर, रुचिर, केसर-सा चमकूँ

तुम सुवासित फाग से महको सखे।

◆◆◆

सम्पर्क : के-59, पी.एस. राठी ब्लॉक के निकट, तीस हजारी न्यायालय परिसर, तीस हजारी, दिल्ली-110054, मोबाइल: 9868789660

भाषा तुम

देवेंद्र कुमार शर्मा

व्यक्ति की पहचान हो तुम,

हमारे अस्तित्व की शान हो तुम।

कभी अभिधा, कभी लक्षणा, तो कभी व्यंजना के

स्वरूप का प्रतिबिम्ब हो तुम,

कभी अर्थ तो कभी अनर्थ का परिचायक हो तुम।

जीव की सभी मायाओं का आधार तुमसे ही तो है,

व्यक्ति के अन्य प्राणियों की भाँति ही है

किन्तु आपके कारण ही ब्रह्मांड जगत में

विजय पताका फहरा रहे हैं हम सभी,

व्यक्ति की सबसे बड़ी निधि हो तुम,

हमारे अस्तित्व की शान हो तुम।

भाषा हो तुम।

◆◆◆

सम्पर्क : बी-1971, इंदिरा नगर, लखनऊ-226016 (उत्तर प्रदेश)
ई-मेल: devendra999iitr@gmail.com

नमिता राकेश की दो कविताएँ

एक जीवन ऐसा भी होता है

जब
प्यार और विश्वास मिल जाते हैं
एक जगह
तब भी
एक झीनी सी रेखा रहती है
दोनों के बीच
जैसे एक जगह पर
समुद्र का
नीला और हरा पानी
मिलकर भी रहता है अलग
उसी तरह
हम
साथ रह कर भी साथ नहीं हैं
और
अलग रह कर भी अलग नहीं
मन की
इस सीमा रेखा के आर पार
हम तुम
जी रहे हैं
अपनी अपनी जिंदगी
और
जीते रहेंगे
इसी तरह
एक जीवन ऐसा भी होता है
कितने लोग
जान पाते हैं यह
और
कितने लोग
जी पाते हैं ऐसा जीवन

◆◆◆

ऐसा भी आता है समय

क्या गलत
क्या ठीक
पता नहीं
हर उम्र में
बदल जाती है
सही गलत की परिभाषा
शायद
या
मन खुद ही कर लेता है
परिभाषित
बहुत सी बातें।
संतप्त मन
तपते तपते
शीतल बयार की चाह में
लाँघ जाता है सीमाएँ
खुद के लिए जीने की चाह
जब हो जाती है बलवती
और
जब
नहीं सुनाई पड़ती
परंपराओं की बाँसुरी
संस्कारों की पीपनी
लोकलाज के नगाड़े
तब
सुनाई देती है सिर्फ
दिल की आवाज
जो दबी पड़ी थी कहीं
सिसक रही थी चुपचाप
लेकिन
एक समय के बाद
ऐसा भी आता है समय
कि
बस
सुनाई पड़ती है
सिर्फ दिल की आवाज
उस पल
सही गलत का निर्णय
छूट जाता है
पीछे बहुत पीछे
और
जो होता है उस पल
वही सच होता है
शायद
यही होती है
पूर्णतः स्थिति।

◆◆◆

सम्पर्क : 202 टावर 'एच', बी.पी.टी.पी. पार्क ग्रैंडयोरा, सेक्टर-82,
ग्रेटर फरीदाबाद (हरियाणा) 121004, मो. 9212483258,
ई-मेल: namitarakesh@gmail.com

दो गीत

अपर्णा पाण्डेय

मेह-पुरुष

मेह-पुरुष झरने लगा, बनी नेह जलधार।
तपती धरती को मिला, फिर बादल का प्यार।।

मौलसिरी ने झूमकर किया हर्षमय गान।
करतल ध्वनि अश्वत्थ की, लगा मिलाने तान।।

अमलतास का झूमका, पहन लिया अनमोल।
रक्तिम अधरों से हँसे, गुलमोहर चहुँ ओर।।

प्रिय ने कह दी कान में, ज्यूँ मीठी-सी बात।
सहज लजाई नारी-सी, छुई-मुई सी प्रात।।

अमुवा बैठी कूकती, ये कोयल बेचैन।
विरह अगन कारी भई, चैन नहीं दिन-रैन।।

प्रीति

ज्ञान पुराना प्रीति नई हो।
जीवन की हर रीति नई हो।।

गंगा-जमुना सी पावन बन।
मन को सींचे, नीति नई हो।।

सरगम के सातों स्वर मिलकर।
रचें माधुरी, गीति नई हो।।

जब उतरा शब्दों में वह तो।
उस नटवर की दीठि नई हो।।

कृपा दृष्टि उसकी मिल जाये।
फिर जीवन से, प्रीति नई हो।।

◆◆◆

सम्पर्क : सी-44, गायत्री विहार, बजरंग दल, पुलिस लाइन, कोटा (राजस्थान), ई-मेल: dr.aparnapandey@gmail.com

विजय गीत

डॉ. रमा सिंह

जिसमें मानव दानवता से हो न कभी भयभीत।
आओ मिलकर आज लिखें उस आजादी के गीत।।

हरी-भरी पगडंडी हो बतियाएँ चौपालें सारी
घट लेकर पनघट पर जाएँ घूँघट काढ़े पनिहारी
आँगन-आँगन गूँज उठे नन्हें बच्चों की किलकारी
महका-महका मौसम हो और महक उठे मन की क्यारी
बँधी रहे यूँ ही फूलों से खुशबू की ये प्रीत।
आओ मिलकर...।।

मंदिर-मस्जिद गिरिजाघर हो या अपना गुरुद्वारा हो
सबका हो विश्वास सभी में एक यही बस नारा हो
गंगाजल की इस धरती पर प्यार की पावन धारा हो
ईद-दिवाली गले मिलें ये ही संकल्प हमारा हो
जो बिछुड़े हैं उन्हें मिलें फिर अपने मन के मीत।
आओ मिलकर...।।

ना बम हो ना चाकू हो ना ही आतंकी साया हो
सारा जग ही अपना हो कोई भी नहीं पराया हो
ना शोषित हो, ना शोषण हो, ना कोई सरमाया हो
कोई ऐसा नहीं बचे जिसने यह गीत न गाया हो
झूठ सदा से हारा, होगी सत्यमेव की जीत।
आओ मिलकर...।।

मिल कर नमन करें हम आओ आजादी दीवानी को
हँस कर झूल गए फाँसी पर उन सबकी कुर्बानी को
नाम पता इतिहास न जिनका ऐसे भी बलिदानी को
जीजा, पन्नाबाई, हाड़ा और झाँसी की रानी को
फिर से लाएँ इस धरती पर खोया हुआ अतीत।
आओ मिलकर आज लिखें उस आजादी के गीत।।

◆◆◆

सम्पर्क : 'विश्रान्त', के.एम. 159, कविनगर, गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)
फोन: 0120-2752683, मोबाइल: 9810636121, 9412223973,
ई-मेल: drramasingh@hotmail.com,

सावनः तीन दृश्य

इंद्रा रानी

एक

फिर पुकारे मन मयूरा प्रीत के आँगन में
घिरे हैं यादों के बदरा अबके सावन में

जहर घुली फिजा और नीम का साया तेरा
मीठी निबौरी चख लेंगे अबकी सावन में

उतारेंगे दिल में भी आँखों में आ जाओ
रस्में प्यार की निभायेंगे अबके सावन में

अजब हैं लोग गिराते हैं बेखौफ बिजलियाँ
उड़ा के पतंग दिखायेंगे अबके सावन में

बन गई समुद्र वो बूँद-बूँद चाहत तेरी
जजबात संग बह जायेंगे अबके सावन में

भीगे धरती गगन, मगन झूमे घर द्वार
हिय की प्यास बुझायेंगे अबकी सावन में

अब नहीं जाने देंगे तुम्हें करके बहाना
दे के कसम मनायेंगे अबके सावन में।

दो

सुनने दो जरा/बूँद-बूँद झरता संगीत
मिलके बिछड़ने का/बिछड़के मिलने का
सावन का गीत।

विरह की चौखट/सीलन भरे ताने
अंगना के आँचल/सुधियों के अंगारे
साजन को मनाने का/चाहों का गीत।

भीगे फूल फूल/भीगे हर पात
दरिया से सपने/पपीहे का अनुराग
कसमें वादे निभाने का
मनभावन का गीत।

दीए की लौ और/गर्म साँसों की मार
बरसती रातों में/बिजली की पुकार
हरी घास सा यौवन/हर दिन गदराने का
महक लुटाने का गीत।

मन की बात कही/सखियों ने झूलों में
नाहक दिन बिताये/छोटी बड़ी भूलों में
फिर से दोहरा लें/मनमीत रिझाने का
सावन का गीत।

तीन

अलकें बिखरा दीं आज तेरा नाम लेकर
काली घटाओं के मयूर बन चले आओ।

काम कमान भौंहें तनी हैं ये हिरणी-सी
तुम मधुबन के कस्तूरी मृग बन चले आओ।

पलकों की छाँव में, मैं दो तारे लिए हुए
पवनरथ पर तुम चंद्रमा बन चले आओ।

अधर कमल से ये मोती चमक लुटाते हैं
तुम स्वर्णद्वीप के राजहंस बन चले आओ।

कपोलों के भँवर कहर ढाती हैं बिजलियाँ
रिमझिम सावन की फुहार बन चले आओ।

तन झुका जाता है फूलों भरी डाली सा
शकुंतला के प्रिय दुष्यन्त बन चले आओ।

◆◆◆

सम्पर्क : मोबाइल: 9717856678, ई-मेल: indrarani46@gmail.com

पदचाप

मूल डोगरी: पद्मा सचदेव
हिन्दी अनुवाद: कृष्ण शर्मा

चाँद पूर्णिमा का/जब कभी/मेरे भीतर आ बसता है
मेरे आँगन में आ टिकता है/घर के पिछवाड़े/
डूबने को होता है/तो/बादल का एक आवारा-सा टुकड़ा/
मेरी छत से लिपटे-लिपटे/परछत्ती के नीचे से होकर/
उड़ा जाता है/अपना एक-एक पंख
हर अँधेरे कोने में/वायु के शीतल झोंकों संग
बिजली की लहर जगमगा देता है
मुझे स्मरण होता है तब, कि/जब-जब भी तुम
आते हो मेरे प्रांगण/मेरे मन रूपी महल का
हर बार खुलता है/एक नया दरवाजा
खुलते-खुलते/हिल जाती है उसकी
एक-एक चूल/जब-जब तुम आते हो...
आभास होता है/आज फिर एक दरवाजा खुलेगा
फिर राहगीर रास्ता भूलेगा/बहेगी आज फिर पुरवाई
आएगा वह बिन निमंत्रण/ तो कहना पड़ेगा मुझे:
बिन निमंत्रण जो आते/ नहीं खुलते दरवाजे
उनके लिए.../मेरे मन की अनेक कोठरियाँ
खाली पड़ी हैं/कुछ पर जड़े हैं ताले
और, जंग खाए कपाट/हवा में बज रहे हैं,
शोर कर रहे हैं/पर, नहीं सुनाई दे रही
अभी तक आने वाले की/पदचाप!

सम्पर्क : मूल (डोगरी) पद्मा सचदेव, बी-242, चितरंजन पार्क, नई दिल्ली-110019, मोबाइल: 9811147654
अनुवादक: कृष्ण शर्मा, 152/119, पक्की ढक्की, जम्मू-180001, मोबाइल: 9419286258

भारत है अपनी जान

किशोर श्रीवास्तव

अनेकता में एकता
जिस देश की पहचान
हम उसी वतन के वासी
भारत है अपनी जान

हिंदू हों या मुसलमाँ
हों सिक्ख या इसाई
मजहब जुदा-जुदा हैं
दिल से सभी हैं भाई
मिल-जुल के सदा गायें
सब एकता के गान
हम उस वतन के वासी
भारत है अपनी जान...

मंदिर की घंटियों में
अल्लाह की आवाजें
वाहे गुरु, यीशू के
सबके लिए दरवाजे
हो सबका भला सबके
दिल में यही अरमान
हम उस वतन के वासी
भारत है अपनी जान...

प्रहरी बना हिमालय
गंगा यहाँ इठलाती
कश्मीर की फिजाएँ
दुश्मन को भी लुभातीं
मौसम यहाँ का दिलकश
इसकी बढ़ाएँ शान
हम उस वतन के वासी
भारत है अपनी जान...

अशफाक, तिलक, बिस्मिल
औ' बोस, भगत, गाँधी
गौरव थे इस जमीं के
आए थे बनके आँधी
इनकी बहादुरी से
दुनिया रही हैरान
हम उस वतन के वासी
भारत है अपनी जान...

पद्मिनी, रजिया, जोधा
दुर्गा औ' लक्ष्मीबाई
अपने वतन की नारी
सारे जगत में छाई
करके वही दिखाया
मन में लिया जो ठान
हम उस वतन के वासी
भारत है अपनी जान...

माताएँ दिल की पक्की
मजबूत हैं इरादे
अपने जिगर के टुकड़े
वो देश हित लगा दें
हो कोख चाहे सूनी
भारत का रहे मान
हम उस वतन के वासी
भारत है अपनी जान...

सम्पर्क : 4/321, आर.के. पुरम, नई दिल्ली-110022,
मोबाइल: 8447673015, 9868709348, 9599600313,
ई-मेल: kishor47@live.com

गौ माता अन्नपूर्णा

पूनम माटिया

माँ-सम सुत को पालती, कृषि-कृषक उद्धार
गौ माता अन्नपूर्णा, जीवन का आधार
सूरज की है प्रतिनिधि, वसुओं को दे प्यार
आदित्यों की बहना है, शिव भी नन्दी सवार
मन-वांछित फलदायिनी, धरा पे है उपकार
गौ माता अन्नपूर्णा...

भृगु ने द्विज को दान दिया, कामधेनु है नाम
विष्णु किये गोपाला होकर, गौसेवा के काम
गौ-सेवा तन मन से हो, हो वैतरणी पार
गौ माता अन्नपूर्णा...

मलशोधक, अणुरोधक गोबर, है कमला का वास
गौमूत्र दे आरोग्य, धन्वंतरी करें निवास
ब्रह्मा विराजे कूबड़ में, गौ-स्पर्श है देव-द्वार
गौ माता अन्नपूर्णा...

चंद्रकिरण अवशोषित करती, स्वर्ण-तत्त्व दे रोग-निदान
कर ग्रहण तारों की किरणें, ऊर्जित करती वर्तमान
गौ-घी से हो यदि हवन, हो प्राण-वायु संचार
गौ माता अन्नपूर्णा...

घास-फूस खाकर भी माता, मधुमय दूध का देती दान
कण-कण रक्त का पोषित कर हमको करती है बलवान
शुचि-संवेदन, शील-स्रोत, दुग्ध ज्यों अमृत की धार
गौ माता अन्नपूर्णा...

हरि अनंत, हरि कथा अनंता, सो गौरस-व्याख्यान
करते करते न थकें फिर भी हम अपमान
एक दृष्टि डालें यदि, मिल जाता है सार
गौ माता अन्नपूर्णा...

वध निर्दयी कुछ करते जाते, कटती जाती गाय
कामधेनु है कहलाती, फिर भी बच न पाय
सूफ़ी-संत, सियाने भक्तों की सुनते नहीं गुहार
गौ माता अन्नपूर्णा...

गौवंश अपना विशिष्ट, पश्चिम टिक न पाय
फिर काहे को गऊ अपनी, उपेक्षित-अनाथ रह जाय
दुर्दिन कब तक झेले अब, चहुँ ओर अँधियार
गौ माता अन्नपूर्णा...

आर्तनाद न सुनता कोई, स्वार्थ सदा ललचाय
ज़िंदा में ही फँसा के काँटा, खाल रहे नुचवाय
वैदिक संस्कृति की प्रतीक, अब कहाँ गए संस्कार?
गौ माता अन्नपूर्णा...

भटके गली-गली ये मारी, घर-घर दुत्कारी जाय
घुट-घुट जाएँ साँसे इसकी, पन्नी, प्लास्टिक खाय
ऐंठन लगे पेट/उदर जब इसका, कहाँ मिले उपचार
गौ माता अन्नपूर्णा...

टेम्पों में रेवड़-सी भरकर भेजी, छोड़ी जाए
साफ़-सफ़ाई इन्हें है प्यारी गंदगी तनिक न सुहाय
भव-पालक की प्यारी गैय्या कलियुग में लाचार
गौ माता अन्नपूर्णा...

अंग्रेज़ों की नीति को अब तक समझ न पाय
अर्थतंत्र की रीढ़ को, जाते क्यों चटकाय
अब तो जागो भारतवासी, गैय्या रही पुकार
गौ माता अन्नपूर्णा, जीवन का आधार।

सम्पर्क : 90 बी, पॉकेट 'ए', दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095
मो. 9312624097, ई-मेल: poonam.matia@gmail.com

साथ

कृष्णा कुमारी 'कमसिन'

लोग मतलब में दीवाने हो गये
कुछ जियादा ही सयाने हो गये

हाल उसका मुझसे अब क्या पूछिये
उसको देखे तो जमाने हो गये

हम तो यूँ ही हो गये जल्वानुमा
आप तो सचमुच दीवाने हो गये

मैंने रख दीं सामने मजबूरियाँ
वो ये समझे फिर बहाने हो गये

अस्ल सूरत देखना मुम्किन नहीं
आईने इतने पुराने हो गये

कब से दोहन कर रहा है आदमी
तंग कुदरत के खजाने हो गये

खेलूँ 'कमसिन' किस के साथ
अब तो बच्चे भी सयाने हो गये।

◆◆◆

सम्पर्क : सी-368, तलवंडी, कोटा-324005 (राजस्थान)

ग़ज़ल

सुशील 'साहिल'

न दीपक नहीं चाँदनी पर भरोसा
मैं करके चला हूँ उसी पर भरोसा

चलो पत्थरों को भी अब आज़माएँ
बहुत कर लिया आदमी पर भरोसा

अँधेरा हुआ तब उसे नींद आई
जिसे था बहुत रौशनी पर भरोसा

वो करता रहा इसलिए जुल्म मुझ पर
उसे था मेरी ख़ामोशी पर भरोसा

भरोसे के क़ाबिल तो बस मौत ही है
न कर बेवफ़ा जिंदगी पर भरोसा

मैं ख़ुद पर भरोसा रख सका जब
तो करने लगा हर किसी पर भरोसा

विलासिता से भरपूर थी तेरी महफिल
मैं करके गया सादगी पर भरोसा

◆◆◆

सम्पर्क : ऊर्जा नगर, गोड्डा-814154 (झारखण्ड)
मोबाइल: 9955379103, 977144246,
ई-मेल: sushil.thakur@gmail.com

प्रगति गुप्ता की दो कविताएँ

पंछियों की तरह

कभी पंछियों को भी
करीब से निहारिये...

उनकी चहचहाट में
कुछ उनकी-सी
बातों को महसूस करने
और समझने की कोशिश करिये...

वो उलझते कम
प्यार कुछ
ज्यादा ही करते हैं...

तभी तो-
उनके साथ-साथ
बैठने, चुग्गा बटोरने
या फिर उड़ने में
साम्य-
हम मनुष्यों से कहीं
ज्यादा दिखते हैं...

माना कि-
मनुष्य जितने
उनके दिमाग,
विकसित नहीं हुआ करते हैं,
पर प्रेम से जुड़ने के लिये तो,
दिल ही
काफी हुआ करते हैं...

प्रेम जताने और करने में
हम सब क्यों नहीं
पंछियों-सा बन
साम्य बनाकर चलते हैं...

प्रेम की उड़ानें,
पंछियों-सी ही तो होती हैं,
जो सुदूर गगन को छू,
जाने कैसी-कैसी
अनुभूतियाँ देती हैं...

सिर्फ समर्पण,
एक-दूसरे के लिये रख
क्यों नहीं-
हम भावों के लिये, जिया करते हैं...

हम सब भी, पंछियों के जैसे
क्यों नहीं,
साम्य बनाकर चला करते हैं...

सूरज

हर साँझ
उतरता है सूरज
उस समन्दर तले
जाने कौन-सी,
अगन बुझाने या
मिलने को लहरों से...

लहरें भी
तब उसकी लालिमा लेकर
बेचैन हो उठती हैं...

तभी तो
सूरज को, हर साँझ

खुद में समेट लेने को
सारा-सारा दिन
समन्दर के
एक छोर से, दूजे छोर तक
दौड़-भाग कर,
उसके आने की,
राहें देखा करती हैं...

फिर हर साँझ
उस तप्त, सूरज की अगन को
अपनी बाँहों में समेट
उसे शान्त किया करती है...

पर वो भी
जाने कैसा निर्मोही है,
ठहरता है घनीरात,
लहरों के सान्निध्य तले,
फिर नियमबद्ध-सा
अपनी ही-
फितरत में, निकल पड़ता है
सुबह से मिलने,
उसके भी सान्निध्य तले...

हर रोज यही क्रम
दोहरा, दोहराकर
ये दोनों से, मिला करता है
यह सूरज भी देखो
कैसे-
बँट-बँटकर
दोनों को खुश किया करता हैं...

सम्पर्क : 58, सरदार क्लब स्कीम, जोधपुर (राज.)-342001
मो. 9460248348/7425834878

जीवन एक गुलदस्ता

कमलेश पाण्डे 'पुष्प'

जीवन एक गुलदस्ता है, खिलाएं भांति-भांति के फूल।
रहे प्रफुल्लित मन सदा, हटे राह से अनगिन शूल।।

जीवन एक गणित है, सूत्रों को हल करते जाएं।
मित्रों को जोड़ते चलें, दुश्मनों को सदा घटाएं।।

जीवन एक परीक्षा है, पाठ्यक्रम कभी न बदले।
हल कर लें प्रश्न सभी, सदा समय से पहले।।

जीवन एक बाज़ार है जिसमें सबसे महंगा ज्ञान।
बेच लो जो भी बेचना बस, मत बेचना ईमान।।

जीवन एक रणभूमि है, होते रहते छोटे-बड़े से युद्ध।
खूब लड़ें हारे जीतें, करें न कोई भी मार्ग अवरूद्ध।।

जीवन एक नदी है, मत रोको इसकी बहती धारा।
वो ही पहुंचे मंजिल तक, जिसने संघर्ष पथ स्वीकारा।।

सम्पर्क : 3424/0, नारंग कॉलोनी, त्रिनगर, नई दिल्ली-35, मो. 9873575920

हरदान हर्ष की पाँच लघु-कविताएँ

कतरा कतरा धूप

मैं लड़ता रहा
अनथक
जालिम अँधेरों से
अपने आँगन
कतरा कतरा धूप जुटाता
चेतना के घर कि
उमड़ते रहे शब्द...
फैलती रही
हँसती हुई धूप
सतरंगी जूतियाँ पहने
मेरी कविता में।

कवि

मंथनरत मनुज
उतरा गहरे
गहन सागर में
बूँद-बूँद कर
सहेज रहा अमृत
कि कर सके हस्तगत
एक अमृत-कलश
भावी पीढ़ी को।

काल-भ्रमर

सहज आकर्षण
श्रावण झड़ी में
सरस बेलि
अकड़ झूमे
फल-फूल उतरे
पात पीले
मधु, मद, मोद, मकरंद...
सभी छीजे।
काल-भ्रमर
जेठ आये
बेलि-रस
बेल सूखे।

खजूर का पेड़

मैं
बुढ़ाते बोदू को
देखता हूँ
बचपन के कद में
और, वह है कि
छाबड़ी में
कंडे भरता
झाँकता तक नहीं
मेरी ओर
मुझे गाँव में
खजूर का पेड़
जानकर।

गाँठ

आदमी ने पूछा
पेड़ से
तुम्हारे तन पर गाँठ हैं?
रुआँसे पेड़ ने कहा
कुल्हाड़ी को इंगित कर
हाँ, हैं
सभी गाँठ
तुम्हारी दी हुई।

सम्पर्क : ए-306, महेश नगर, जयपुर-3020105, मोबाइल: 9785807115

खुश रहिए — खुशामद करिए

गोपाल चतुर्वेदी

...''अपने स्वार्थी 'स्व' से ऊपर उठकर संसार में दूसरों की खुशियों का ख्याल रखना हमारे धार्मिक इतिहास की मूल और सनातन परम्परा रही है। दूसरे देशों ने भौतिक वस्तुओं से उदासीन और तटस्थ रहकर जीने की योग्यता और अहिंसात्मक दर्शन को युद्ध करने की कला में न बदलकर काश हमारा अनुकरण किया होता! चाटुकारिता के सार्थक प्रयोग में भी हम उन्हें उपयोगी प्रशिक्षण दे सकते हैं।''

चौबे जी की मान्यता है कि सभ्यता और सामाजिक विकास का सीमित पर परोक्ष परिणाम व्यक्तिगत संबंधों में माधुर्य और प्रसन्नता की बढ़ती मिगदाद है। या तो पड़ोसी बोलेगा नहीं और यदि बोलेगा तो मुस्कराकर। देश भले एक-दूसरे से लड़ने की धमकियाँ देते रहें, व्यक्ति आमने-सामने ताल नहीं ठोकते, जब तक कि किसी दंगल में शिरकत न कर रहे हों। अधिकतर दो परिचित पुरुष मिलने पर साइकिल, स्कूटर के रंग चाल या रखरखाव की प्रशंसा करते हैं और महिलाएँ प्रतिद्वंद्वी साड़ियों के गुण गाती हैं।

इस रोचक वार्तालाप का एक अदद नमूना आपके ज्ञानवर्धन के लिए प्रस्तुत है। श्री सेन और श्री शिवरमन पड़ोसी हैं। रोज एक-दूसरे को दफ्तर जाते देखते हैं। पाँच दिन की ताका-झाँकी के पश्चात् मुलाकात शनिवार को होती है।

सेन साहब फरमाते हैं, ''हैलो सर, क्या हाल है! फाइव डे वीक से शॉपिंग का सहूलियत हो गया। ऐसे आजकल सवेरे-सवेरे दफ्तर जाना 'बार्डर एरिया' की पोस्टिंग जैसा है, फिर भी 'वर्क' तो 'वरशिप' है।''

शिवरमन ने ठिठुरते हुए उनकी बात का समर्थन किया, ''बिल्कुल, मिस्टर सेन! दफ्तर के दिन तो वापस आते-आते आठ-नौ बज जाता है। काम बहोत बढ़ गया है। हम तो रोज 'टैम्पल' जाता था, अब 'सैटरडे-संडे' को ही जाता है। आपने ठीक ही कहा हम लोगों को 'गॉड' तो फाइल में बसा है। आपका नया नैनो आया कि नहीं, बड़ा वंडरफुल गाड़ी है ऐसा सुनते हैं।''

सेन साहब नई गाड़ी वाली बात पचा नहीं पाए, ''कैसी नई गाड़ी? हमने तो 'बुक' ही नहीं करवाया। रोकम ही नहीं है। ऐसे तो हमारा पुराना गाड़ी ही नए के माफिक चलता है।''

इस सुखद समाजिक सम्पर्क के पश्चात दोनों अपने-अपने रास्ते चल पड़े। श्री सेन सोचते हैं, ''शिवरमन कितना बदमाश है, अपनी नई गाड़ी का जिक्र कर हमें नीचा दिखाना चाहता है। हमने भी देखा है कि न्यू इयर पर कितना गिफ्ट आया था और उस पर कहता है कि रोकम नहीं है।'' श्री शिवरमन ने भी मन ही

सम्पर्कः 9/5, राणाप्रताप मार्ग, लखनऊ-226001, मो. 9919999923

मन श्री सेन के व्यक्तित्व का विश्लेषण किया पर दोनों ने शब्दों का प्रयोग भावनाओं को छिपाने की ढाल के बतौर किया, सच की तलवार की तरह से नहीं। विकसित सभ्य समाजों में शिष्टता का यही मापदंड है और सर्वमान्य मानक है।

ऊपर के उदाहरण से जाहिर है कि खुशामद की सबसे बड़ी आमद पारस्परिक व्यवहार से झलकती खुशी है। इसका एक अर्थ ऐसा अहिंसात्मक व्यवहार है कि किसी का दिल न दुखे। झूठ जैसे शब्द आधुनिक संदर्भ और समाज में अर्थहीन हो गए हैं। अब कोई भी झूठ नहीं बोलता। बस सहज और सुखदाई सुख की चर्चा करते हैं। महाभारत में अर्जुन के सारथी श्रीकृष्ण ने भी ऐसा ही सत्य बोला था जब उन्होंने अश्वत्थामा की मृत्यु की घोषणा की और धीरे से जोड़ दिया, पता नहीं आदमी अश्वत्थामा चल बसा या हाथी। खुशामद का जन्म भी सच के ऐसे ही चुने हुए उपयोगी कोणों के सुविधाजनक प्रयोग से होता है। अंधे को लोग मन की खुली आँखों का सूरदास कहते हैं। मोटी महिलाओं को मोटा कहना बदतमीजी है। हाँ, आप चाहें तो स्वस्थ कहकर उनकी प्रशंसा कर सकते हैं।

अपने स्वार्थी 'स्व' से ऊपर उठकर संसार में दूसरों की खुशियाँ का ख्याल रखना हमारे धार्मिक इतिहास की मूल और सनातन परम्परा रही है। दूसरे देशों ने भौतिक वस्तुओं से उदासीन और तटस्थ रहकर जीने की योग्यता और अहिंसात्मक दर्शन को युद्ध करने की कला में न बदलकर काश हमारा अनुकरण किया होता! चाटुकारिता के सार्थक प्रयोग में भी हम उन्हें उपयोगी प्रशिक्षण दे सकते हैं। उल्लेखनीय है कि कई क्षेत्रों में हम एक विकासशील नहीं, बल्कि एक अतिविकसित राष्ट्र की हैसियत रखते हैं। जैसे—आबादी, बेरोजगारी, आज़ादी, तंत्र, ज्योतिष आदि। चापलूसी की जटिल कला में हासिल हुई महारत हमारे विकसित, सुसंस्कृत और सभ्य होने का परिचायक है। दूसरे देश हमें आधुनिक कम्प्यूटर दे सकते हैं, हम उन्हें चाटुकारिता के व्यावहारिक गुर। उन्नत तकनीकी सिर्फ सुख के साधन सुलभ कराती है, हमारा ज्ञान उन्हें सीधे आनंद के लक्ष्य तक पहुँचा देगा।

तवारीख की नजर से देखें तो हमारा इतिहास चापलूसी और चुगलखोरी के सतत और सफल अभ्यास का रहा है। चाटुकारिता के आधार पर चुने समृद्ध वर्ग के सदस्य राजा या बादशाह के दरबारी या मुसाहिब होते थे। साधारण लोग रोजी-रोटी के लिए संघर्ष करते थे। बीरबल जैसे चतुर चाटुकार विशुद्ध बुद्धि की कमाई खाते थे। स्वतंत्रता-संग्राम के पश्चात् खुशामद पर समाजवाद का साया पड़ा और वह महल-हवेलियों से निकल कर झुग्गी-झोंपड़ियों तक आ गई। खुशामद के निष्णात-वर्ग-विशेष का एकाधिकार छिनना स्वाभाविक था। जनसाधारण की चापलूसी की क्रिकेट खेलने लगा।

आज का युग प्रतियोगिता का युग है। चाटुकारिता में पारंगत लोगों की संख्या यकायक बढ़ जाने से स्वाभाविक था कि इस क्षेत्र में प्रतियोगिता भी बढ़ जाए। यहाँ मात्र शिष्ट व्यवहार और खुशामद का अंतर स्पष्ट करना आवश्यक है। नि:स्वार्थ भाव से किसी का मन रखने या उसका दिल न दुखाने को हम केवल सभ्य सामाजिक आदान-प्रदान की संज्ञा दे सकते हैं। नव-विवाहित श्री त्यागी का, अपनी पत्नी द्वारा पकाई, बिना नमक की दाल की, प्रशंसा करना इसी श्रेणी में आएगा। यदि श्री त्यागी दाल की आलोचना करते तो इससे सिर्फ यह सिद्ध होता है कि श्री त्यागी की पढ़ाई केवल किताबी है। उन्होंने पढ़ा तो बहुत होगा पर गुना कुछ भी नहीं है। पर यदि श्री त्यागी अपने अधिकारी के घर बिना नमक की दाल खाएँ और सिहाएँ तो इसे सरलता से चापलूसी कहा जा सकता है। सभ्य आचरण के अंतर्गत वह चुप रहकर परिस्थितियों को झेलने का विकल्प अपना सकते थे।

प्रश्न यह उठता है कि क्या तथ्यों और कम्प्यूटर के युग में खुशामद की दाल गल सकेगी? क्या चापलूसी की प्रतियोगिता अनवरत और निर्बाध रूप से जारी रहेगी? हमें तो लगता है कि तथ्यों की रूखी रोटी, कोई भी समाज, बिना चापलूसी के मक्खन के, नहीं पचा पाएगा। कम्प्यूटर सांख्यिकी विश्लेषण भले ही कर ले, अंतिम निर्णय तो मानव का मन अपनी पसंद के अनुसार करेगा। होना भी यही चाहिए। ऊपर वाले की पूजा-आराधना में भी चढ़ावा चढ़ता है, यदि सफलता की साधना में शब्दों की कारीगरी मदद कर सके तो क्या बुरा है? शायद इसीलिए चौबेजी कहते हैं कि खुशामद तो युग-धर्म है, बस उसकी 'स्टाइल' बदल जाती है। सच तो यह है कि सफलता और चाटुकारिता में चोली-दामन का साथ है। दिक्कत यही है कि इधर चापलूसी की प्रतियोगिता जरा 'टफ' हो गई है।

◆◆◆

बूढ़ा, पी.एफ. और श्रवण कुमार

सुभाष चन्दर

रात भर बसेसर बाबू को नींद नहीं आई। वह बसेसर बाबू जो पैसे को दाँत से पकड़ने में सिद्धहस्त थे, वह जो बस में दो रुपये देने की जगह पाँच किलोमीटर पैदल दफ्तर जाना बेहतर समझते थे, जो चाय को किसी साथी से शेयर करके एक बटा दो पीते थे, जो एक जोड़ी जूते दस-दस साल मरम्मत करके चलाते थे, जिनके पास शादी का पैबंद लगा कोट आज भी था। वे बसेसर बाबू आज दानवीर कर्ण होने पर आमादा थे। फंड के पैसों और पोता-प्रेम में लड़ाई पोता जीत गया था।

सम्पर्क : जी-186-ए, एचआईजी, प्रताप विहार, गाजियाबाद-201009 (उत्तर प्रदेश), मोबाइल: 9311660057, 8826525302

बाबू बसेसर नाथ उर्फ अपर डिवीजन क्लर्क, सिंचाई विभाग, सरकारी दामादी से रिटायर हो गए।

विदाई समारोह के बाद जब वह लौटे तो काफी भरे-भरे से थे। मन में उदासी और जेब में रिटायरमेंट लाभ के चैक ठूँसे हुए थे। किन्तु जब वह घर के अंदर दाखिल हुए तो सारी उदासी काफूर हो गई। बेटे-बहुओं ने वो जबरदस्त स्वागत किया कि मजा जो था, वो वाकई में आ गया।

बेटा नंबर एक ने ब्रीफकेस पकड़ा। नंबर दो ने चश्मा सँभाला और छुटके यानी नंबर तीन ने जूते उतारे। बहुओं ने बाकायदा कुंकुम-रोली लगाकर स्वागत किया। बसेसर धन्य भए। उन्हें लगा जैसे युद्ध जीतकर लौटे हैं।

स्वागत समारोह के बाद बहुओं को नाश्ते-पानी की याद आई। बड़ी बहू फटाफट चाय बनाकर लाई तो छोटी बहू नमकीन-बिस्किट के साथ मिठाई की प्लेट भी। इतना प्रेम देखकर एकबारगी तो बसेसर बाबू तर गए। उनकी इच्छा हुई कि वह आज तो चाय के कप में ही डूबकर मर जाएँ। वैसे भी इतनी खातिरदारी के बाद तो स्वर्ग के सुखों का ही आनंद लिया जा सकता है।

बसेसर बाबू को आज पहली बार लगा कि जरूर उनके चश्मे के नंबर में ही कोई गडबड़ी थी, वरना इतने फरमाबदार बेटे-बहू उन्हें पहले ही दीख जाते। थोड़ी-बहुत ऊँच-नीच तो घर में चलती ही रहती है। ये लोग थोड़े खुराफाती भले ही हों, पर दिल के बुरे नहीं। इस ख्याल ने उनके मन को चकाचक कर दिया। उस रात, इसी खुशफहमी में या बढ़िया पकवानों के प्रभाव से उन्हें नींद बढ़िया आई।

अगले दिन वे आराम से सोकर उठे। नाश्ता-पानी करने के बाद उन्होंने पहला काम ये किया कि साढ़े चार लाख रुपये का चेक बैंक के हवाले कर दिया। इसके बाद बिसना आढ़तिये की दुकान पर काम पाने की गरज़ से गए। बिसना तो कल से ही आने की कह रहा था, पर बसेसर बाबू ने अगले हफ्ते की हामी भरी। वैसे भी उन्हें अभी हफ्ते भर और आज़ादी का मज़ा लेना था।

शाम को वह घर लौटे तो बड़का-छुटका और बहुएँ सभी मुँह में गुब्बारे फुलाए बैठे थे। पूछा तो पहले बड़े के गुब्बारे से हवा निकली। बोला, ''बाबूजी, क्या आपने हमें इतना नालायक समझ रखा है कि हमारे होते हुए आप नौकरी करें। थू... हमारे बेटे होने पर।''

उसके रो पड़ने से पहले ही मँझले ने बात का सूत्र थाम लिया। वह भी रुआँसे स्वर में उवाचा, ''बाबूजी! आपने हमारे लिए इतना किया। हमें पढ़ाया-लिखाया, काबिल बनाया। अब आपकी सेवा करने की हमारी बारी है।''

दोनों के बाद छुटके का नंबर आया। वह कुँआरा बंदा ज्यादा क्या बोलता, सिर्फ इतना ही कह पाया, ''बाबू जी, आप आढ़तिये को मना कर दीजिए। अब आप इस उम्र में नौकरी नहीं करेंगे, वरना मुझे बहुत शर्म आएगी।''

दोनों बहुओं ने भी बेटों के सुर-में-सुर मिलाया। पर इस शर्मिन्दगी के बाद भी उन्होंने आढ़तिए को ना नहीं की। अलबत्ता ऐसे श्रवण कुमारों की पैदाइशी में अपने योगदान देने पर अपनी पीठ जरूर ठोंक ली।

इस घटना के बाद हालात में काफी बढ़िया किस्म के परिवर्तन हुए। दोनों बहुएँ सिर पर पल्लू रखने लगीं। नाश्ते की क्वालिटी और बढ़िया हुई, खाना भी शानदार, रात को मलाईदार दूध। बेटों की खातिरदारी का मजा तो लाजवाब। सोते समय कभी बड़का पैर दबाने आ जाता तो कभी मँझला। दोनों में बाबूजी की सेवा की होड़ लगी थी। एकाध बार तो पैर दबाने के मामले को लेकर उनमें बहस भी हुई। बाबूजी ने मुदित मन से दोनों में समझौता करा दिया। साथ ही फैसला भी दिया कि दोनों भाई बारी-बारी से पितृसेवा का लाभ उठाएँगें। दोनों मन मारकर राजी हुए।

छोटा बेटा अलबत्ता पढ़ाई के कारण पितृसेवा का पुण्य लूटने से वंचित बना रहा।

इस व्यवस्था के तीसरे-चौथे दिन से ही माहौल बदलने लगा। रात को बड़का आता तो बाबूजी के कान में फुसफुसाता, ''बाबूजी, ये मँझला बहुत बदमाश है। ये सेवा करके आपको लूटना चाहता है। पैर-वैर दबाना तो बहाना है, दरअसल इसकी नज़र आपके फंड के पैसों पर है।''

अगले दिन यही रिकॉर्ड मँझला, बड़के की प्रशंसा में बजाता। बाबूजी का यह सब सुनकर माथा तो ठनकता, पर पैरों का दर्द दूर होने के सुख में वह सब भूल जाते। उन्हें यही संतोष था कि दोनों बेटों में आपस में थोड़ा-बहुत अविश्वास भले ही हो, पर वे सेवाभावी और आज्ञापालक बहुत हैं। ऐसा सोचते वे सो जाते। मतलब उन दिनों बेटों के बाप-प्रेम को देखकर बसेसर बाबू काफी निहाल चल रहे थे।

तभी किसी कारण से मँझले को दफ्तर के काम से एक हफ्ते के लिए बाहर जाना पड़ा। बेचारा मन मसोस कर रह गया। आखिर बाप की सेवा का मौका हाथ से जा रहा था। पर बड़के ने उसे दिलासा दे दी कि वह आराम से जाए। उसके हिस्से की भी सेवा कर दी जाएगी। पर मँझला संतुष्ट नहीं हुआ। बाप की सेवा से वैसे भी कौन-सी लायक औलाद संतुष्ट हुई है, जो वह होता? बड़के पर उसे वैसे ही संदेह था कि वह पिताजी की सेवा मन से नहीं करता। सो वह बड़के की तरफ आँखें तरेरता हुआ, दौरे पर चला गया।

पैर-दबावन कार्यक्रम के आठवें दिन यानि मँझले के दौरे के ठीक तीसरे दिन बड़का बहुत उदास दिखा। आज उसके ''पैर दबाओ अभियान'' में जोश न था। न तो उसने बाबूजी की सदैव सेवा करने का दैनिक व्रत दुहराया, न मँझले की बुराइयों की पोटली खोली। बस थके-थके हाथों से अपना काम करता रहा। बाबू बसेसर नाथ थोड़ा चिन्तित हुए। बहुत पूछने पर भी उसने कुछ नहीं बताया। कह दिया, ''कुछ नहीं, मामूली बात है आप चिंतित मत होइए।'' बाबूजी ने उसकी बात मान ली। चिंतित नहीं हुए और गहरी नींद में सो गए।

पर बड़का-उदासी प्रकरण चलता रहा। तीसरे दिन बाबूजी ने जोर देकर पूछा, ''बताओ, क्या बात है? वरना मैं पैर नहीं दबवाऊँगा।'' धमकी काम कर गई।

बड़के ने अपनी उदासी कथा प्रारंभ कर दी। रुआँसे स्वर में बोला, ''बाबूजी, क्या करूँ? चुन्नू की अम्मा ने ज़िंदगी दूभर कर रखी है। रोज ताने मारती है कि कमाई बढ़ाओ। इत्ती-सी तनख्वाह में गुजारा नहीं चलता। बल्कि कल रात को वह पूरी तरह बिफर गई। कहने लगी या तो इन टँटपूँजिया नौकरी को चुन लो या मुझे। मैं तो चली अपने मायके। चुन्नू को भी अपने साथ ले जाऊँगी।''

बाबूजी सन्न रह गए, ''ऐं... बहू ने ऐसा कहा?''

लड़का उत्साहित होकर बोला, ''यही कहा बाबूजी, उस दरोगा की लाडली ने तो और भी जली-कटी सुनाई। एक बार तो मेरे मन में आया कि कह दूँ—हाँ जा और ले जा अपने लाड़ले को भी। फिर याद आया कि आप चुन्नू के बिना कैसे रहेंगे।

आपका तो उसके बिना कतई मन नहीं लगेगा। आपके जी पर जोर पड़ेगा।

बड़के की बात सुनकर बाबूजी पर वाकई बहुत जोर पड़ा। चुन्ने की भोली-भाली शरारतें मन में कौंध गई। उसके बिना तो घर उन्हें सच में ही काटने को दौड़ता। उनका जी कसैला-सा हो आया। इतना कसैला कि एक बार जबरदस्ती पिलाई बियर से भी कई गुना।

वह थूक गटक कर बोले, ''आखिर बहू चाहती क्या है? भले घर की बहू-बेटियाँ कहीं ऐसा करती हैं। उसे यहाँ क्या कमी है? पहनने-ओढ़ने, खाने-पीने की सब चीज की तो मौज है।''

इस पर बड़ा सारी दुनिया का दु:ख अपने चेहरे पर समेट कर बोला, ''बाबूजी, मैंने बहुत समझाया, पर वो नहीं मानती। कहती है— बाप के घर चार-चार नौकर हैं, कार है, कोठी है। यहाँ क्या धरा है। इन मरगिल्लों में आकर मेरे करम फूट गए। सच कहूँ बाबूजी, वह बहुत जलील करती है।'' कहकर बड़का सिसकियाँ भरने का अभ्यास करने लगा। फिर रुलाई की नदी पर किसी तरह बाँध का जुगाड़ करके बोला, ''बताओ बाबूजी, मैं क्या करूँ?'' मैंने एक ठेकेदार से बात तो की है कि वो सप्लाई के काम में मुझे पार्टनर बना ले। साल भर में ही एक-डेढ़ लाख मुनाफे के मिल जाएँगे। पर इस बात में अपने पैसे भी लगाने पड़ेंगे, वो कहाँ से आएँगें?''

बसेसर बाबू पैसों की बात सुनकर कुछ चौंके। फिर भी कलेजे पर पत्थर रखकर बोले, ''कितने चाहिए, थोड़े-बहुत तो शायद मैं भी दे दूँ।''

यह सुनते ही बड़के की आँखों में चमक आ गई। बोला, ''बाबूजी, सिर्फ दो लाख की बात है।''

दो लाख की बात सुनते ही बाबूजी के चेहरे का रंग उड़ गया। बड़के ने भी इस उड़ते रंग को देखा-गुना। सोच-विचारकर गिड़गिड़ाते हुए बोला, ''बाबूजी, मैं आपको कतई तंग नहीं करता। पर क्या करूँ, चुन्नू का सवाल है। मैं जानता हूँ, उसके बिना आपका मन नहीं लगेगा। वह भी आपको बहुत प्यार करता है। अपने नाना के घर जाकर वह बहुत रोएगा। आपको रोज याद किया करेगा...।'' इसके बाद भी बड़के ने बहुत कुछ कहा, पर इतना ध्यान रखा कि किसी भी वाक्य में चुन्नू का नाम छूट न पाए।

बाबूजी ने दुनिया देखी थी। मतलब घर, दफ्तर और आस-पड़ोस देखा था। कुछ देर सोचते रहे दुनियादारी और पोता-प्रेम में जंग चलती रही, कुछ नतीजा नहीं निकला तो उन्होंने बड़के को कल जवाब देने को कह दिया। बड़ा आशा भरी नजरों से उन्हें देखता हुआ चला गया।

रात भर बसेसर बाबू को नींद नहीं आई। वह बसेसर बाबू जो पैसे को दाँत से पकड़ने में सिद्धहस्त थे, वह जो बस में दो रुपये देने की जगह पाँच किलोमीटर पैदल दफ्तर जाना बेहतर समझते थे, जो चाय को किसी साथी से शेयर करके एक बटा दो पीते थे, जो एक जोड़ी जूते दस-दस साल मरम्मत करके चलाते थे, जिनके पास शादी का पैबंद लगा कोट आज भी था। वे बसेसर बाबू आज दानवीर कर्ण होने पर आमादा थे। फंड के पैसों और पोता-प्रेम में लड़ाई पोता जीत गया था।

अगले दिन दोपहर को वह बैंक में थे। चुन्नू की माला जपते हुए उन्होंने काँपते हाथों से पेन निकाला, चेक बुक पर पहले दो लाख लिखे। फिर पन्ना फाड़ा। अबकी डेढ़ लाख लिखे। पर चुन्नू का चेहरा आड़े आ गया। आखिर बोली एक लाख नब्बे हजार पर टूटी। उन्हें थोड़ा संतोष रहा— चलो दस हजार तो अब भी बचा लिए।

शाम को जब उन्होंने लड़के को नोट थमाए तो वह थोड़ा-सा भुनभुनाया भी। आखिर दस हजार का चूना उसे लगा था। उसकी नाराजगी स्वाभाविक थी, पर बसेसर ने उसे मना लिया।

उस रात चुन्नू बसेसर के पास ही सोया।

मँझले को जब लौटकर यह खबर मिली तो वह बहुत नाराज हुआ। बोला, ''मैं न कहता था कि बड़े भैया चालाक हैं। देखो, आपको कैसे ठग लिया। आपकी गाढ़ी कमाई यूँ ही लूट ली। देख लेना वो आपको इसके बदले अधन्नी देंगे।''

पर मँझले की बात गलत निकली। बड़के ने उन्हें अधन्नी भी नहीं दी। बल्कि कुछ दिन बाद वह घर छोड़कर अपने ससुर के घर शिफ्ट हो गया। दरोगा-पुत्री और चुन्नू उसके साथ ही थे।

अगले दिन से सेवा का दायित्व मँझले और उसकी बहू ने सँभाल लिया। इस बार बाबूजी सचेत थे। छाछ भी फूँक-फूँक कर पी रहे थे। कई महीने गुजर गए, पर ऐसी कोई घटना नहीं घटी कि बसेसर बाबू को कोई धक्का लगता। बढ़िया सेवा चल रही थी। दोनों समय बढ़िया चाय-नाश्ता, भोजन, रात को बेनागा दूध के साथ बड़के की बुराई पहुँचती। साथ-ही-साथ चुन्नु जैसा बेटा न होने का मलाल भी।

मँझले और बहू का मलाल एकदम वाजिब था। शादी के पूरे चार साल हो गए थे और एकाध चंगू-मंगू भी पैदा नहीं हुआ। दोनों मियाँ-बीबी इस बात से परेशान रहते थे और इस परेशानी को बाबूजी से रोज शेयर करते थे।

एक दिन मँझले की साली घर आई। बाबूजी के पास भी बैठी। थोड़ी देर की रस्मी बातचीत के बाद बोली, ''आपके कारण मेरी बहन दु:ख पा रही है, आप चाहते तो वो माँ बन जाती।'' बाबूजी भौचक्के रह गए। भला उनके चाहने और बहू के माँ बनने के बीच कौन-सा रिश्ता? उन्होंने इस पहेली को हल करने की नाकाम कोशिश की। हारकर मँझले की साली से ही पूछा। उसने रहस्य खोला कि मँझले की शारीरिक कमी है, इसीलिए उसकी बहन के बच्चे नहीं हो रहे।

बाबूजी पुन: भौचक्के हुए। मँझले में कमजोरी और उन्हें पता नहीं। वे तो कयास लगा रहे थे कि बहू में कुछ कमी होगी, ईश्वर की इच्छा होगी या दोनों मियाँ-बीबी जल्दी बच्चा नहीं चाहते होंगे। उनका मन रखने को बात बनाते होंगे। पर यह मसला तो बड़ा पेचीदा था। भगवान जाने उसका कोई तोड़ भी था या नहीं। किससे पूछने, बेटा-बहू शर्माते। हारकर मँझले की मुँहफट साली से ही पूछने की ठानी। साथ ही पहेली का हल भी पूछा कि उनका इस मामले में क्या संबंध है। वह कैसे बहू के संतानहीन के लिए जिम्मेदार हैं?

मँझले की साली ने एक-एक करके सारी गुत्थियाँ सुलझा दीं। बोली, ''बाबूजी, जीजाजी का ऑपरेशन होगा। ढाई लाख लगेंगे। आप दे देते तो अब तक जीजी के भी चुन्नू-मुन्नू खेल रहे होते, पर आप तो...।''

उसने बात अधूरी छोड़ दी। बेटे की साली नश्तर चुभो कर चली गई, पर बसेसर बाबू की रातों की नींद उड़ा गई। नींद जरूर उड़ी, पर बसेसर बाबू ने संकल्प ले लिया कि फंड की रकम को नहीं उड़ने देंगे। यह संकल्प काफी दिन चला।

पूरे बयालीस दिन तक बढ़िया चाय-नाश्ते, पैर दबावन वगैरह से कुछ माहौल बदला। मौका सही देखकर एक दिन मँझली बहू ने बाबूजी के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया। पाँच मिनट तक सिसकी, दस मिनट तक रोई और बाद में यह निवेदन करती पाई गई कि बाबूजी, मेरे उनका इलाज करा दो। हम आपका पैसा दो-तीन साल में उतार देंगे।

रात को पैर दबावन कार्यक्रम के समय मँझला आया। वह आते ही रोने लगा और रोता ही रहा। इसके बाद तो यह रोज का रूटीन बन गया। दिन में बहू रोती, रात को बेटा। उनके आँसुओं से बाबूजी के कमरे में अच्छी-भली नदी बह गई। बाबूजी को तैरना आता नहीं था, डूबने का पूरा खतरा था। सो उन्होंने खुद को बचाने के लिए ढाई लाख... नहीं... नहीं... दो लाख तीस हजार की नाव पानी में उतार दी। बेटा-बहू अगले दिन ही दिल्ली में ऑपरेशन के सिलसिले में चले गए। जाते-जाते बाबू जी को आश्वासन दे गए कि ऑपरेशन के बाद जो बच्चा होगा, वह बहुत सुंदर और प्यारा होगा, चुन्नू से भी ज्यादा और वह अपने बाबा को छोड़कर भी कभी नहीं जाएगा।

इस घटना के बाद बाबूजी, बेटे-बहू और भावी पोते की आस देखने में जुट गए। पर जाने वाले लौट कर नहीं आये। अलबत्ता उनका सामान जरूर उनके पास चला गया। खुद मँझले का साला आकर साथ ले गया। साथ ही सूचना भी दे गया कि मँझले की पोस्टिंग अब दिल्ली में ही हो गई है। अब वह वहीं रहेगा।

उस रात बाबूजी ने ''होई है वही जो राम रचि राखा'' वाला रिकॉर्ड बजाया। हाथों ने माथे की ढोलक बजाई। सिसिकियों ने तबले पर संगत की। आँसुओं... आँसुओं ने गजब के सुर बजाये मतलब कार्यक्रम चकाचक रहा।

बसेसर बाबू दोनों पुत्रों की कृपा से दु:ख की जड़ यानी मोह-माया से काफी हद तक छुटकारा पा चुके थे। सिर्फ तीस हजार की तुच्छ मोह-माया उनके एकाउंट में जमा थी। यहाँ माया मुक्ति में सबसे छोटे कुँवर काम आए। ये तीस हजार उनके विवाह-संस्कार की भेंट चढ़ गए। अलबत्ता बहू काफी सुंदर, सुशील और खानदानी आई। बसेसर बाबू को खुश होने की बीमारी थी, वे फिर खुश हो गए।

ये खुशी काफी लम्बे समय तक टिकी थी। पूरे साढ़े तीन महीने। इसके बाद पहले चरण वह अपने कमरे से बाहर आकर दालान में शिफ्ट हुए, उसके बाद छत पर और अंतिम चरण में घर से बाहर।

सुना है, आजकल वे मंदिर की सीढ़ियों पर भीख माँगने का धंधा कर रहे हैं। इस धंधे से कुछ पैसा भी उन्होंने इकट्ठा कर लिया है।

पता नहीं, उनके श्रवण कुमारों को इसकी खबर है भी कि नहीं।

◆◆◆

सुशील सिद्धार्थ कृत 'हाशिये का राग'

डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

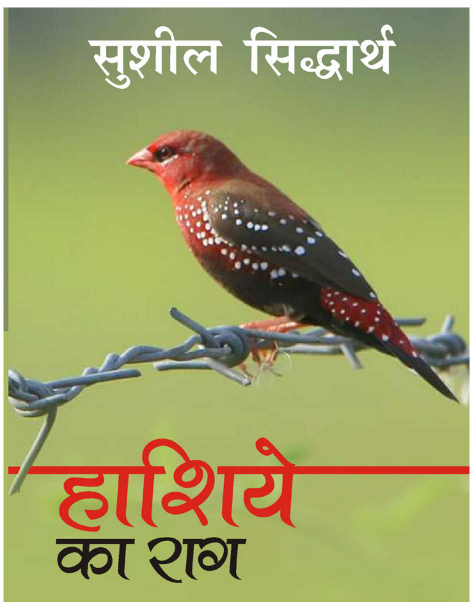

समीक्षित कृति
हाशिये का राग (व्यंग्य संग्रह)
रचनाकार
सुशील सिद्धार्थ
प्रकाशक
किताबघर प्रकाशन, 24, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली-110002
मूल्य: 150 रुपये
प्रकाशन वर्ष: 2017

सम्पर्क: डी-131, रमेश विहार, अलीगढ़-202001 (उत्तर प्रदेश)
मो. 9837004113

साहित्य में किसिम-किसिम के विमर्श प्रचलित हैं। हिंदी व्यंग्य लेखन में भी प्रसंगवश नारी-मुक्ति, दलित-चेतना और आदिवासी अस्मिता को गंभीरतापूर्वक आत्मसात् किया गया है। लेकिन जैसा कि सुशील सिद्धार्थ के व्यंग्य संग्रह 'हाशिये का राग' को पढ़ते हुए बराबर महसूस होता है, लोकतंत्र के अंतर्विरोध और कुरूपताएं उसमें केंद्रस्थ हैं।

इस संग्रह की 'कद की कवायद', 'किसी प्रदेश में कहीं', 'ऐसी आजादी नहीं चाहिए साब', 'हमें व्यक्तिगत नहीं होना है', 'यह मेरा देस ही है क्या', 'नई सुबह : नया चिंतन', 'रास्ता बदलना : एक आख्यान', 'दम है तो पास कर वरना बरदास कर' आदि दर्जनों रचनाओं में स्पष्ट संकेत है कि समता, समानता, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय के लिए प्रतिश्रुत व्यवस्था में ये मूल्य कभी चरितार्थ नहीं हुए। ऐसे में व्यंग्यकार की यह समझ स्वाभाविक है ,'लोकतंत्र! एक तंत्र के भीतर सैकड़ों तंत्र।' और सभी जनविरोधी। इन व्यंग्य रचनाओं में पुलिस, अफसर, माफिया, पूंजीपति आदि अनेक जनविरोधी तत्व निशाने पर हैं, लेकिन सर्वोपरि हैं जनप्रतिनिधियों का कदाचार, उनके द्वारा जन-उत्पीड़न और अपना भरपूर स्वार्थ-साधन। इन्होंने लोकतंत्र को लूटतंत्र बना दिया है, 'पहले चुनाव लूटेंगे। फिर सत्ता लूटेंगे। फिर मीडिया लूटेंगे। फिर देश लूटेंगे।'

पूंजीपतियों का इस लूट में सक्रिय सहयोग है, इसलिए सर्वमान्य सत्य है कि 'महाजन-सेठ-पूंजीधर व्यापारी जिस पर चले वहीं पथ है'। यह मात्र प्रस्ताव नहीं आज का ज्वलंत यथार्थ है कि समाज के हर रास्ते को किसी न किसी पूंजीधर के नाम कर देना चाहिए। भूमंडलीकरण और उदारीकरण के नाम पर पूंजीवादी हितों के संरक्षण पर सुशील सिद्धार्थ का क्षोभ उनके व्यवस्था-विरोधी विजन का खास हिस्सा है। पूंजीवादी-नेता गठजोड़ का सुपरिणाम है कि वांछित आजादी से आम-जन आज तक वंचित है !

'ऐसी आजादी नहीं चाहिए साब' में 'गाय' और 'फल'— दो प्रतीक आजादी की वास्तविकता से अवगत कराते हैं। 'गाय' को दुहने के बाद गली चौराहे पर छोड़ दिया जाता है और फल जिससे हर कोई अपना हिस्सा अपने चाकू से काट लेता है। यह टुकड़ा-टुकड़ा आजादी की क्षेत्रीयता, अलगाववाद, स्वार्थपरता, संप्रदायवाद की जननी है। अवाम की आजादी का मोल नहीं है, मोल आका की मर्जी का है—'आका लोग देश को जिस रास्ते पर ले जा रहे हैं वही रास्ता तुम्हारे लिए है।' सामान्यजन के स्वप्न, स्मृति और संवेदना के लिए यहां स्थान नहीं है। 'आज की जरूरत है कि हम संज्ञाशून्य हो जाएं' इस वाक्य की व्यंजना बहुअर्थी और व्यापक है। कोई सत्ता-परिवर्तन कोई सार्थक बदलाव नहीं लाता—'बहुत दिनों से एक ही कहानी जारी है। बस पात्रों के चेहरे बदल चुके हैं।'

व्यंग्यकार ने भारतीय लोकतंत्र का सारांश निकाला है,'दम है तो पास कर वरना बरदास कर'। 'सब सहते हुए जीना' आम भारतीय की नियति है, जिसका निर्माण पूंजीपतियों, प्रशासनिक अधिकारियों, नेताओं, बुद्धिजीवियों, चैनलों ने मिलकर किया है। सुशील सिद्धार्थ का लोकतंत्र संबंधी समूचा आकलन यथार्थपरक है, लेकिन इसमें कुरूपताओं, विसंगतियों और विडंबनाओं के अंकन से लोकतंत्र का एक ही पक्ष—प्रमुख पक्ष ही सही—उभरा है। मूलनिष्ठा थोड़ी दबी-ढंकी सी है। श्री सिद्धार्थ का व्यंग्य-लेखन 'राग दरबारी' की स्मृति कराता है, वैसा ही चुटीला और बहुमुखी प्रहार-सक्षम।

इन रचनाओं में सुशील सिद्धार्थ संपूर्ण व्यंग्यकार के रूप में उभरते हैं। लोकतांत्रिक अंतर्विरोधों पर प्रहार करने में उनकी बेधक भाषा, पारदर्शी और संप्रेषणीय कहन का हस्तक्षेप सार्थक और सृजनात्मक है। अनुभवों से छनकर आई अनेक व्यंग्योक्तियां सीधे पाठकीय मर्म तक पहुंचती हैं। '...सुख की गीतांजलि गुनगुनानी हो तो संवेदना-सेवा वगैरह को तिलांजलि देनी होगी', 'वह चिंतक ही क्या जिसे सत्ता का सत्तू न मिल सके', 'चतुराई की चमकती तलवार भोलेपन की म्यान में शोभा देती है', 'ऊंची होती आवाजें और उठती अंगुलियां व्यवस्था के लिए अपशकुन मानी जाती है', 'सियासत की फैशन परेड में हर नेता सच की सदरी पहनकर ही प्रवेश करता है', 'सहानुभूति एक भुट्टा है' जैसे अनेक कथन समकालीन यथार्थ से सीधे संवाद के प्रतिफल हैं। कई रचनाओं में शब्द-क्रीड़ा देखने और पढ़ने लायक है। 'कदाचार', 'पुष्टिमार्ग', 'चितचोर', 'जानदार' आदि परिचित शब्द इन रचनाओं में बदले हुए अर्थ के साथ विनोदमयी मुद्रा में डटे हुए हैं। कदाचार 'कद' के आचार सिखाने की प्रयोगशाला का नाम है, किसी तथ्य की पुष्टि कराने आया व्यक्ति पुष्टिमार्गी है, पिटते हुए चित्त हो जाने वाला 'चितचोर' और किसी की जान की परवाह न करने वाली कार 'जानदार' है। 'भूमिका' में दिए मंतव्यों में 'शब्द चयन के तो आप उस्ताद हैं' (शशिकांत सिंह) बहुत सटीक है। 'आरोप की आसावरी', 'कारपोरेट करुणा', 'ईमानदार और पारदर्शी समय', 'आंकड़ों के जंगल', 'तर्कों के इच्छाधारी' जैसे पद न केवल नए हैं अपितु अर्थग्रहण-बिंबग्रहण कराने का दायित्व एक साथ निभाते हैं। सुझावों और प्रस्तावों के रूप में जो 'मंत्रालय' गढ़े गए हैं, वे भी पर्याप्त व्यंजक और अर्थपूर्ण हैं। 'थानेदार भाषा सलाहकार', 'शकुन मंत्रालय', 'बोल सुधारगृह', 'मेमोरी मैनेजमेंट मंत्रालय', 'वीर भोग्या मंत्रालय' आदि व्यंग्य को और अधिक मारक बना सके हैं।

इन रचनाओं की 'कहन' वैविध्यपूर्ण है। कई रचनाओं में कथित 'मनीषी' से संवाद है। 'ऐसी आजादी नहीं चाहिए साब' में फैंटेसी का उपयोग है, 'एक था राजा' में कथारस का स्वाद भी है। कई रचनाओं में व्यंग्य रूपकों के माध्यम से तीक्ष्ण हुआ है। 'प्रेम के पश्चाताप' में प्रेम और गन्ना में अभेद दर्शाते हुए कहा गया है कि गन्ने की तरह प्रेम भी हर स्थिति में बेचने की चीज है। 'शोकसभा के विविध आयाम' में 'शोक' एक वीणा है, जिसके तार न ढीले छोड़े जाते हैं और न बहुत अधिक कसे जाते हैं। विभिन्न कथन-मुद्राओं में सुशील सिद्धर्थ कभी गुदगुदाते हैं, कभी चिकोटी सी काटते हैं तो कभी आलपिन चुभो देते हैं। हर स्थिति में व्यंग्य-विधा के मूलधर्म का निर्वाह होता है—अवमूल्यों-विसंगतियों पर प्रहार। एक रचना में 'मांगे बारिधि देहिं जल' में 'वारिद' की जगह वारिधि का उल्लेख प्रूफ की भूल हो सकती है या व्यंग्यकार ने यहां भी चुटकी ली हो कि खारा समुद्र भी पेयजल वर्तमान 'रामराज्य' में उपलब्ध करा रहा है।

◆◆◆

बाराबंकी में 'खरी खरी' कार्टून प्रदर्शनी

लखनऊ में गीत-संगीत 'आज़ादी के 70 वर्ष' समारोह

अरूण नागर

बाराबंकी (उत्तर प्रदेश) में स्वतंत्रता दिवस सप्ताह में आज़ादी का जश्न मनाते हुए सुमन फाउंडेशन के सौजन्य एवं संस्था की अध्यक्ष श्रीमती सुमन श्रीवास्तव के कुशल संयोजन/संचालन किशोर श्रीवास्तव द्वारा निर्मित और अपने 32वें वर्ष में चल रही जन चेतना कार्टून पोस्टर प्रदर्शनी 'खरी खरी' का भव्य आयोजन किया गया। मुख्य अतिथि थे पूर्व नगरपालिका अध्यक्ष श्री रंजीत बहादुर। इस अवसर पर देश की आज़ादी विषयक बच्चों की एक चित्रकला प्रतियोगिता और 'बेटी पापा की परी' शीर्षक से युवाओं की परिचर्चा प्रतियोगिता का आयोजन भी किया गया। कार्यक्रम का खूबसूरत मंच संचालन श्रीमती अमिता शुक्ला ने किया। इस अवसर पर कार्यक्रम के अन्य अतिथियों और सहयोगियों में सर्वश्री रमेशचंद्र श्रीवास्तव (वरिष्ठ साहित्यकार), रश्मि जायसवाल एवं विनोद कुमार श्रीवास्तव का कार्यक्रम की सफलता में उल्लेखनीय योगदान रहा। संस्था की ओर से सभी विजेता बच्चों और युवाओं को पुरस्कार बाँटे गए। इस अवसर पर अनेक प्रतिभाओं ने अपने गीत भी प्रस्तुत किये।

गीत-संगीत के ज़रिये लखनऊ में मना आज़ादी कर जश्न

स्वतंत्रता दिवस की पूर्व संध्या पर आई.जी. इंटेलिजेंस माननीय श्री आर.के. चतुर्वेदी के मुख्य आतिथ्य एवं सर्वश्री मन्जीत राज (आईएएस), प्रीता श्रीवास्तव (सचिव, राज्य सोशल वेलफेयर बोर्ड), डॉ. अखिलेश निगम (एस पी, विजिलेंस), डॉ. रघुनाथ मिश्र (वरिष्ठ साहित्यकार), संजय तिवारी (संपादक, अपना भारत), मो. अली साहिल (सीए टू आईजी) एवं पवन सिंह चौहान (चेयरमैन, एस आर ग्रुप इंस्टीट्यूट) के विशिष्ट आतिथ्य में लखनऊ में संगीत नाटक अकादमी के वाल्मीकि सभागार में सृजन फाउंडेशन, लखनऊ एवं हम सब साथ-साथ, दिल्ली के संयुक्त तत्वाधान में 'आजादी के 70 वर्ष, गीत संगीत और हर्ष' शीर्षक से देशभक्ति और सामाजिक सरोकारों से भरे पूरे अनूठे कार्यक्रम का आयोजन किया गया।

इस आयोजन में कड़ी प्रतिस्पर्धा के पश्चात देश भर से चुन कर आई दो दर्जन से अधिक बाल, युवा और वरिष्ठ प्रतिभाओं ने गीत, संगीत, नृत्य और अभिनय की ऐसी छटायें बिखेरी कि दर्शक/श्रोता अंत तक उसमें डूबते-उतरते रहे।

अतिथियों के स्वागत एवं दीप प्रज्ज्वलन से शुरू हुए कार्यक्रम का समापन सभी चयनित कलाकारों को बाल, युवा एवं वरिष्ठ प्रतिभा सम्मान से नवाजे जाने के साथ ही समाप्त हुआ। मंच संचालन टीवी चैनल न्यूज़ एंकर दिल्ली की कु. विपनेश माथुर एवं केन्द्र सरकार अधिकारी तथा कलाकर्मी श्री किशोर श्रीवास्तव ने संयुक्त रूप से किया। अंत में फाउंडेशन के अध्यक्ष श्री अमित सक्सेना ने सभी अतिथियों, कलाकारों और श्रोताओं के प्रति अपना आभार व्यक्त किया।

डलहौजी में 'व्यंग्य-यात्रा' का दूसरा शिविर

आशा कुंद्रा

इस बार डलहौजी में आयोजित 'व्यंग्य शिविर' किसी अच्छी रचना को पढ़ने-सुनने और जानने का अंतरंग सुख दे गया। यह सुख एक बड़े परिवार के बीच प्रखर, आत्मीय, संवेदनशील, बतरसी एवं लड़ते-झगड़ते अब्बा कर लेने वाले संवाद का सुख था। तीन सत्रों में 'व्यंग्य की जरूरतों' एंव व्यंग्य कविता का वर्तमान' से जुड़ी चिंताएं एवं वैचारिक बहसें, तथा गद्य और व्यंग्य पाठ थे। इसमें गुलाबी सर्दी के साथ सुबह के उगते सूर्य संग चाय के ढाबे पर चुहलाते स्वर थे। 'बादल को घिरते' देखते हुए उसमें किसी संग खो जाने का अहसास था। सादा भोजन के बीच उच्च विचार थे। शाम के समय कमरों से गूंजते अट्टहास थे।

दिविक रमेश, सूरज प्रकाश, गोविंद शर्मा, विवेक मिश्र, सुधीर शर्मा, जैसे अन्य विधाओं के महत्वपूर्ण रचनाकारों ने व्यंग्य को व्यापक अर्थ दिए। गिरीश पंकज, रमेश सैनी, दिलीप तैतरबे, कृष्ण कुमार आशु, संजीव निगम, रमाकांत ताम्रकर, रमेश तिवारी आदि व्यंग्यकारों ने अपने चिंतन से शिविर को समृद्ध किया। मनमोहन बावा, सैली बलजीत, प्रकाश बादल, अशोक दर्द आदि ने हिमाचल की आत्मीयता एवं अपनी रचनात्मकता से आयोजन को अपना महत्वपूर्ण साथ दिया। अरुण शहरिया, गोपी बूबना, दीपक सरीन, सुरेंद्र सुंदरम, श्रेया, श्रद्धा आदि ने अपनी युवा सोच से व्यंग्य में एक अलग रंग भरा।

जिस तरह से हिमाचल के प्रसिद्ध समाचार पत्रों ने इस शिविर को महत्वपूर्ण स्पेस दी, उससे यह शिविर मेहर होटल से हिमाचल के दूर दराज में व्यंग्य के शुभचिंतकों तक पहुंच गया। व्यंग्य सक्रिय हो घाटियों में गूंजने लगा। प्रकाश बादल की प्रखर पत्रकारी सोच ने इसे व्यापक संदर्भों से जोड़ दिया। प्रकाश बादल ने जब अपनी प्रतिक्रिया दी तो लगा हिमाचल बोल रहा है। बादल ने टुकड़ों में लिखा - "...अपनी आत्मीयता और मेलजोल के लिए पहचाने जाने वाले वरिष्ठ साहित्यकार सूरज प्रकाश ... मुझे प्रेम जनमजेय से मिलकर ऐसा लगता है जैसे कड़ी धूप में किसी साएदार वृक्ष से मिलना होता है व्यंग्य लिखने का रास्ता अपनाए हुए यह शक्स अपनी इन्हीं ठिठोलियों के पीछे अपना एक गंभीर रूप छिपाए हुए है। ... डलहौजी में जिस तैयारी से विवेक मिश्र अपनी बात व्यंग्य, कविता पर कर रहे थे उससे उनकी साहित्य के प्रति कर्मठता का पता चल रहा था, वहीं गोष्ठी के बाद उनकी सहजता से ऐसा प्रतीत होता था कि ये एक साधारण व्यक्ति है जो सिर्फ प्यार के सिवा कुछ नहीं जानता ...संजीव निगम के मुखारविंद से नपे तुले, थोड़े से शब्दों के ऐसे पुल बन रहे थे जो न केवल गोष्ठी के चरम तक पहूँचा रहे थे बल्कि निगम के बहुत भीतर उस जगह तक पहुंचा दे रहे थे, जहाँ पर उनका शब्द शिल्पी उनके लिए शब्द घड़ता है।"

सम्पर्कः 73 साक्षरा अपार्टमेंटस, ए-3, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063, मो. 9811154440

समन्वयक लालित्य ललित के सुप्रयत्नों, मनमोहन बावा के अप्रतिम सहयोग एवं व्यंग्य के सहयात्रियों की सार्थक उपस्थिति ने इसे अवस्मिरणीय बना दिया। आशा कुंद्रा के प्रबंधन ने कठिन दिखते आयोजन को अपने शांत मन से सरल कर दिया।

'व्यंग्य यात्रा' को प्राणवान करने के लिए उससे निरंतर जुड़ रहे सहयात्री इसकी ताकत हैं। इसी ताकत के बल पर 'व्यंग्य यात्रा' अपने मिशन के लिए कटिबद्ध है। 'व्यंग्य यात्रा' एक खुला मंच है जिसकी दैहिक सीमाएं तो हो सकती है परंतु मानसिक सीमा नहीं हैं। दैहिक सीमा के कारण खुला मंच कुछ को मंच देता -सा नहीं लग सकता है पर उसकी सोच सीमित नहीं है। विचार और योजनाएं असीम हैं पर साधन सीमित है। इसके बावजूद इसके सहयात्री और उनका जोश इसकी सबसे बड़ी ताकत है।

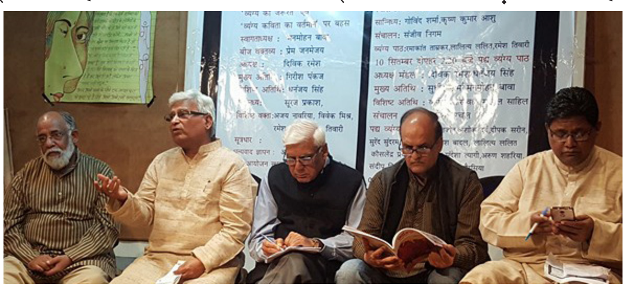

◆◆◆

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी स्मृति गोष्ठी

20 मई, 2017 को राइटर्स एंड जर्नलिस्ट एसोसिएशन, दिल्ली तथा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी राष्ट्रीय स्मारक समिति, रायबरेली के संयुक्त तत्वाधान में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की 153वीं जयंती के उपलक्ष्य में दिल्ली के गांधी शांति प्रतिष्ठान में एक स्मृति-गोष्ठी और सम्मान-समारोह का आयोजन किया गया। समारोह का प्रारंभ आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी राष्ट्रीय स्मारक समिति के संयोजक गौरव अवस्थी द्वारा संस्था व आयोजन की विस्तृत रूपरेखा-प्रस्तुति से हुआ। मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित केंद्रीय हिंदी संस्थान के उपाध्यक्ष डॉ. कमल किशोर गोयनका ने कहा, ***''प्रेमचंद के निर्माण में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का बहुत बड़ा योगदान था। प्रेमचंद ने उन पर दो संस्मरण भी लिखे। प्रेमचंद ने पंचों में 'ईश्वर' शीर्षक के साथ जो कहानी आचार्य द्विवेदी को प्रकाशित करने के लिए भेजी थी, वह 'पंच परमेश्वर' नाम से छपी। द्विवेदी जी ने नाम बदलकर कहानी में जो चमक पैदा की, वह अद्‌भुत थी।''***

समारोह के अंतर्गत सप्रे संग्रहालय, भोपाल के संस्थापक पद्‌मश्री विजयदत्त श्रीधर को *'आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी स्मृति राष्ट्रीय पुरस्कार'*, हापुड़ के सामाजिक कार्यकर्ता श्री कर्मवीर को *'मामा बालेश्वर स्मृति पुरस्कार'*, दिल्ली के वरिष्ठ पत्रकार पंकज चतुर्वेदी को *'अनुपम मिश्र स्मृति पर्यावरण पुरस्कार'*, दैनिक जागरण के विशेष संवाददाता संजय सिंह करीब को *'अरविंद घोष स्मृति पुरस्कार'*, सुश्री प्रतिभा ज्योति को *'कंचन स्मृति पुरस्कार'*, श्री विवेक शुक्ल को *'देवेन्द्र उपाध्याय स्मृति सम्मान'* और अवधी के प्रख्यात कवि आचार्य सूर्यप्रकाश शर्मा 'निशिहर' को *'समई काका सम्मान'* से सम्मानित किया गया। भावी योजनाओं पर प्रकाश डालने के साथ समारोह का संचालन राइटर्स एंड जर्नलिस्ट एसोसिएशन दिल्ली के अध्यक्ष श्री अरविंद कुमार सिंह ने किया तथा धन्यवाद-ज्ञापन राइटर्स एंड जर्नलिस्ट एसोसिएशन के महासचिव श्री शिवेंद्र प्रकाश द्विवेदी ने किया।

साभार: विश्व हिंदी समाचार

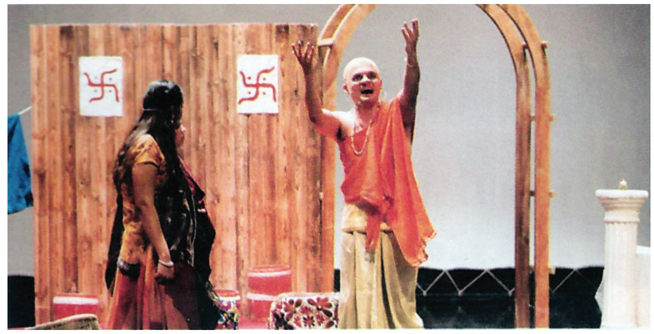

शंघाई में पहली बार हिंदी नाटक का मंचन

22 अप्रैल, 2017 को शंघाई में प्रसिद्ध नाटककार मोहन राकेश की कृति *'आषाढ़ का एक दिन'* का सफल मंचन किया गया। आधुनिक शंघाई के इतिहास में यह पहला अवसर था, जब किसी हिंदी नाटक का मंचन किया गया। अपनी मिट्टी और संस्कारों से प्रेम करने वालों के साथ हिंदी साहित्य और रंगमंच में रुचि रखने वालों के लिए शंघाई रंगमंच की ओर से यह पहली प्रस्तुति थी। मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित शंघाई कौंसलवास प्रमुख, श्री प्रकाश गुप्ता ने कलाकारों की तारीफ करते हुए कहा कि काफी साल पहले उन्होंने इस कृति को पढ़ा जरूर था। लेकिन वर्षों बाद शंघाई में इसका मंचन देखकर मन हर्षित हो उठा। नाटक के निर्देशक एवं कालिदास की भूमिका निभानेवाले श्री मुकेश शर्मा ने कहा, ***गैर हिंदी प्रदेश के लोग, जिन्होंने कभी रंगमंच के लिए काम नहीं किया, वैसे कलाकारों के साथ संगीत नाटक अकादमी द्वारा पुरस्कृत नाटक के मंचन का फैसला उनके लिए सबसे बड़ी चुनौती थी। टीम के ज्यादातर सदस्य विभिन्न निजी कंपनियों में बड़ी जिम्मेदारी निभा रहे हैं, ऐसे में सप्ताह के दिनों में उनके साथ सिर्फ स्काइप पर ही अभ्यास संभव हो पाया।''***
नाटक में प्रियंका जोशी, अमित वायकर, अमित मेघणे, धनश्री एवं अर्पणा वायकर ने क्रमानुसार मल्लिका, मातुल, आर्य विलोम, अंबिका व राज वधू की भूमिका निभाते हुए दर्शकों को मंत्रमुग्ध किया। सहयोगियों के साथ वितरण तथा व्यवस्था की जिम्मेदारी निभा रही श्रीमती बीना वाघले ने कहा कि गैर हिंदी दर्शकों को हिंदी रंगमंच के लिए रंगशाला तक खींचकर लाना चुनौतीपूर्ण कार्य था, लेकिन सबके मिले-जुले प्रयास से यह कार्य भी सरल हो गया। इस अवसर पर शंघाई रंगमंच अकादमी (विदेश रंगमंच विभाग) के उपाध्यक्ष, प्रो. यूअ, भारतीय संघ, शंघाई के प्रमुख श्री राज खोसा, श्री तुषार भानुशाली तथा श्रीमती अनीता शर्मा सहित कई हिंदी व अहिंदी-भाषी लोग उपस्थित थे। अंत में, चीन की राजधानी बीजिंग एवं व्यावसायिक शहर ग्वांगजौ से इसके मंचन का आग्रह, हिंदी रंगमंच के लिए सुनहरे सफर का आगाज है।

साभार: हिंदी सी.आर.आई.सी.एन

मॉरीशस में राष्ट्रीय हिंदी नाटक समारोह 2017

सन् 2017 के मई-जून में कला एवं संस्कृति मंत्रालय, मॉरीशस द्वारा हिंदी नाटक समारोह का भव्य आयोजन किया गया। इस वर्ष नाटक समारोह 13 दिनों तक चला। प्रतियोगिता हेतु कुल 25 आवेदन प्राप्त हुए और प्रथम चरण के लिए 22 नाटक प्रस्तुत किए गए। राष्ट्रीय नाटक प्रतियोगिता में 12 कॉलिज, 1 प्राथमिक स्कूल तथा 9 क्लबों ने भाग लिया।

प्रथम चरण रिव्येर जी रौंपार युवा केंद्र, मोंटाय ब्लाँश युवा केंद्र और सेर्ज़ कोंस्ताँतें थिएटर वाक्वा में संपन्न हुआ।

29 जून 2017 को वाक्वा के सेर्ज़ कोंस्ताँतें थिएटर में प्रतियोगिता के अंतिम चरण का आयोजन किया गया। अंतिम चरण के तीन श्रेष्ठ नाटक चुने गए – *'अशोक की चिंता'* (वाक्वा रंगभूमि कला मंदिर), *'भंवर'* (नाट्य दीप, वाले दे प्रेत) एवं *'सबसे बड़ा रुपय्या'* (प्रो. वासुदेव विष्णुदयाल कॉलिज, फ़्लाक)। जूरी के सदस्यों में श्री सूर्यदेव सिबोरत, श्री धननारायण जीऊत और श्री धनराज शम्भु थे।

अंतिम चरण में *'अशोक की चिंता'* नाटक के लिए **वाक्वा रंगभूमि कला मंदिर** को **प्रथम पुरस्कार**, *'सबसे बड़ा रुपय्या'* नाटक के लिए **प्रो. वासुदेव विष्णुदयाल कॉलिज को द्वितीय** एवं *'भंवर'* नाटक के लिए **नाट्य दीप** को **तृतीय पुरस्कार** प्राप्त हुए। साथ ही, *'अशोक की चिंता'* नाटक के लिए **श्री राजेश्वर सितोहल** को *'श्रेष्ठ निर्देशक'*, **डॉ. कुमारदत्त गुदारी** को *'श्रेष्ठ अभिनेता'* एवं *'श्रेष्ठ स्थानीय लेखक'*, **देवन्ती सितोहल** को *'बेस्ट सेटिंग'* तथा *'सबसे बड़ा रुपय्या'* नाटक के लिए **ऋषिका जद्दू** को *'श्रेष्ठ अभिनेत्री'* और **नोट्र डाम कॉलिज, क्यूर्पिप** को *'बेस्ट बिगिनर ग्रुप'* पुरस्कार प्राप्त हुए।

राष्ट्रीय हिंदी नाटक समारोह 2017 के लिए विश्व हिंदी सचिवालय तथा इंडिपेंडेंट कमिशन एगेन्स्ट करप्शन ने भ्रष्टाचार के विरूद्ध मंचित नाटक को विशेष पुरस्कृत किया। इसके विजेता काँ दे मास्क पावे के *'नवरंग कला'* रहे। दूसरी ओर विश्व हिंदी सचिवालय ने 3 श्रेष्ठ नाटकों *'अशोक की चिंता', सबसे बड़ा रुपय्या'* तथा *'भंवर'* को क्रमशः 5000, 3000 और 2000 के नकद पुरस्कार प्रदान किए।

यह समारोह एक प्रतियोगिता के रूप में मनाया जाता है, जिसमें राष्ट्रीय स्तर पर प्राथमिक एवं माध्यमिक स्कूल, धार्मिक संस्थाएँ, क्लब आदि भाग लेते हैं। प्रतिभागिता के लिए उम्र की कोई सीमा निर्धारित नहीं की जाती। इस समारोह का मुख्य उद्देश्य नाटक मंचन द्वारा हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार करना, नाट्य-कला को बढ़ावा देना, युवकों को मंच पर अभिव्यक्ति करने का सुअवसर प्रदान करना तथा हिंदी नाट्य साहित्य और रंगमंच को जीवित रखना है।

हिंदू गर्ल्स कॉलेज, मॉरीशस में हिंदी दिवस

5 मई, 2017 हिंदू गर्ल्स कॉलेज, मॉरीशस में हिंदी दिवस भव्य रूप से मनाया गया। हिंदू गर्ल्स कॉलेज सन् 1945 में 'वैदिक विद्यालय' के नाम से स्थापित हुआ था। इसका उद्देश्य विशेष रूप से लड़कियों को विद्या प्रदान करना है और हिंदू संस्कृति को बढ़ावा देना है। हिंदी भाषा का पठन-पाठन करना तथा अनुशासन को कायम रखना इस कॉलिज की प्राथमिकताएँ हैं। इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति हेतु कॉलिज कई वर्षों से हिंदी दिवस मनाता आ रहा है। इस वर्ष दीप-प्रज्वलन एवं सरस्वती-वन्दना के साथ कार्यक्रम का श्रीगणेश हुआ। समारोह की मुख्य अतिथि भारतीय उच्चायोग की द्वितीय सचिव डॉ. नूतन पाण्डेय रहीं। डॉ. पाण्डेय ने *'हिंदी और नौकरी की संभावना'* विषय पर वक्तव्य देते हुए छात्राओं को हिंदी सीखने की प्रेरणा दी। कार्यक्रम के आरंभ में हिंदी विभागाध्यक्षा, श्रीमती रामभरत ने हिंदी दिवस के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला।

इस अवसर पर महात्मा गांधी संस्थान के हिंदी विभागाध्यक्ष व वरिष्ठ व्याख्याता श्री गंगधरसिंह सुखलाल ने हिंदी भाषा पढ़ने की आवश्यकता पर बल दिया। समारोह के दौरान हिंदी दिवस से पूर्व आयोजित भाषण-प्रतियोगिता के विजेताओ ने अपना प्रस्तुतीकरण किया। इस अवसर पर छात्राओं द्वारा रामचरितमानस-गायन, पारंपरिक वैवाहिक लोक गीत, कविता व कहानी-पाठ, नाटक तथा काव्य-रस पर आधारित सांस्कृतिक कार्यक्रम की प्रस्तुति हुई। इस अवसर पर विश्व हिंदी सचिवालय के महासचिव, प्रो. विनोद कुमार मिश्र और महात्मा गांधी माध्यमिक पाठशाला, सेंट जॉज़ेफ कॉलिज तथा रॉयल कॉलिज के छात्र और हिंदू गर्ल्स कॉलिज के नवें ग्रेड की छात्राओं के अभिभावक भी उपस्थित थे।

साभार: विश्व हिंदी समाचार

ब्रिटेन मे हिंदी ज्ञान प्रतियोगिता

6 मई, 2017 को ब्रिटेन में भारतीय उच्चायोग, लंदन के सहयोग से यू.के. हिंदी समिति द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी ज्ञान प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। दिव्या माथुर विशेष अतिथि के रूप में उपस्थित थीं। इस आयोजन को दो वर्गों में बाँटा गया था। एक लिखित परीक्षा हुई तथा दूसरे में भाषण-प्रतियोगिता हुई। कार्यक्रम के संचालक यू.के. हिंदी समिति के संरक्षक, डॉ. पद्मेश गुप्त ने कहा कि इस प्रतियोगिता का उद्देश्य यह है कि विद्यार्थी न केवल हिंदी पढ़ें, बल्कि ठीक ढंग से बातचीत और उच्चारण भी कर सकें। भाषण-प्रतियोगिता में 5 से 40 वर्ष की आयु तक के छात्रों ने भाग लिया, जिनके विषय थे-'बंदर क्या जाने अदरक का स्वाद', 'करेला नीम चढ़ा', 'लड़का अच्छा या लड़की', 'यदि मैं एक दिन के लिए माँ/पिता होती/होता' आदि। कार्यक्रम का संचालन एवं संयोजन श्रीमती सुरेखा चोफ़्ला ने किया।

बुडापेस्ट में 7वां अंतरराष्ट्रीय साहित्य एवं संस्कृति सम्मेलन

7 जून, 2017 को अमृता शेरगिल कला केंद्र, आई.सी.सी.आर. के सभागार, हंगरी, बुडापेस्ट में विश्व हिंदी साहित्य परिषद्, भारत के तत्वाधान में 7वाँ अंतरराष्ट्रीय साहित्य एवं संस्कृति सम्मेलन का आयोजन किया गया।

प्रथम सत्र का उद्घाटन मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित हंगरी में भारतीय राजदूत, महामहिम श्री राहुल छाबड़ा द्वारा किया गया। सत्र के अध्यक्ष डॉ. हरीश नवल ने अध्यक्षीय उद्बोधन में हिंदी की वैश्विक स्थिति पर अपने विचार प्रस्तुत किए। इस अवसर पर एल्ले विश्वविद्यालय से हंगरी की प्रसिद्ध हिंदी विद्वान डॉ. मरिया नेज्येशी, विख्यात व्यंग्यकार डॉ. हरीश नवल, वरिष्ठ शिक्षाविद् एवं कवि डॉ. लल्लन प्रसाद, मॉरीशस में भारतीय उच्चायोग की द्वितीय सचिव डॉ. नूतन पाण्डेय, अमृता शेरगिल कला केंद्र, आई.सी.सी.आर, भारतीय दूतावास, बुडापेस्ट के निदेशक श्री टी.पी. एस. रावत, प्रसिद्ध पत्रकार श्री ए.के. अग्रवाल, हिंदी पीठ आई.सी.सी.आर. से डॉ. दिलीप शाक्य जैसे विद्वानों की उपस्थिति रही।

द्वितीय सत्र के अंतर्गत 'सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से हिंदी कल, आज और कल' विषय पर विभिन्न प्रतिभागियों ने अपने आलेख प्रस्तुत किए। इस सत्र के मुख्य अतिथि डॉ. स्नेह सुधा नवल रहीं तथा अध्यक्षता प्रसिद्ध लेखिका डॉ. मीनाक्षी जोशी ने की। विशिष्ट अतिथियों में डॉ. आनंद कुमार सिंह, डॉ. गुरमीत सिंह, डॉ. मीना शर्मा तथा वक्ता डॉ. सीमा रानी और डॉ. नूतन पाण्डेय ने विषय के संदर्भ मे नवीन उद्भावनाओं एवं संभावनाओं की ओर संकेत करते हुए अपने विचार व्यक्त किए। लेखक डॉ. राजेश श्रीवास्तव ने सत्र का संचालन किया।

तृतीय सत्र में अंतरराष्ट्रीय कविता उत्सव का आयोजन किया गया। इस सत्र के मुख्य अतिथि कवि श्री प्रेम भारद्वाज 'ज्ञानभिक्षु' रहे तथा अध्यक्षता डॉ. धनंजय सिंह ने की। इस अवसर पर 7 देशों से आमंत्रित कवियों ने काव्य पाठ किया।

चतुर्थ सत्र में अंतरराष्ट्रीय नृत्य-कला उत्सव का आयोजन किया गया, जिसमें कलाकारों द्वारा नृत्य एवं गायन-कला का प्रदर्शन हुआ।

समापन-सत्र में विशिष्ट अतिथियों के कर-कमलों द्वारा सभी प्रतिभागियों को 'साहित्य-सिंधु', 'कला सिंधु' 'हिंदी गौरव सम्मान' एवं 'साहित्य गौरव सम्मान' से सम्मानित किया गया। इस सम्मेलन में भारत, हंगरी, अमेरिका, कनाडा, बेल्जियम और स्विट्ज़रलैंड से आए 72 प्रतिभागियों ने भाग लिया। विश्व हिंदी साहित्य परिषद् के अध्यक्ष, डॉ आशीष कंधले ने संचालन तथा धन्यवाद-ज्ञापन किया।

विश्व हिंदी साहित्य परिषद् की रिपोर्ट

हमारा स्वराज्य

हरीश नवल

अपना राज सन् सैंतालीस की आधी रात से हुआ और हम गुलामों की पंक्ति से बाहर हो गए। गुलाम पृथक होकर कहाँ किस ओर जाए, यह समस्या देश के सामने भी थी और कर्णधारों के सामने भी। उन्हें यह निदान समझ आया कि वे मालिकों की पंक्ति में खड़े हो जाएं, सो उन्होंने महात्मा तथा असंख्य नामी, अनामी क्रांतिवीरों के सौजन्य से टूटी बेड़ियाँ को फैंका और अपना लक्ष्य मिल्कियत कर लिया जिसके लिए वे जिये अथवा नहीं पर तब मरे जा रहे थे।

अब लगा सब हमारा है। नवसंस्कार प्रदान किए गये कि स्वराज्य में सब कुछ 'स्व' यानि अपना ही है। जब सब कुछ अपना सा लगता है तब वास्तव में कुछ भी अपना नहीं कहलाता। हमने कर्णधारों से एकलव्य की भांति दीक्षा ली कि 'स्वराज्य' हम सब की कॉमन जायदाद है। कॉमन जो हो जाए वह किसी का नहीं होता-यह बाद में जान पाए। दस फ्लैटों के गलियारे की बत्ती अक्सर गुल रहती है क्योंकि उसकी जिम्मेदारी किसी एक की नहीं होती।

स्वराज्य क्या मिला, हमें लगा कि हम इंग्लैंड के राजा बना दिए गए हैं। हमारी यह इकाई स्वयं को राजा ही मानती रही। जरा सोचिये उस इंग्लैंड की क्या दशा होगी, जिसके कई करोड़ राजा होंगे। राजाओं ने क्या किया? कहा गया था, "हम लाए हैं तूफान से कश्ती निकाल के, इस देश को रखना मेरे बच्चे संभाल के।" परंतु बच्चे तो बन बैठे राजा, कहाँ कहाँ क्या क्या सम्भाला, उन्होंने तो छीना गेहूं बोने वाले से निवाला, व्यापार के नाम पर घोटाला, मुद्रा आर्जित करने के नाम पर हवाला और धीरे-धीरे दिवाला।

जिस स्वराज्य को पाने के लिए हजारों देशभक्तों ने बलिदान किए, हमने उसे क्या किया? सरे बाज़ार उसे मानो नीलाम कर दिया। जिस देश को आज़ाद करवाने के लिए सैकड़ों वर्षों से निरंतर बलिदानी गाथाएं सुनने को मिल रही थी-क्या सच्ची आज़ादी पा सका? कर्णधारों ने लोकतांत्रिक प्रणाली की धज्जियाँ बरसों बरस लगातार उड़ाई।

रजवाड़े मिटा दिए, प्रिवी पर्स बंद कर दिए पर नवकर्णाधारों के रजवाड़े, फूलने लगे, फलने लगे, फलों से लदने लगे और शीघ्र ही 'खादी', 'टोपी', और 'नेता' के अर्थ बदल गए-सामान्य से विशेष हो गए। राजनीति भी ऐसी बदली कि उसमें की काली नीति काले नोटों को सफेद वोटों में तब्दील करने के लिए शहीद हो गई। वोटों और नोटों की चोटों के बीच निरीह खड़ा 'वह' जो स्वराज्य मिलने पर गर्व से फूल उठा था, लाल प्राचीर के सामने खड़ा होकर 'जयहिंद' के नारे लगाता रहा, अपनी अंटी सौंपता रहा, उस 'आम आदमी' के पल्ले केवल 'नारे' ही पड़े।

कैसा था मिलने वाला स्वराज्य जहाँ खेने वाला ही नाव डुबोने में तुल गया, जहाँ घर को आग घर के चिराग़ों से ही लगी। शताब्दियों से अर्जित संस्कृति धू-धू करने लगी। नव कुबेर संस्कृति पनपने लगी और राजपुत्र-पुत्रियां अपने विकास पथों का निर्माण करने में जुट गए।

यह तो शुक्र है कि उन कर्णधारों की कलाई खोलने वाले भी सक्रिय हो गए और टोपियों के रंग कहीं कहीं बदलने लगे, बदलते रंग अधिकतर तो बदरंग हुए किन्तु कुछ रंग इंद्रधनुषीय भी आए जिन्हें देख बसंत की संभावनाएं भी बनने लगी।

बहरहाल सम्भावनाएं संभव हो यह आभास बन रहा है, हो सकता है स्वराज सच में हमारा हो सके। यह सच तभी सच होगा जब हम, आप और 'वे' स्वयं भी 'सच' का ही प्रयोग करेंगे और झूठ से परहेज करेंगे।

आइए उस 'स्वराज' की कामना करें।

सम्पर्क : 65, साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए-3, पश्चिम विहार,
नई दिल्ली-110063

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

....

....

....

....

पत्रिका भिजवाने का पता

....

....

....

....

विवरण	शुल्क				प्रतियों की सं.	रुपये/ US$
गगनांचल वर्ष................	एक वर्ष	₹ US$	500 100	(भारत) (विदेश)		
	तीन वर्षीय	₹ US$	1200 250	(भारत) (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय पुस्तक विक्रेता		10% 25%			

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं.. दिनांक ....

रु./US$ .... बैंक ....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूं।

कृपया इस फॉर्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएं:
कार्यक्रम अधिकारी (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं. 011-23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप ....

नाम..

पद..

दिनांक ....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा गत 40 वर्षों से हिन्दी पत्रिका गगनांचल का प्रकाशन किया जा रहा है जिसका मुख्य उद्देश्य देश के साथ-साथ विदेशों में भी भारतीय साहित्य, कला, दर्शन तथा हिन्दी का प्रचार-प्रसार करना है तथा इसका वितरण देश-विदेश में व्यापक स्तर पर किया जाता है।

इसके अतिरिक्त परिषद् ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों व दार्शनिकों जैसे महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएं परिषद् की प्रकाशन योजना में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन योजना विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केन्द्रित है, जो भारतीय संस्कृति, दर्शन व पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य व नाटयकला से संबद्ध हैं।

परिषद् द्वारा भारत में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय महोत्सवों के अंतर्गत सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा विदेशी सांस्कृतिक दलों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमों की वीडियो रिकॉर्डिंग तैयार की जाती है। इसके अतिरिक्त परिषद् ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिल कर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक श्रृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण गया है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र की दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद् ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद् के लिए गौरव का विषय है। परिषद् का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् मुख्यालय

अध्यक्ष	:	23378616 23370698
महानिदेशक	:	23378103 23370471
उप-महानिदेशक (एन.के.)	:	23370228 23378662
उप-महानिदेशक (पी)	:	23370784
वरिष्ट कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)	:	23379386
प्रशासन अनुभाग	:	23370834
अनुरक्षण अनुभाग	:	23378849
वित्त एवं लेखा अनुभाग	:	23379638
भारतीय सांस्कृति केंद्र अनुभाग	:	23379274
अंतरराष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-1	:	23370391
अंतरराष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-2	:	23370234
अंतरराष्ट्रीय विद्यार्थी (अफगान)	:	23379371
हिंदी अनुभाग	:	23379309-10 एक्स. 3388, 3347

पंजीयन संख्या, आर.एन/32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

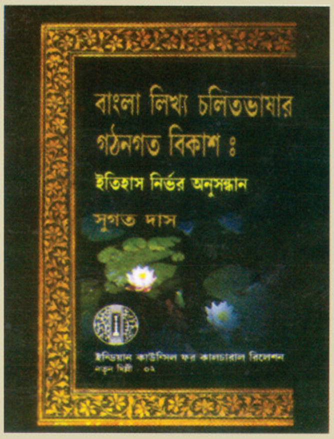

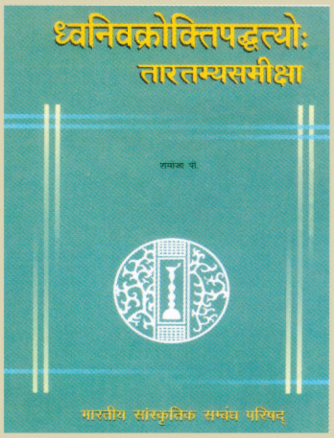

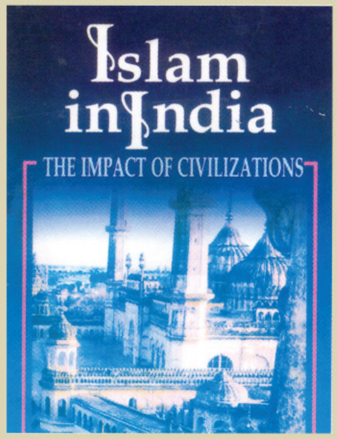

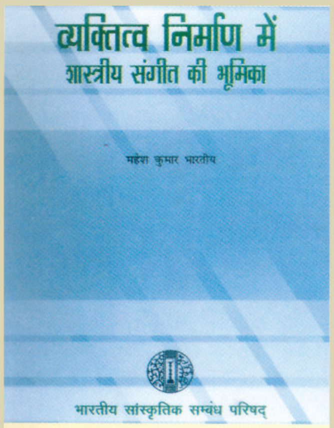

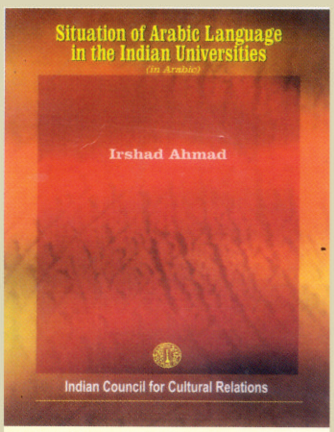

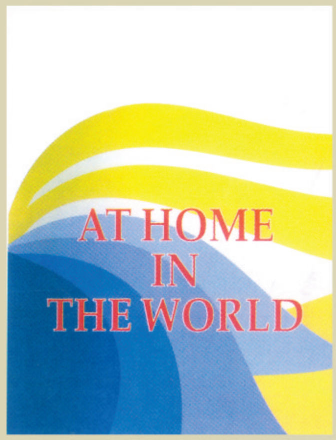

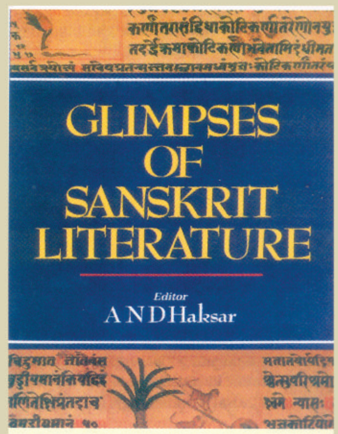

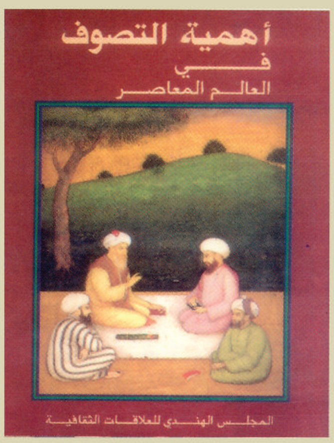

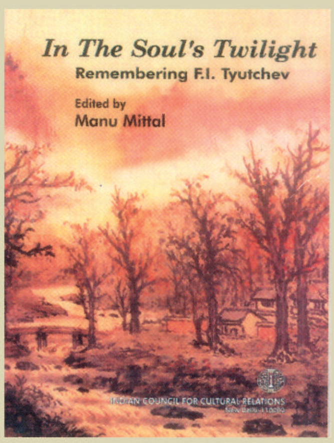

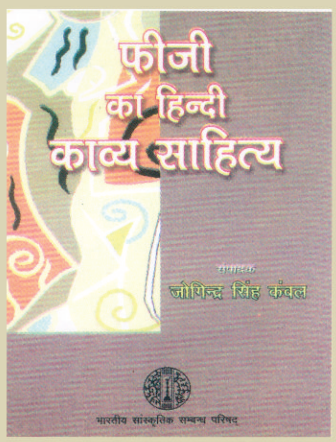

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
फोन : 91-11-23379309, 23379310
ई-मेल : pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट : www.iccrindia.net

आवरण परिकल्पना : ममता गोयनका